# *Ācārya* Viśuddhasāgara's

# *Vicāra*

# The Thoughts

## आचार्य विशुद्धसागर विरचित

# विचार

*Editing and English Rendering*

**Vijay K. Jain**

# *Vicāra*
## The Thoughts

विचार

*Ācārya* Viśuddhasāgara's

# *Vicāra*

## THE THOUGHTS

आचार्य विशुद्धसागर विरचित

# विचार

*Editing and English Rendering*

**Vijay K. Jain**

*Ācārya* Viśuddhasāgara's

***Vicāra***

**THE THOUGHTS**

आचार्य विशुद्धसागर विरचित

**विचार**

*Editing and English Rendering*

**Vijay K. Jain**

Copyright © 2025 by Vijay Kumar Jain
No reproduction without permission.
All rights reserved.

**ISBN: 978-93-342-5505-8**
Rs. 1000/-

*Published, 2025, by:*
Vijay Kumar Jain
B-13, MDDA Colony, Dalanwala, Dehradun-248001 (Uttarakhand), India

*Printed at:*
Vikalp Printers
Anekant Palace, 29 Rajpur Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand), India
E-mail: vikalpprinters1981@gmail.com

# DIVINE BLESSINGS *from* *ĀCĀRYA* VIŚUDDHASĀGARA

**मंगल आशीर्वाद -**

परम पूज्य दिगम्बराचार्य श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज

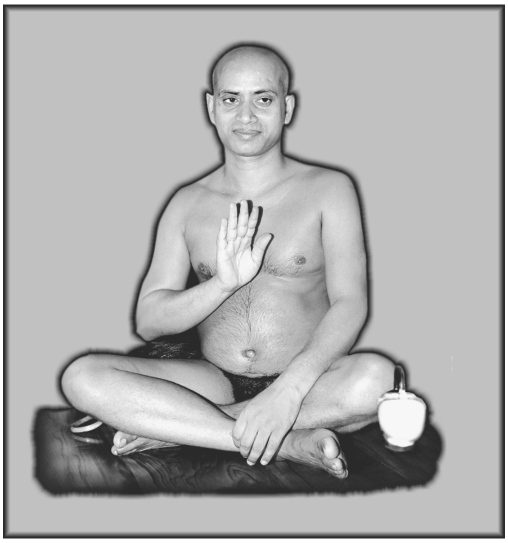

अन्तरंग भावों की तरंगें विचार हैं, जो कि विशाल हैं। कुछ विचार विचारक स्वयं के ही ग्रहण नहीं कर पाता, कुछ ग्रहण कर लेता है। सूक्ष्म विचारों को विचारक ही नहीं समझ पाता। विचारधाराएँ अनवरत चल रही हैं। जो विचार पकड़े जा रहे हैं, वे सभी कार्यकारी हों, यह नियामक नहीं है।

कृषक खेत में कुछ पौधे लगाता है, उनमें कुछ व्यर्थ की खरपतवार उत्पन्न हो जाती है। फसल की रक्षा हेतु कृषक उन्हें खेत से निकाल देता है। इसी प्रकार से चित्त में कुछ विचार व्यर्थ के भी आते रहते हैं जो कि निष्प्रयोजनभूत होते हैं। उन विचारों को खरपतवार समझ कर निकाल देना चाहिए, क्योंकि ये प्रशस्त-विचारों के घातक हैं।

वस्तुवाची विचार, दृष्टिवाची विचार, नीति-विचार, न्याय-विचार, रीति-विचार, भोजनवाची विचार, भजन-वस्त्रवाची विचार, व्यक्तिवाची विचार, धर्मरूप विचार, अधर्मरूप विचार, अप्रशस्त विचार, शुभ-अशुभ-माध्यस्थ हेतुक विचार, राष्ट्रव्यापी विचार, विश्वव्यापी विचार, साहित्य-संरक्षण विचार, साहित्य-नाशक विचार, संस्कृति-संरक्षण विचार, संस्कृति-नाशक विचार, साधनाभूत विचार, वासनाभूत विचार, राग-वर्धक विचार, राग-नाशक विचार, वित्त-पोषक विचार, शौच-धर्म-रूप विचार; इस प्रकार विचारों की श्रृंखला विशाल है।

विवेकी ज्ञानी जीव का कर्तव्य है कि जो विचार स्व-पर कल्याणप्रद हों उन्हें स्थान देना चाहिए तथा अन्य विचारों को स्व-विचारधारा से हटा देना चाहिए। यदि स्वयं के अन्दर श्रेष्ठ विचारों की योग्यता नहीं है तो अन्य श्रेष्ठ विचारकों से विचारों का अध्ययन, चिन्तन-मनन करना चाहिए; पर वह स्व-पर हितकारी होना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति स्वक्षेत्र सम्बन्धी ही विचार कर पाता है। तटस्थ पुरुष जगत् के राग से निरपेक्ष होता है। वह विश्वव्यापी विचारों के स्रोत को खोलता है। वह व्यक्ति घटना, दुर्घटना, सम्प्रदाय, पन्थ, पक्षों से

रिक्त होकर जो विचार करता है, उसके विचार प्रासुक होते हैं, अर्थात् उसके विचार पूर्ण-विशुद्ध होते हैं।

ऐसे साधु-जनों के विचारों का प्रयत्नपूर्वक राज्य-कर्मचारी, राज-नेताओं, धर्म-नेताओं को तथा विद्यार्थियों को अध्ययन करना चाहिए। स्व-विचारों को उन्नतिशील बनाने के लिए श्रेष्ठ विचारों को सुनना भी चाहिए।

जगत् पक्षों, पन्थों तथा राजनीति के पक्षों से शून्य होकर स्व-पर कल्याणभूत विचार समझ सके, इस भावना से - अन्तरंग प्रेरणा से - इस **'विचार'** कृति का सृजन हो गया। सम्पूर्ण विश्व तथा हमारा देश सम्यक् विचारधारा में चले, शक्तिमान देश असमर्थों के साथ अच्छा व्यवहार करे, असमर्थ लोग पुरुषार्थ करें, अपितु ईर्ष्या न करें।

ईर्ष्या उन्नति का कारण नहीं है, ईर्ष्या की ज्वाला विनाश का ही कारण है, इसलिए विकासशील तथा विकसित लोगों को प्रेम, वात्सल्य की धारा बहाते रहना चाहिए।

विश्व में एकत्व-भाव हृदय में जन्मे। भिन्नत्व-भाव के साथ प्रत्येक ज्ञेय भेदाभेदात्मक है। जगति पर स्व-स्व योग्यता के अनुसार ही जीव की प्रवृत्ति है। उनके विचार भिन्न-भिन्न हैं। सर्वथा विचार विभिन्नता हितकारी नहीं है, इसलिए **'विचार'** ग्रन्थ का प्रणयन हुआ।

स्व-पर हितार्थ कुछ विचारों में एकत्व होना अनिवार्य है; जैसे- करुणा-भाव पर एकत्व सभी जीवों का होना चाहिए। **'विचार'** कृति का सृजन प्राणिमात्र के हितार्थ किया गया है।

जगति पर अहिंसा-परमब्रह्म का सूत्र उद्घोषित रहे, अन्याय-अनीति से जगत् की रक्षा हो, इसलिए हिन्दी भाषा में **'विचार'** ग्रन्थ का सृजन हुआ है। विश्व को सत्यार्थ का बोध हो, आंग्ल-भाषी जीवों का हित हो, इसी पुनीत-भावना से मनीषी विद्वान्, तत्त्व-व्यसनी, देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्थावान, सच्चे श्रावक, विश्व-धरातल पर जिन-सूत्रों के प्रेषक, भूतार्थ तत्त्व अन्वेषक, वस्तु के वस्तुत्व के सत्यार्थ-बोधक श्री विजय कुमार जी जैन (देहरादून) ने **'विचार'** कृति का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके माँ वागीश्वरी की उपासना कर सरस्वती के कोश की वृद्धि की है।

आपके जीवन के शेष निषेक जिनवाणी की आराधना में ही पूर्ण हों। भावी काल में आप श्रुतकेवली ही नहीं, केवली बनकर स्याद्वाद-शासन का जयनाद करें, यही शुभाशीष...।

**नँु नमः सिद्धेभ्यः ।**
**इति शुभम् भूयात् ।**

**- श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनि**

**श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट**
**मध्यप्रदेश ( भारत )**
20 अप्रैल 2025

* * *

# PREFACE

## The Glory of *Ācārya* Viśuddhasāgara

A *Digambara* ascetic *(nirgrantha muni)* since the last thirty-three[1] years, *Ācārya* Viśuddhasāgara (born, 18 December 1971) performs four major activities: 1) to dwell in own-soul through the fire of concentration *(ekāgratā, dhyāna)*, 2) to study the Scripture *(Jinavāṇī, āgama)*, 3) to deliver discourses *(pravacana)* on the nature of the Reality *(tattva, vastutva, vastu-svabhāva)*, and 4) to compose sacred texts, in prose and verse, strictly in accordance with the Jaina Doctrine, for the benefit of the inquisitive readers who by themselves find it difficult to comprehend the complexities of the nature of the Reality.

*Ācārya* Viśuddhasāgara meditates on the pure, effulgent soul through the medium of his soul imbued with the 'Three-Jewels' *(ratnatraya)*. The 'Three-Jewels', both discrete *(bheda)* and indiscrete *(abheda)*, constitute the path to liberation *(mokṣa-mārga)*. He reckons that no substance other than the soul is potent enough to either assist or obstruct the functioning of the soul. By thus renouncing attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*, he has built a shield around his soul to protect it from extraneous influence. Conventionally, concentration is to establish the soul in the 'Three-Jewels' *(ratnatraya)*, or the three limbs *(aṅga)* of the soul. From the real point-of-view, however, the soul is one whole *(aṅgī)*, comprising indiscrete 'Three-Jewels' – *abheda ratnatraya*. Concentration is the means to savour the nectar present in own-soul.

*Ācārya* Viśuddhasāgara, through his discourses *(pravacana)*, provides an opportunity to hundreds of thousands of souls *(jīva)* to know the nature of the Reality, as expounded in the Scripture. His discourses are beneficial *(hitakārī)*, pleasing *(madhura)* and unambiguous *(viśada)*. He has mastered the science-of-thought *(nyāya)*, and his grip on the complex concepts of the Jaina epistemology, including non-absoltism *(anekāntavāda)* and conditional-predication *(syādvāda),* is amazing. He is able to shatter the faulty, absolutist *(ekānta)* views – called *durnaya* – of the wrong-believers *(mithyā-dṛṣṭi)* with the sharp sword of *syādvāda*.

His discourses are rid of the eight faults associated with the absolutist *(ekānta)* views, called *durnaya* or *nayābhāsa.* These eight faults are enumerated in *Ācārya* Devasena's *Ālāpa Paddhati*[2].

1. संकर – *saṃkara* – To assume that one substance can become the other substance. 'The soul is the body.'
2. व्यतिकर – *vyatikara* – To transmute the specific quality of one substance to the other substance. 'I've heard it with my own eyes.'
3. विरोध – *virodha* – To accept the quality in a substance that is opposite to its nature. 'The matter *(pudgala)* has consciousness *(cetanā)*.'
4. वैयधिकरण – *vaiyadhikaraṇa* – To assume that opposing attributes can persist in a substance at one and the same time. 'The water in the lake is hot and cold.'

---

1. *Ācārya* Virāgasāgara accorded *Digambara* (sky-clad) Jina-ordination *(Jinadīkṣā)* to *Ācārya* Viśuddhasāgara on 21 November 1991.
2. Vijay K, Jain (2024), *Ācārya* Devasena's ***Ālāpa Paddhati*** – *The Ways of Verbal Expression,* Vijay Kumar Jain, Dehradun, p. 136-138.

5. **अनवस्था** – *anavasthā* – To make a never-ending assumption. 'Everything must have a creator; God is the creator of the world.' Then, who is the creator of God? This goes on *ad infinitum*.
6. **संशय** – *saṃśaya* – To have doubt over the nature of the object. 'It may not be true that virtuous karmas lead to birth in heaven.' Or, 'Is it silver or nacre?'
7. **अप्रतिपत्ति** – *apratipatti* – To be ignorant about the nature-of-the-object *(vastu-svabhāva)*. 'The space *(ākāśa)* assists in the motion of the soul and the matter.'
8. **अभाव** – *abhāva* – To assume something that does not exist. 'The horns of the hare.'

Further, his discourses are rid of the three faults of the mark *(lakṣaṇa)* that is employed to define the object *(lakṣya)*:[3]

1. **अव्याप्ति** – *avyāpti* – non-pervasiveness – The mark *(lakṣaṇa)* is not universally found in the object *(lakṣya)*. 'Cows are white *(lakṣaṇa)*.'
2. **अतिव्याप्ति** – *ativyāpti* – over-pervasiveness – The mark *(lakṣaṇa)* is also found outside the object *(lakṣya)*. 'Milk-producing *(lakṣaṇa)* animals are cows.'
3. **असंभवि** – *asaṃbhavi* – impossible – The mark *(lakṣaṇa)* cannot be found in the object *(lakṣya)*. 'Winged *(lakṣaṇa)* animals are cows.'

An ardent propagator of the Jaina Doctrine, *Ācārya* Viśuddhasāgara is ever-ready to whole-heartedly gift every potential *(bhavya)* right-believer *(samyagdṛṣṭi)*, the ascetic *(mahāvratī, muni)* as well as the householder with or without the minor-vows *(aṇuvrati* and *śrāvaka)*, the 'nectar' out of all the four constituents *(anuyoga)* – *prathamā-nuyoga* (the study of the stories of epochal personages), *karuṇānuyoga* (the study of the universe and beyond, the time-cycle, and the stages of soul-existence), *caraṇānuyoga* (the foundation for origination, growth and protection of conduct for the householder and the ascetic), and *dravyānuyoga* (the study of the objects of the Reality) – of the Holy Scripture. It rests entirely on our own interest, intellect, effort, and subsidence-cum-destruction *(kṣayopaśama)* of the knowledge-obscuring *(jñānāvaraṇīya)* karmas to draw the 'nectar' out of this free-flowing knowledge-river.

An epitome of laudable conduct *(cāritra)*, *Ācārya* Viśuddhasāgara has renounced, for life, the intake of salt, sugar, curd and edible-oil. Know that the *Digambara* ascetic *(muni, śramaṇa)* accepts food *(āhāra)* that is pure, simple and free from faults only once in 24-hours. And that too he accepts only in order to maintain the steadiness of his body which he reckons as instrumental to the performance of austerities *(tapa)*, self-restraint *(saṃyama)* and meditation *(dhyāna)*.

*Ācārya* Viśuddhasāgara maintains that the mark *(lakṣaṇa)* or the 'dharma' of the true ascetic *(muni, śramaṇa)* is the disposition *(bhāva)* of equanimity *(sāmya)*. Since the words of the true ascetic are incontrovertible, it follows that, for him, enemy *(śatru)* and kinsfolk *(bandhu-varga)*, happiness *(sukha)* and misery *(duḥkha)*, praise *(praśaṃsā)* and censure *(nindā)*, iron *(lohā)* and gold *(svarṇa)*, and life *(prāṇa-dhāraṇa)* and death *(prāṇa-tyāga)* are alike.[4]

---

3. See, सम्पादक तथा अनुवादक - पं. डॉ. दरबारीलाल कोठिया (2017), श्रीमदभिनव-धर्मभूषणयतिविरचिता **न्यायदीपिका**, जैन विद्यापीठ, सागर (म.प्र.), p. 143.

4. See, Vijay K, Jain (2018), *Ācārya* Kundakunda's ***Pravacanasāra*** *– Essence of the Doctrine,* Vikalp Printers, Dehradun, verse 3-41, p. 300-301.

Besides the study of the Scripture, *Ācārya* Viśuddhasāgara has taken upon himself the responsibility of nurturing potential souls who wish to tread the holy path to self-development that leads ultimately to liberation. *Ācārya* Viśuddhasāgara has, till date, accorded Jain ordination to some fifty-plus choicest gems among the present-day seekers of inner peace, spiritual upliftment and liberation from worldly woes.

*Ācārya* Viśuddhasāgara takes great delight in delivering his discourses. He believes that the subject matter of the discourse of every ascetic should be the Scripture, nothing else. Although individuals looking for quick-fix solutions to their worldly woes through popular, but unproven, means including palmistry, sacred-utterances *(mantra)*, and mystical-rituals *(tantra)* may find his discourses unfathomable, but worthy listeners who long for lasting and true happiness find these extremely helpful and illuminating.

*Ācārya* Viśuddhasāgara delivers his discourses *(pravacana)* based on highly profound and complex scriptural texts appertaining to the *Digambara* sect of the Jains. These texts have been composed by the ancient preceptors in Prakrit or Sanskrit language and deal with complex topics that are generally beyond the reach of the ordinary people. As his discourses are nothing but the interpretation of the Scripture – or the nature of the Reality – many of these have been transcribed and published in form of holy texts that are read by a large number of knowledge-seekers, ascetics and householders, throughout India and globally. Till date, some two hundred of his compositions have been published. Many of these have been translated into other languages including Marathi, Gujarati, Prakrit, Kannada, Tamil and English.

Another task that *Ācārya* Viśuddhasāgara performs with great vigour is the installation of the idols of the Most Worshipful *Tīrthaṃkaras* in temples all over India. This effort of his provides an opportunity to thousands of devotees to participate in celebrations depicting the five most auspicious events – *pañca-kalyāṇaka* – that mark the life of a *Tīrthaṃkara*. In the process, they draw inspiration to lead a life of virtues rather than of vices. *Ācārya* Viśuddhasāgara has thus been truly successful in instilling in not only the Jaina community but also in the members of other communities the five virtues of non-violence *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(acaurya)*, chastity *(brahmacarya)*, and non-attachment *(aparigraha)*. Through his spiritual teachings, he has brought about transformational changes in the lives of hundreds of thousands of his disciples, and common men and women. The changes he brought about in their lives are reflected in their relinquishing evil-addictions like consuming meat and wine, and indulging in theft, promiscuity, hunting and gambling. Many of them have adopted a blissful life of self-contentment, giving of gift to worthy recipients, and earning their livelihood through just means.

In order to avoid injury to minute organisms that evolve in the environment during the four months of the rainy season (roughly, July to October), *Ācārya* Viśuddhasāgara, as per the conduct required of an ascetic, stays at one location (a particular town or city). Except for the period of these four months, he, along with his congregation, walks indefatigably, through the length and breadth of India, providing thereby an opportunity to tens of thousands of men and women to earn merit through mere *'darśana'* of such pious souls and also learn about the nature of the Reality by listening to his discourses. Neither the icy-winds of December-January

nor the heat-waves of May-June have the power to deter these sky-clad and barefoot ascetics from pursuing what they are up to. The secret behind such feverish roaming is his belief that the true ascetic should be free from attachment for any particular town, city, temple, or dwelling. He believes firmly that the true ascetic who had renounced his home earlier must not indulge in building a dwelling for himself later on in life.

Striving after liberation from worldly existence, *Ācārya* Viśuddhasāgara endures afflictions or hardships – natural and man-made – like extreme cold or hot weather, hunger, thirst, insect-bite, nakedness, tasteless food, pain arising out of roaming long distances barefoot, discomfort of posture, and harsh, uncivil and vulgar words of persons of perverted thought. He showers his blessings on one and all. He does not entertain ill-feelings against any living-being in the world; not even against mute animals that happen to cause him any kind of injury, hardship or suffering.

### CONFERMENT OF THE CONGREGATION'S SUCCESSORSHIP

*Ācārya* Virāgasāgara, the guru, embraced pious-death *(samādhimaraṇa)* on 4 July 2024. As per his last directive, *Ācārya* Viśuddhasāgara was conferred – with reverential concurrence of hundreds of male and female ascetics and a huge gathering of householders – the successorship of the entire congregation, on 30 April 2025, at Sumatidham, Indore (Madhya Pradesh). *Ācārya* Viśuddhasāgara is now the Supreme-preacher *(Paṭṭācārya)* of the congregation.

## The quintessence of *'Vicāra'* – 'The Thoughts'

*Ācārya* Viśuddhasāgara believes firmly that the human birth must be utilized as a springboard for spiritual development rather than for physical or material development. This can be attained only when one holds the belief that the body and the soul are two utterly distinct entities and that the soul needs to be attended to as the first priority in all human endeavors. If this belief percolates down mankind we shall witness a world that is rid of strife, deprivation and antagonism. No one will then play with the ways of nature on this planet earth.

Right thoughts are a prerequisite for world-development. Your thoughts must focus on development and well being of the world, besides of the self. The world today is beset by several wrong beliefs and tendencies that have become 'natural' to most of us but are causing great harm to self and others. 'The Thoughts' confronts many such issues head-on with inviolable logic and scriptural attestation. This fact alone makes the book essential reading for all thoughtful persons globally. Here are a few examples of our mindless acts:

### BELIEVING GOD TO BE THE CREATOR, ABDUCTOR AND SAVIOUR

God or the supreme-soul *(paramātmā)* is the one who has, through own effort, got himself rid of all karmas and attained liberation, the state of infinite and ineffable bliss. To imagine God as the one who concerns himself with human fate and actions is naïve and a source of conflict between science and religion. If you believe that God awards punishment for evil deeds and the administration of the world is in his hands, why does he get done things that force him to punish people and subject them to the suffering of the hell? The karmas that we bind ourselves with must come to fruition at their designated time and produce results, favourable or unfavourable. No one else, certainly not our imagined God, is the doer or the abductor or the saviour. While we must strive for soul-upliftment, our behaviour towards all living-beings should be

based on nobility, compassion and brotherhood, rather than on religious doctrine of fear and punishment. Only this will engender happiness in the whole world.

## CONSUMING MEAT AND OTHER UNMERITED FOOD

The vast majority of world population – estimated to be about 90% – includes meat in its diet. In fact, meat consumption has become almost 'natural' to the world population. People do not realize that consumption of flesh is an act of cruelty. *Ācārya* Viśuddhasāgara teaches us that he only is a man of merit who is full of compassion even for animals including birds. The man who instead cooks these animals for food has no humaneness. Fish, chicken, goat and egg are not food for men. Food for a man should be vegetarian. The dharma of the man is to protect all living-beings, not just humans. Protect your humaneness by shunning consumption of flesh. Watch the pain of the animals that are being cut into pieces and put into the frying pan. These animals must have caused similar pain to others in some previous birth. The cycle of the karmas must go on till you snap it with own-effort. Men accustomed to scrumptious food and intemperance had preached the killing of animals; the fruits of the karmas will follow these ignorant men.

## SACRIFICING ANIMALS TO PLEASE DEITIES

Instead of propagating the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* and protection of living-beings, some dim-witted and ignorant preachers had propagated inauspicious concepts like animal-sacrifice and thereby made simple-minded men cruel. Thousands of years have since lapsed but still, taking their teaching as authentic, ignorant men are engaged in inauspicious activity of animal-sacrifice. To date millions and millions of men, putting their faith on false teachings by unlearned preachers, are engaged in atrocity towards mute animals.

Injury *(hiṃsā)* and cruelty can never result in the accomplishment of work. The dharma-blinded men have misguided simple men. They taught that to accomplish a certain task you have to sacrifice a particular living-being. Can causing suffering to others ever provide you with happiness? The seed determines what tree you are going to get. Killing destitute living-beings can never provide you with either spiritual upliftment or worldly prosperity.

*Ācārya* Viśuddhasāgara has showered me with his divine blessings for this project. His divine blessings have had wondrous effect in making both, the process and the end-result, most gratifying.

I make worshipful obeisance not only to *Ācārya* Viśuddhasāgara but to each of the 8,99,99,997 supreme-ascetics *(bhāvaliṅgī-muni)*, from the sixth *(pramatta-saṃyata)* to the fourteenth *(ayogakevalī)* stage-of-spiritual-development *(guṇasthāna)*, present in the human-world *(manuṣya-loka)* comprising the two-and-a-half continents, starting from Jambūdvīpa and up to the mountain range of Mānuṣottara in the centre of Puṣkaradvīpa.[5]

**– Vijay K. Jain**

Dehradun (India)
11 May 2025

* * *

5. See, डॉ. ए. एन. उपाध्ये एवं सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री (2014), आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित **गोम्मटसार जीवकाण्ड,** भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–110003, छठा संस्करण. Part-2, p. 869-870.

# VIJAY K. JAIN – BIOGRAPHICAL NOTE

Having had his schooling from Mhow and Bhopal in Madhya Pradesh, Vijay K. Jain (b. 31 August, 1951) did his graduation in Electronics Engineering from Institute of Technology, Banaras Hindu University, and Post-Graduation in Management from Indian Institute of Management, Ahmedabad.

An independent researcher, Vijay K. Jain has authored several books, and edited and translated into English a number of profound Jaina texts.

1. ***Marketing Management for Small Units*** (1988).
2. **जैन धर्म : मंगल परिचय** (1994).
3. ***From IIM-Ahmedabad to Happiness*** (2006).
4. *Āchārya Umāsvāmi's* ***Tattvārthsūtra*** *– With Hindi and English Translation* (2011).
5. *Āchārya Kundkund's* ***Samayasāra*** *– With Hindi and English Translation* (2012).
6. *Shri Amritachandra Suri's* ***Puruṣārthasiddhyupāya*** *– With Hindi and English Translation* (2012).
7. *Ācārya Nemichandra's* ***Dravyasaṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes* (2013).
8. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Iṣṭopadeśa*** *– The Golden Discourse* (2014).
9. *Ācārya Samantabhadra's* ***Svayambhūstotra*** *– Adoration of the Twenty-four Tīrthaṅkara* (2015).
10. *Ācārya Samantabhadra's* ***Āptamīmāṃsā (Devāgamastotra)*** *– Deep Reflection On The Omniscient Lord* (2016).
11. *Ācārya Samantabhadra's* ***Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra*** *– The Jewel-casket of Householder's Conduct* (2016).
12. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Samādhitantram*** *– Supreme Meditation* (2017).
13. *Ācārya Kundakunda's* ***Pravacanasāra*** *– Essence of the Doctrine* (2018).
14. *Ācārya Umāsvāmī's* ***Tattvārthasūtra*** *– With Explanation in English from Ācārya Pūjyapāda's* ***Sarvārthasiddhi*** (2018).
15. *Ācārya Kundakunda's* ***Niyamasāra*** *– The Essence of Soul-adoration (With Authentic Explanatory Notes)* (2019).
16. *Ācārya Guṇabhadra's* ***Ātmānuśāsana*** *– Precept on the Soul* (2019).
17. *Ācārya Kundakunda's* ***Pañcāstikāya-saṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes in English* (2020).
18. आचार्य समन्तभद्र विरचित **युक्त्यनुशासन** – अन्वयार्थ एवं व्याख्या सहित (2020).
19. आचार्य समन्तभद्र विरचित **स्तुतिविद्या (जिनशतक, जिनस्तुतिशतं)** (2020).
20. English rendering: दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर विरचित **सत्यार्थ-बोध;** *Ācārya Viśuddhasāgara's* ***Satyārtha-bodha – Know The Truth*** (2021).
21. *Ācārya Māṇikyanandi's* ***Parīkṣāmukha Sūtra*** *– Essence of the Jaina Nyāya* (2021).
22. *Ācārya Kundakunda's* ***Bārasa Aṇuvekkhā*** *– The Twelve Contemplations (With Authentic Explanatory Notes)* (2021).
23. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Bhakti Saṃgraha*** *– Collection of Devotions* (2022).
24. *Ācārya Kundakunda's* ***Samayasāra*** *– With Hindi and English Translation* (2022), Second Edition.
25. *Ācārya Nemichandra's* ***Dravyasaṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes* (2022), Second Edition.
26. *Ācārya Mānatuṅga's* ***Bhaktāmara Stotra*** *– With Hindi and English Rendering* (2023).

27. *Ācārya Kundakunda's* ***Rayaṇasāra*** *– The Quintessential Jewel* (2023).
28. *Ācārya Kumudacandra's* ***Kalyāṇamandira Stotra*** *– Adoration of Lord Pārśvanātha* (2024).
29. *Ācārya Devasena's* ***Ālāpa Paddhati*** *– The Ways of Verbal Expression* (2024).
30. *Ācārya Vādirāja's* ***Ekībhāva Stotra*** *(Anecdotal story – quelling leprosy)* (2024).
31. *Ācārya Samantabhadra's* ***Āptamīmāṃsā (Devāgamastotra)*** *– Deep Reflection On The Omniscient Lord* (2025), Second Edition.
32. Editing and English rendering: आचार्य विशुद्धसागर विरचित **विचार;** *Ācārya Viśuddhasāgara's* ***Vicāra – The Thoughts*** (2025).

**International Acceptance:**

Translations by Vijay K. Jain are noted for their clarity and fidelity to the original texts. His scholarly contributions are characterized by a deep commitment to making ancient Jaina scriptures accessible to contemporary audiences within India and globally.

Some of these books adorn the shelves of renowned international libraries[1], including:

- Edinburgh University Library, Edinburgh, United Kingdom
- University of Oxford, United Kingdom
- University of Pennsylvania, United States
- New York University, United States
- Harvard University, Cambridge, United States
- Yale University, New Haven, United States
- University of Washington Libraries, Seattle, United States
- Columbia University Libraries, United States
- University of Minnesota, Minneapolis, United States
- University of Hawaii, Hamilton Library, Honolulu, United States
- University of Wisconsin, Madison, United States
- University of Michigan, United States
- Northwestern University, United States
- University of Chicago Library, United States
- Library of Congress, Washington, United States
- UC Berkeley Libraries, Berkeley, United States
- Duke University Libraries, United States
- Stanford University Libraries, United States
- Emory University, Atlanta, United States
- University of California Los Angeles, United States
- University of Texas Libraries, United States
- Staatsbibliothek zu Berlin, Potsdamer Straße, Berlin, Germany
- Universitäts- und Landesbibliothek Sachsen-Anhalt / Zentrale, Germany
- Bibliothèque cantonale et universitaire - Lausanne, site Unithèque, Switzerland
- University of Toronto Robarts Library, Toronto, Canada
- Universitätsbibliothek Würzburg, Germany

Vijay K. Jain is the proprietor of Vikalp Printers, a small, high-end printing and publishing firm, based in Dehradun, India.

* * *

॥ वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥

1. Listing is in random order. *Source:* https://search.worldcat.org

# CONTENTS


| | | |
|---|---|---|
| मंगल आशीर्वाद - श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनि | ----- | (v) |
| PREFACE – VIJAY K. JAIN | ----- | (vii) |
| VIJAY K. JAIN – BIOGRAPHICAL NOTE | ----- | (xii) |

| *No.* | *The Thought* | *Page* |
|---|---|---|
| 1. | महान् जीवन के लिए सम्यक्-विचार<br>Right thoughts for a great life | 3 |
| 2. | विचारों से ही मित्र एवं शत्रु<br>Only our thoughts make friends and foes | 3 |
| 3. | विचारशीलता ही मानव की विकासशीलता<br>Thoughtfulness provides the man the capability to grow | 3 |
| 4. | उज्ज्वल विचार से उज्ज्वल चरित्र<br>Effulgent thoughts bestow effulgent conduct | 4 |
| 5. | विचारधारा के अनुरूप वस्तु-स्वरूप का निर्णय<br>The man figures out the nature of the object as per his thoughts | 4 |
| 6. | व्यक्तित्व की रचना विचारों के अनुसार<br>The personality of the man is shaped by his thoughts | 4 |
| 7. | विचारकों से मिलना स्व-पर के लिए हितकारक<br>It is beneficial to keep in touch with the thinkers | 5 |
| 8. | ममत्व-भाव से सम्बन्ध; सम्बन्ध से अशुभ कर्मों का बन्ध<br>Attachment causes connections; connections cause bondage of inauspicious karmas | 5 |
| 9. | सभी जीवों के प्रति मैत्री-भाव<br>Sense of friendship towards all living-beings | 6 |
| 10. | स्व-विचारों में दया-भाव अनिवार्य<br>Disposition of compassion in thoughts is essential | 7 |
| 11. | विचारों पर विचार करो<br>Think about your thoughts | 7 |
| 12. | विचारों की अपूर्णता पन्थों की जननी<br>Fractional thoughts give rise to sects | 7 |
| 13. | विचारों में सबके प्रति सद्भावना<br>Have thoughts of goodwill towards all | 8 |
| 14. | वात्सल्य से आर्द्र विचारों की महत्ता<br>The importance of thoughts moist with tenderness | 8 |
| 15. | विचारधारा का समीकरण ही मैत्री-भाव<br>Balance in the thought process results in fellowship | 9 |
| 16. | विचारधारा से ही ज्ञान सम्यक् होता है<br>The thought process is the bestower of right knowledge | 10 |
| 17. | सम्यक् विचार ही प्रामाणिक तथा श्रद्धेय<br>Only the right thoughts constitute valid-knowledge and are venerable | 10 |
| 18. | स्वकीय विचारों का स्वयं द्वारा परिमार्जन<br>Own thoughts are to be refined by the self | 11 |
| 19. | सम्यक् विचार अर्थात् आनन्दमय जीवन<br>Right thoughts mean a happy life | 11 |
| 20. | सम्यक्-विचार के उपरान्त की गई क्रिया से शुभ परिणाम<br>Activity based on right thoughts yields auspicious results | 12 |
| 21. | बिना समीचीन विचार किए कार्यों से जीवन दूषित होता है<br>Life gets contaminated by the acts without laudable thinking | 12 |
| 22. | विचारों का हमारी जीवन-शैली तथा जगत् पर असर<br>Impact of thoughts on your lifestyle and the world | 13 |

| *No.* | *The Thought* | *Page* |
|---|---|---|
| 23. | विचारशीलता - मानव की प्रथम विराट् शक्ति<br>Power of thinking – the foremost power of the man | 13 |
| 24. | विशद विचारों के लिए विशद प्रज्ञा तथा संयम की आवश्यकता<br>Purity of thoughts leads to purity of conduct | 14 |
| 25. | विचारशीलता ही मानव की विकासशीलता<br>Pristine intellect and conduct are required for pristine thoughts | 14 |
| 26. | सम्यक् रूप से जानना, व्याख्यान करना, विचार करना ही प्रयोजनभूत<br>Only right knowledge, speaking and thinking are meaningful | 15 |
| 27. | सम्यक् विचार सर्व संसार में प्रवाहीमान हो जाते हैं<br>Right thoughts spread out in the whole world | 16 |
| 28. | सम्यक् विचार के अभाव से देशव्यापी अनाचार<br>Without right thoughts anarchy spreads out in the whole country | 17 |
| 29. | सम्यक् विचारशील के पास ही कार्य कराने की क्षमता<br>Only the right thinking man has the capability to get work done | 17 |
| 30. | सम्यक् विचार युक्त व्यक्ति ही देश व राष्ट्र का योग्य संचालक<br>Only the man with right thoughts can be a worthy administrator of the country and the nation | 18 |
| 31. | करुणा-दया में प्रमोद भाव होना चाहिए, संक्लेशता नहीं<br>Mercy and compassion should accompany delight, not agony | 19 |
| 32. | बिना विचारे जो करे...<br>The man who acts without thinking... | 19 |
| 33. | सतत साधना से ही लोक में प्रसिद्धि तथा आत्म-सिद्धि<br>Continuous practise begets fame in the world, and self-attainment | 20 |
| 34. | गुरु-उपदेश, आगम एवं अनुभव सम्मत विचार ही हितकारी<br>Only the thoughts in accordance with teachings of the guru, scripture and experience are beneficial | 20 |
| 35. | हेय-उपादेय विचार खड़े कर देना प्रज्ञ पुरुषों का कार्य<br>Intelligent men evaluate their thoughts – for worthiness or unworthiness | 21 |
| 36. | परोक्ष प्रमाण से भी वस्तु तत्त्व को जाना जाता है<br>The reality of the objects is also known through indirect valid-knowledge | 22 |
| 37. | प्रज्ञावन्त साधु पुरुषों के विचार सम्यक् एवं स्व-पर कल्याणकारी<br>The thoughts of intelligent and noble men are right, and beneficial to self and others | 23 |
| 38. | शुभ विचारने वाले का उभय लोक में कल्याण<br>Auspicious thinking ensures blessedness in this world and hereafter | 24 |
| 39. | सम्यक् विचार के उपरान्त सम्यक् आचार<br>Adopt right conduct after right thought | 25 |
| 40. | सकारात्मक सोच के संस्कार स्वात्मा में डालिए<br>Condition your soul for positive thinking | 25 |
| 41. | ईर्ष्या भाव से आत्मरक्षा करें<br>Protect yourself from the disposition of envy | 26 |
| 42. | प्रसन्नचित्त रहने के लिए संयम के भाव<br>Disposition of self-restraint is required to attain happiness | 27 |
| 43. | विशुद्धि का क्षरण होने पर मोक्ष-मार्ग का भी क्षरण<br>Erosion of purity results in erosion of the path to liberation | 27 |
| 44. | विचारधारा की निर्मलता से ही परस्पर मैत्री-भाव सम्भव<br>Mutual brotherhood only in presence of purity of thoughts | 28 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 45. | विचारशील, विवेकशील, प्रज्ञावन्त जनों की बात को स्वीकार करो<br>Accept the words of men with thought-fulness, discernment and intellect | 29 |
| 46. | विचार-शक्ति की प्राञ्जलता से ही कुशल वक्ता<br>Lucidity in thoughts is essential to be an adept speaker | 29 |
| 47. | हर्ष-विषाद के विचार करने की अपेक्षा तटस्थ भाव रखिये<br>Maintain the thought of equanimity rather than of pleasure or pain | 30 |
| 48. | विराट् सोच तथा विवेक बनाने का पुरुषार्थ करें<br>Try to adopt broad thinking and a sense of discrimination | 31 |
| 49. | न ज्ञानी की उपेक्षा करो, न अज्ञानी की<br>Ignore neither the knowledgeable nor the ignorant | 32 |
| 50. | योग्यता के अनुरूप विचार करने पर ही कार्य की सिद्धि<br>To attain success, think as per your capability | 32 |
| 51. | सर्व द्वन्द्वों से आत्मा का रक्षण करो<br>Protect your soul from all altercations | 33 |
| 52. | तत्त्व निर्णय से शून्य व्यक्ति ही आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है<br>Only the man ignorant of the reality takes step towards suicide | 34 |
| 53. | वस्तु धर्म अनेकान्त रूप है<br>The nature of the object is non-absolutistic | 35 |
| 54. | योग्यता-पूर्ण ज्ञानीजन पर की प्रशंसा के भूखे नहीं रहते<br>Worthy knowledgeable men are not hungry for praise from others | 36 |
| 55. | शत्रु को एकान्त से शत्रु ही मत मानो, वह मित्र भी है<br>The enemy is not just enemy; he is a friend too | 37 |
| 56. | साधु-स्वभावी ज्ञानी ही हेय-उपादेय में भेद को जानता है<br>Only knowledgeable and noble man knows what is worth accepting and rejecting | 38 |
| 57. | आचार एवं विचार में साधुता लायें<br>Foster nobility in your conduct and thoughts | 38 |
| 58. | श्रेष्ठ क्रिया, श्रेष्ठ चर्या, श्रेष्ठ चिन्तवन - उत्तम पुरुषों की पहचान<br>Great men are known by excellent work, manners and thoughts | 39 |
| 59. | प्रज्ञ-पुरुष पर के सुख-दुःख में निजात्मा को संक्लेशित नहीं करते<br>Intelligent men don’t agonize themselves due to happiness and misery of others | 40 |
| 60. | दूसरों के दुःख में राग व द्वेषवश हर्ष-विषाद न करें<br>Don’t let your attachment or aversion make you happy or miserable at the misery of others | 41 |
| 61. | प्रतिकूलता में हर्षित भाव रखना ही साधुता<br>Nobility is to maintain happiness in adversity | 41 |
| 62. | सुविचार अक्षय-पुण्य के हेतु तथा कुविचार दीर्घ संसार के हेतु<br>Noble thoughts result in ever-lasting merit, vicious thoughts in elongation of the worldly existence | 42 |
| 63. | तत्त्वज्ञानी जीव के विचार स्व-पर कल्याणकारी<br>Thoughts of the knower of the reality are beneficial for self and others | 42 |
| 64. | श्रेष्ठ आचरण, श्रेष्ठ विचार की सर्वत्र प्रशंसा<br>Excellent conduct and thoughts are praised by all | 43 |
| 65. | हीन जनों के न उत्तम विचार, न उत्तम कार्य<br>Mean people do not have laudable thoughts and deeds | 44 |
| 66. | सबके दिन एक से नहीं होते तथा सब दिन भी एक से नहीं होते<br>‘The days of all are not alike and all days are not alike’ | 45 |

| *No.* | *The Thought* | *Page* |
|---|---|---|
| 67. | स्वावलम्बन का जीवन जीना ज्ञानीजनों की पहचान<br>Self-reliance is the mark of the knowledgeable men | 45 |
| 68. | लौकिक एवं पारमार्थिक विकास गुण-ग्रहण वृत्ति से ही संभव<br>Espouse qualities for worldly and spiritual progress | 46 |
| 69. | अपनी नीरसता को सरसता में परिवर्तित करने का पुरुषार्थ करो<br>Try to convert your despondency into exuberance | 46 |
| 70. | विकास उसी का जिसकी विचार शक्ति विशाल है<br>Only the man with broad-mindedness attains growth | 47 |
| 71. | विचार यदि स्वस्थ हैं तो आचार भी स्वस्थ होगा<br>Healthy thoughts give rise to healthy conduct | 47 |
| 72. | अपने यश की रक्षा जीवन की अमूल्य निधि<br>Protect the invaluable treasure of your glory | 48 |
| 73. | उत्कृष्ट विचारों के लिए विशिष्ट शक्ति की आवश्यकता<br>Laudable thoughts require extraordinary strength | 48 |
| 74. | 'अहिंसा परमब्रह्म' और 'जियो और जीने दो'<br>'Supreme non-injury' and 'Live and let live' | 49 |
| 75. | 'राग हटाओ, कष्ट मिटाओ'<br>'Get rid of attachment and exscind misery' | 49 |
| 76. | सर्व विद्याओं के साथ अध्यात्म का रस भी आवश्यक<br>Mix the nectar of spiritualism in all your learnings | 50 |
| 77. | शासक को चाहिए - विचारों में लोकप्रियता तथा प्रजा के लिए स्नेह<br>The ruler should have democratic thoughts and love for the subjects | 51 |
| 78. | पर-निन्दा त्याज्य, पर-प्रशंसा श्रेष्ठ, किन्तु स्वयं प्रशंसनीय बन जाना अतिश्रेष्ठ<br>Shun censuring others, praising others is good, but to become worthy of praise is best | 51 |
| 79. | योग्यता की महिमा योग्य आचरण से ही स्वीकार<br>Capability is accepted only when accompanied by laudable conduct | 52 |
| 80. | ज्ञानी-जन प्रचार पर नहीं आचरण पर विश्वास रखते हैं<br>Intelligent men rely on conduct rather than on publicity | 53 |
| 81. | शुभ विचारों को साम्य-भाव से वर्द्धमान करो<br>Enhance auspicious thoughts through equanimity | 54 |
| 82. | पुरुषार्थ करो, कार्य सिद्धि भाग्य, दैव, समय पर छोड़ दो<br>Do your work, leave its accomplish-ment to merit, fate and time | 54 |
| 83. | एक श्रेष्ठ गुरु का चुनाव अवश्य ही कर लें<br>Select without fail an excellent guru | 55 |
| 84. | स्वयं को विचारक एवं श्रेष्ठ लेखक बनाईये<br>Make yourself a thinker and an excellent writer | 56 |
| 85. | विचारवान् का लक्ष्य - उच्च आचार-विचार<br>The thinker aims for sublime thoughts and conduct | 57 |
| 86. | सद्-विचारवान् परम-अहिंसा भाव का आश्रय लेते हैं<br>Right thinkers swear by supreme non-injury | 58 |
| 87. | योगी एकमात्र निज शुद्धात्म स्वरूप में स्थिर होता है<br>The supreme-ascetic *(yogī)* remains established in own pure self | 59 |
| 88. | ब्रह्मभाव का विशिष्ट आनन्द<br>Unique bliss is attained on getting established in own self | 60 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 89. | आत्मनिर्भरता ही पूर्ण स्वतन्त्रता है<br>Self-dependency bestows total freedom | 62 |
| 90. | वस्तु स्व-स्वभाव में अस्ति-नास्ति<br>The object has affirmation and negation in its nature | 65 |
| 91. | विज्ञ पुरुष स्ववचनों से अनेक भव्य जीवों का उत्कर्ष कर देता है<br>The words of a knowledgeable man help growth of many worthy souls | 67 |
| 92. | संसार में यशवान् ही बलवान्<br>Only a man of honour yields power in the world | 71 |
| 93. | स्वस्थ रहने के लिए स्व-विचारों को स्वस्थ रखो<br>Laudable thoughts beget good health | 74 |
| 94. | अकेलेपन से मुक्ति, फिर निज स्वात्म-भाव में स्थापित होने का अभ्यास<br>Get rid of seclusion first, then practise focus on own soul | 75 |
| 95. | दृढ़ आत्म-विश्वासी सम्पूर्ण सफलताओं का अधिकारी<br>The resolute, self-confident man has a claim to all success | 76 |
| 96. | घनिष्टता व मित्रता उच्च विचारशील के साथ ही करें<br>Intimacy and friendship with only the man with laudable thinking | 78 |
| 97. | आत्म-उत्कर्ष के लिए स्व-विचारों में विशालता लाओ<br>Adopt broad thinking for self-development | 80 |
| 98. | अप्रशस्त कर्म-प्रकृतियों को पुण्यात्मा पुण्यभूत परिणत करा लेता है<br>A man with merit converts evil karmas into meritorious karmas | 81 |
| 99. | शक्ति-अंश सिद्धान्त<br>The doctrine of the degree of attribute | 81 |
| 100. | स्वाध्याय - जीवन विकास का महान् सूत्र<br>Study of the scripture – the mantra for self-development | 82 |
| 101. | ज्ञानाभ्यास के बिना नर-जीवन अन्धकारमय है<br>Without knowledge-acquisition the life of a man is full of darkness | 83 |
| 102. | कार्य सिद्धि के लिए पुरुषार्थ एवं भाग्य दोनों की सत्ता<br>Both, effort and fate, are required for accomplishment of work | 84 |
| 103. | वे निर्धन भी श्रेष्ठ हैं जो श्रीजिन-भक्ति में चित्त लगाते हैं<br>Laudable are those who, though poor, have devotion for Lord Jina | 84 |
| 104. | आत्महत्या कष्ट-मुक्ति का उपाय नहीं है<br>Suicide is not a means to get rid of sufferings | 85 |
| 105. | आत्महत्या, समाधि, बलि-यज्ञ का वास्तविक स्वरूप<br>The real nature of suicide, self-annihilation and sacrificial-rituals | 86 |
| 106. | अहिंसा एवं एकता से ही विश्व विकास सम्भव<br>World development possible only through non-injury and unity | 88 |
| 107. | विश्व रक्षा के लिए सन्धि कर्म ही श्रेष्ठ<br>Go for treaty for saving the world | 89 |
| 108. | आत्महत्या के सोच से दूर रखें सद्विचार<br>Laudable thinking keeps at bay the thought of suicide | 89 |
| 109. | विवेकपूर्ण कार्य ही अमृत रसायन<br>Working with discrimination is the real nectar | 90 |
| 110. | भक्त हृदय के अशुभ कर्म भी शुभ में संक्रमित हो जाते हैं<br>Through devotion even inauspicious karmas get transformed into auspicious karmas | 90 |
| 111. | सद्संगति से यश एवं सम्पत्ति<br>Good company begets glory and wealth | 91 |
| 112. | मायावी, वक्र हृदयी को मित्र नहीं बनाना<br>Do not befriend a deceitful and dishonest man | 92 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 113. | विश्व आपका कुटुम्ब हो, सभी घर आपके हों<br>Let the world be your family, all homes be your homes | 92 |
| 114. | सम्यक्-नीति का प्राण अहिंसा धर्म है<br>Non-injury *(ahiṃsā)* is the lifeblood of the right way of living | 93 |
| 115. | क्रूर शासक का पतन निश्चित<br>A cruel ruler is certain to witness downfall | 94 |
| 116. | मत-भेदों में मन-भेद न करें<br>Dissent should not result in malevolence | 95 |
| 117. | हेय, उपादेय तथा उपेक्षा का सदा ध्यान रखो<br>Always keep in mind what needs to be accepted, rejected or ignored | 96 |
| 118. | आत्मशान्ति के घातक स्वकीय भावों से उपेक्षा रखो<br>Get rid of the thoughts that destroy your own peace of mind | 97 |
| 119. | ज्ञानीजन अपने निर्णय के प्रभाव का सूक्ष्म विचार करते हैं<br>Wise men think minutely about the effect of their decisions | 98 |
| 120. | लज्जा की रक्षा तथा सद्-गुणों का बहुमान करो<br>Protect your self-esteem and honour your virtues | 99 |
| 121. | कष्टों में भी प्रसन्न होकर जीना सीखो<br>Learn to live happily in the midst of adversities | 100 |
| 122. | अशुभ सोच व्यक्ति के लिए महाविनाशक<br>Inauspicious thinking is extremely wrecking | 101 |
| 123. | जीवन की कीमत समझो<br>Understand the value of your life | 103 |
| 124. | सर्वत्र सम्मान के साथ जियो<br>Live with honour all around | 104 |
| 125. | किसी के प्राणों की रक्षा में होने वाली हानि को भी स्वीकार करें<br>Accept the loss incurred in saving the life of others | 105 |
| 126. | 'धर्मस्य मूलं दया'<br>'Compassion *(dayā)* is the seed of dharma' | 105 |
| 127. | अहिंसा ही परम धर्म है<br>Non-injury *(ahiṃsā)* is the supreme dharma | 106 |
| 128. | सत्यार्थ-विचारशील व्यक्ति के लिए भारत अखण्ड एक है<br>India is one for the thinker seeking truth | 108 |
| 129. | भारत का भगवान् - वर्द्धमान महान्<br>God in India is the one who has great qualities | 108 |
| 130. | राष्ट्र-निर्माण के सूत्र<br>The mantras for nation-development | 110 |
| 131. | अभिनव, विकसित एवं विश्व अध्यात्म गुरु भारत की कल्पना<br>The dream of new, developed and world's spiritual-guru India | 111 |
| 132. | सम्प्रति विश्व को आवश्यकता है, भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों की<br>The world today needs the preachings of Lord Mahāvīra | 111 |
| 133. | राग-द्वेष की ज्वाला में न स्वयं जलें, न विश्व को जलायें<br>Don't burn yourself and the world in fire of attachment and aversion | 113 |
| 134. | महापुरुषों के गुण-स्मरण से पुण्य की वृद्धि होती है<br>Recollecting the qualities of great personages adds to merit | 114 |
| 135. | सदाचार उभयलोक में आनन्द-प्रद<br>Good conduct bestows happiness here and hereafter | 115 |
| 136. | भाषाओं का ज्ञाता सिद्धान्तों का भी ज्ञाता हो<br>A linguist should have the knowledge of the doctrine too | 116 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 137. | भाषा, सम्प्रदाय के नाम पर देश को खण्ड-खण्ड न किया जाए<br>Do not fracture country's unity in the name of language or sect | 117 |
| 138. | भारत, भारत ही रहेगा; अन्य नहीं हो सकता<br>India shall ever remain India, it cannot change | 118 |
| 139. | सद्-साहित्य के पठन-पाठन से ही संस्कृति व सदाचार की रक्षा<br>Reading of good literature protects the culture and conduct | 118 |
| 140. | राष्ट्रभाषा का विकास करें<br>Develop the national language | 119 |
| 141. | किसी भी भाषा व संस्कृति का अपमान न करें<br>Do not denigrate any language or culture | 120 |
| 142. | कम से कम अणुव्रतों को तो सभी अवश्य धारण करें<br>Everyone should at least observe the minor-vows *(aṇuvrata)* | 120 |
| 143. | प्रथम व्रत अहिंसा<br>The first vow is non-injury *(ahiṃsā)* | 121 |
| 144. | संसार के सर्व जीवों की रक्षा मानव का कर्तव्य<br>To protect every living-being is the dharma of the man | 121 |
| 145. | पर्यावरण की रक्षा के लिए त्रस-स्थावर जीवों की रक्षा करें<br>To protect environment, protect the *trasa* and *sthāvara* living-beings | 122 |
| 146. | हानिकारक वस्तु को भी अविवेक से नष्ट न करें<br>Do not destroy indiscriminately even harmful things | 122 |
| 147. | बड़ी मछली छोटी मछली को न निगले<br>The big fish should not swallow up the small fish | 124 |
| 148. | प्रजा का पालन वत्सवत् करो<br>The ruler should foster his subjects as sons | 125 |
| 149. | स्त्री-शिक्षा एवं स्त्री-रक्षा की आवश्यकता<br>The necessity of education and protection of women | 126 |
| 150. | आतंक, अनाचार से राष्ट्र को कलंकित न करें<br>Do not cause disgrace to country through terrorism and immorality | 126 |
| 151. | जीवन ऐसा जियो कि लोग आपके नाम का अभिवादन करें<br>Live a life that brings glory to your name | 128 |
| 152. | नारी शिक्षित हो तथा रीति-नीति की भी ज्ञाता हो<br>Women should be well-educated and apt in the ways of the world | 129 |
| 153. | छात्र व छात्राएँ सात्त्विक जीवन जियें<br>All students – boys and girls – should lead a pious life | 129 |
| 154. | आपकी सन्तान भी धर्म वृद्धि का कारण बने<br>Your offspring should also be promoters of the dharma | 130 |
| 155. | (सम्राट्) ऋषभदेव द्वारा ब्राह्मी एवं सुन्दरी को प्रदत्त शिक्षा<br>(King) Ṛṣabhadeva's teachings to Brāhmī and Sundarī | 131 |
| 156. | पुत्र-पुत्री में भेद राष्ट्र-नाश, धर्म-नाश का कारण<br>Discrimination between the son and the daughter causes destruction of the nation and dharma | 132 |
| 157. | बच्चों को माता-पिता समय अवश्य दें<br>Parents must give time to their children | 133 |
| 158. | एक सन्तान को जन्म देने वाली पद्धति हानिकारक है<br>The practice of having a lone child is causing harm | 134 |
| 159. | निर्णय-क्षमता से युक्त में ही नेतृत्व की क्षमता<br>The leadership should be able to take sound decisions | 135 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 160. | युवा शक्ति को सम्यक् दिशा-निर्देशन मिले<br>The youth should be able to get access to right counsel | 136 |
| 161. | भारत की युवा शक्ति व्यसन-मुक्त हो<br>The youth of India should be free from addictions | 136 |
| 162. | कार्य क्षमता युवाओं के पास ही है<br>Only the youth have the strength to work | 137 |
| 163. | परमार्थ में अपमान-सम्मान का कोई स्थान नहीं<br>There is no place for honour and dishonour in spirituality | 137 |
| 164. | वस्तु सामान्य-विशेषात्मक<br>An object has both, the specific and the general attributes | 138 |
| 165. | द्रव्य सामान्य, पर्यायें विशेष<br>The substance is general, modes are specific | 139 |
| 166. | जीव के शुभाशुभ परिणाम भी कथंचित् आत्मा से भिन्न हैं<br>The auspicious-inauspicious dispositions too are somehow different from the soul | 139 |
| 167. | संसार-भ्रमण के कारण<br>The causes of worldly transmigration | 140 |
| 168. | स्व-भूल को आत्मसाधना से ठीक करो<br>Rectify your past mistakes through spiritual practice | 141 |
| 169. | राजनेताओं व साधुओं को लोगों की आस्था का ध्यान रखना होगा<br>Leaders and ascetics should preserve people's faith | 142 |
| 170. | साधक स्वात्म-ज्ञान की दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव करें<br>The ascetic should kindle in him the divine light of soul-knowledge | 142 |
| 171. | भोग को त्याग कर योग स्वीकार करना ही श्रेयस्कर<br>After quitting all sensual-enjoyment, adopt yoga | 143 |
| 172. | श्रेष्ठ विचार ही प्राणियों के कल्याण का हेतु<br>Only laudable thoughts bring propitiousness for all | 144 |
| 173. | सत्यार्थ-मार्ग पर लोगों की आस्थायें वर्द्धमान करें<br>Strengthen the faith of the people on the true path | 146 |
| 174. | व्यक्ति की विश्वास-योग्यता का आकलन करें<br>Rely upon a man after evaluating his trustworthiness | 146 |
| 175. | हिंसक व्यक्ति संक्लेशता का ही कारण बनते हैं<br>The men of violence engender nothing but anxiety | 147 |
| 176. | मोह-मद युक्त प्राणी का स्वहित पर विचार नहीं होता<br>Men with delusion fail to think about their own welfare | 148 |
| 177. | सदाचार को सर्व-आचारों का मूल समझो<br>Good conduct is the root of all observances | 149 |
| 178. | प्रज्ञावान् पुरुष यश को प्राप्त<br>The man of intellect gets glory | 150 |
| 179. | स्वार्थ में मित्र तथा स्वार्थ-हानि में शत्रु समझो<br>That which serves the soul is an ally; that which harms it is a foe | 150 |
| 180. | आध्यात्मिक जीवन विश्व सम्पदा<br>Spiritual life is the wealth of the world | 151 |
| 181. | सदाचारी से धर्म-धर्मात्मा की सुरक्षा<br>The dharma and its followers are protected by the men of conduct | 152 |
| 182. | सम्यक् उपदेशकों का बड़ा उपकार<br>Right preachers bestow great benevolence | 154 |
| 183. | स्त्री संस्कृति का संवर्धन<br>Women are responsible for advancement of culture | 155 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 184. | भगवान् आदिनाथ ने भी शिक्षा दी नारी को<br>Lord Ādinātha too imparted education to women | 156 |
| 185. | कारण-कार्य मीमांसा<br>Reflection on the cause and effect relationship | 157 |
| 186. | आस्था, भक्ति की भाषा भिन्न<br>The language of faith and devotion is different | 159 |
| 187. | अंतरंग, बहिरंग कारण से कर्म-बन्ध<br>Bondage of the karmas is due to internal and external causes | 160 |
| 188. | कारण-कार्य में निर्वाण व्यवस्था<br>Liberation in the scheme of cause and effect | 161 |
| 189. | परमात्मा पुनः जन्म नहीं लेता<br>God *(paramātmā)* does not take birth once again | 162 |
| 190. | वस्तु का अन्य कर्ता नहीं<br>There is no external doer *(kartā)* of the object *(vastu)* | 163 |
| 191. | अनेकान्त-स्याद्वाद पद्धति का विवेचन<br>Interpretation of the system of non-absolutism and conditional-predication | 164 |
| 192. | स्याद्वाद-अनेकान्त विद्या का विश्व में प्रयोग<br>The world should learn conditional-predication and non-absolutism | 166 |
| 193. | प्रत्येक वस्तु का परिणमन स्वतन्त्र<br>Every substance has independent transformation | 168 |
| 194. | क्षमा-भाव ही धर्म<br>Forbearance *(kṣamā)* is dharma | 171 |
| 195. | क्षमा धर्म से आत्म-शान्ति<br>Forbearance *(kṣamā)* brings soul-peace | 172 |
| 196. | विनय की महिमा<br>The glory of reverence *(vinaya)* | 172 |
| 197. | विनय वन्दना से सुख<br>Adoration of reverence *(vinaya)* brings forth happiness | 174 |
| 198. | चारित्र विनय<br>Reverence to conduct – *cāritra-vinaya* | 175 |
| 199. | संस्कारों की प्रबलता<br>The power of values you imbibe | 176 |
| 200. | विनय की महत्ता<br>The importance of reverence | 177 |
| 201. | ज्ञान विनय<br>Reverence to knowledge – *jñāna-vinaya* | 178 |
| 202. | उपचार विनय<br>Reverence to custom of homage – *upacāra-vinaya* | 184 |
| 203. | प्रत्येक द्रव्य स्व-धर्म युक्त है<br>Every substance has its own attributes | 190 |
| 204. | विचारों की विशालता - सम्यक्-समाधान के लिए<br>Broad thinking for right solutions | 194 |
| 205. | अनेकान्तवाद-स्याद्वाद से सम्यक्-समाधान<br>The doctrines of non-absolutism and conditional-predication for right solutions | 195 |
| 206. | स्वयं के विचारों में समीचीनता एवं असमीचीनता का निर्णय करें<br>Decide whether your thoughts are laudable or not | 197 |
| 207. | विचारधारा को मोह-शून्य करो<br>Make your thoughts delusion-free | 201 |
| 208. | विचारों की भद्रता के साथ निर्मल आचरण आवश्यक<br>Pristine conduct is essential along with laudable thoughts | 203 |
| 209. | अध्यात्म का स्वरूप योगीगम्य<br>Only the supreme-ascetics experience the spiritual nature | 206 |
| 210. | स्वभाव भाव, ज्ञायक भाव<br>The soul's own-nature is the disposition of knowledge | 206 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 211. | शुद्ध-अशुद्ध द्रव्य का ज्ञान<br>The knowledge of the pure and impure substance *(dravya)* | 207 |
| 212. | ईश्वर पुनः नहीं आता<br>God does not come back to the world again | 208 |
| 213. | प्रज्ञ-पुरुष के ज्ञान का प्रयोग<br>Make use of the knowledge of the man of wisdom | 208 |
| 214. | निरामिष भोजन मानव धर्म<br>To eat only the vegetarian food is the human dharma | 209 |
| 215. | पर-उपहार तथा पर के द्वारा प्रशंसा से आत्मरक्षा करो<br>Protect yourself from accepting gifts and praise from others | 210 |
| 216. | इच्छायें भिखारी बनाती हैं<br>Desires make you a beggar | 211 |
| 217. | परिणामों का परिणाम<br>Result of your disposition | 211 |
| 218. | आपके कार्यों का कर्ता परमात्मा?<br>Is God the doer of your deeds? | 212 |
| 219. | भगवान् को कर्ता मत बनाओ<br>Do not make God the doer | 213 |
| 220. | मत तलो पशु-पक्षियों को<br>Do not put animals into the frying pan | 214 |
| 221. | प्रशस्त विचार अर्थात् साधु प्रवृत्ति<br>Laudable thoughts belong to noble men | 215 |
| 222. | चार्वाक मति, नहीं सम्यक्-मति<br>The *Cārvāka* way of thinking is not right | 217 |
| 223. | प्राणी-रक्षा ही धर्म-रक्षा<br>Protecting living-beings is protecting the dharma | 218 |
| 224. | जीवन के साथ मृत्यु पर भी लक्ष्य<br>Aim at life as well as death | 218 |
| 225. | तीव्र रागी सम्बन्धी भी मृत्यु का कारण बन जाते हैं<br>Relatives with excessive attachment *(rāga)*, too, can kill you | 219 |
| 226. | निमित्त-उपादानवत् प्रवृत्ति<br>Inclinations are influenced by instrumental and substantive causes | 220 |
| 227. | क्रूरता प्राण-घातक<br>Cruelty causes death | 220 |
| 228. | कषाय की तीव्रता में सर्वनाश<br>Intense passions result in total destruction | 221 |
| 229. | रत्नत्रय धर्म के पालने से ही आत्म सिद्धि<br>Self-realization only through the dharma of the three-jewels | 221 |
| 230. | 'देखो, जानो, जाने दो'<br>'Look, know and let go' | 222 |
| 231. | मानवता की रक्षा मानवता से<br>Human protection through humaneness | 223 |
| 232. | महापुरुषों की महा-महिमा<br>The ebullient glory of great men | 224 |
| 233. | ध्रुव सत्य परमात्मा पद<br>The supreme-soul *(paramātmā)* is the eternal truth | 225 |
| 234. | वासना तथा विभूति की लोलुपता - प्राण-घात के कारण<br>Lust and obsession for glory – causes of murderous tendencies | 226 |
| 235. | कामुकता में सम्यक् निर्णय नहीं<br>Eroticism does not lead to right decision | 227 |
| 236. | स्वतन्त्र परिणमन वस्तुधर्म<br>Every object has independent transformation | 227 |
| 237. | वस्तु व्यवस्था<br>The system of objects | 232 |

| No. | The Thought | Page |
|---|---|---|
| 238. | भाषा वाचक है, सिद्धान्त वाच्य है<br>Language is a medium and doctrine a subject of speech | 235 |
| 239. | पशु-वध घोर पाप बंध का कारण<br>Killing animals causes bondage of grave evil karmas | 236 |
| 240. | स्वाधीन कारण-कार्य व्यवस्था<br>The independent system of the cause and effect | 239 |
| 241. | सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति प्राणि-मात्र के प्रति करुणा भाव से ही<br>The wealth of happiness can be got only through compassion | 248 |
| 242. | जीवकृत परिणाम ही कर्मबन्ध के कारण<br>Soul's own dispositions result in the bondage of the karmas | 251 |
| 243. | शुभाशुभ कर्मास्रव<br>The influx of auspicious and inauspicious karmas | 254 |

APPENDIX-1

Index of Scriptural Terms ----- 257

APPENDIX-2

Guide to Transliteration ----- 264

* * *

॥ श्री स्याद्वादविद्यायै नमः ॥

*Ācārya* Viśuddhasāgara's

# *Vicāra*

## THE THOUGHTS

## आचार्य विशुद्धसागर विरचित

# विचार

*Ācārya* Kundakunda's ***Samayasāra***[1]:

**तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं ।**
**मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य जोगो य ॥ (6-10-190)**

**हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।**
**आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो ॥ (6-11-191)**

**कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो ।**
**णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि ॥ (6-12-192)**

**सामान्यार्थ** – सर्वज्ञदेव ने (रागादि विभाव कर्मरूप) भावास्रवों के कारण मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरतिभाव और योग ये चार अध्यवसान कहे हैं। ज्ञानी के हेतुओं के अभाव में नियम से आस्रव का निरोध होता है। आस्रवभाव के बिना कर्म का भी निरोध हो जाता है और कर्म का अभाव होने से नोकर्मों का भी निरोध हो जाता है। नोकर्म का निरोध होने से संसार का निरोध होता है।

The Omniscient Lord has declared that imperfections in form of the dispositions *(bhāva)*, like attachment *(rāga)*, are the causal agents of the four (psychic) dispositions *(adhyavasāna)* comprising wrong-belief *(mithyātva)*, nescience *(ajñāna)*, non-abstinence *(avirati)*, and activities *(yoga)* of the body, the organ of speech and the mind. Since the knowledgeable (soul) is free from these causal agents – the dispositions, like attachment *(rāga)* – it is, by rule, free from all kinds of karmic influx *(āsrava)*. Without the influx, there can be no karmic-bondage *(karma-bandha)*. Without the karmic-bondage there can be no quasi-karmic matter *(nokarma)*. And, without the quasi-karmic matter, the cycle of births and deaths – *saṃsāra* – ceases to exist.

---

1 – Vijay K. Jain (Editor and Translator) (2022), *Ācārya* Kundakunda's ***Samayasāra*** – With Hindi and English Translation, Thoroughly Revised Second Edition, p. 99-100.

## १. महान् जीवन के लिए सम्यक्-विचार

जीवन महान् उनका ही बनता है जिनके विचार सम्यक् होते हैं। समीचीन सोच विश्व-उन्नति का कारण है एवं स्व-पर का हित साधक होता है। वह मानव जो सम्यक् विचार युक्त है, एक 'महामानव' संज्ञा को प्राप्त कर लेता है। अपने विचारों को विशाल बनायें, लघु विचार लघुता की ओर ले जाते हैं। विचारों की प्रभुता व्यक्ति को प्रभुता प्रदान करती है, इसलिए विचारों पर सदा ऐसा पुरुषार्थ करो कि जिससे विचारधारा निम्नता को प्राप्त न कर वर्द्धमानता की ओर अग्रसर रहे। विश्व-विकास और विश्व-हित, स्व-विकास और स्व-हित पर ही विचारधारा प्रवाहित रहे।

## 1 - Right thoughts for a great life

Lives of only those who entertain right thoughts become great. Right thoughts are the springboard for world-development, and cause the well-being of the self and others. Only the man equipped with right thoughts gets the tag of 'great man'. Give grandeur to your thoughts; lowly thoughts direct you towards lowliness. Grandeur of thoughts provides the man greatness; make effort that your thoughts are not directed towards lowliness and are ever progressive. Your chain of thoughts must focus on development and well-being of the world, besides development and well-being of the self.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## २. विचारों से ही मित्र एवं शत्रु

व्यक्ति के विचार विश्व में मित्रों एवं शत्रुओं दोनों की संख्या की वृद्धि कराने के कारण हैं। विचारों की निर्मलता तथा विशदता मित्रों को जन्म देती है। विचारों की कलुष्यता शत्रुओं की संख्या में वृद्धि कराती है। निर्णय स्वयं के अनुसार है; जो है, सो है।

## 2 - Only our thoughts make friends and foes

In this world, the thoughts of the man cause an increase in the number of friends and foes. The sanctity and purity of thoughts give rise to friends. The perversity of thoughts increases the number of foes. The decision is yours; it is, as it is.

विचार
The Thoughts

## ३. विचारशीलता ही मानव की विकासशीलता

विचारों की विराट्ता है, पर निर्णय यह करो कि सम्यक् विचार कितने हैं। जिनमें देश, राष्ट्र, विश्व, धर्म, संस्कृति एवं स्वयं का हित निहित हो, वे ही विचार सम्यक् हैं। सुविचार वे हैं जो स्व-पर कल्याणप्रद हों तथा जिनका विश्व सम्मान करे। विचारों की उत्कृष्टता व्यक्ति का उत्कर्ष कराती है। विचारशीलता ही तो मानव की विकासशीलता है। जहाँ-जहाँ विचारशीलता उत्कृष्ट है, वहाँ-वहाँ विकासशीलता है।

### 3 - Thoughtfulness provides the man the capability to grow

There may be vastness of thoughts but determine how many of those thoughts are right thoughts. Only those thoughts can be classified as right thoughts which are directed towards the well-being of the country, the nation, the world, the dharma, the culture and the self. Commendable thoughts are those which result in the well-being of the self and the others, and which are revered by the world. The loftiness of the thoughts provides loftiness to the man. The quality of thoughtfulness determines the man's capability to grow. Wherever there is grandness of thoughtfulness, there is growth.

विचार
THE THOUGHTS

### ४. उज्ज्वल विचार से उज्ज्वल चरित्र

उज्ज्वल विचारों के निमित्त से चरित्र में भी उज्ज्वलता आती है, इसलिए अपने विचारों को उज्ज्वल बनाकर रखो। उज्ज्वल विचार तथा उज्ज्वल जीवन मानव-जीवन के श्रृंगार हैं।

### 4 - Effulgent thoughts bestow effulgent conduct

Effulgent thoughts are the cause of effulgence in the conduct. Therefore, maintain effulgence in your thoughts. Effulgent thoughts and effulgent living are the ornaments of human life.

विचार
THE THOUGHTS

### ५. विचारधारा के अनुरूप वस्तु-स्वरूप का निर्णय

वस्तु की व्यवस्था तथा आकृति व्यक्ति के चित्त में वैसी ही बनने लगती है जैसी विचारधारा वह बना लेता है। वस्तु सदा वस्तुभूत है।

### 5 - The man figures out the nature of the object as per his thoughts

The mind of the man figures out the object-nature and its shape as per his thought process. However, the object *(vastu)* remains always in its own, inherent nature.

विचार
THE THOUGHTS

### ६. व्यक्तित्व की रचना विचारों के अनुसार

विचारों के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व की रचना होती है। विचार विशाल हैं तो व्यक्तित्व में विशालता आती है; विचार तुच्छ, लघु, छोटे हैं तो व्यक्तित्व भी ओछा, छोटा ही होता है। उच्च व्यक्तित्व वाले महापुरुष के विचार भी उच्च स्तर के होते हैं। तदनुसार जीवन-शैली, कार्य-क्षमता एवं कार्य-पद्धति होती है। विचारधारा के अनुसार जीवनधारा प्रवाहित होती है। केवल मानव ही नहीं,

PREVIEW ONLY

अपितु प्राणिमात्र, जो जो विचारशील हैं, उन्हें श्रेष्ठ जीवन के लिए श्रेष्ठ विचारों को स्व के अन्दर उत्पन्न करना होगा। विचारों की श्रेष्ठता के बिना जीवन श्रेष्ठ नहीं बन सकता है, यह ध्रुव सत्य है।

### 6 - The personality of the man is shaped by his thoughts

The personality of the man is shaped by his thoughts. The personality attains grandeur when the thoughts are exalted; the personality becomes diminutive and conservative when the thoughts are ignoble, miserly, and mean. The thoughts of the great men with grand personality are necessarily of high standards. And, that applies to their life-pattern, work-capability and work-system too. The stream of life flows according to the thought process. In order to lead a worthy life not only men but all living-beings endowed with the capacity to think must cultivate laudable thoughts within themselves. It is an incontrovertible truth that one cannot lead a worthy life without entertaining laudable thoughts.

विचार
The Thoughts

### ७. विचारकों से मिलना स्व-पर के लिए हितकारक

श्रेष्ठ विचारकों के विचारों का अध्ययन करते रहना चाहिए। विचारकों से मिलने का संयोग प्राप्त हो जाए तो अवश्य ही मिल लेना चाहिए। परस्पर के विचारों का आदान-प्रदान स्व-पर के लिए एवं सम्पूर्ण संस्कृति के लिए हितप्रद होगा। दो श्रेष्ठ विचारकों का मिलन संस्कृति के उत्थान का कारण बन जाता है, इसलिए लोकहित, परमार्थहित, उभयहित देखते हुए बिना संकोच किए स्व-पर हितार्थ मिल ही लेना चाहिए। परस्पर ज्ञानियों का मिलन शत्रुता तथा हृदय की कलुष्यता का नाशक है। मिलन से धर्म-मार्ग की प्रभावना भी होती है।

### 7 - It is beneficial to keep in touch with the thinkers

Keep studying the thoughts of the accomplished thinkers. When opportunity arises, do not miss out on meeting them. The exchange of views will be beneficial for the self, the others, and the whole culture. The meeting of two great thinkers elevates the standard of a culture; therefore, keeping in mind the benefit that accrues to the world, the spiritual-self and the others, do not miss out on any opportunity to meet an accomplished thinker. Interaction with intellectuals wipes out mutual enmity and perverse thoughts in the heart. Besides, such meetings help propagate the dharma.

विचार
The Thoughts

### ८. ममत्व-भाव से सम्बन्ध; सम्बन्ध से अशुभ कर्मों का बन्ध

जब विचारों में ममत्व-भाव आता है तब जीव सम्बन्धों को स्थापित करता है और इतना अधिक भीतर प्रविष्ट हो जाता है कि फिर उसे बन्ध का बोध ही नहीं रहता। विश्व का कर्ता-भोक्ता बनकर वह

PREVIEW ONLY

स्वयं अशुभ कर्मों का बन्ध कर उन्हीं कर्मों के विपाक का भोक्ता बन जाता है। जगत् की इस लीला को देखकर ज्ञानी-जन हँसते- अहो! विचारों की अशुभ विचारधारा का परिणाम लोक में क्लेश, दुःख और सन्ताप है, फिर भी अज्ञ प्राणी विवेक-बुद्धि का प्रयोग कर नहीं चेतता! यही है कर्मन की न्यारी गति। दुःख के हेतुओं को जानकर भी दुःखमय कृत्यों से नहीं बचना चाहता। अहो! अहो! अहो! अहो आश्चर्य!

## 8 - Attachment causes connections; connections cause bondage of inauspicious karmas

When the thoughts engender dispositions of attachment the man establishes connections and gets engrossed in those connections; he forgets that, as a consequence, bondage is taking place. Imagining himself to be the doer-enjoyer of the world-process, he causes bondage of inauspicious karmas and then suffers on fruition of the karmas. The knowledgeable men watch this spectacle of the world with amusement; they wonder: 'although the inauspicious stream of thoughts causes misery, suffering and anxiety, still the ignorant man does not employ his power of discernment and, as such, fails to reckon it!' This is the strange play of the karmas. The man does not dissociate himself from the actions that, he knows, are the sure causes of misery. Alas! Alas! Alas! How amazing!

विचार
THE THOUGHTS

## ९. सभी जीवों के प्रति मैत्री-भाव

स्वोपकार पर विचार करने वाले विचारक लोक में बहुत हैं। प्रत्येक जीव का उपकार हो, ऐसा समीचीन विचार करने वाले पृथ्वी पर अत्यन्त न्यून जीव हैं। साधुजनों का सोच सर्व-हितकर, सर्व-कल्याणमय होता है। जगति में जितने प्राणी हैं वे परस्पर किसी न किसी काल में अथवा क्षेत्र में काम आते ही हैं। कब किस काल, क्षेत्र व भव में कौन किसका उपकार करता है, ऐसा विचार कर सभी के प्रति मैत्री-भाव स्थापित करना चाहिए। शत्रु-भाव का परिपूर्ण परित्याग कर देना चाहिए। आत्म-सुख एवं शान्ति का यही एक श्रेष्ठ उपाय है। इसी उपाय से सर्व हित होगा।

## 9 - Sense of friendship towards all living-beings

In this world the thinkers who reflect on the well-being of the self are in abundance. The thinkers who reflect on the well-being of each and every living being are minimal. The thoughts of the virtuous men are beneficial for all and thus result in the well-being of all. All living-beings in the world help each other at certain time or place. Reflecting on the mutual help of living-beings at certain time or place or birth, one must establish a sense of friendship for all. One must shun completely the sense of enmity for any living-being. This is the sure way to attain self-happiness and peace. This is the way to attain the well-being of all.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १०. स्व-विचारों में दया-भाव अनिवार्य

स्व-विचारों में दया-भाव को जन्म दो। क्रूरता न स्वयं के लिए शान्तिप्रद है न अन्य के लिए। शत्रुता का भाव मानव को प्रतिक्षण भय-संज्ञा से ग्रसित रखता है। निर्भयता का सुख शत्रुता-भावी कभी भी प्राप्त नहीं करता। मानवता की अनुभूति उसके पास भूलकर भी प्रवेश नहीं हो पाती है। प्रतिक्षण संक्लेशता का भाव जाग्रत रहता है। स्वरक्षा एवं परिजनों की रक्षा का भाव ही स्मरण में रहता है। स्वपक्ष की रक्षा एवं परपक्ष में शत्रुता के भाव प्रतिपल भाव-हिंसा को जन्म देते हैं। जो विचार एक समय प्रमाण-काल में शान्ति नहीं दे पा रहे, उन विचारों का परित्याग करना श्रेयस्कर है; अन्यथा सम्प्रति सुख एवं पर्याय का सुख दोनों ही समाप्त हो जाते हैं।

### 10 - Disposition of compassion in thoughts is essential

Give birth to compassion in your thoughts. Cruelty in thoughts doesn't provide peace either to self or to others. The disposition of enmity envelopes the man with the fear instinct, every moment. The disposition of enmity does not allow him ever to enjoy the happiness appertaining to fearlessness. The sense of humaneness remains far away from him. Each moment, he is gripped with a sense of anxiety. He remains engrossed in thoughts of the defence of self and kin. The thoughts of self defence and enmity for others give rise to the disposition of psychic-injury *(bhāva-hiṃsā)*, each moment. It is better to shed thoughts that are unable to provide the peace of mind even for a moment; else, the man loses the present as well as the overall happiness of his state of being.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## ११. विचारों पर विचार करो

उन विचारों पर विचार करो; जो आचारता पूर्ण हो, वह विचार धर्म, संस्कृति, समाज, देश, राष्ट्र को उत्थान की ओर ले जाता है। इस प्रकार के विचारों के नियोग से सर्व लोक गद्‌गद् हो जाता है।

### 11 - Think about your thoughts

Think about the thoughts that give rise to good conduct; such thoughts cause the development of the dharma, the culture, the society, the country and the nation. The whole world gets a sense of elation by virtue of such thoughts.

विचार
The Thoughts

## १२. विचारों की अपूर्णता पन्थों की जननी

विचारों की अपूर्णता ने नाना पन्थों को स्थापित किया है। जो पूर्णता पर पहुँच नहीं पाए वे पूर्ण बात भी क्या करेंगे? यदि महानता चाहिए तो अपने विचारों की विराट्ता का अभ्यास करना चाहिए।

## 12 - Fractional thoughts give rise to sects

Fractional thoughts have established many sects. How can those who have not reached completeness talk about the whole (truth)? If you wish to be great practice to give wholesomeness to your thoughts.

## १३. विचारों में सबके प्रति सद्भावना

व्यक्ति को अपना जीवन जीने के साथ दूसरे के जीवन पर भी सम्यक् विचार करना चाहिए। यदि देश में प्रजा ही नहीं रहेगी तो राज्य किस पर? सुखमय राज्य उसी का चलता है, जो प्रजा का पालन स्व-शरीरवत् करता है। धार्मिक भावनाओं की रक्षा करना चाहिए। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-वाद पर लक्ष्य रखना चाहिए। सर्व सम्प्रदाओं के प्रति सद्भावना होनी चाहिए। अनातंक राज्य-संचालक अपने जीवन-काल में ही नहीं, उसके उपरान्त भी सार्वभौम राज्य करता है। सम्यक् विचारवानों का जगति के हृदयों में निवास होता है।

## 13 - Have thoughts of goodwill towards all

Have right thoughts not only in regard to your own life but also in regard to the lives of others. Without the subjects, who can one rule over? The ruler who rules over the subjects as if his own body enjoys a happy monarchy. Religious beliefs must be protected. Keep your aim on the doctrines of truthfulness *(satya)*, non-injury *(ahiṃsā)*, non-stealing *(acaurya)*, celibacy *(brahmacarya)* and non-possessiveness *(aparigraha)*. Maintain goodwill towards all sects. The ruler with forbearance rules not only during his lifetime but for a long time thereafter. Those with right thinking reside in the hearts of all worldly beings.

PREVIEW ONLY

## १४. वात्सल्य से आर्द्र विचारों की महत्ता

हृदय में विशालता विचारों की शीलता है। जिसका हृदय जितना विशाल होगा, उसकी विचार-शक्ति उतनी अधिक विकसित होगी। हृदय की हीनता विचारों को संकुचित कर देती है। जिसके विचार संकुचित हैं वह कभी भी विश्व में अखण्ड विशालता तथा एकता को स्थापित नहीं कर पाएगा। विश्व-बन्धुता एवं विश्व-एकता को वही स्थापित कर पाएगा जो वात्सल्य से आर्द्र विचारों की विशदता से पूर्ण है। वह प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-भाव रखता है, पर के सुख-दुःख को प्रेम से सुनता है तथा यथा-योग्य, यथा-समय सहयोग की भावना रखता है। प्रबुद्ध, तत्त्वज्ञानी, श्रुताभ्यासी एवं संयमी जीव ही पर-भावों से निस्पृह जीवन जीने वाला होगा।

## 14 - The importance of thoughts moist with tenderness

Large-heartedness is nobility of thoughts. Largeness of heart steers the development of the power of the thoughts. Diminutiveness of heart makes the thoughts dwarfish. The

man with dwarfish thoughts will never be able to establish unified ascendance and unity in the world. Only the man with pristine thoughts that are moist with tenderness will be able to establish brotherhood and unity in the world. Such a man engenders the disposition of friendship with all living-beings, listens to the merriment and misery of others with affection, and has the proclivity to cooperate in a suitable and timely manner. Only the man who is exalted, knower of the reality, practitioner of sacred texts, and observer of self-restraint lives a life that is rid of alien thoughts.

विचार
THE THOUGHTS

## १५. विचारधारा का समीकरण ही मैत्री-भाव

विचारधारा का समीकरण जहाँ बैठ जाता है वहाँ मैत्री-भाव स्थापित हो जाता है। मित्रता में जाति, वंश, कुल, धर्म, सम्प्रदाय, आयु, ज्ञान, दर्शन, चारित्र का स्थान नहीं है; वहाँ तो विचारधारा का स्थान है। जहाँ जैसे ही परस्पर की विचारधारा एकता को प्राप्त होती है वहाँ वैसे ही मैत्री-भाव स्वतः स्थापित हो जाता है। चाहे बाल हो, चाहे वृद्ध अथवा युवा, सभी की मित्रता एक विचारधारा पर ही होती है। यहाँ पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह विचारधारा किसकी कितने अंश में एकीभूत है। आवश्यकता नहीं है कि विश्व में जितने मित्र हैं उन सब की सम्पूर्ण विचारधारा एक-सी ही हो, किसी एक विचार पर भी विचारधारा सादृश हो सकती है तथा तदनुसार मैत्री स्थापित हो जाती है। उस मैत्री-भाव में द्वैत भी स्पष्ट दिखता है फिर भी एकता रहती है, क्योंकि एक नय अथवा विषय को लेकर एकता का भाव हो जाता है। सम्पूर्ण विश्व की समाज व्यवस्था, राज्य-शासन व्यवस्था, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक व्यवस्था इसी प्रकार चल रही है। सम्पूर्ण विषयों पर लोक में एकता का होना दुर्लभ है। फिर एकत्व जिस विषय पर है उस विषय को जीवित रखना चाहिए; उसमें विकल्प की आवश्यकता नहीं है। विश्व-बंधुता की स्थापना वहीं है जहाँ मुख्यता एवं गौणता का बोध है। धन्य-धन्य-धन्य वे योगीजन, जो सर्व प्राणियों के प्रति साम्य-भाव रखते हैं।

## 15 - Balance in the thought process results in fellowship

Through the balance in the thought-process, fellowship is attained. In fellowship, there is no place for caste, progeny, race, dharma, sect, age, knowledge, perception and conduct; just the thought process matters. As soon as the mutual thought process unifies, fellowship is established. The fellowship between a child, an old man or a youth rests on the thought process. The bond of such fellowship, however, depends on the extent to which their respective thought processes converge. It is not essential that the thought processes of all friendships in the world converge fully; there may be similarity in respect of a certain thought and that similarity becomes the basis of friendship. The duality in such friendship is clearly visible, still unity is established on the basis of similarity in respect of that thought. The societal system, the state administration, the religious and sectoral system in the world runs this way only. It is almost impossible that the viewpoints of all people in the world converge in respect of every subject matter. The point of convergence should be preserved, no need for any further debate. Brotherhood in the world exists where there is the understanding of the primary and secondary nature

PREVIEW ONLY

of viewpoints. Victory to those supreme ascetics who maintain equanimity towards all living-beings!

विचार
THE THOUGHTS

## १६. विचारधारा से ही ज्ञान सम्यक् होता है

सम्यक् तत्त्वोपलब्धि की प्राप्ति सम्यक् विचार से ही सम्भव है। जहाँ विचारधारा में विपरीतता है वहाँ ज्ञान सम्यक् कभी नहीं हो सकता। ज्ञानधारा विचारधारा के अनुकूल चलती है।

### 16 - The thought process is the bestower of right knowledge

The attainment of right knowledge in regard to the reality is possible only through right thoughts. Right knowledge can never be attained when there are contradictions in the thought process. The stream of knowledge flows according to the thought process.

विचार
THE THOUGHTS

## १७. सम्यक् विचार ही प्रामाणिक तथा श्रद्धेय

वही विचार प्रमाण की कोटि में आते हैं जिनमें सम्यक् सोच है। तत्त्वज्ञान पूर्वक ही वस्तुत्व का चिन्तवन होता है। तत्त्वज्ञान शून्य विचार मात्र विचार ही हैं, प्रमाणभूत विचार नहीं हैं। सम्पूर्ण विश्व वसुन्धरा पर प्रमाण ही पूज्यता को प्राप्त है, अप्रमाण की कोई पूजा नहीं। प्रत्येक विज्ञपुरुष का कर्तव्य है कि वह अपने विचार सम्यक् रखे, जिससे लौकिक एवं पारमार्थिक उभय स्थानों पर उसके विचार प्रमाण की कोटि में आ सकें और प्रत्येक प्रज्ञ पुरुष उन विचारों पर विश्वास कर सके। अविश्वास पूर्ण विचार उभय स्थानों पर अश्रद्धेय होते हैं। श्रद्धेय केवल विश्वास-युक्त प्रमाण वचन ही होते हैं, इसीलिए विचारों में सम्यक् शब्द का प्रयोग है। समीचीन विचार ही सम्यक् विचार हैं; ऐसा सत्यार्थ बोध समझो।

### 17 - Only the right thoughts constitute valid-knowledge and are venerable

Only those thoughts constitute valid-knowledge *(pramāṇa)* that are based on right thinking. Reflection on the 'objectness' (nature of the object – *vastutva)* takes place on the attainment of the knowledge of the reality *(tattva)*. The thoughts not based on the knowledge of the reality do not constitute valid-knowledge. In the whole world, valid-knowledge is venerated; false-knowledge *(apramāṇa)* is not. Every knowledgeable man should strive for right thoughts so that his thoughts be classified as valid-knowledge at the spiritual *(pāramārthika)* as well as the worldly *(laukika)* levels and the other knowledgeable men could put faith on them. Unfaithful thoughts do not command veneration at either level. Spoken words based on right faith only are venerable and, therefore, the thoughts need be classified as 'right'. Only the laudable thoughts constitute right thoughts; know this truth.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १८. स्वकीय विचारों का स्वयं द्वारा परिमार्जन

प्रमाणित पुरुष अपनी प्रामाणिकता अभंग रखने के लिए अपने विचारों का विवेकपूर्ण प्रयोग करते हैं। विचारक जो विचार शब्दों के माध्यम से बाह्य जगत् में लाते हैं, उन्हें उसके पूर्व, स्वकीय विचारों पर गम्भीर निर्णय के साथ स्वयं ही विवेक-बुद्धि से विचार कर लेना चाहिए। जो हम विचार कर रहे हैं वह विचारणीय है भी या नहीं? स्वविचार जगति में प्रकट होने के पूर्व स्वयं अपने विचारों पर निर्णय करना चाहिए कि इन विचारों का भविष्य में क्या प्रभाव पड़ेगा; जगत्-हित होगा या जगत्-अहित होगा। हमारे इन विचारों से धर्म, संस्कृति, संस्कार, सद्-विचार, यश, चारित्र, वर्द्धमान होंगे या हीयमान? अथवा ये सब भविष्य में नष्ट ही हो जायेंगे? इन विचारों का प्रतिफल स्वयं पर क्या पड़ेगा? इस प्रकार से हेय-उपादेय के विवेक पर चिन्तवन होना चाहिए। प्रज्ञ-पुरुष सदा सावधानी-पूर्वक स्वविचारों का परिमार्जन करते हैं।

### 18 - Own thoughts are to be refined by the self

In order to maintain credibility, the authentic men use their thoughts with discrimination. Before bringing out their thoughts to the world through the medium of words, the thinkers must decide, with due discrimination, the suitability of their thoughts. They must determine whether their thoughts are worth the thinking. Beforehand, they must decide on the future effect of their revealed thoughts; whether these will be beneficial or detrimental to the world. Whether our thoughts will result in gain or loss to the dharma, the culture, the upbringing, the purity of thinking, the glory and the conduct. What will be effect of the thoughts on the self? This way, there should be reflection on own thoughts to decide whether these need to be accepted or rejected. Intelligent men keep on refining their thoughts.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## १९. सम्यक् विचार अर्थात् आनन्दमय जीवन

आनन्दमय जीवन जीने की कला का नाम है 'सम्यक्-विचार'। सम्यक् विचारों का आलम्बन लिए बिना कोई भी जीव आनन्दमय जीवन नहीं जी सकता। सम्यक् विचार के अभाव में आनन्दमय जीवन जीने की अन्यथानुपपत्ति है। आनन्दमय जीवन की सम्यक् विचार के साथ तथोत्पत्ति है। विचारों की श्रृंखला पर इन्द्रिय सुख-दुःख आश्रित है। जो भव्यवर अपने विचारों को सम्यक् कर लेता है उसे आनन्द आना प्रारम्भ हो जाता है। यदि विचारों का स्थान उच्च है तो वे ही विचार सम्पूर्ण वस्तु के वस्तुत्व का, सत्यार्थ बोध का एवं आनन्दकंद-ज्ञानघन-समरसी भाव का परम साधन बनते हैं।

### 19 - Right thoughts mean a happy life

The art of leading a happy life is called 'right thoughts'. No one can lead a happy life without patronizing right thoughts. There is infallible-non-coexistence *(anyathānu-papatti);* in absence of right thoughts, one cannot lead a happy life. There is infallible-genesis *(tathotpatti);* right thoughts lead to a happy life. The sensual pleasures and miseries are dependent on the chain of our thoughts. The worthy being who makes his

thoughts laudable starts enjoying life. When the thoughts are laudable, these become the primary cause of knowing the objectness *(vastutva)* of the objects and the truth; laudable thoughts lead to the disposition comprising happiness-knowledge-equanimity.

विचार
THE THOUGHTS

## २०. सम्यक्-विचार के उपरान्त की गई क्रिया से शुभ परिणाम

सम्यक् विचार करने के उपरान्त ही अपना कदम उठाना चाहिए। ऐसी क्रिया के परिणाम स्वरूप ही आनन्दप्रद, प्रसादभाव का उद्घाटन होता है। सम्पूर्ण धर्म, संस्कृति, समाज, देश, राष्ट्र तथा विश्व गद्गद् हो जाए; प्रत्येक व्यक्ति के मुख से भूरि-भूरि प्रशंसा की ध्वनि मुखरित हो; निन्दा, आलोचना की आवाज न निकलने पाए; यह सुर-दुर्लभ नर-देह श्रीजिन वीतरागी अरहन्त परमात्मा द्वारा उपदिष्ट धर्म से च्युत न होने पाए। सदा ही कार्य के पूर्व भूत-भावी-वर्तमान परिणाम पर चिन्तवन करना चाहिए। इन्द्रियों पर विजय, अन्त:करण का निग्रह तथा कषायों का उपशमन तत्त्वज्ञानी को प्रतिक्षण करते रहना चाहिए।

## 20 - Activity based on right thoughts yields auspicious results

Take your step only after right thoughts. The feelings of happiness and blessedness are the results of such activity. Such activity should spread glee in the whole of dharma, culture, society, country, nation, and world; the mouth of every man should articulate words of its abundant praise; nowhere should there be words of its slander or censure. This human-birth, envy of the devas, should not get astray from the dharma promulgated by the conqueror-of-attachment *(vītarāgī)* supreme-soul *(paramātmā),* i.e., Lord Jina or *Arhanta* or *Arhat*. Before performing any activity, always think about its effect in the past, present and future. The knower of the reality should incessantly strive for vanquishing the senses *(indriya)*, control over the mind and tranquility of the passions *(kaṣāya)*.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## २१. बिना समीचीन विचार किए कार्यों से जीवन दूषित होता है

जो पुरुष बिना समीचीन विचार किए कार्य प्रारम्भ करता है, उसे महा-क्लेश, आपत्ति, अपमान तथा अपकीर्ति का दर्शन करना पड़ता है। उसका सम्पूर्ण जीवन दूषित हो जाता है; जीते जी जीवन की उमंग, उत्साह-शक्ति, धर्म-विशुद्धि, कुछ करने की इच्छा, श्रेष्ठ तत्त्वोपदेश ग्रहण करने की शक्ति तथा ज्ञान-विज्ञान सब शून्य हो जाता है। जीवन ही नीरस-निस्सार तथा भारभूत लगने लगता है। ऐसे काल में धैर्य, शौच, शान्ति एवं क्षमा की आवश्यकता होती है। पूर्णत: तटस्थ होकर साक्षी भाव का आलम्बन लेकर समय पूर्ण करना ही श्रेष्ठ है। जो भी करो, सर्वप्रथम अन्त:करण में निर्णय करो कि उससे स्वकीय जीवन कैसा रहेगा।

## 21 - Life gets contaminated by the acts without laudable thinking

The man who starts his acts without laudable thinking has to face great anxiety, calamity, disgrace and ignominy. His entire life gets contaminated; while living life his exaltation, vigour, purity of dharma, will to perform, power of assimilating commendable discourses on reality, and knowledge cum sense-of-discrimination vanish. The life itself appears unsavoury and burdensome. At such a juncture patience, purification, tranquility and forbearance are required. One should spend one's time becoming absolutely indifferent, relying only on the testimony. Whatever you do, first determine in your mind its effect on your own life.

विचार
The Thoughts

## २२. विचारों का हमारी जीवन-शैली तथा जगत् पर असर

विचारों की धारा विराट् है और उन्हीं में विश्व निमग्न है। उन विचारों का अन्वेषण करो। कुछ विचार जगति पर आनन्द के साथ प्रचार को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे विचारों को भी खोजकर रखो जिनका प्रचार नहीं किया जा सकता, परन्तु जिन पर स्वयं का विचार अवश्य किया जाना चाहिए। विचार करो कि जो विचार सम्प्रति चल रहे हैं, उनसे हमारी जीवन-शैली तथा जगत् पर क्या असर होगा? जन-समूह उन विचारों से धर्म एवं धर्मात्माओं से कितनी दूरी बना लेंगे? सम्यक् मार्ग की कितनी हानि होगी अथवा सद्मार्ग की कितनी वृद्धि होगी? हेय-उपादेय, लाभ-हानि, कार्य-अकार्य का विवेक जाग्रत रखना चाहिए।

## 22 - Impact of thoughts on your lifestyle and the world

The stream of thoughts is wide and the world is engrossed in it. Explore your thoughts. Some thoughts get propagated with delight in the world. Explore those thoughts too which although cannot be publicized but must remain a part of your thinking. Think about those thoughts which are engaging you in the present and their impact on your lifestyle and the world. Will these thoughts result in the masses going distant from the dharma and the noble men? Will these thoughts vitiate the right path or facilitate it? Keep alive your discrimination about your thoughts; whether these are worth accepting or rejecting, beneficial or harmful, and worthy or unworthy.

विचार
The Thoughts

## २३. विचारशीलता - मानव की प्रथम विराट् शक्ति

जब जीव का पुण्य-क्षीण होता है तब सर्वप्रथम विचार-शक्ति विनाश को प्राप्त होती है। मानवता की प्रथम विराट् शक्ति कोई है तो वह है विचारशीलता। विवेकपूर्ण विचारणा मानव के पास है, जो कि देवाधिदेवत्व की सिद्धि करा देती है। मानव को महामानव तथा देवत्व भाव प्रदान करने वाली शक्ति का नाम विचार-शक्ति है। सम्पूर्ण विश्व को एक स्थान पर देखने वाली विचार-शक्ति है। प्रत्येक

PREVIEW ONLY

स्थिति में मानव को अपनी विचारशीलता की रक्षा करनी चाहिए। कितना ही घोर उपसर्ग क्यों न आ जाए, धैर्य एवं विचार-शक्ति का क्षय नहीं होने देना चाहिए।

### 23 - Power of thinking – the foremost power of the man

On erosion of merit *(puṇya)* of the man, the first consequence is the destruction of his power of thinking. The foremost strength of mankind is its power of thinking. Only man can think with due discrimination and that is the cause of his attainment of the state of the Supreme Being – the Deva of the Devas. The power of thinking provides him the status of a great man and of a Deva. Through his power of thinking he sees the whole world as one. In every situation the man should keep intact his power of thinking. Whatever calamity may strike him, the man should not allow destruction of his endurance and power of thinking.

विचार
THE THOUGHTS

## २४. विचार शुद्धि से ही आचरण की शुद्धि

समरसी भाव में प्रवेश पाने हेतु सम्पूर्ण अशुभाचरण के विचारों का बुद्धिपूर्वक प्रत्याख्यान करना होगा। पर-भावों के ममत्व भाव का विचार जब तक बुद्धि में है, तब तक जीव शुद्ध भाव को प्राप्त नहीं कर सकता। सर्वप्रथम असंयम भाव का अभाव स्वात्मा में करने का विचार स्थापित करो। जितने भी जीव परमात्मा पद पर अधिष्ठित हुए हैं व होंगे वे सभी शुद्ध विचारों के प्रभाव से ही हुए हैं तथा होंगे। साधक का धर्म है वह सर्वप्रथम विचार शुद्धि का अभ्यास प्रारम्भ करे। यदि विचार शुद्धि है तो आचरण की शुद्धि है, अन्यथा नहीं।

### 24 - Purity of thoughts leads to purity of conduct

In order to enter into the disposition of equanimity one must consciously discard all misconduct. So long as man entertains in his mind attachment towards the externalities, he cannot attain the disposition of purity. As a first, determine to rid own soul of non-restraint *(asaṃyama)*. All those who have established themselves as the supreme-soul *(paramātmā)* have done so through the effect of pure thoughts; this applies to the future too. The ascetic should first start practising the purity of his thoughts. If the thoughts are pure, only then the conduct can be pure.

विचार
THE THOUGHTS

## २५. विशद विचारों के लिए विशद प्रज्ञा तथा संयम की आवश्यकता

प्रत्येक विषय पर सम्यक् विचार करना विशिष्ट जनों की पहचान है। अज्ञ प्राणी विपरीत ही विचार करता है, जबकि ज्ञानी विधि-निषेधात्मक विचार करता है। ज्ञानी हेय-उपादेयता, करणीय-अकरणीय, लाभ-अलाभ पर विशद विचार कर एक निर्णय को प्राप्त होता है। अज्ञानी के पास विशद विचार करने के लिए विशद प्रज्ञा ही कहाँ है? प्रज्ञावन्त तथा पुण्यवन्त विज्ञजन ही विशिष्ट विचार

PREVIEW ONLY

शक्ति से वस्तु के भूतार्थ वस्तुत्व पर भूतार्थ विशद विचार कर स्व-पर का तत्त्व निर्णय कर, स्व-पर के अज्ञान-तम का क्षय कर, तीर्थंकर वर्धमान महावीर स्वामी जैसे महामनः होकर धन्य-तेरस को स्वकीय जीवन को धन्य कर सके। तत्त्व-विचारक सर्वप्रथम भावों की निर्मलता पर ध्यान देता है। भाव विशुद्धि पर सम्पूर्ण मोक्षमार्ग का प्रासाद आधारित है। तत्त्व ज्ञानी उन-उन हेतुओं से सदा दूरी बनाकर चलता है जो-जो हेतु शान्ति, आनन्द की श्वास में विघ्न करें। दुःख, पीड़ा, चिन्ता, सन्ताप आत्मा की शान्ति के लिए घोर अन्तराय के कारण हैं। जीवन की सर्व साधना अल्प प्रमाण-काल में ध्वंस हो जाती है। सन्ताप के कारणों में प्रतिपल प्रसन्न जीवन जीने के लिए प्रबल विशुद्धि के साथ प्रचण्ड ध्यान एवं संयम साधना की आवश्यकता है। संयम से शिथिल पुरुष विशुद्धि का आनन्द नहीं ले सकता है। विशुद्धि का आनन्द तो दृढ़ संयमी, आत्म-साधक, निस्पृही मुमुक्षु-साधक ही ले सकता है। आडम्बरों के पास आत्मानन्द प्रवेश ही नहीं पाता, इसमें कोई शंका नहीं है।

### 25 - Pristine intellect and conduct are required for pristine thoughts

The mark of distinguished men is that they have the right thoughts on each subject. The ignorant thinks contrary to the truth while the knowledgeable thinks in terms of both affirmation *(vidhi)* and negation *(niṣedha)*. The knowledgeable arrives at a decision after putting in pristine thoughts on aspects like whether it is worth discarding or accepting, it is worth doing or not-doing, and it is harmful or beneficial. Where is the pristine intellect in the ignorant to have pristine thoughts? Only knowledgeable men with sound intellect and merit, using their distinctive power of thoughts and putting these in use to arrive at the true nature of the reality, have been able to destroy the darkness of ignorance and become great like Lord Mahāvīra who attained ineffable glory in his life. The thinker of the reality first concentrates on the purity of thoughts. The mansion of the path to liberation *(mokṣa)* rests on the purity of thoughts. The knower of the reality keeps at bay all causes that impede his peace and breaths of happiness. Sorrow, suffering, anxiety and agony are grave inhibitors of the peace of the soul. These destroy all accomplishments of life in no time. For incessant happy experience while living in midst of the causes of anxiety it is essential to take recourse to spartan meditation and self-restraint, coupled with strict sinlessness. The man lax in self-restraint cannot experience the happiness appertaining to sinlessness. Only the ascetic aiming for liberation practising strict self-restraint and soul-purification can experience the happiness appertaining to sinlessness. There is no doubt that the happiness of the soul does not go close to ostentatious fanfare.

PREVIEW ONLY

विचार
The Thoughts

### २६. सम्यक् रूप से जानना, व्याख्यान करना, विचार करना ही प्रयोजनभूत

वस्तु को जानना, वस्तु का व्याख्यान करना, वस्तु-तत्त्व पर विचार करना - यह सब सामान्य अवस्था है। वस्तु को जानने वाले, व्याख्यान करने वाले तथा विचार करने वाले बहुत हैं। वे सब कोई विशिष्ट प्रयोजन-भूत नहीं हैं। विशेष प्रयोजन तो तब सिद्ध होता है जब वे वस्तु को सम्यक्-भूत जानें, सम्यक् ही उपदेश करें तथा समीचीन विचार करें। केवल जानना, बोलना, विचारना महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन सब क्रियाओं में सम्यक् शब्द जुड़ा हो तो श्रेष्ठ है; सम्यक् शब्द से विहीन तो सब व्यर्थ है।

### 26 - Only right knowledge, speaking and thinking are meaningful

To know an object, speaking about it, and thinking about it – these are common stages. There are many men who know the object, speak about it and think about it. They are not particularly meaningful. They become particularly meaningful only when their knowledge is right, their speech is right and their thinking is right. Just knowing, speaking and thinking are not important. All these actions become laudable when qualified by the word 'right'; these are meaningless without being qualified by the word 'right'.

विचार
THE THOUGHTS

### २७. सम्यक् विचार सर्व संसार में प्रवाहीमान हो जाते हैं

विचारधारा की विराट्ता व्यक्ति को विश्व में पहुँचा देती है। नदी का प्रवाह वर्द्धमान हो तो वह नाना देशों, राज्यों, प्रान्तों, नगरों में बहती-बहती सागर में प्रवेश कर जाती है। उसी प्रकार प्रकृष्ट विचारशील के प्रकट सम्यक् विचार सर्व संसार में पर्वतवत् प्रवाहीमान हो जाते हैं। जैसे पर्वत से गिरती पानी की धारा नदी से सागर तक पहुँचती है, परन्तु पर्वत अचल, स्थिर, तद्स्थान पर ही रहता है। वह नदी ही है जो पर्वत का नाम सर्वत्र भेज देती है। उसी प्रकार साधक, उत्कृष्ट-विचारक एक स्थान पर, एक देश में स्थित रहता है, परन्तु उसकी सम्यक् विचार-सरिता उसे सात सागर पार करा देती है; कालजयी बना देती है। विचारधारा विचार-शक्तिमान को सर्वत्र महान् बना देती है। प्रत्येक विचारशील को जीवित विचार करना चाहिए तथा मृतक विचारों से सदा आत्मरक्षा करनी चाहिए। धर्म, यश, चारित्र की वृद्धि हो, संक्लेशता की हानि हो, विश्व में प्रेम, वात्सल्य, मैत्रीभाव वर्द्धमान हो, परस्पर में मानवता की वृद्धि हो, दानवता का विनाश हो, घर-घर में जिनागम, जिन-गुरुओं, जिनदेव की चर्चा हो, धर्म तथा वात्सल्य-भाव सदा जयवन्त रहे। कालुष्य-भाव का पूर्ण अभाव हो; जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ साधु भगवन्तों के प्रति सदा अनुराग रहे।

PREVIEW ONLY

### 27 - Right thoughts spread out in the whole world

The vastness of thinking takes the man across the whole world. When the flow of the river is regenerative, covering different countries, states, territories and towns, it enters the sea. In the same manner, the praiseworthy thoughts of the laudable thinker, who is like a mountain, spread across the world. The mountain remains stationery at one place but the stream of water falling from it turns into a river and reaches the sea. It is the river which propagates the name of the mountain everywhere. In the same manner, the ascetic who is an excellent thinker remains stationed at one place and in one country but his river, in form of right thoughts, spreads his name across seven seas and makes him timeless. The stream of thoughts makes the person with the power of thinking great. The thinker should concentrate on live thoughts; he should shield himself from dead thoughts. There should be growth of the dharma, glory and conduct; suppression of inauspicious dispositions; unfolding of love, affection and brotherhood in the world; increase in mutual humaneness and fading away of hostilities; households engaged in discussion on the scripture, Jain ascetics, and Lord Jina. Victory forever of the dharma and the

disposition of affection! The vicious dispositions should become extinct. There should be pristine affection for Lord Jina, the scripture and the sky-clad or naked *(nirgrantha)* ascetics.

विचार
The Thoughts

## २८. सम्यक् विचार के अभाव से देशव्यापी अनाचार

सामाजिक विचारधारा में समाज का दर्शन होता है फिर व्यक्ति को अन्य कार्य दृष्टिगोचर नहीं होता। समाज के विकास, विनाश, उत्पत्ति पर विचार चलता है। एक श्रेष्ठ समाज की रचना हो, पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सुख-भोग भावना मात्र से श्रेष्ठ समाज की रचना असम्भव है। कारण, मात्र भौतिक इन्द्रिय सुख-सामग्री के संचय पर लक्ष्य रहा तो फिर व्यक्ति अन्य के सुख के बारे में कुछ विचार नहीं कर पायेगा। उसके अन्दर सम्यक् विचार का अभाव ही दिखेगा, जिसके परिणाम-स्वरूप देशव्यापी अनाचार फैल जाएगा। पशुवृत्ति मानव के अन्दर प्रवेश कर जायेगी। इसीलिए श्रेष्ठ समाज का निर्माण धर्म-भावना सापेक्ष ही किया जा सकता है, धर्म-भावना निरपेक्ष नहीं।

## 28 - Without right thoughts anarchy spreads out in the whole country

In societal thinking the man visualizes society and does not reflect on other activities. He thinks about the development, destruction, and creation of society. It is laudable to think about the creation of a righteous society but it is impossible to do it just through the abundance of the objects of enjoyment. When the aim is solely on accumulation of the objects of sensual pleasures, the man does not think about the welfare of his fellow beings. He fails to entertain right thoughts and, as a result, anarchy spreads out in the whole country. Animal tendencies enter the man. The creation of a laudable society can thus only be possible when the thoughts are in tune with the dharma, not in disregard to the dharma.

PREVIEW ONLY

विचार
The Thoughts

## २९. सम्यक् विचारशील के पास ही कार्य कराने की क्षमता

कुशल विचारक अपना सोच विशालता-युक्त बनाता है। न्यून सोच-युक्त विचारक विश्व-हित का विचार नहीं कर पाते। स्व-परिवार, स्व-ग्राम, स्व-शरीर, स्व-राज्य, स्व-राष्ट्र के हित-चिन्तक सीमित विचार वाले हैं। असीमित सोच वाला व्यक्ति सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विचरण करने वाले जीवों के हित-चिन्तक होते हैं। सर्व-हित, सर्व-काल, सर्व-सुख का नारा सर्व-लोकव्यापी सम्यक् विचारशील नरोत्तम के पास ही शोभायमान होता है। संकुचित विचारधारा में जीने वाला व्यक्ति क्या जगत्-हित कर पायेगा? स्व-बुद्धि को ही श्रेष्ठ न मानकर सर्वप्रथम सर्व जीवों की योग्यता का भी विचार करना चाहिए। कार्य करने की योग्यता के साथ, कार्य कराने की भी योग्यता होनी चाहिए। कार्य क्षमता से भी बड़ी कार्य कराने की क्षमता होती है। कोई भी व्यक्ति एक-दो कार्य कर पाता है, कार्य तो लाखों-करोड़ों से करवाया जाता है। लाखों लोगों से कार्य कराने के लिए लाखों से अधिक बुद्धि की

आवश्यकता पड़ेगी। पर की बुद्धि को दबाकर कैसे रख सकते हैं? गुरुता, प्रभुत्व शक्ति-सम्पन्न सभी को प्रसन्न कैसे रख सकते हैं? कार्य पूर्ण चोखा हो, परन्तु स्वयं दूर रहें। स्व को सामान्य तथा विशेष सभी मानें। आप विशेष होते हुए भी सभी में सामान्य रहें। यही नियंत्रण कर्ता का विशेष गुण है।

## 29 - Only the right thinking man has the capability to get work done

Adept thinker makes his thinking vast. Men with lowly thoughts cannot think about the welfare of the world. Those who think only about their own family, village, body, state and nation are with limited thinking. Those with unlimited thinking are concerned about all living-beings in the entire universe. The slogan 'welfare of all, at all times, and happiness to all' adorns only the finest man. What welfare of the world will the man with base thinking be able to do? Don't consider own intellect to be the best; before that, think about the capabilities of all living-beings. Along with the ability to do the work, you should have the ability to get the work done. The ability to get the work done is greater than the ability to do the work. On his own, an individual can perform only a few tasks but the work is done through hundreds of thousands of men. To get the work done through hundreds of thousands of men you will require superlative intellect. How can you suppress the intellect of others? How can you keep in good humour those with eminence and influence? Let the work be done well but you maintain distance. Everyone should believe that he is special as well as common. While being special, maintain commonality with others. This is the special attribute of the controller.

विचार
THE THOUGHTS

## ३०. सम्यक् विचार युक्त व्यक्ति ही देश व राष्ट्र का योग्य संचालक

अयोग्य में योग्य का दर्शन जहाँ है, वहाँ देश, राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति के विकास का विचार करना कहाँ तक सम्भव है? व्यक्ति का चुनाव संख्या पर न होकर गुणों पर होना चाहिए। देश-भक्ति, क्षमता, कार्य-कुशलता, प्रभावना, दानशीलता, सर्व साम्य-भाव वृत्ति, गुणग्राही-भाव, दुर्व्यसन इत्यादि से दूरी रखने वाला गुणों से युक्त तथा स्वकार्य में दक्षता प्राप्त पुरुषों के द्वारा ही देश, राष्ट्र, धर्म तथा संस्कृति के विकास का विचार करना सम्यक् विचार है। योग्यता युक्त व्यक्ति किसी भी प्रान्त का हो, वह विकल्प नहीं आना चाहिए। मूल भारतीय हो जिसके अन्दर राष्ट्र प्रेम हो।

## 30 - Only the man with right thoughts can be a worthy administrator of the country and the nation

How can the development of the country, the nation, the dharma and the culture be thought of when the unworthy is seen as the worthy? The selection of the candidate should be on the basis of the quality and not the quantity. That only the man who is patriotic, capable, skillful, impactful, charitable, equanimous, adopter of virtuous qualities, and who relinquishes addictions and adept in own work will be able to bring about development of the country, nation, dharma and culture constitutes right thought. It does not matter which state he belongs to. It is enough if he is an Indian and is patriotic.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ३१. करुणा-दया में प्रमोद भाव होना चाहिए, संक्लेशता नहीं

परकीय सुख-दुःख से प्रभावित होकर स्वयं को सुखी-दुःखी करने का विचार निकाल देना चाहिए। लोक में अनेक जीव हैं; वे सभी स्व-कृत कर्मोदय से जीते हैं, सुख एवं दुःख प्राप्त करते हैं। प्रत्येक स्थल पर उभय प्रकार के जीव प्राप्त होते हैं, उन्हें देख कर यदि दिन-रात उनका ही विचार करते रहे तो स्वयं सम्यक् विचार करो कि आपके जीवन की स्वतन्त्रता का क्या होगा? अपने जीवन के सुख-दुःख के संवेदन के लिए आपके पास समय ही नहीं होगा। करुणा-दया ठीक है जब उसमें प्रमोद भाव हो, लेकिन यदि करुणा-दया से संक्लेशता हो रही हो तब तो वह न दया है, न करुणा है, न प्रमोद है; वह तो हिंसक भाव है।

## 31 - Mercy and compassion should accompany delight, not agony

Rid yourself of the thoughts of experiencing delight or agony on seeing the happiness or misery of others. There are many living-beings in the world; all live according to their own fruition of the karmas and experience happiness and misery. At every place, there are living-being of both kinds – happy and miserable. Think evenhandedly what will happen to your own freedom if you keep on thinking about them at all times. You will not get time to experience own happiness and misery. Mercy and compassion are fine when accompanied with delight, but when accompanied with agony these are not mercy or compassion or delight; these are dispositions of injury *(hiṃsā)*.

विचार
THE THOUGHTS

## ३२. बिना विचारे जो करे...

कार्य करने के पूर्व एक बार यह विचार अवश्य करें, इसका परिणाम क्या होगा? वर्तमान, भविष्य एवं भूत की छवि पर क्या प्रभाव होगा? धर्म पर, संस्कृति पर एवं समाज-राष्ट्र पर क्या प्रभाव होगा? साथ ही स्व-जीवन पर क्या प्रभाव होगा? सम्पूर्ण प्रश्नों का चिन्तवन अनिवार्य है। सम्यक् विचारक सर्वदा, सर्वथा लोक में स्व-पर का हितकारी होता है। जो व्यक्ति बिना विचार करके कार्य करते हैं वे इस भव में उपहास प्राप्त करते हैं, पर-भव में दुर्गति के दुःख प्राप्त करते हैं। विचार विहीन कार्यकर्ता का उभय लोक दुःखमय हो जाता है। इसलिए विचार कर सम्यक् कार्य करो; जीवन में सफलता का यह सूत्र है।

## 32 - The man who acts without thinking...

Before doing any work you must think about its impact. What will be its impact on your image in the present, future and past? What will be its impact on dharma, culture, society and nation? Its impact on your own life? It is essential to reflect on all these questions. The right thinker is always the bestower of well-being to the whole world – to self and others. Those men who act without thinking get ridiculed in this life and attain vicious state of existence in life hereafter. The man who acts without thinking engenders misery in his two worlds. Therefore, the mantra of success in life is: act judiciously after proper thinking.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ३३. सतत साधना से ही लोक में प्रसिद्धि तथा आत्म-सिद्धि

प्रसिद्धि का विचार हो चाहे आत्म-सिद्धि का, दोनों की ही उपलब्धि के लिए चाहिए सतत साधना। बिना साधना के न तो प्रसिद्धि की सिद्धि होती है और न ही आत्म-सिद्धि की। विवेक-शीलता का धनी पुरुष प्रति-क्षण सिद्धि, प्रसिद्धि के पुरुषार्थ में संलग्न होने के साथ-साथ अप्रसिद्धि, कुप्रसिद्धि, अपयश से आत्म-रक्षा का भी पुरुषार्थ करता है। वह उन क्रिया-कलापों से सदा दूर रहता है जो प्रसिद्धि एवं सिद्धि दोनों के नाशक हैं। लोक में सर्वश्रेष्ठ सम्पदा यश तथा कीर्ति है। समझदार व्यक्ति को सदैव उसकी रक्षा करनी चाहिए। अपयश में बुद्धि, विवेक, विज्ञान सब नष्ट हो जाते हैं और व्यक्ति आत्महत्या तक करने को तैयार हो जाता है। उसे लोक में अन्य कोई उपाय ही नहीं दिखता, किसी को भी मुख दिखाने की शक्ति समाप्त हो जाती है। तलवार का वार सहना सरल है, परन्तु अपयश का वार बहुत बड़ा, कठोर तथा अंग-अंग में क्या आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में पीड़ा देता है। वह पीड़ा ऐसी होती है जिसे किसी को दिखा भी नहीं सकते, अन्य को बता भी नहीं सकते; साथ ही उस पीड़ा को सुनने व देखने वाले भी विश्व धरा पर विरले ही लोग हैं। पीड़ा में और अधिक पीड़ित करने वाले धरती पर बहुत लोग हैं।

## 33 - Continuous practise begets fame in the world, and self-attainment

Whether thinking of fame or self-attainment, the accomplishment of both requires continuous practise. Without practise, neither can be accomplished. The man with discrimination, while incessantly engaged in deeds that result in accomplishment and fame, puts efforts on protecting self from obscurity, infamy and dishonour. He remains ever aloof from activities that destroy both, fame and accomplishment. The biggest asset in the world is fame and honour. The man with understanding should incessantly protect both. Dishonour crushes the intellect, discrimination and logic of the man and he gets ready to even commit suicide. He sees no other way out in this world and his power to face anyone gets vanquished. It is easy to bear the blow of sword but the blow of dishonour is enormous and severe; it hurts not only each part of the body but each space-point of the soul. The wound cannot be shown or described to others; moreover there are few in this world who would be interested in seeing your wound and listening to your tale of suffering. There are many in the world who would add to your suffering.

विचार
THE THOUGHTS

## ३४. गुरु-उपदेश, आगम एवं अनुभव सम्मत विचार ही हितकारी

सदा ऐसा कार्य करने का विचार करो जो स्व-पर कल्याणप्रद हो। कभी-कभी कार्य कल्याणप्रद तो होता है परन्तु सभी को खुश नहीं कर पाता। इस बात की चिंता छोड़ देना चाहिए। कारण यह है कि सम्पूर्ण लोक को एक साथ खुश नहीं किया जा सकता। कल्याण का मार्ग सभी को एक साथ बताया जा सकता है। कुछ लोग आपके विचारों से प्रसन्न भी होंगे, कुछ अप्रसन्न भी। दोनों की संख्या का निर्धारण करना चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि प्रसन्न होने वालों की संख्या अत्यन्त

PREVIEW ONLY

न्यून है, फिर भी यदि गुरु-उपदेश, आगम एवं अनुभव में आपके विचार पूर्ण सत्य एवं हितकारी हैं तो अपने विचारों में ही दृढ़ रहना चाहिए। विरोधी हीन-भावना से ग्रसित होने के कारण विरोध कर रहे थे, परन्तु अन्दर से वे भी इस बात को समझ रहे थे कि अमुक व्यक्ति का विचार पूर्ण सत्यार्थ-बोधक है। वे जानते हैं कि वस्तु का वस्तुत्व तो यही है, पर उनकी कषाय उसकी प्रशंसा नहीं करने देती। स्वयं के लिए शान्त रहना ही उचित है; ऐसा विचार करने से विरोधी भी शान्त हो जाते हैं। कुछ समय उपरान्त वे भी प्रशंसक हो जाते हैं। अपनी विचारधारा की भूतार्थता का निर्णय करना सीखो, विरोध पर बदला लेना मत सीखो। हाँ, यदि आगम, गुरु-उपदेश, स्वानुभव और लोक में विरोध-भूत विचार हैं तो उन्हें शीघ्र छोड़ देना चाहिए।

## 34 - Only the thoughts in accordance with teachings of the guru, scripture and experience are beneficial

Always think of doing that work which is beneficial to self and others. Sometimes, the work may be beneficial but cannot please all. Do not worry about it. The reason is that one cannot please the whole world simultaneously. One can promulgate the path to well-being to the whole world simultaneously. Some will be pleased with your thoughts and some displeased. Decide on the numbers of both kinds. Sometimes it may happen that the number of those who get pleased is very small but still remain steadfast on your thoughts if these are wholly based on truth, beneficial, and are in accordance with the teaching of the guru, the scripture and your experience. The disputants object to such thoughts due to their inferiority complex but in their hearts they know that your thoughts are based only on the truth. They know that the nature of the object – *vastutva* – is in accordance with your words but their own passions *(kaṣāya)* forbid them from praising you. Remain calm and that will calm down your disputants too. After some time they too will praise you. Learn to determine the veracity of your thoughts, learn not to seek revenge against the opposition. Of course, get rid of thoughts that are against the scripture, the teaching of the guru, your experience and evidence.

विचार
THE THOUGHTS

## ३५. हेय-उपादेय विचार खड़े कर देना प्रज्ञ पुरुषों का कार्य

विचारों का नियंत्रण विचार ही करते हैं। प्रथम विचार को द्वितीय विचार प्रभावित करते हैं। द्वितीय विचार यदि प्रथम विचार से प्रभावी होते हैं तो प्रथम विचार अस्तित्व-हीन हो जाते हैं। फिर भी अपना प्रभाव संस्कारित करके जाते हैं। विचारों की श्रृंखला का उदय स्थान कहाँ है, इस बात का जीव जब विचार करता है तब उसे बोध होगा कि चित्त ही सत्यार्थ के विचार का जनक है। सम्पूर्ण विचार चित्त के अन्दर ही चल रहे होते हैं। मन-शून्य तो विचार-शून्य। जब तक मन रहेगा तब तक विचार रहेंगे, विचारों का अभाव परमात्मा को ही होगा। सामान्य जीव विचारों पर नियंत्रण कर सकता है, परिवर्तन तथा संक्रमण कर सकता है, परन्तु विचारों का विनाश नहीं कर सकता। विनाश तो केवलज्ञानी ही कर पाता है। विचारों के अनुसार शीघ्र क्रिया नहीं करना चाहिए। विचार जो भी आयें उन पर शीघ्र

विवेकपूर्ण विचार उपस्थित कर देना चाहिए। हेय-उपादेय विचार खड़े कर देना प्रज्ञ-पुरुषों का कार्य है। अशुभ विचारों से शीघ्र निर्ग्रन्थ हो जाना चाहिए। पर-भावों की विचारधारा से नि:संगता प्राप्त करने का पुरुषार्थ सतत करते रहना चाहिए। जो-जो अशुभ विचार हो चुके हैं उनसे निर्वृत्ति ले लेना चाहिए। सम्पूर्ण द्वंद्वों से निर्द्वंद्व हो जाने पर जीव निर्वाण-लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है, फिर वह पुनः संसार में गमन नहीं करता।

## 35 - Intelligent men evaluate their thoughts – for worthiness or unworthiness

Thoughts are the controller of thoughts. The first thought gets affected by the second thought. If the second thought gets affected by the first thought, the latter gets infructuous. Still these thoughts leave behind their influence. If the man thinks about the source of the chain of thoughts he will realize that it is the mind that gives birth to the truthful thoughts. All thoughts flow from the mind. To be without mind means to be without thoughts. So long as the mind is present, thoughts will exist; only the supreme-soul *(paramātmā)* is without thoughts. Normal human being can control his thoughts, can change or shift their focus but cannot get rid of these completely. Only the Omniscient Lord *(kevalajñānī)* is able to get rid of thoughts completely. Don't act in haste when thoughts arise. Reflect soon, with discrimination, on the thoughts that are arising. Intelligent men evaluate the worthiness or unworthiness of their thoughts. Get rid of inauspicious thoughts as early as possible. Make efforts to keep at bay the thoughts that concern externalities. Stop thinking about the inauspicious thoughts that may have occurred to you earlier. When rid of all kinds of occupations, the soul *(jīva)* attains the Lakṣmī of liberation *(nirvāṇa)*; it does not come back to the world again.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ३६. परोक्ष प्रमाण से भी वस्तु तत्त्व को जाना जाता है

वस्तु तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। पूर्ण ज्ञायकता तो विशद ज्ञान का विषय है, बिना केवलज्ञान प्राप्त किए भेदाभेदात्मक ज्ञेयों को नहीं जाना जा सकता। फिर भी सकल तत्त्वों की कुछ पर्यायों को विषय करने वाले मति-श्रुत ज्ञान से भी, सिद्धान्त भाषा में परोक्ष प्रमाण से भी, वस्तु तत्त्व को जाना जा सकता है तथा स्याद्वाद भाषा से व्याख्यान भी किया जाता है। श्रुत सम्पदा से तथा श्रुत विनय से भव्यवर जीव तत्त्व निर्णय कर सम्यक् बोध, बोधि एवं समाधि को प्राप्त कर निर्वाणश्री का भी वरण कर लेते हैं।

## 36 - The reality of the objects is also known through indirect valid-knowledge

Objects of knowledge are extremely miniscule. Perfect knowledge is the domain of pure knowledge; without perfect-knowledge *(kevalajñāna)* the objects of knowledge that exhibit the attributes of distinctiveness *(bheda)* as well as non-distinctiveness *(abheda)* cannot be known. Still, through the sensory- and scriptural-knowledge – called indirect *(parokṣa)* valid-knowledge *(pramāṇa)* in the doctrine and which extends only

up to some modes *(paryāya)* of the objects of knowledge – one can know the objects of knowledge and describe these using the language of conditional-predication, called *syādvāda*. Taking help of the treasure of the scripture and with reverence towards it, the worthy *(bhavya)* souls determine the true nature of the reality, attain right knowledge, obtain the three-jewels *(bodhi)* of perception-knowledge-conduct, and then through deep meditation *(samādhi)* embrace the state of liberation *(nirvāṇa, mokṣa)*.

विचार
THE THOUGHTS

## ३७. प्रज्ञावन्त साधु पुरुषों के विचार सम्यक् एवं स्व-पर कल्याणकारी

क्रियात्मक विचार विकसित प्रज्ञावन्त के पास ही होते हैं। जिन विचारों में कोई विशिष्ट रचनात्मक क्रिया नहीं, वे विचार विचारों के पुण्य-क्षीण, भाग्यहीन, बुद्धिहीन, योग्यता-शून्य जनों के होते हैं। जिनके विचारों में समीचीनता की कोई गन्ध नहीं, निर्गंध किंशुक पुष्पवत्, ऐसे विचार रखने वाले लोगों के विचारों को लोक में जन-समूह शीघ्र ही विराम दिला देता है। विराट् भाल, विशाल भलाई परिणाम तथा विराट् तीक्ष्ण पुण्य प्रज्ञावन्त साधु पुरुषों के विचार सम्यक् एवं स्व-पर कल्याणकारी होते हैं। पुण्यवन्त, शीलवन्त, चर्यावान्, धैर्यवान्, आगम-कुशल, स्याद्वाद-विद्या सम्पन्न, अनेकान्त-दृष्टि युक्त साधु पुरुष के वचनों का ज्ञानीजन ग्रन्थ के रूप में स्वाध्याय एवं पूजा करते हैं। ज्ञानियो! ऐसा जीवन का व्यक्तित्व बनाओ जिससे आपके व्यक्तित्व एवं विचारों को जगति पर विद्वान्-जन उदाहरण के रूप में धर्म-सभाओं एवं आम-सभाओं में श्रद्धा के साथ रखें। लोक आस्था से कर-मुकुलित कर घण्टों-घण्टों सुनता रहे; श्रोताओं का पुनः-पुनः सुनने को मन मचल जाए। लोक आपके विचारों को सुनने में अपना अहोभाग्य स्वीकार करे। वे ऐसा सोचें कि आज मेरा अहोभाग्य है; अमुक महापुरुष के सम्यक् विचार सुनने-सुनाने एवं पढ़ने को मिले। अथवा 'अहो' ही नहीं, अपितु 'परम' सौभाग्य है!

## 37 - The thoughts of intelligent and noble men are right, and beneficial to self and others

Only the mature and intelligent man possesses executable thoughts. The thoughts that cannot be executed positively fall in the domain of men bereft of merit *(puṇya)*, luck *(bhāgya)*, intellect *(buddhi)* and capability *(yogyatā)*. The men whose thoughts lack the scent of objectivity, like the odourless but beautiful flower of *kiṃśuka*, are soon made ineffective by the masses. The thoughts of intelligent and noble men – with broad forehead, grand aim of wellness, and sharp merit – are right and result in the well-being of self and others. The knowledgeable men study and venerate, in form of sacred texts, the words of noble men equipped with excellent merit, vows, demeanour, forbearance, scriptural-proficiency, knowledge of the doctrine of conditional-predication or *syādvāda*, and vision of non-absolutism or *anekāntavāda*. O knowledgeable men! Make your personality such that you and your thoughts become a subject matter, as worthy examples, in the utterances of the learned men in assemblies of the dharma and the masses. The world should listen to your words for hours with hands folded in veneration; it should grow restive for listening to your words again and again. The masses should consider it their good luck to be able to listen to your words. The people should consider it

PREVIEW ONLY

their good fortune that today they got the opportunity to listen to, utter to others, and read your words. Nay, not just 'good' but 'supreme' fortune!

विचार
THE THOUGHTS

## ३८. शुभ विचारने वाले का उभय लोक में कल्याण

विकास एवं विनाश व्यक्ति के विचारों के अनुसार होता है। स्व-विचार का अध्ययन स्वयं ही करना चाहिए। स्व-विचारों में ईर्ष्या, मात्सर्य, डाह, क्लेश, पिशुनता, स्व-प्रशंसा, पर-निन्दा का परिणाम जीवित है तो समझ लेना चाहिए कि मेरा भविष्य क्या है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मभाव, परिग्रह-संग्रह के तीव्र परिणामों से जो व्यक्ति स्व को बाहर नहीं कर पा रहा उसे अब जगत् में किससे बात करने की आवश्यकता है? मेरा विनाश होगा या विकास, स्वयं ही समझ लेना चाहिए। अशुभ विचारने वाले का विकास कभी नहीं होता। विकास तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-भाव रखने वाले सरल-स्वभावी, मृदुभावी, मृदुभाषी का होता है। स्वभाव की मृदुता, वचन की कुशलता, कार्य की निर्मलता, अवक्र परिणामी जीव का इहलोक एवं परलोक, उभय लोक में कल्याण होता है। साथ ही ऐसा महामनः पर-कल्याण में भी सहायक होता है। सर्व विश्व ऐसे सौभाग्यशाली का गुणगान करने में अपना सौभाग्य मानता है। ग्रन्थों के हर पृष्ठ पर उस महापुरुष के गुण स्तोत्र लिखे जाते हैं। कवि, लेखक, वाग्मी सभी अपनी-अपनी पद्धति से चर्यावान्, ज्ञानवान्, श्रद्धावान् का गुणगान करते हैं। हमेशा चारित्र-विकास, गुण-विकास एवं विश्व-विकास का लक्ष्य बनाओ।

## 38 - Auspicious thinking ensures blessedness in this world and hereafter

Development and destruction are guided by the thoughts of the man. Own thoughts are to be studied by the self. Understand what lies in the future if your thoughts are mired in dispositions of envy, spite, jealousy, betrayal, self-praise and censuring others. The man who is not able to pull himself out of the disgraceful dispositions of injury, falsehood, stealing, unchastity and attachment to possessions need not talk to anyone in the world. Think yourself whether you are heading for destruction or development. The man with inauspicious thinking never attains development. Development is meant for the man who is having the dispositions of non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(acaurya)*, chastity *(brahmacarya)* and non-attachment *(aparigraha)*, beside being simple-minded, sweet-tempered and soft-spoken. The man who is endowed with pleasantness in nature, adeptness in speech, purity in activities and straightforwardness attains blessedness in both worlds, this world and hereafter. Also, such distinctive man engenders well-being of others. The whole world feels proud in praising such a fortunate man. Pages of the scripture are filled with laudatory qualities of such a great man. Poets, writers and orators praise, in their own styles, such a man with excellent demeanour, knowledge and faith. Aim always for conduct-development, quality-development and world-development.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ३९. सम्यक् विचार के उपरान्त सम्यक् आचार

दुःख-मुक्ति का विचार यदि आता है तो सर्वप्रथम विषय-कषाय, आरम्भ, परिग्रह, व्यसनों से मुक्त होने का विचार करना पड़ेगा। अशुभ कर्म क्रियाओं के त्याग का विचार किए बिना तथा कृत-कारित-अनुमोदना एवं मन-वचन-काय से अशुभ, अशोभन कार्यों के त्याग का विचार किए बिना मुक्ति का विचार, विचार ही रहेगा; मुक्ति की उपलब्धि नहीं होगी। ऐसा श्रीजिन-वचन है - इसे कोई भी टाल नहीं सकता। जो परिणाम, जो क्रिया वर्तमान में आत्म-शान्ति एवं सुखप्रद नहीं, वह आगामी काल में सुख-शान्ति, दुःख-मुक्ति का कारण कैसे हो सकता है? इसलिए सम्यक् विचार कर, सम्यक् आचार करो।

## 39 - Adopt right conduct after right thought

If you think of freedom from suffering, first get rid of sensual-passions, excessive activity, possessions and addictions. Without thinking of abandoning inauspicious and inappropriate karmas and activities – in terms of doing these, causing these done and approving these through the mind, the speech and the body – the thought of attaining liberation will remain a mere thought; it cannot be attained. These are the words of Lord Jina and cannot be contradicted by anyone. How can the dispositions or activities which fail to provide the peace of mind and happiness in the present bestow peace, happiness and freedom from suffering in the future? Therefore, adopt right conduct after right thought.

विचार
The Thoughts

## ४०. सकारात्मक सोच के संस्कार स्वात्मा में डालिए

न्याय-नीति युक्त सुन्दर भाषण, सुन्दर-शुद्ध शाकाहार-स्वच्छ भोजन, साधुजनों की संगति से पूर्ण जीवन जीने का जिनका विचार है, वे सदा 'विधि' विचार बनायें। 'निषेध' के साथ सकारात्मक सोच की वृद्धि करें, नकारात्मक सोच की हानि के साथ। जो व्यक्ति प्रत्येक विषय को 'नास्ति-नास्ति' में विचार करता है, उसके अन्दर संस्कार उल्टे ही आ जाते हैं और वह सर्वत्र विपरीत ही सोच बना लेता है। उसके अन्दर सही सोच प्रकट ही नहीं हो पाती। जीवन के अन्त समय में ही नहीं अनेक भवों तक विपरीत विचारों के संस्कार अपना प्रभाव छोड़ते हैं। प्रज्ञजनों को प्रत्येक क्षण 'अस्ति' - सकारात्मक सोच - के संस्कार स्वात्मा में डालना चाहिए। 'सब अच्छा है', 'जो है, सो है', 'सबके दिन एक से नहीं होते' तथा 'सब दिन एक से नहीं होते' यह संसार परिणमन का स्वरूप है। स्व-समय पर सभी बदलते हैं, इसलिए लोक में घटित घटनाओं को देखकर शोक नहीं करो। सावधानी अवश्य बनाकर चलो, परन्तु भवितव्यता प्रचण्ड है तो सर्व सावधानी अनुत्तीर्ण हो जाती है, फिर भी सम्यक् पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए। अन्तिम श्वास तक वस्तु स्वभाव को नहीं छोड़ना चाहिए। न ही किसी घटना को व्यक्ति विशेष पर स्थापित करना चाहिए। जो हम अन्य के दोष देख रहे हैं वैसे दोष स्वयं में भी तो हो सकते हैं, फिर हम किसे सुनायेंगे कि आपके अन्दर अमुक दोष हैं? इसलिए धैर्य धारण करके प्रत्येक कार्य का निर्णय करना चाहिए।

PREVIEW ONLY

## 40 - Condition your soul for positive thinking

The thoughts that promote logical and laudable speech, partaking of delightful, pure vegetarian, clean food, and living in company of noble men should be taken as 'positive' *(vidhi)*. Think also about 'negative' *(niṣedha)* thoughts but promote only the 'positive' and not 'negative'; the two kinds of thoughts go together. The man who thinks only in terms of 'negative' gets trained in negativity and his thoughts become negative. He becomes incapable of thinking positively. Negativity in thoughts remains active not only till this life but for many future lives. Intelligent men should condition their souls with positivity. The nature of the world is described by axioms such as 'all is well', 'it is, as it is', 'the days of all are not alike', and 'all days are not alike'. Things change with time and, therefore, do not get aggrieved on watching the happenings in the world. Remain vigilant but if fate is overwhelming your vigilance may fail; still continue to make right efforts. Do not think, till your last breath, against the true nature of the objects. Also, do not judge a man on the basis of a particular happening. The faults that you observe in others may be present in you too; whom are you going to narrate your faults to? Take a decision, with forbearance, before performing any task.

विचार
THE THOUGHTS

## ४१. ईर्ष्या भाव से आत्मरक्षा करें

जीवन में ऐसी विचारधारा का स्रोत स्फुटित नहीं करना जो ईर्ष्या भाव को उत्पन्न कर दे। जो क्षण मात्र भी प्रेम, स्नेह, वात्सल्य भाव का वेदन न करने दे। प्रतिपल द्वेष भाव की पीड़ा देता रहे, उसी में आयु कर्म के निषेक घुलते रहें, पुण्य-कर्म नष्ट होता रहे, पाप-कर्म वृद्धि को प्राप्त होता रहे, जिनसे सुखमयी निजात्मा दुःख सागर में निमग्न हो जाये, ऐसे दुःख की तथा भूत के भोगे हुए सुखों की स्मृतियाँ भी न आने पायें। ईर्ष्या भाव से आत्मरक्षा करें। विचारों में मात्र सरलता, सहजता, सर्व-मैत्री भाव का जागरण रहे। अन्य नहीं, अन्यथा नहीं।

## 41 - Protect yourself from the disposition of envy

Do not let the chain of thoughts arise in you that gives rise to the disposition of envy. Such thoughts do not give place to dispositions of love, fondness and affection. Let not any thought that, every instant, causes anguish of animosity, dissolves away the remaining instances of life, destroys the meritorious karmas, enhances the demeritorious karmas, plunges the blissful soul into the ocean of miseries, engage your mind in form of remembering past sufferings as well as pleasures. Protect yourself from the disposition of envy. Let only simplicity, spontaneity and brotherhood towards all engulf your mind. No other thoughts should engulf your mind.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ४२. प्रसन्नचित्त रहने के लिए संयम के भाव

स्व-जीवन में हर्षित, प्रसन्नचित्त रहने का दृढ़ विचार हो तो संयम के भाव बनाओ तथा प्राप्त संयम में किञ्चित् मात्र भी दोष मत लगाओ। निर्दोष साधना के मार्ग पर चलते चलो, जगत् के प्राणी-मात्र में मैत्री भाव स्थापित करके रखो। किसी प्राणी, जीव, सत्त्व, भूत को कष्ट देने के भावों का स्व-भावों में अभाव करो। जिन भावों को पूर्व में कभी नहीं किया उन पवित्र चारित्र के भावों को भाओ। संक्लेशता के निमित्तों की उपेक्षा करो, विशुद्धि की वृद्धि करो। जैसे सम्राट् अपनी राज्य सीमा की वृद्धि का सतत विचार करता है, उसी प्रकार सच्चा मुमुक्षु साधक अपने चारित्र सीमा की वृद्धि का सतत विचार करता है।

### 42 - Disposition of self-restraint is required to attain happiness

If you think strongly about attaining joy and happiness in your life, get ready to adopt self-restraint and then let not any blemish defile it in any manner. Keep treading the path of unblemished spiritual practise, establishing brotherhood with all living-beings. Do not give place to any dispositions that cause distress to living-beings of any kind. Entertain dispositions that lead you to laudable conduct that you have not been able to observe in the past. Ignore the causes of agony in order to increase your purity. As a king thinks constantly of increasing his territory, in the same way the true ascetic practitioner thinks constantly of increasing the scope of his conduct.

विचार
The Thoughts

## ४३. विशुद्धि का क्षरण होने पर मोक्ष-मार्ग का भी क्षरण

विचारपूर्वक किया गया कार्य दुःख, शोक, सन्ताप एवं पश्चात्ताप को जन्म नहीं देता। प्रज्ञ पुरुषों का कर्तव्य है कि प्रत्येक कार्य करने के पूर्व सभी ओर से उस कार्य के कारण होने वाले हानि-लाभ, शत्रु-मित्र, निन्दा-प्रशंसा के बारे में उचित विचार कर लें जिससे कार्य के पूर्व, पश्चात् तथा मध्य में कोई विरोध उत्पन्न न हो एवं पश्चात्ताप भी न हो। कार्य के विफल होने पर जगत् हँसी भी न हो। समीचीन अभिसन्धि-पूर्वक कार्य का मंगलाचरण होना चाहिए, भाव विशुद्धि की रक्षा करते हुए। जीवन की मुख्य एवं प्रिय वस्तु यदि कोई है तो वह है परिणामों की निर्मलता। भावों की निर्मलता हेतु ही सर्व आराधना व साधना है। आराधना व साधना के माध्यम से ही भाव-विशुद्धि का विनाश दिखे तो वह न आराधना है, न ही साधना। वह तो मात्र विशुद्धि की विराधना है। प्रत्येक तत्त्व ज्ञानी आत्मा को बोध है कि सम्पूर्ण मोक्ष-मार्ग का प्रासाद भाव-विशुद्धि की नींव पर खड़ा है। नींव का क्षरण होता है तो सम्पूर्ण महल का क्षरण नियत जानो। उसी प्रकार से विशुद्धि का क्षरण होता है तो मोक्ष-मार्ग का भी क्षरण स्वीकार करो। इसलिए विशुद्धि की रक्षा हेतु पूर्वापर विचार कर कार्य प्रारम्भ करो, जिससे न जगत् में उपहास का पात्र बनना पड़े और न विशुद्धि का विनाश हो। मोक्ष-मार्ग सदा अविराम प्रवाहमान हो।

### 43 - Erosion of purity results in erosion of the path to liberation

The work done after proper thinking does not result in suffering, sorrow, agony and

PREVIEW ONLY

regret. Before doing any work, intelligent men should think assiduously and from all angles about the consequent gain and loss, making of friends and foes, and praise and censure. This will ensure that there are no dissents before, during and past the work and that you will have no regrets. If it does not get accomplished, there will not be any public ridicule. While maintaining purity of thoughts, utter auspicious words of invocation at the start of the work, taking others in well-intentioned confidence. The prime and adorable thing in life is purity of thoughts. All veneration or spiritual practice revolves around purity of thoughts. If purity of thoughts gets vitiated through veneration or spiritual practice, it no more remains veneration or spiritual practice. It becomes just the vilification of thoughts. Every soul that understands the reality knows that the mansion of entire path to liberation stands on the foundation of purity of thoughts. If foundation gets eroded know for sure that the entire structure is going to be dilapidated. In the same way, the path to liberation gets eroded on erosion of purity of thoughts. Therefore, start your work after due consideration of the protection of purity of thoughts; this will save you from public ridicule and from destruction of purity of thoughts. May you tread the path to liberation unhindered!

विचार
THE THOUGHTS

## ४४. विचारधारा की निर्मलता से ही परस्पर मैत्री-भाव सम्भव

विश्व वसुन्धरा पर परस्पर मैत्री-भाव स्थापित होना तभी सम्भव है जब व्यक्ति की विचारधारा निर्मल हो। दूषित विचार कभी भी विश्व मैत्री स्थापित नहीं होने देंगे। आतंक, तस्करी, व्यभिचार भाव को दूर करने का उपाय एक ही है - विचार-परिवर्तन। भावात्मक भाव से एक बात को बार-बार वजन देकर कहा जाए तो व्यक्ति उसे सुनकर प्रभावित हो जाता है और फिर वह वही करना प्रारम्भ कर देता है। आज हमारे देश के ही क्या, विश्व के स्वार्थी जन युवा-शक्ति के साथ यही कर रहे हैं। अल्प द्रव्य का लोभ देकर अथवा पन्थ, सम्प्रदाय, देश, प्रान्त, जाति, उपजाति, वंश, गोत्र, धर्मादि का राग उत्पन्न करा कर, परस्पर क्लेश, दूरियाँ प्रकट कराकर, हिंसात्मक वृत्ति उत्पन्न कर, विश्व को आतंक का घर बना रखा है। इसके लिए शान्त-भाव से आत्मीय व्यवहार कर वस्तु का यथार्थ तत्त्व-बोध प्रदान करना चाहिए। आनन्दमय जीवन प्राणियों को पीड़ित करने में नहीं है, वह तो प्रत्येक जीव के प्रति करुणा, मैत्री-भाव से है। धनवान् शोषण बन्द करें, गरीब पुण्य-पापोदय पर विचार करें। कर्म-सिद्धान्त पर जीवन जीना भी सीखें। स्वकृत पाप-पुण्य के उदय पर विचार करना भी सीखना चाहिए। व्यक्तिगत किसी से अच्छे सम्बन्ध होना महत्त्वपूर्ण नहीं है, प्राणी-मात्र के प्रति अच्छे सम्बन्ध स्थापित कराने की कला आना चाहिए। विश्व मैत्री तभी स्थापित होगी, अन्यथा कोई स्थान दृष्टिगोचर ही नहीं है।

## 44 - Mutual brotherhood only in presence of purity of thoughts

Mutual brotherhood in the world is possible only when there exists the purity of thoughts. Vitiated thoughts will never be able to establish brotherhood in the world. There is just one antidote for vanquishing the scourge of terrorism, smuggling and adultery, and that is change of thoughts. If a particular thought is repeatedly spoken with great force, the listener gets moved and starts acting accordingly. This is being done with

PREVIEW ONLY

our powerful young generation by selfish people the world over. The world has become home to terrorism by such people by giving the youth some money, or generating in them strong feelings of attachment for particular religious order, sect, country, state, caste, subcaste, descent, lineage, dharma and the like, and also of mutual hatred, disenchantment and violence. To overcome this, one should, with composure, equip the youth with right knowledge of the truth of the reality. Blissful life is never the result of injuring living-beings; it is the product of compassion towards all and mutual brotherhood. The rich should stop exploitation and the poor should reflect on merit *(puṇya)* and demerit *(pāpa)*. Learn also to live according to the doctrine of the karmas. Learn about the fruition of the past karmas, the cause of merit *(puṇya)* and demerit *(pāpa)*. It is not sufficient to have good relations with some individuals; what is important is the art of engendering good relations with every living-being. Only then, world brotherhood will come into effect; there is no other way out.

विचार
THE THOUGHTS

## ४५. विचारशील, विवेकशील, प्रज्ञावन्त जनों की बात को स्वीकार करो

जिन लोगों की विचारधारा न्यून-मन्द है अथवा कमजोर है, उन्हें अपनी विचार-शक्ति की वृद्धि करना चाहिए। विचारवान्, प्रज्ञावान् नरों की ही पृथ्वी पर कीमत है। साथ ही, जिनकी विचार-शक्ति न्यून है, विचार-सामर्थ्य नहीं है, उन्हें विचारशील, विवेकशील, प्रज्ञावन्त जनों की बात सुनने, समझने तथा ग्रहण करने की शक्ति को वर्द्धमान करना चाहिए। आप जानते नहीं, कोई बात नहीं; परन्तु जो जाननहारे हैं उनकी बात को स्वीकार करने की क्षमता तो लाना ही चाहिए। प्रमाण-पुरुष की बात को माने बिना न लोक व्यवहार चलेगा, न परमार्थ; इसलिए प्रमाण-पुरुष की बात स्वीकार करो।

## 45 - Accept the words of men with thoughtfulness, discernment and intellect

Those who are dim-witted should try to enhance their power of thinking. Only men who are thoughtful and intelligent are valued on this earth. Those who are dim-witted and do not have the power to think-through should increase their intellect by listening to, understanding and assimilating the words of the thoughtful, discerning and intelligent men. It does not matter if you do not have knowledge; but it is important to develop the ability to accept the words of those who know. Without accepting the words of the man with valid-knowledge, neither the worldly ways nor the spiritual ways can subsist; accept, therefore, the words of the man with valid-knowledge.

विचार
THE THOUGHTS

## ४६. विचार-शक्ति की प्राञ्जलता से ही कुशल वक्ता

विचार-शक्ति महान् शक्ति है, इसकी प्राञ्जलता अनिवार्य है। विचार-कुशल वक्ता तथा

PREVIEW ONLY

विचार-कुशल लेखक, विद्वानों, लेखकों, वाग्मियों तथा वादियों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। विचार-शक्ति-हीन केवल रटे-रटाये वाक्यों तथा शब्दों का ही प्रयोग करता है। स्व-विचार, स्व-चिन्तवन से कुछ भी विस्तार नहीं कर पाता। जो पूर्व का लेख है शब्दश: वही लिखता है, वही बोलता है। अध्येता एवं श्रोता दोनों थक जाते हैं। विचारहीन की बातों को सुनते-सुनते, पढ़ते-पढ़ते कुछ भी नवीन प्राप्त नहीं होता है। जैसे कि कोई गृहस्वामी साग के लिए लौकी, परमल लेकर आया और गृहस्वामिनी से कहा कि इनका साग बना लो। गृहस्वामिनी ने जैसे के तैसे, बिना खण्ड किए मात्र उबाल दिया, तड़का भी नहीं दिया, मिर्च-मसाला कुछ भी नहीं डाला। ऐसी साग को गृहस्वामी कैसे रुचिपूर्वक खाएगा? इसी प्रकार यदि वक्ता सीधे-सीधे बात रखता है तो उसमें श्रोताओं की रुचि कैसे प्रकट होगी? ऐसे विचारहीन वक्ता से श्रोताओं की रुचि समाप्त हो जाती है। आगम, अध्यात्म, नीति-न्याय, सूत्र, श्लोक, गाथा, छन्द, क्षेत्रीय भाषा, मानक भाषा, भाषान्तर, राष्ट्रभाषा, अनुभूतियाँ, कथा-पुराण, स्वजीवन की कथा, भूगोल-खगोल, निमित्त-शास्त्र, मंत्र-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, परमार्थ के साथ व्यवहार, व्यवहार के साथ परमार्थ तथा मात्र परमार्थ इत्यादि का छौंक लगाकर वक्ता को उपदेश करना चाहिए।

## 46 - Lucidity in thoughts is essential to be an adept speaker

Thoughts are extremely powerful; lucidity in thoughts is essential. The thoughtful speaker and author make for themselves a distinctive place among the scholars, writers, orators and debaters. The thoughtless speaker uses only the sentences and words based on his rote learning. He is unable to expand on the subject relying on his own thoughts and ideas. He repeats verbatim what has already been spoken and written. The scholars and the audience both get tired. Nothing fresh is gained by reading and listening to the thoughtless man. It is like this: A man brings bottle gourd and pointed gourd and gives these to his wife to cook. The wife just boils these and without splashing the dish with straight-from-the-frying-pan mix of spices serves it to the husband. The husband would eat it, albeit disgruntled. In the same way, how can the speaker who puts forward his points in a lustreless manner generate interest in the audience? The adept speaker should splash his speech with straight-from-the-frying-pan mix of spices comprising things like: excerpts from the scripture, spiritualism, science of logic, aphorism, *śloka*, *gāthā*, metre, regional language, standard language, another language, national language, experience, documented ancient story, story of own life, geography and astronomy, causal-relationship, mantra, astrology, the four constituents of the scripture called the *prathamānuyoga*, *karuṇānuyoga, caraṇānuyoga* and *dravyānuyoga*, spiritual point of view tinged with empirical point of view, empirical point of view tinged with spiritual point of view, and just the spiritual point of view.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## ४७. हर्ष-विषाद के विचार करने की अपेक्षा तटस्थ भाव रखिये

पर के पुण्य-पापोदय को देखकर हर्ष-विषाद के विचार करने की अपेक्षा तटस्थ भाव रखना

चाहिए। जीवन में समय का संक्रमण होता है, विशिष्ट पुण्यात्मा जीव के भी सब दिन एक से नहीं हुए, उसके जीवन में भी हानि-वृद्धि, उतार-चढ़ाव हुए हैं; चाहे श्रीराम हों, चाहे श्रीकृष्ण अथवा तीर्थंकर भगवान् ही क्यों न हों। आदिनाथ भगवान् को भी आहार-चर्या की विधि नहीं मिली; छह माह प्रभु आहारार्थ पर्यटन करते रहे। पाँच पाण्डवों की क्या दशा हुई? यह सर्व विदित है। इसलिए ज्ञानीजन सर्व जगत् की दशा को माध्यस्थ भाव से, ज्ञायक भाव से देखते हैं। न किसी प्रकार का हर्ष, न विषाद; जो भी संसार में चल रहा है वह सब संसार का विचित्र स्वभाव है।

### 47 - Maintain the thought of equanimity rather than of pleasure or pain

Witnessing the fruition of merit *(puṇya)* and demerit *(pāpa)* of others don't entertain the thought of pleasure or pain. Time causes transformations in life. All days of even highly meritorious souls are not the same; their lives too witness loss and gain, ascent and descent. Take, for example, the lives of *Śrī* Rāma, *Śrī* Kṛṣna or Lord *Tīrthaṃkara*. Even Lord Ādinātha had to go without food for six months in absence of a worthy donor who knew the proper manner of offering the gift of food to a *Digambara* ascetic. What happened to the five Pāṇḍava is well known. The knowledgeable men, therefore, witness the state of affairs in the world with a sense of equanimity. No pleasure, no pain; whatever is happening in the world is its variegated nature.

विचार
THE THOUGHTS

## ४८. विराट् सोच तथा विवेक बनाने का पुरुषार्थ करें

विराट् सोच तथा विवेक बनाने का पुरुषार्थ प्रत्येक नागरिक को करना चाहिए। सबको लेकर चलें, सबसे मिलकर चलें, परन्तु स्व को खोकर न चलें। दया करें, उपकार करें, परन्तु स्व-उपकार तथा अपकार का ध्यान रखकर करें। साँप को मारें नहीं, पर साँप से डसे भी नहीं जाना चाहिए। सबके प्रति सद्भावना रखें, परन्तु सम्माननीय का सम्मान करें। नमस्कार सबका स्वीकार करें, परन्तु नमस्कार गुणवान् को ही करें। अपमान किसी का मत करो, परन्तु सम्मान सभी का स्वीकार करो। गुण प्राप्ति में अपमान भी होता हो तब भी गुरुजनों का सम्मान करो। प्रतिस्पर्धा के विचारों को विराम दो।

### 48 - Try to adopt broad thinking and a sense of discrimination

Every citizen should strive for broad thinking and a sense of discrimination. Take along everyone, walk with everyone, still do not lose yourself. Be merciful, be an altruist but keep in mind your own good and bad. Don't kill a snake but protect yourself from its bite. Maintain goodwill towards all but give respect to the worthy. Accept reverential bowing down of all but bow down only in front of the worthy. Don't denigrate anyone but accept reverence from all. If in the process of acquisition of worthiness you are being played down still venerate your preceptors. Give rest to the thoughts of competition.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ४९. न ज्ञानी की उपेक्षा करो, न अज्ञानी की

विश्व विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण विश्व के नागरिकों के अन्दर विकसित होने का विचार उत्पन्न हो। एक व्यक्ति का विपरीत विचार विश्व-हानि का कारण बन जाता है। सम्पूर्ण घट सुन्दर, सुडोल है, साथ ही अच्छी तरह से पक चुका है, सुमुख है, परन्तु घट निर्माण काल में एक कंकड़ रह गया। पकते ही वह कंकड़ निकल गया और घट में छेद हो गया। एक कंकड़ ने घड़े को पानी भरने के अयोग्य कर दिया। इसी प्रकार से यदि एक भी कंकड़-स्वरूप व्यक्ति विश्व में - राष्ट्र, देश, जनपद, नगर, ग्राम, पल्ली, शैली, टोला व परिवार में - हुआ तो वह अशान्ति, क्लेश उत्पन्न करने के लिए काफी है। इसलिए विवेक-युक्त पुरुष कंकड़ों को सर्वप्रथम भिन्न करता है। न ज्ञानी की उपेक्षा करो, न अज्ञानी की। ज्ञानी की उपेक्षा करोगे तो ज्ञानियों का विकास बन्द हो जायेगा और ज्ञानियों का विकास रुकना ज्ञान का ही विकास रुकना है; इसलिए ज्ञानियों की उपेक्षा त्याज्य है। अज्ञानियों की उपेक्षा भी नहीं करना, अन्यथा सम्पूर्ण ज्ञान का क्षय हो जायेगा। कोई भी ज्ञान का तथा ज्ञानधारियों का सम्मान नहीं करेगा। इसलिए अज्ञानियों की उपेक्षा न कर उन्हें सन्मार्ग दिखाने की अपेक्षा रखनी चाहिए। साथ ही माध्यस्थ भाव पूर्वक उनके साथ व्यवहार करना चाहिए। अज्ञानियों को भी ज्ञानी बनने का समय देना चाहिए, अवसर देना चाहिए। समय सब को ठीक कर देता है, इसलिए बहुत कुछ विषय समय के लिए छोड़ देना चाहिए, जागरुकता के साथ।

## 49 - Ignore neither the knowledgeable nor the ignorant

Development of the world is possible only when each citizen thinks of advancement. The hostile thought of one man may cause destruction of the world. Imagine the making of a clay pot; it is cast beautifully, well rounded, fired well in the kiln, well-necked, but the clay contained one pebble. At the time of firing, the pebble came out leaving behind a small hole in the pot. One pebble made the pot unfit for holding water. In the same way, if one pebble-like man exists in the world, the nation, the country, the municipality, the town, the village, the hamlet, the terrain, the shantytown or the family, he is sufficient to cause restlessness and anguish. Therefore, the man with discrimination keeps such pebble-like men at bay. Ignore neither the knowledgeable nor the ignorant. If you ignore the knowledgeable their development will stop and, as a result, knowledge itself will cease to advance. Also, do not ignore the ignorant since that will stop all advancement of knowledge. On one will then honour knowledge and the knowledgeable. Without ignoring the ignorant, try to show him the right path. Deal with him with a sense of equanimity. Give him time to acquire knowledge. Time is a big healer and therefore leave certain things on time, while being watchful.

विचार
THE THOUGHTS

## ५०. योग्यता के अनुरूप विचार करने पर ही कार्य की सिद्धि

विचारों में डूबा व्यक्ति कभी-कभी कार्य से भी अधिक आनन्द विचारों में लेता रहता है। उसके विचार स्वप्नवत् कार्य-शून्य होते हैं। जाग्रत होने पर कुछ नहीं। बिना अर्थवान् विचार व्यर्थ के होते हैं

PREVIEW ONLY

– अकार्यकारी, न कि कार्यकारी। योग्यता को देखकर विचार करने वाला ही कार्य करने में समर्थ होता है। अयोग्य जनों के विचार स्व-पर के कल्याणप्रद नहीं होते। लंगड़े का विचार है कि मैं अपने पैरों से सुमेरु पर आरोहण करूँगा, साथ ही अपने मित्रों को अपने कन्धों पर बैठा कर ले जाऊँगा। लंगड़ा स्वयं भी नहीं चढ़ पायेगा, अन्य मित्रों को भी नहीं चढ़ा पायेगा। मात्र विचारों की कल्पनाओं में खोया है, अथवा यों कहो कि कल्पनाओं के विचारों में अपना समय और अपनी आयु नष्ट कर रहा है। कोरे विचार कार्य पूर्ण नहीं करेंगे। विचारों के साथ पुरुषार्थ भी तो समीचीन होना चाहिए। विचार भिन्न और पुरुषार्थ भिन्न, तो स्वयं विचार करें कि विवेक-पूर्वक कार्य में एकत्व कैसे सम्भव है? और कार्य भी बनेगा कैसे? क्या चने के बीज से भी उगेंगे चावल के धान्य? यदि विचार चलते हैं मोक्ष-मार्ग के, चर्या तथा क्रिया भोग-विलासमय संसार-वृद्धि की, तब वहाँ मोक्षभूत कार्य कैसे? विचार के अनुसार पुरुषार्थ की क्रिया भी होना अनिवार्य है। तभी सम्यक् कार्य की सिद्धि होगी।

## 50 - To attain success, think as per your capability

The man, at times, takes more delight in his thoughts than in work itself. His thoughts are like dreams; no performance of work. Nothing is achieved on awakening. Thoughts without a clear purpose are not fruitful. Only the man whose thoughts are as per his capability is able to attain success. The thoughts of the incapable man do not cause well-being of self or others. If a lame man thinks of scaling Mountain Sumeru together with another man on his shoulders; he is just engrossed in thoughts, wasting his time and life. Mere thoughts do not fructify. Thoughts must accompany right effort. If thoughts and effort move in different directions, how can there be harmony in the performance of a thoughtful task? How will the work get accomplished? Can rice be grown out of the seeds of gram? If thoughts pertain to the path to liberation and the demeanour and actions pertain to extending the worldly-existence by indulging in sensual-pleasures, where is the harmony between thoughts and actions? The accomplishment of a task depends on harmony between thoughts and actions.

विचार
THE THOUGHTS

## ५१. सर्व द्वन्द्वों से आत्मा का रक्षण करो

संकल्प की दृढ़ता व्यक्ति के विचार एवं आचार को विशुद्ध रखती है। जिसकी संकल्प शक्ति दुर्बल है उसके आचार तथा विचार दोनों ही विकृत हो जाते हैं। सुख-सामग्री का मिलना पूर्व पुण्योदय हो सकता है, परन्तु सामग्री के भोग में लीन हो जाना पापास्रव एवं पुण्य-नाश का साधन है। प्रतिक्षण, प्रतिपल वैराग्य भाव को दृढ़ करने के लिए प्रेक्षा, भावना, योग का आलम्बन लेना चाहिए। 'बारह भावनाओं' का गंभीर चिन्तवन प्रतिक्षण करते रहना चाहिए। एक पल भी अनुप्रेक्षाओं से मुमुक्षु जीव को दूर नहीं रहना चाहिए। जैसे कृपण सम्पत्ति का संरक्षण करता है, इसी प्रकार से चारित्रवान् को अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा करनी चाहिए। किञ्चित् मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। प्रमाद में सत्यार्थ वस्तु के वस्तुत्व का निर्णय नहीं होता, इसलिए ज्ञानी साधुजनों को प्रमाद-भाव से आत्मरक्षा करनी चाहिए। प्रमाद हिंसा है। अप्रमत्त दशा ही परमब्रह्म अहिंसा है। वही जगति पर प्रत्येक भव्य जीव

PREVIEW ONLY

को मुक्तिश्री का वरण कराने वाली है। अत: तत्त्वज्ञानी जीवों को परमब्रह्म आत्मा का आनन्द चाहिए तो सर्व द्वन्द्वों से आत्मा का रक्षण करो। वैराग्य एवं ज्ञान का आलम्बन लेकर रागियों की आँखों से स्वात्मा की रक्षा करो।

## 51 - Protect your soul from all altercations

Strength of determination maintains the purity of the man's thoughts and conduct. Both, thoughts and conduct, of the man with weak determination get contaminated. The availability of the objects of pleasure may rest on the fruition of the past meritorious karmas but to get engrossed in those objects is the cause of the influx of the karmas and erosion of merit. Every instant, to strengthen your inclination for world renunciation, take help of reflection, contemplation, and yoga. Study, and reflect constantly on the 'Twelve Contemplations'. The practitioner on the path to liberation should not distant himself from these contemplations even for a moment. Just as a miser protects his wealth, the man with character should protect his knowledge, perception and conduct. No negligence in this. Negligence does not allow a man to take right decisions in respect of the nature of the reality and, therefore, the knowledgeable and noble men should protect themselves from it. Negligence is injury *(hiṃsā)*. The state of non-negligence is the supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)*. Only this state will let the worthy soul pick out the damsel of liberation. Therefore, the knowledgeable men who want the bliss of the supreme soul should protect themselves from all kinds of altercations. Taking help of the disposition of world renunciation and knowledge, protect your soul from the vicious looks of the men full of attachment.

विचार
THE THOUGHTS

## ५२. तत्त्व निर्णय से शून्य व्यक्ति ही आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है

जीवन में एक समय ऐसा भी आता है जब व्यक्ति कुछ जानने की इच्छा रखता है। जब जिज्ञासा पूर्ण होने लगती है तब व्यक्ति कुछ करने का विचार करता है। जीवन में कुछ नवीनता की भावना जाग्रत होती है। जिनका पुण्य का नियोग है उनकी सम्पूर्ण विचारधाराएँ पूर्ण होती दिखती हैं, कुछ शेष भी रहती हैं, पर सन्तोष के बल से जीवन जीते रहते हैं। जिनकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं होतीं अथवा सन्तोष का अभाव है, उनको नवीन-नवीन इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। तब व्यक्ति चिन्तामग्न होकर तनावग्रस्त हो जाता है। जब शरीर की क्षमता कम होने के कारण तनाव को सहन करने में असमर्थ हो जाता है, तब तो पागल-सा हो जाता है। यदि मान कषाय तीव्र है तथा लोक अपवाद इतना अधिक हो जिसे वह सहन नहीं कर पाता है तब संक्लेशता से युक्त होकर व्यक्ति आत्महत्या की ओर अग्रसर होने लगता है। वह स्व-पर तत्त्व निर्णय से शून्य हो जाता है। ऋण होने पर, चारित्र पर दोष आने पर, दरिद्रता के आने पर, शरीर की रुग्णता पर, क्लेशयुक्त होने पर, राज्य-आज्ञा की कठोरता पर, व्यक्ति स्व-प्राणों का घात करने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसे ज्ञानी-जनों एवं आत्मीय-जनों की आत्मीयता की आवश्यकता है। स्वयं में सद्-साहित्य का स्वाध्याय, धैर्य, सहनशीलता से कार्य करना चाहिए। आत्महत्या किसी भी शंका का समाधान नहीं है। मानव देह बहुत ही पुण्योदय से प्राप्त होती है।



PREVIEW ONLY

आत्महित की उत्कृष्ट साधना, उत्तम कुल, सुसंगति, श्रेष्ठ धर्म की आराधना, निरोग शरीर, आपापर का भेद-विज्ञान दुर्लभ है। इन्हें प्राप्त करके भी आत्महत्या के परिणाम आयें तो समझो तीव्र अशुभ कर्म का उदय है। उसे शीघ्र धर्मध्यान के माध्यम से तथा गुरु-उपदेश से ठीक करना चाहिए। आत्महत्या का विचार छोड़ देना चाहिए। मानव देह की कीमत समझना चाहिए। कीड़े-मकोड़े जैसी पर्याय को नाश करने का भी निषेध है, फिर मानव देह को कोई अज्ञ नाश करना चाहे; धिक्-धिक्-धिक् जीवन उसका। प्रत्येक व्यक्ति को वस्तुत्व पर विचार करना चाहिए।

## 52 - Only the man ignorant of the reality takes step towards suicide

A time comes in life when man desires of acquiring some knowledge. When his quest for knowledge is satiated, he thinks of doing something. He longs for something new. The man with merit seems to accomplish all that he desires; some desires may remain unaccomplished, still he lives on the strength of contentment. The man whose desires remain unsatiated or due to lack of contentment, he continues to long for new objects. He gets concerned and anxious. When his strength of the body gets eroded and no more is he able to bear anxiety, he becomes almost insane. Full of the passion of pride and not able to live with severe worldly censure, he takes the step to commit suicide out of anxiety. He gets devoid of the understanding of the reality of the self and others. His step to commit suicide may be the result of situations like excessive debt, loose character, poverty, disease, anxiety and punishing state directive. In such a situation he needs affection from the men with knowledge and his kin. He should resort to the study of sacred texts, patience and forbearance. Suicide is not a cure for doubts. One gets human birth out of great merit. Rare are the laudable practise aimed at well-being of the self, high progeny, good company, adoration of the dharma, healthy body and discriminative knowledge of the self and others. If in spite of these the idea to commit suicide comes, it is nothing but the fruition of strong demeritorious karmas. The idea should soon be curbed through meditation on the dharma and listening to the preachings of the guru. Understand the value of the human body. Killing of the mute living-beings, like the insects, is prohibited; how can the man think of neutralizing own body? Shame on his life. Damn, damn, damn his life! Every man should reflect on the nature of the objects – *vastutva*.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## ५३. वस्तु धर्म अनेकान्त रूप है

अस्ति विचार, नास्ति विचार, यह उभय विचारधारा व्यक्ति के अन्दर चलती है। यदि दोनों परस्पर सापेक्ष चलते हैं तो कार्यकारी हैं, सम्यक् हैं। निरपेक्ष चलते हैं तो वस्तु के सत्यार्थ धर्म-शून्य हैं। वस्तु तो एक समय में ही उभय-धर्मी है। एकान्त में अनेकान्त की दृष्टि बनानी चाहिए, बिना अनेकान्त दृष्टि के वस्तु-व्यवस्था समझना अत्यन्त कठिन है। जहाँ दिन है वहाँ कहीं रात भी है, जहाँ उष्णता है वहाँ कहीं-न-कहीं शीतलता भी है। गधे के सींग का अभाव है तो कहीं-न-कहीं सींग का सद्भाव है। बैल के तो सींग हैं! शान्त-भाव से व्यक्ति जानना चाहे तो सम्पूर्ण सत्यार्थ अनेकान्त धर्म-रूप वस्तु-व्यवस्था स्वयमेव समझ में आ जाए। धैर्य, शान्तता एवं जिज्ञासा का होना तत्त्व निर्णय के लिए

अनिवार्य है, अध्ययन के साथ मनन भी करना अनिवार्य है। अन्तरंग भाव-दशा का विवेक व्यक्ति के अन्दर आना चाहिए। जगति पर भूल स्वीकार की जा सकती है, अनाचार नहीं। जब-जब एकान्तिक अनाचार-भूत विचार आयें, तब-तब स्याद्वाद विद्या का आलम्बन लेना चाहिए। बिना स्याद्वाद कौशल्यता के वस्तु-तत्त्व के हृदय को नहीं समझा जा सकता। सार्वभौम व्यक्तित्व चाहिए तो विधि के साथ निषेध, निषेध के साथ विधि का ध्यान रखना चाहिए। वस्तु धर्म अनेकान्त रूप है, एकान्त रूप नहीं। स्वप्रज्ञा से वस्तु तत्त्व समझना चाहिए।

## 53 - The nature of the object is non-absolutistic

The man gets the dual thoughts of affirmation *(asti)* and negation *(nāsti)*. If the two are relative to each other, these are workable and right. Independent of each other, these thoughts are devoid of the true nature of the object. The object is dual natured at any given time. In absolutism *(ekāntavāda)*, think of non-absolutism *(anekāntavāda)*; without non-absolutism the nature of the object is extremely difficult to be understood. When there is daytime, there also is nighttime at some place; where there is hot, there also is cold at some place. If there is absence of the horns of the hare, there is the presence of the horns at some place; the bull has horns. If thought-through with calmness, the non-absolutistic nature of the objects can be understood easily. To understand the true nature of the objects, it is essential to have patience, calmness and inquisitiveness; along with study, reflection is a must. The man should also reflect on own internal dispositions. Mistake is accepted in the world; not malpractice. The thoughts of absolutism are akin to malpractice; shun these with the help of the doctrine of conditional-predication or *syādvāda*. Without adeptness in the doctrine of conditional-predication or *syādvāda*, the core of the nature of the objects cannot be grasped. For attaining a universally accepted personality, take into consideration affirmation with negation, and negation with affirmation. The nature of the object is non-absolutistic, not absolutistic.

विचार
THE THOUGHTS

## ५४. योग्यता-पूर्ण ज्ञानीजन पर की प्रशंसा के भूखे नहीं रहते

व्यक्ति को योग्यता की वृद्धि की भावना तो रखना चाहिए, परन्तु तीव्र लालसा नहीं। साथ ही योग्यता को वर्द्धमान करें, किन्तु प्रतिक्षण पर से प्रशंसा की कामना न करें। योग्यता स्वाधीन है, प्रशंसा कौन दे रहा है तथा देने वाला किस भावना से युक्त है, यह विषय पराधीन है। अधिक प्रशंसा को अपयश का भी कारण बनते देखा जाता है। योग्यता-पूर्ण ज्ञानीजन पर की प्रशंसा के भूखे नहीं रहते, जिससे कि अन्य का मुख देखना पड़े। योग्यता एवं यश-कीर्ति कर्म-विपाक स्वयमेव लोक में ख्याति प्रदान कराता है। प्रशंसा की भावना अहंकारता एवं दीनता को जन्म देती है, इसलिए समय एवं भाग्य को महत्त्व दें, परन्तु अधिक नहीं। स्व कार्यप्रणाली को ऐसा करें कि लोक के श्रीमुख से सहज ही आपका नाम मुखरित होने लगे। तत्त्वज्ञानी भव्यवर न किसी से मृषा प्रशंसा चाहता है, न किसी की व्यर्थ अथवा असत्य प्रशंसा करने का विचार बनाता है। कषायिक भाव नहीं मोक्षमार्ग; निर्द्वन्द्व, निर्मल, निःसंग, निर्मोह पर-भावों से निवृत्तता का नाम सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, जिससे वस्तु के वस्तुत्व का

PREVIEW ONLY

चिन्तवन–मनन प्रतिक्षण गतिमान रहता है। प्रशंसा के भार से लदना प्रशंसनीय नहीं, प्रशंसनीय गुणों से युक्त होना प्रशंसनीय है, ऐसा सम्यक् विचार करो।

### 54 - Worthy knowledgeable men are not hungry for praise from others

The man should strive for increasing his worthiness but not with strong desire; keep on increasing your capabilities without desiring for constant praise from others. The capability is self-dependent, but the praise from others, including their motive, depends on others. At times, excessive praise from others turns into the cause of disgrace. Worthy knowledgeable men are not hungry for praise from others and do not seek it. The capabilities coupled with the fruition of the karmas that cause glory and renown automatically lead to honour in the world. The desire for praise leads to vain and wretchedness, therefore account for time and fate to an extent. Your work should be such that your name gets uttered by the world in a natural way. The knowledgeable worthy man does not long for false praise from others; also, he does not think of praising others falsely and unnecessarily. Dispositions of passions do not constitute the path to liberation. The path to liberation comprises dispositions of being friendly, pristine, solitary, unattached, and free from thoughts of externalities; such dispositions allow uninterrupted flow of the stream of thoughts pertaining to the true nature of the objects – *vastutva*. It is not laudable to burden yourself with the thoughts of praise from others; what is laudable is to equip yourself with virtues worth the praise.

विचार
THE THOUGHTS

### ५५. शत्रु को एकान्त से शत्रु ही मत मानो, वह मित्र भी है

अपनी महत्त्वाकांक्षा के पीछे पर के यश एवं प्राण–नाश का कुविचार मत करो। इच्छाओं की पूर्ति का आनन्द भी तभी आता है जब कोई भिन्न पुरुष आप जैसे लोगों को देखने वाला हो। दर्शक नाटक के नट को शक्ति देते हैं। अपने शत्रु का भी नाश मत सोचो, वह आपको आगे बढ़ने का विचार देता है। मित्र सन्तुष्टि देता है, प्रमाद की ओर प्रवेश होता है मित्र से। शत्रु पुरुषार्थ देता है, जाग्रत रखता है। आप सो न जायें शत्रु प्रहार कर देगा, यह जो भाव है वह आपको प्रमाद में नहीं जाने दे रहा। इसलिए शत्रु को भी एकान्त से शत्रु ही मत मानो, उसे मित्र भी स्वीकार करो। 'विधि' रूप विचार करो।

### 55 - The enemy is not just enemy; he is a friend too

Falling prey to your aspirations, don't think of destroying glory of others or of killing them. In fact, you wish others to witness your enjoyment on fulfillment of your desires. The audience provides strength to the actor in a drama. Don't think of annihilating your enemy as he gives you strength to move ahead. The friend gives you the satisfaction and that leads to sloth. The enemy gives you the desire to work hard and that keeps you awake. You do not sleep when afraid of an attack from the enemy. Therefore, don't consider, in an absolutist way, the enemy as enemy; he is a friend too. Think positively.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ५६. साधु-स्वभावी ज्ञानी ही हेय-उपादेय में भेद को जानता है

साधु-पुरुषों के अन्तःकरण को समझने के लिए सर्वप्रथम स्वयं को साधु-स्वभावी बनाना होगा। असाधु-जन साधु-स्वभाव को नहीं पहचान पाते। क्रूर, चंचल, माया परिणाम साधु-स्वभाव को जानने में पूर्ण असमर्थ हैं। अशुभ-परिणामी को साधु-पुरुष ढोंगी दिखते हैं और असाधु-जन उन्हें साधु दिखते हैं। यह है दृष्टि का भेद; नीले, पीले काँच वाले को वस्तु नीली, पीली दिखती है; श्वेत काँच वाले को वस्तु जैसी-की-तैसी दिखती है। काँच एवं आँख अर्थात् आस्था स्वच्छ होगी तभी वस्तु की यथार्थता, भूतार्थता, सत्यार्थता, समीचीनता, वास्तविकता का बोध होगा। बिना दृष्टि की स्वच्छता के सम्यक्-ज्ञान नहीं हो सकता। सम्यक्-ज्ञान आत्मा एवं अर्थ-ग्राही है, स्व-पर प्रकाशक है। सम्यक् ज्ञानी जीव सत्यता को समझता है, अज्ञानी, दुर्बुद्धि को काँच और मणि में भेद करना नहीं आता, वह सभी को एक-रूप विचारता है। ज्ञानी जीव काँच को काँच, रत्न को रत्न रूप ही अवलोकता है। जो हेय-उपादेय में भेद को जानता है वह हेय को त्याग देता है और उपादेय को ग्रहण करता है। वह भव्यवर ज्ञानी जीव जो न ग्रहण करने योग्य है और न त्याग करने योग्य है उन द्रव्यों के प्रति माध्यस्थ भाव को धारण कर अपने शान्त-स्वभाव की रक्षा करता है और स्वात्मा को संक्लेश भाव से होने वाली हिंसा से बचाता है। परम अहिंसा ब्रह्म की उपासना करता है।

## 56 - Only knowledgeable and noble man knows what is worth accepting and rejecting

You have to become noble to be able to understand the crux of nobility. Ignoble men cannot recognize the nature of the noble men. Those who are cruel, unstable and sly are grossly unable to understand nobility. To men with inauspicious thinking, noble men appear fraud and ignoble men genuine. This difference is due to the colour of the glass through which the object is seen; coloured glass imparts its own colour to the object. Only a clear glass, or perspective, will enable the man to know the actual, true and real nature of the object. Right knowledge cannot be attained without clear vision. Right knowledge encompasses both the soul and the external object; it illumines the self and others. The man with right knowledge knows the truth; the ignorant and dim-witted man cannot discern a piece of glass from a gem. The man who knows what is worth accepting and rejecting accepts and rejects accordingly. Such a worthy man adopts the disposition of indifference for objects that are neither worth accepting nor worth rejecting. He thus protects his peace of mind and protects his soul from injury *(hiṃsā)* caused by anxiety. He adores the supreme-soul marked by supreme non-injury *(ahiṃsā)*.

विचार
THE THOUGHTS

## ५७. आचार एवं विचार में साधुता लायें

विचारों की विशालता आचरण को विशालता प्रदान करती है। बिना आचरण की निर्मलता के भावी-काल विशालता को प्राप्त नहीं कर पायेगा। प्रत्येक उन्नतिशील पुरुष के पास एक विशिष्ट आचरण होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को उन्नतिशील, गतिशील बनाने वाला आचार-विचार ही है। जीवन विकास चाहिए तो सर्वप्रथम स्वाचरण को साधुता प्रदान करें। भारत-वसुन्धरा ही नहीं, अपितु

PREVIEW ONLY

विश्व-वसुन्धरा पवित्र आचार एवं विचार को महत्त्व प्रदान करती है। जन-मानस के चित्त में सद्-गुणों की गतिशीलता मरण के बाद भी चलती रहती है। सद्-गुणी सद्‌पुरुष मृत्यु के उपरान्त जगत् के भवनों में नहीं, अपितु जगत् की भावनाओं में निवास करता है। ऐसा जियो जिससे युग-युग तक जनमानस आपको अपने साथ रखे। कभी आपके सदाचरण एवं सद् विचारों को स्वर्णाक्षरों में लिपिबद्ध कराए। धर्म-सभाओं एवं लोक-सभाओं में आपके शिक्षाप्रद गुणों की वार्ताएँ हों। ऐसा कार्य ही क्या जिसका किसी को विचार भी न आये अथवा जिससे धर्म, गुरु, राष्ट्र, समाज की ख्याति का घात हो? जीते जी लोग भूल जायें, कोई नाम लेने वाला न रहे?

## 57 - Foster nobility in your conduct and thoughts

Open-mindedness bestows praiseworthiness to conduct. Without purity of conduct the future cannot be praiseworthy. Every successful man possesses unique conduct. The personality of a man attains loftiness and maneuverability through his conduct and thoughts. If you wish development in life, first provide nobility to your conduct. Not only India, the whole world gives importance to good conduct and thoughts. Maneuverability of virtuous qualities retains even after death. After death, the man with laudable qualities does not reside in worldly houses but in people's hearts. Live in a manner so that the world remembers you for centuries. Your laudable conduct and thoughts should be crafted in golden letters. Your educative qualities should be discussed in religious and public meetings. What is the worth of that work which is not noticed by anyone or which harms the reputation of the dharma, guru, nation or society? What is your worth if people forget you while you are still alive and no one is interested in taking your name?

विचार
The Thoughts

## ५८. श्रेष्ठ क्रिया, श्रेष्ठ चर्या, श्रेष्ठ चिन्तवन - उत्तम पुरुषों की पहचान

प्रज्ञ पुरुष किसी भिन्न व्यक्ति को अपने प्रति अशुभ भावों के करने का विचार करने का भी समय नहीं देता, वह प्रतिक्षण श्रेष्ठ कार्य ही करता है। श्रेष्ठ क्रिया, श्रेष्ठ चर्या, श्रेष्ठ चिन्तवन करना उत्तम पुरुषों की पहचान है। ऐसे नरोत्तमों से देश, राष्ट्र, नगर, गली, बाजार, बस्ती तथा गुरुजनों की पहचान होती है। ऐसा मत जियो कि स्वयं का बोध कराने के लिए पर का परिचय देना पड़े। ऐसा कार्य करो कि जगत् के लोग अपना परिचय आपका नाम लेकर दें। कोई पृच्छना करे किसी से कि 'अमुक नगर में जाना है, यह नगर कौन-सा है?' अरे भैया आपको ज्ञान नहीं, भगवान् महावीर की वैशाली, वर्द्धमान की वासोकुण्ड कुण्डलपुर, आदिनाथ स्वामी की अयोध्या, तीर्थंकर नेमीनाथ की निर्वाण-भूमि गिरनारजी, इन तीर्थों, नगरों की पहचान हजारों-करोड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी महापुरुषों के नाम से है। ऐसा क्यों? क्योंकि उन्होंने अपना जीवन ऐसा जिया कि निर्वाण के बाद भी वे जन-जन के हृदयों में निवास कर रहे हैं। देखो; श्रीराम की मर्यादा, पिता की आज्ञा का पालन, भाई की प्रीति, सौतेली माँ के प्रति पवित्र भावना, गिद्ध-जटाऊ पर दया-दृष्टि, निर्ग्रन्थ दिगम्बर श्रमणों के प्रति भक्ति-भावना, दीनों पर दया, विरक्त होने पर ध्यान-लीनता, प्राणिमात्र के प्रति करुणा-मैत्रीभाव अनुकरणीय था। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व श्रीराम से आज भी परिचित है। बिना बोले लोग आपको जानें, ऐसा जियो।

PREVIEW ONLY

## 58 - Great men are known by excellent work, manners and thoughts

An intelligent man does not leave scope for others to think ill of him; every instant he is engaged in noble work. Great men are known by excellent work, manners and thoughts. The country, nation, town, lane, marketplace, colony and guru are known by him. Don't live a life in which your introduction depends on others. Live in a manner so that others introduce themselves through your name. If someone asks you, "I have to go there, what is the place known for?" Your answer could be like this, "Vaiśālī of Lord Mahāvīra; Vāsokuṇḍa Kuṇḍalapura of Vardhamāna; Ayodhyā of Lord Ādinātha; Giranārajī, the place of liberation of Lord Neminātha." These sacred places, even after thousands and millions of years, are identified by great personalities. Lives of these personalities are still alive in hearts of the common men. Look at the worth-following life of *Śrī* Rāma; his decorum, adherence to father's commands, love for brother, pure feelings for step-mother, compassion for vulture, devotion towards *Digambara* ascetics, mercy on downtrodden, meditation after taking leave from worldly affairs, compassion and brotherhood for all living-beings. The whole world even today is aware of his name. Let people need no explanation to know you.

विचार
THE THOUGHTS

## ५९. प्रज्ञ-पुरुष पर के सुख-दुःख में निजात्मा को संक्लेशित नहीं करते

ज्ञानीजन प्रत्येक कार्य को विवेक-पूर्वक करते हैं। तत्त्व निर्णय के साथ विचार करते हैं, प्रेक्षा बुद्धि का प्रयोग करते हैं, पर के दुःख-सुख में भी साथ देते हैं, परन्तु स्वयं को दुःखी करके नहीं। व्यवहार में सभी क्रियायें परमार्थ का ध्यान रखते हुए करते हैं, पर के सुख-दुःख में निजात्मा को संक्लेशित नहीं करते। जो भी लोक में कोई घटना घटती है, उसे साक्षी भाव से, माध्यस्थ भाव से देखते हैं। वस्तु की यथार्थता पर पहुँच कर ही स्वयं का निर्णय देते हैं। इसके पूर्व कोई भी निर्णय घोषित नहीं करते। स्ववचन बाधित हो ऐसा कोई भी वाक्य नहीं बोलते। प्रज्ञ-पुरुष स्वकीय विशुद्ध-भावों की प्रतिक्षण रक्षा करते हैं।

## 59 - Intelligent men don't agonize themselves due to happiness and misery of others

Knowledgeable men do every work with discernment. They use their intellect to determine the nature of the reality; commiserate with others but not by agonizing themselves. While observing the ways of the world, they keep in mind the spiritual angle and on seeing the happiness or misery of others do not subject themselves to delight or agony. They observe the happenings in the world as a mere spectator with a sense of nonchalance. Only after determining the real nature of the reality they arrive at a decision. They don't utter words that are liable to get contradicted. Every instant, they strive to protect their own pristine dispositions.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ६०. दूसरों के दुःख में राग व द्वेषवश हर्ष-विषाद न करें

करुणाशील महामनः प्रत्येक प्राणी पर करुणा भाव रखते हैं। वे भावना भाते हैं कि- सभी जीव सुखमय, शान्तिमय, यश, चारित्र, सद्-विचार, सम्यक्-भाषण युक्त जियें। किसी भी जीव को भूख-प्यास, दरिद्रता, दयाहीनता, कालुष्यभाव युक्तता, सन्ताप, दुःख, शोक, आक्रन्दन, परिदेवन आदि के कारण क्लेश न मिले। इन हेतुओं में से एक भी जीवन में उपस्थित हो जाता है तब उनके अन्तरंग में जो महापीड़ा होती है उसे या तो वही जीव जाने या फिर सर्वज्ञ परमात्मा जाने। किसी भी जीव की आत्मा को उपरोक्त कारण जो कष्ट देते हैं वे महा-दुःखप्रद होते हैं, ऐसा जानकर सभी उन कारणों से सदा बुद्धिपूर्वक दूर रहते हैं। यदि कदाचित् कोई भव्य उक्त कारणों से तीव्र अशुभ औदयिक भाव के वशीभूत होकर स्वात्म रक्षा नहीं कर सका तो उसे विवेक, धैर्य तथा सन्तोष प्रदान करना चाहिए। उपगूहन, स्थितिकरण अंग के पालन के साथ समझाने पर भी जीव वही-वही कार्य करे, तो फिर उस बिचारे की पुण्य-क्षीणता मानकर माध्यस्थ होकर अपने भावों की विशुद्धि की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा न हो कि अन्य तो अशुभ कर्म करके दुःखी हो रहा है और भावीकाल को भी बिगाड़ रहा है, परन्तु उस बिचारे के राग व द्वेषवश आप हर्ष-विषाद करें। यही विवेकशीलता है।

## 60 - Don't let your attachment or aversion make you happy or miserable at the misery of others

Compassionate men have mercy towards all living-beings. They wish that all living-beings live happily, peacefully, and with honour, good conduct, and right speech. No one should suffer due to hunger, thirst, poverty, cruelty, evil thoughts, agony, wretchedness, sorrow, moaning, and lamentation *(paridevana)*. The severe pain that any of these causes engender can be known only by the sufferer or by the Omniscient Lord. Understanding the consequent pain, every man tries to keep these causes at bay. If due to the fruition of past inauspicious karmas a worthy man finds himself unable to get rid of any of these causes he should be advised to exhibit discernment, patience and calmness. If in spite of being told to observe the virtues of the limbs of right faith like concealment of the faults of others – *upagūhana* – and steadiness of right faith and conduct – *sthitikaraṇa* – the man continues to engage in vicious deeds, take that as his demerit and get indifferent while protecting your own purity of thoughts. If by engaging in inauspicious deeds someone is suffering and spoiling his future too, don't let your attachment or aversion for him make you happy or miserable. This is your discernment.

PREVIEW ONLY

विचार
The Thoughts

## ६१. प्रतिकूलता में हर्षित भाव रखना ही साधुता

प्रेक्षावान् पुरुष हर्ष-विषाद के कारणों को देखकर भी स्वकीय गम्भीरता का त्याग नहीं करते, गम्भीरता-पूर्वक हर्ष-विषाद का सामना करते हैं। विषमतायें जीवन की कसौटी हैं। बिना कसौटी के स्वर्ण की परीक्षा नहीं होती। जिस प्रकार शुद्ध व अशुद्ध स्वर्ण की परीक्षा कसौटी से ही होती है उसी प्रकार जीवन में साम्यता, असाम्यता की परीक्षा विषमता के आने पर ही होती है। इसलिए किसी भी

परिस्थिति में अपनी समता का त्याग नहीं करना। यही एक विशिष्ट साधु-पुरुष की यथार्थ पहचान है। अपनी प्रशंसा एवं अनुकूलता पर हर्षित रहना, यह तो असाधुजन भी कर लेते हैं। प्रतिकूलता में हर्षित भाव रख पाना साधुता है।

### 61 - Nobility is to maintain happiness in adversity

The intelligent man does not lose his composure on witnessing the causes of happiness and misery; he confronts these causes. Adversities are tests of life. Without the touchstone, gold cannot be tested. As the purity of gold is tested by the touchstone, the composure in life is tested by the onslaught of adversities. Therefore, do not lose your composure under any circumstance. This is the real mark of the exquisite noble man. Even ignoble men get elated on listening to their praise and on getting favourable results. The mark of nobility is to maintain happiness even in adversity.

विचार
THE THOUGHTS

## ६२. सुविचार अक्षय-पुण्य के हेतु तथा कुविचार दीर्घ संसार के हेतु

विचारों की श्रृंखला बहुत है, उन विचारों में यह देखना चाहिए कि प्रयोजनभूत विचार कितने हैं, अप्रयोजनभूत कितने हैं। यह निर्णय भी स्वयं ही करना चाहिए। सुविचार अक्षय पुण्य के हेतु बनते हैं, कुविचार दीर्घ संसार-दुःख के हेतु बनते हैं। उभय विचारों पर स्वयं विचार करना चाहिए कि मुझे कौन से विचार करना चाहिए, सुगति के कारणभूत या फिर दुर्गति के कारणभूत। विचारों के अनुकूल ही व्यक्ति का आचार बनता है। साधुता-असाधुता भी जीवन में विचारों के अनुसार ही प्रवेश करती है। व्यक्ति को चाहिए वह प्रतिक्षण स्वयं के विचारों की परीक्षा करे।

### 62 - Noble thoughts result in ever-lasting merit, vicious thoughts in elongation of the worldly existence

The chain of thoughts is long and one must assess which of his thoughts are beneficial and which are useless. Noble thoughts result in ever-lasting merit, vicious thoughts in elongation of the worldly existence. The man has to decide which thoughts, noble or vicious, he should engage himself in. The conduct of the man is according to his thoughts. Nobility or viciousness too is according to the thoughts. The man should constantly examine his thoughts.

विचार
THE THOUGHTS

## ६३. तत्त्वज्ञानी जीव के विचार स्व-पर कल्याणकारी

तत्त्वज्ञानी जीव प्रति-समय ऐसा विचार करता है कि जिससे स्व-पर का कल्याण हो। उसके विचार एकान्त-रूपता से ग्रसित नहीं होते। विराट् हृदयशील की यही तो पहचान है। प्रेक्षावान् की प्रज्ञा विश्व-विकास में आत्म-विकास और आत्म-विकास में विश्व-विकास के दर्शन करती है। ऐसे लोग ही विश्व कल्याणकारी राष्ट्र एवं धर्म नेता बनते हैं। तुच्छ, स्वार्थी बुद्धि से सोचने वाले लोग स्वयं के

PREVIEW ONLY

घर के मुखिया नहीं बन पाते; बलात् बन भी जायें तो उन्हें कोई स्वीकार नहीं करता। बड़प्पन स्वगृह से ही प्रारम्भ होता है। तभी वह विश्वव्यापी होता है।

### 63 - Thoughts of the knower of the reality are beneficial for self and others

The knower of the reality is constantly engaged in thoughts that are beneficial for self and others. He does not think in terms of absolutism *(ekānta)*. This is the mark of his large-heartedness. The intellect of the knowledgeable man sees world-development in self-development and self-development in world-development. Only such men become worthy leaders of the nation and the dharma, for the benefit of the world. Mean and selfish men do not become leaders even in their family; no one accepts them as leaders. Greatness starts at home; later on it becomes worldwide.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## ६४. श्रेष्ठ आचरण, श्रेष्ठ विचार की सर्वत्र प्रशंसा

सम्यक् विचारवान् प्रत्येक क्षेत्र में स्वविवेक एवं सम्यक् विचार से अग्रसर होता है। विचार किए बिना किसी भी क्षेत्र में कदम नहीं रखता। स्व-योग्यता एवं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की स्थिति का सर्वप्रथम बोध करता है। जिस कार्य को हम करने जा रहे हैं उसका सम्यक् प्रभाव क्या होगा और असम्यक् प्रभाव क्या होगा? वह कार्य भावी काल में क्या फल देगा? भूत-कर्म को कितना व किस रूप से प्रभावित करेगा? तात्पर्य समझो, भूत में कोई श्रेष्ठ कार्य किया उससे सम्प्रति में धर्म, अर्थ, यश, लाभ हुआ। जिस कर्म को करने का विचार उत्पन्न हुआ उसके अनुसार कहीं कार्य प्रारम्भ कर दिया तो भूत के अर्जित धर्म, अर्थ, यश आदि सभी नाश को प्राप्त तो नहीं हो जायेंगे? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ सिद्ध हों ऐसा उत्तम कार्य और उत्तम विचार करना चाहिए।

श्रेष्ठ आचरण, श्रेष्ठ विचार व्यक्ति को श्रेष्ठ स्थान प्रदान कराते हैं। लोक एवं परमार्थ में सर्वत्र उत्कृष्ट चर्यावान् की प्रशंसा होती है। श्रेष्ठ विचारक के विचार सुने जाते हैं, उन पर लोग जीना स्वीकारते हैं। ऐसा जियो कि लोग आप पर ग्रन्थ लिखें, लिखो तो ऐसा लिखो जिसे पढ़कर लोग निर्ग्रन्थ हो जायें। जीवन में कुछ ऐसा करो जिससे लोग इतिहास बनायें। न ऐसा करो, न विचारो, न लिखकर जाओ जिससे प्रभावित होकर लोग सदियाँ-सदियाँ हिंसादि कार्यों में संलग्न होकर उसे ही धर्म-मार्ग रूप अपनायें। जो जीव वध-बलि आदि कर्म को धर्म लिखकर चले गए उन जीवों को अहिंसा परमब्रह्म कभी क्षमा नहीं कर पाएगा। किसी भी जीव के प्राण लेना मानवता नहीं, फिर धर्म कैसे हो सकता है? अहो! स्वयं विचार करो; अन्धे तत्त्व निर्णय में कब तक रहोगे? प्रज्ञा-चक्षु से देखो; क्या जीव-हिंसा भी धर्म हो सकता है? जीव-हिंसा कदापि धर्म नहीं हो सकता है। अहिंसा परमधर्म है, था और भावी काल में भी रहेगा। इस बात को हिंसकों के हृदय भी जानते हैं, परन्तु मिथ्यात्व के तीव्र राग-तम में उन्हें सत्य समझ में नहीं आता, न आयेगा।

### 64 - Excellent conduct and thoughts are praised by all

The man with right thoughts is directed in every field by discrimination and right thinking. He does not step into any field without thinking. He first thinks about the effect

of his own capability besides the substance, place, time and disposition. He questions as to what will be the favourable and unfavourable effects of his deed. What will be its effect in the future? What and how much will be its impact on the past karmas? Understand that the virtuous karmas of the past yield favourable results – in terms of the dharma, family and glory – in the present. He thinks that his present deed should not result in destruction of the earlier earned merit like the dharma, family and glory. One should engage in laudable deed and thoughts that result in accomplishment of all the four consequences – the dharma, the prosperity, the family, and the liberation.

Excellent conduct and thoughts provide man a place of excellence. The man with laudable activities is praised in the mundane as well as spiritual world. The thoughts of the fine thinker are heard and acted upon. Live in a manner so that people are prompted to write sacred texts on your life; write in a manner so that people are prompted to become *Digambara (nirgrantha)* ascetics. Your present deeds should create history. Do not do anything, in thoughts or writings, which perverts people's thinking and prompts them to adopt activities involving injury *(hiṃsā)* in the name of the dharma. The men of the past who had scripted activities like animal-sacrifice as the dharma will never be pardoned by the supreme dharma that preaches non-injury *(ahiṃsā)*. It is not humane to take life of any living-being; how can it ever be called dharma? Think yourself; how long will you rely on blind faith? Use your intellect to determine if killing anyone can be called dharma in any sense. Non-injury *(ahiṃsā)* is, was, and will be the supreme dharma. Even those involved in killings know this truth in their hearts; only their strong delusion that covers their vision with the darkness of attachment forbids them to appreciate this truth.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## ६५. हीन जनों के न उत्तम विचार, न उत्तम कार्य

उत्तम विचार, उत्तम कार्य, उत्तम पुरुषों के द्वारा ही होते हैं, हीन जनों के न उत्तम विचार देखे जाते हैं, न ही उत्तम कार्य। वे बिचारे आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा-चतुष्टय से ही बाहर नहीं निकल पाते हैं। पापी जीव सर्वकाल पाँच पाप और चार संज्ञाओं की पुष्टि में संलग्न रहते हैं तथा पुनः पापास्रव कर क्षुद्र गतियों में भ्रमण करते हुए घोर दुःख उठाते हैं। वे स्वात्मा पर करुणा भाव ही नहीं रख पाते। राग की ज्वाला में विवेक-धन को ही जला बैठते हैं। पद, प्रतिष्ठा, धर्म, जाति, कुल की ख्याति भूल जाते हैं। इन्द्रिय-तन्त्रों में उलझ कर, राग-द्वेष की रस्सी से संयम, यश-कीर्ति के प्राण ले लेते हैं।

## 65 - Mean people do not have laudable thoughts and deeds

Only virtuous men have laudable thoughts and deeds; mean men are rid of these attributes. Such pitiable men are not able to get out of the four basic instincts *(saṃjñā)* of food, fear, unchastity and possessions. Evil men are ever engaged in the five evil tendencies and the four instincts; as a result, they are subjected to the influx of evil karmas and suffer great misery in lowly states of existence. They are not able to exhibit compassion towards their own soul! They tend to burn their wealth of discrimination in the fire of attachment. They tend to forget about the honour of their designation, glory, dharma, caste and race. Entangling themselves in sensual objects with the long rope of

attachment and aversion, they kill their self-restraint, glory and renown.

विचार
THE THOUGHTS

## ६६. सबके दिन एक से नहीं होते तथा सब दिन भी एक से नहीं होते

पर की विपत्ति देखकर ऐसा विचार मत करो कि इसका ऐसा ही होना चाहिए था। अरे ज्ञानी! संसार का स्वभाव विचित्र है, पता नहीं किसके साथ कब क्या घटित हो जाए। 'सबके दिन एक से नहीं होते तथा सब दिन भी एक से नहीं होते' इस सूत्र का प्रतिक्षण ध्यान रखना चहिए। आज अन्य दु:खी हैं, कल आप भी, फिर कौन किसको देखकर हँसेगा? इसलिए दु:खी प्राणी को धैर्य प्रदान करो, क्लेश नहीं। क्लेश तो वह अपने कर्मों से स्वयं ही प्राप्त कर रहा है, जले में लवण नहीं, औषधि का लेपन करो। ऐसा विचार करो कि भूमि पर दु:ख, क्लेश, शोक, सन्ताप, परिदेवनादि अवस्था को कोई भी जीव प्राप्त न हो। देश का प्रत्येक नागरिक सन्तोष एवं सदाचार का आचरण कर जीवन धन्य करे।

### 66 - 'The days of all are not alike and all days are not alike'

When you see distress of some other man don't think that he deserved it. O knowledgeable man! The ways of the world are variegated; one never knows what is in store for each man. 'The days of all are not alike and all days are not alike.' Remember this aphorism every instant. Today others are facing misery; tomorrow it may be your turn; who will laugh at whom? Provide succour to the unhappy man, not agony. He is already suffering agony due to his karmas. Don't sprinkle salt on his wound; apply ointment on it. Think that no one in the world should face hardships like suffering, agony, sorrow, torment and lamentation *(paridevana)*. May every citizen of the country bless his life through contentment and good conduct!

विचार
THE THOUGHTS

## ६७. स्वावलम्बन का जीवन जीना ज्ञानीजनों की पहचान

उन्नति के शिखर पर पहुँचते ही सर्वप्रथम उन्नति की रक्षा पर विचार करना चाहिए। बिना विचार किये जो जीता है उसका अन्धा जीवन है, अन्धेपन से युक्त जीवन महा कष्टप्रद है। एक पल मात्र भी विवेकहीन जीवन जीना श्रेष्ठ नहीं है। ज्ञानीजन प्रत्येक क्षण प्रेक्षावान् होकर जीते हैं, वे स्वजीवन को विवेकहीन, उत्साहहीन, चारित्रहीन, विज्ञानहीन नहीं होने देते। पर को देख विवेक तो सीखते हैं, परन्तु पर का विवेकहीन आचरण नहीं स्वीकारते। स्व प्रज्ञा बल से स्वजीवन का निर्णय लेते हैं, परजीवी बनकर नहीं जीते। स्वावलम्बन का जीवन जीना ज्ञानीजनों की पहचान है। परावलम्बन का जीवन पशुवत् है।

### 67 - Self-reliance is the mark of the knowledgeable men

As you attain the summit of success, think about the protection of your growth. The man who lives without right thinking is blind; the life of the blind is very painful. To live without discriminative thinking even for a moment is not good. Knowledgeable men use their intellect constantly and don't allow their lives to become monotonous, spiritless,

PREVIEW ONLY

characterless and indiscriminate. They learn the virtue of discrimination from others but don't accept their characterless life. To live the life of self-reliance is the mark of the knowledgeable men. The life of dependency is the life of an animal.

विचार
THE THOUGHTS

## ६८. लौकिक एवं पारमार्थिक विकास गुण-ग्रहण वृत्ति से ही संभव

लौकिक एवं पारमार्थिक विकास का विचार यदि आपके जीवन में आता है तो सर्वप्रथम एक विचार ध्यान में रखना कि वह गुण-ग्रहण वृत्ति से ही सम्भव है। सर्वत्र लोक में अवगुण हैं, परन्तु हमारे लिए तो मात्र गुण ही गुण देखना है। दोषों की ओर माध्यस्थ भाव रखना। शिक्षा की ललक व्यक्ति को गुणी बना देती है, शिक्षा में प्रीति उसे सबकी प्रीति का पात्र बना देती है। शिक्षा-ग्रहण तथा शिक्षा-प्रदान - ये उभय कार्य अवसर देखकर करते ही रहना चाहिए। ज्ञान का सम्मान करने से व्यक्ति सर्वत्र सम्मान का पात्र बन जाता है, इसलिए तत्त्व-ज्ञान के निर्णय में स्व-समय का उपयोग करो।

### 68 - Espouse qualities for worldly and spiritual progress

If you think of worldly and spiritual progress, remember always that it is possible only if you espouse the qualities of others. Vices are widespread in the world but look only for qualities. Be indifferent towards the vices. Intense desire for learning makes the man meritorious; love for learning makes him worthy of adoration by others. The two works – acquiring learning and imparting learning – should be performed as and when an opportunity arises. By honouring knowledge the man himself becomes honourable; use your time in knowing the truth of the reality.

विचार
THE THOUGHTS

## ६९. अपनी नीरसता को सरसता में परिवर्तित करने का पुरुषार्थ करो

जीवन में अनेक अवसर ऐसे भी आते हैं जब आप स्वयं से निराश होते हैं, स्वयं से ही स्वयं का विश्वास चला जाता है। यदि इस पर सम्यक् विचार नहीं किया तो जीवन उदासीनता से आगे पागलपन में बदल जाता है। प्रथम क्षण से ही अपनी नीरसता को सरसता में परिवर्तित करने का पुरुषार्थ प्रारम्भ करो; सद्-साहित्य व श्रेष्ठ साधुजनों के सान्निध्य की खोज करो। अपनी विकसित अवस्था का ध्यान करो। स्वकीय जीवन में उन अच्छे कार्यों पर विचार करो जिनसे आपको यश मिला। उन श्रेष्ठ कार्यों को करने की योजना बनाओ जो भविष्य में आपके आत्मोत्थान का साधन बन सकें तथा जिनके करने से नीरसता सरसता में परिवर्तित हो जाए।

### 69 - Try to convert your despondency into exuberance

Occasions arise in life when you become despondent and lose faith in the self. If this situation is not thought-through positively, it can turn into insaneness. At the onset, try to convert your despondency into exuberance. Scout worthy literature and company of noble men. Think of the day when you will grow up again into a worthy man. Think of your good deeds which provided you glory in the past. Plan for doing laudable works

PREVIEW ONLY

which would impart growth to your soul and convert your despondency into exuberance.

विचार
THE THOUGHTS

## ७०. विकास उसी का जिसकी विचार शक्ति विशाल है

जीवन विकासशील बनाने की यदि इच्छा रखते हैं तो विचार भी विकासशील बनाने होंगे। हीन-क्षीण, न्यून-लघु विचार तथा छोटा सोच रखने वाला व्यक्ति विशाल विकास को कैसे प्राप्त कर सकता है? येन-केन-प्रकारेण एक कक्ष का स्वामी बनने की सोच रखने वाला व्यक्ति सम्राट् कैसे बन पायेगा? अणुव्रतों की सोच रखने वाला महाव्रती कैसे बन पायेगा? विकास बाद में होता है, विचार पूर्व में होता है। स्वबन्धु के प्रति वात्सल्य नहीं, स्नेह, प्रेम, अनुराग नहीं, वह विश्व-बन्धुता के भावों की क्या कल्पना कर पायेगा? लौकिक एवं पारमार्थिक उभय स्थानों पर विकास उसी का होता है, जिसकी विचार शक्ति विशाल है।

## 70 - Only the man with broad-mindedness attains growth

If you desire growth in life, you will have to attain broad-mindedness. How can the man with lowly and base thoughts attain substantive growth? How can the man who thinks of somehow becoming the owner of a one-room dwelling attain the stature of a king? How can the man who thinks of observing just the minor vows become the ascetic, observer of the great vows? Growth follows the thoughts. How can the man who does not have affection, fondness and love for his kin think of world-brotherhood? Growth in both cases, worldly and spiritual, is attained only by the man who has broad-mindedness.

विचार
THE THOUGHTS

## ७१. विचार यदि स्वस्थ हैं तो आचार भी स्वस्थ होगा

शब्द की गति से भी द्रुत गति व्यक्ति के विचारों की है। चित्त में प्रतिक्षण विचारों की धारा प्रवाहित रहती है। व्यय, उत्पाद चलता ही रहता है। जो विचार दर्शन, ज्ञान, चारित्र से सम्यक् शब्द का अभाव कर दें, उन विचारों पर स्थिर मत होओ। ऐसे विचार भी त्याज्य हैं जो साधुजनों के मध्य आने में भय खड़ा कर दें, दुर्जनों के मित्र बना दें, सज्जनों से शत्रुता बना दें तथा दुष्टों की गोष्ठी बना दें। विचारों के अनुसार व्यक्ति का आचार निर्मित होता है। विचार यदि स्वस्थ हैं तो आचार भी स्वस्थ ही होगा। विचार ही स्वस्थ नहीं तो आचार भी स्वस्थ कैसे रह सकता है? आचार विकृत तो समझो सर्व विकृत। सज्जनों की सम्पत्ति सम्यक्- आचार ही है।

## 71 - Healthy thoughts give rise to healthy conduct

Thoughts have speed greater than that of the word. The stream of thoughts flows incessantly in man's mind. The destruction and origination of thoughts continues. Don't rest on thoughts that are bereft of the word 'right' in your perception, knowledge and conduct. Also, shun thoughts that make you fearful of the company of the ascetics, that promote friendship with ignoble men, and that turn noble men into foes or put you in company of evil men. Your conduct is formed by your thoughts; if thoughts are healthy,

PREVIEW ONLY

conduct too will be healthy. If conduct is perverted, everything gets perverted. Right conduct is the wealth of the noble men.

विचार
THE THOUGHTS

## ७२. अपने यश की रक्षा जीवन की अमूल्य निधि

जगति पर जो भी महापुरुष हुए हैं वे आचार एवं विचार के बल पर ही उच्च-स्थान को प्राप्त हुए हैं। जिनका सम्यक्- विचार रहा उनका यथार्थ आचार रहा, विचार पतित होते ही व्यक्ति का आचार पतित हो जाता है। दोनों के गिरते ही व्यक्ति जगति में सम्मान, पूज्यता से भी पतित हो जाता है। साधुजन ऐसे जीव का नाम लेना तथा सुनना भी स्वीकार नहीं करते। जीवन की अमूल्य निधि अपने यश की रक्षा है। यश का नाश करके संसार में अन्य कौन-सा महा-वैभव बचता है, जिसे पाकर व्यक्ति सुख की कल्पना करना चाहता है? विश्वास मानो, यश का क्षय उभय-लोक के आनन्द का क्षय कर देता है। जियो सुख से, परन्तु यश का नाश करके नहीं।

### 72 - Protect the invaluable treasure of your glory

All great men in the world attained greatness on strength of their conduct and thoughts. Right thoughts engender good conduct; ignoble thoughts result in vicious conduct. When both become vitiated, men lose their glory and reverence. Noble men do not wish to even utter or listen to their names. The invaluable treasure of glory should be protected. When glory of a man is finished what grandeur remains in his life that may afford him happiness? Believe it, destruction of glory destroys happiness in both worlds, present and hereafter. Live happily but not at the cost of your glory.

विचार
THE THOUGHTS

## ७३. उत्कृष्ट विचारों के लिए विशिष्ट शक्ति की आवश्यकता

जीवन जीने की ऐसी पद्धति निर्मित करो जो विश्व में जीवन जीने के लिए आदेश-स्वरूप स्वीकार हो। पर के चित्रों में नहीं, अपने ही चारित्र में मोक्षमार्ग है, इसे जगत् स्वीकार करे। सर्वमान्य जीवन जीना महात्मा की पहचान है। महान् व्यक्ति पृथ्वी पर सबके मध्य तो जीते हैं, फिर भी सबसे भिन्न जीते हैं। निकृष्ट विचारवानों के मध्य में रहकर भी उत्कृष्ट विचारों के साथ जीने के लिए विशिष्ट शक्ति चाहिए। विपरीत शक्तियों के मध्य रहते हुए भी अपने सम्यक्- विचारों को न बदलें। स्वयं को ही इतना बदल कर रखो कि लोक आपको देखकर स्वयं बदल जाये। लोक अन्य मार्ग से भिन्न होकर संयम, चारित्र की ओर प्रवृत्त हो जाये।

### 73 - Laudable thoughts require extraordinary strength

Live your life in a manner that becomes a benchmark for the entire world. The world should accept that the path to liberation exists not in pictures of others but in own conduct. The mark of the great man is that his way of living is acceptable to all. He lives with all but is still different from others. To be able to live as per your own laudable thoughts in midst of lowly thoughts of others requires extraordinary strength. Opposing

PREVIEW ONLY

forces are not able to sway the laudable thoughts of a great man. Change yourself to the extent that seeing you the world changes. Let the world leave the ordinary path and move towards the laudable path of self-restraint and conduct.

विचार
THE THOUGHTS

## ७४. 'अहिंसा परमब्रह्म' और 'जियो और जीने दो'

जीवन में राष्ट्रहित पर वे ही विचार कर पाते हैं जिनके पास प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भावना है। प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-भावना उसी की है, जो प्रत्येक जीव का हितचिन्तक हो तथा राष्ट्र की प्रत्येक जड़ एवं चैतन्य वस्तु को राष्ट्र की धरोहर के रूप में देखता है। पन्थ, जाति, परम्पराओं एवं सम्प्रदाओं से ऊँचे उठकर जो सोचता है, वही विश्व में 'अहिंसा परमब्रह्म' सूत्र को स्थापित कर सकता है। लघु सोच वाले व्यक्ति कभी भी विश्वहित चिन्तक नहीं हो सकते। स्वयं की क्षुधा मिटाने के साथ प्राणिमात्र का पेट भरने के जिसके भाव हैं, वही विश्व-सम्राट् है। पर के शरीर को नाश कर अपना पेट भरना भारत का अपमान है। 'जियो और जीने दो', यही भारत का सम्मान है।

## 74 - 'Supreme non-injury' and 'Live and let live'

Only those men who have disposition of benevolence towards all living-beings are able to think about national well-being. Such men think good of all living-beings and see all animate and inanimate objects as the assets of the nation. Only the man who thinks beyond sects, castes, customs and religions can establish the aphorism of 'supreme non-injury *(ahiṃsā)*' in the world. Men with lowly thoughts can never think of the well-being of the world. Only the man who not only thinks of satiating his own hunger but also of all living-beings is the real king. Filling your stomach with the bodies of others is a dishonour to Bhārata (India). 'Live and let live' is the honour of India.

विचार
THE THOUGHTS

## ७५. 'राग हटाओ, कष्ट मिटाओ'

विकार-क्षीणता जहाँ, वहाँ प्रशस्त विचारशीलता प्रकट होती है। सम्यक् विचारों को पतित करने वाली अवस्था का नाम विकार है। विकार विकार्य की ओर प्रेरित करते हैं, राग की तीव्रता को प्रकट करते हैं। राग में जीव उन्मत्त होकर अपने जाति, कुल, धर्म के मर्म को भी भूल जाता है। लज्जा समाप्त हो जाती है, विकारों की पूर्ति हेतु उन्मत्त श्वानवत् भ्रमण करता है। कभी रोता है, कभी सोता है, कभी जागता है, कभी बकता है, कभी हँसता है, कभी मरने की सोचता है, कभी आकाश को देखता है कभी भूमि को, कभी दिशाओं को तो कभी विदिशाओं को, कभी बैठता है कभी दौड़ता है। कामी विकारी की यही दशा होती है। राग के वश स्वयं की बुद्धि का नाश कर दर-दर का भिखारी बन जाता है। प्रत्येक क्षण उसे राग पूर्ति की कामना का भाव रहता है, बिचारा दया का पात्र बन जाता है। साधु-पुरुष उसे देखकर विचार करते हैं- अहो! क्या विडम्बना की राग ने बिचारे की। सद्गुरुओं के उपदेश भी उसे सुनाई नहीं पड़ते, राग शान्त हो तभी तो विचार शान्त हो पाते हैं। बिना राग-शान्ति के परिणामों में प्रशस्तता नहीं आ सकती। किसी भी विषय-वस्तु या व्यक्ति में इतना राग मत कर बैठो कि

PREVIEW ONLY

जिससे स्वयं के ही दुर्लभ जीवन का नाश करना पड़े। इसलिए तो यह सूत्र है 'राग हटाओ, कष्ट मिटाओ'।

### 75 - 'Get rid of attachment and exscind misery'

Thoughtfulness appears with destruction of ignobility. That which destroys right thoughts is ignobility. Ignobility promotes wrong-doing and attachment flourishes in its presence. The man intoxicated with attachment forgets about his caste, progeny and dharma. His grace disappears and he roams around like a doped dog. At different moments he cries, sleeps, awakes, gossips, laughs, thinks of suicide, fixates his glance at the sky, the earth, the four directions or their mid-points, sits or runs. This is the state of the man intoxicated with lust. Under the influence of attachment, he destroys his intellect and becomes a beggar. Every moment he thinks of satisfying his lust; he becomes pitiful. Seeing his state, the noble man thinks: Oh! What deplorable state he is in due to his excessive attachment. He is not able to listen to the teachings of the noble guru; his mind is overwhelmed by attachment. Without calming down attachment, the temperament cannot become laudable. Do not get overly attached to any object or person as it may cause the end of your own precious life. Therefore, note this aphorism: 'Get rid of attachment and exscind misery'.

विचार
THE THOUGHTS

### ७६. सर्व विद्याओं के साथ अध्यात्म का रस भी आवश्यक

देश-विकास, धर्म-विकास, समाज-विकास का विचार यदि अन्त:करण में आता है तो सर्वप्रथम प्रचार का आलम्बन न लेकर, आचार का आलम्बन लेना चाहिए। स्वयं का जीवन निर्व्यसन, सदाचारी एवं शिक्षाशील बनाना चाहिए। शिक्षा-पद्धति ही विश्व-विकास की जननी है। शिक्षित लोग वे हैं जो सदाचारी, सज्जन, प्राणी-मात्र के प्रति करुणाशील हैं तथा जिनका भाषण एवं भोजन पूर्ण शुद्ध है। शिक्षा में यदि नीति-न्याय आदि सर्व विद्याओं के साथ अध्यात्म का रस साथ है तो समझना कि विश्व-विकास का आपका विचार पूर्ण हो सकता है। ऊँचे भवनों एवं लम्बी-चौड़ी सड़कों, मार्ग पर लगे विद्युत प्रकाश मात्र देशोन्नति नहीं; आचरण की पवित्रता भी होना चाहिए।

### 76 - Mix the nectar of spiritualism in all your learnings

If you think of the development of the country, dharma, or society, first look at your demeanour rather than resorting to publicity. Make your life free from addictions, adopt good conduct, and become educated, Education system is the birthplace of world development. Educated men are those who have good conduct, are noble, are compassionate towards all living-beings, and whose speech and food habits are exalted. If the nectar of spiritualism is mixed in all your learnings of prudence and logic, reckon that your idea of world development will fructify. The development of a country does not consist just in high-rise buildings, long and wide roads, and lightings, but also in purity of conduct in its citizens.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ७७. शासक को चाहिए - विचारों में लोकप्रियता तथा प्रजा के लिए स्नेह

जगति पर राज्य-शासन चिरकाल तक उन्हीं शासकों का चल पाया या चल सकता है जिनके विचारों में लोकप्रियता है तथा प्रजा को स्नेह की दृष्टि से देखने की शक्ति है। स्नेहहीन शासक पृथ्वी पर भारभूत है। अत्याचारी, शुष्क, अतिलोभी, शोषक सम्राट् के भार से प्रजा तथा पृथ्वी बिलखती है। दयावान्, धर्म-निरपेक्ष, स्वात्म-धर्म वात्सल्य-युक्त, महात्माओं के प्रति सम्मान, आदर-भाव, अतिथि-सेवा परायण, विद्या- व्यसनी, सदाचारी, अल्पभाषी, मितव्ययी, सम्पूर्ण प्रजा की सुनने वाला, नयनों में स्नेह नीर युक्त शासक से वसुन्धरा शोभायमान होती है; वह राजा सर्वत्र यश प्राप्त करता है।

## 77 - The ruler should have democratic thoughts and love for the subjects

Only the ruler whose thoughts are democratic and who has the power to show love for the people can rule for a long time. The ruler without love is a burden on the earth. The subjects and the earth moan under the weight of the cruel, lifeless, greedy and exploitative ruler. The earth gets embellished by the ruler who is compassionate, is secular, is endowed with affection for the soul-dharma, shows reverence towards the great men, is respectful, is ever ready to serve the guests, has addiction for learning, has good character, is reticent, is frugal, is good listener, and whose eyes remain moist with the water of love. Such a ruler attains glory everywhere.

विचार
The Thoughts

## ७८. पर-निन्दा त्याज्य, पर-प्रशंसा श्रेष्ठ, किन्तु स्वयं प्रशंसनीय बन जाना अतिश्रेष्ठ

एक समय ऐसा भी निकालो, जिसमें आप स्वकीय मानवता पर विचार कर सकें। महात्माओं एवं परमात्माओं पर चर्चा लोक में बहुत चलती है, अरे! पर की प्रशंसा और निन्दा में जैसे समय निकाल लेते हो, वैसे ही स्व-चिन्तवन के लिए भी समय निकाल लो। निन्दा किसकी करते हैं? जो लोक-विरुद्ध व धर्म-विरुद्ध कार्य करते हैं, उनकी निन्दा अन्य भी करते हैं। जिस कृत्य से आप व आपके मित्र पर की निन्दा करते हैं वहाँ पर यह विचारना चाहिए कि उनका निन्दनीय कार्य लोक को मालूम चल गया, जन-सामान्य को ज्ञात हो गया, इसलिए निन्दनीय है। उनके द्वारा कृत कार्य अशुभ है, पाप-बन्ध का कारण है, निन्दनीय ही है, इसलिए आप और आप जैसे लोग उनकी निन्दा कर रहे हैं। यदि वे निन्दनीय ही हैं इसलिए आप निन्दा कर रहे हैं, तो फिर यह भी देखो कि उस निन्दनीय कार्य को मैं स्वयं तो नहीं कर रहा हूँ अथवा उस सादृश कोई कार्य तो नहीं कर रहा हूँ। यदि कर रहा हूँ तो फिर पर की निन्दा में समय नष्ट करने की अपेक्षा स्व-निन्दा में समय लगाओ और निन्दनीय अशुभ-कर्म का आज से नहीं अभी से त्याग कर दो। निर्दोष गुरु के पास जाकर तद्-कृत्यों का प्रायश्चित्त भी कर लो। आयु-कर्म कब नष्ट हो जाये, आपको बोध नहीं; अपराधी बन कर नहीं मरना, आराधक बनकर अन्तिम श्वास लेना। आपके जाने के उपरान्त लोग आपकी निन्दा में अपना समय नष्ट न कर पायें, महात्मा एवं परमात्मा की भाँति आपकी प्रशंसा-स्तुतियाँ गाकर अपने भावों को प्रशस्त कर सकें, ऐसा कार्य करो। पर-निन्दा में जो समय नष्ट कर रहे थे अब उस समय को स्वाध्याय, जप, तप, दया, दान, करुणा, संयम, साधना में व्यय करो। आगे यह भी समझो कि पर की

PREVIEW ONLY

प्रशंसा यद्यपि श्रेष्ठ कार्य है, उच्च गोत्र के आस्रव का कारण है, उससे भी श्रेष्ठ तो यह है कि पर-प्रशंसा में समय लगाने के साथ स्वयं को ही प्रशंसनीय बनाने में समय लगाओ। इससे आप ही क्रमशः महात्मा और परमात्मा बन जाओगे। अन्य के विचारों में अपना विचार करने में समय नहीं लगाओ।

## 78 - Shun censuring others, praising others is good, but to become worthy of praise is best

Take time out to reflect on your own humaneness. Lot of discussion takes place in the world on great men and great souls but as you spend time on praising and censuring others, take some time out for reflecting on yourself. Who gets censured? Those whose deeds are contrary to the world order and the dharma get censured. Think that they are getting censured because their deeds have become known to the world. Reckon that their deeds are inauspicious, cause of the karmic bondage and worthy of disapproval. Check if you yourself are engaged in the same or similar deeds. If you too are engaged in such deeds, don't waste your time on censuring others, rather censure yourself and determine not to get engaged in such deeds from now onwards. Get proper expiation for your deeds from an unblemished guru. You never know when your age-karma is going to exhaust; don't die as a culprit, die as a worshipper. Don't let people waste their time on censuring you; engage in virtuous deeds so that people purify themselves singing your praise and adoration, like that of the great and supreme soul. Use your time, earlier being spent on censuring others, in study, incantation, austerity, benevolence, compassion, self-restraint and practising dharma. Praising others although is good and the cause of influx of the karmas that lead to high status *(gotra)*, still you should also spend time on becoming worthy of praise by others. This will lead you to the status of the great, supreme soul. Don't get involved in the thoughts of others.

विचार
THE THOUGHTS

## ७९. योग्यता की महिमा योग्य आचरण से ही स्वीकार

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में स्वभाव-विभाव से अच्छी-बुरी आदतें पड़ जाती हैं। स्वभाव में अन्य क्रियाओं को कोई स्थान ही नहीं। अशुभ-आदत वाला लोक में तिरस्कार (अपमान) को प्राप्त होता है। शारीरिक, मानसिक तथा वाचनिक पीड़ा को भी प्राप्त होता है। अन्त में दुर्गति का पात्र बनता है। एक क्षण की अशुभ-क्रिया सम्पूर्ण योग्यता को समाप्त करा देती है। किस विषय में आप योग्य हैं; यह विशेषता कोई नहीं सुनना चाहता। वह व्यक्ति देश को बहुत-कुछ दे सकता था, पर एक अशुभ प्रवृत्ति ने लेने-देने की व्यवस्था ही भंग कर दी। कोई उसे देखना ही पसन्द नहीं करता। विचार करो, योग्यता की महिमा भी योग्य-आचरण पर ही आती है। अयोग्य आचरण व्यक्ति की अनेकानेक योग्यताओं को भी ढक देता है। अयोग्य आचरणशील के पास कितनी ही श्रेष्ठ विद्याएँ हों, पर वह श्रेष्ठ जनों के मध्य उन विद्याओं का कोई प्रयोग नहीं कर पाता। जन-सामान्य से लेकर विशेष-जनों को भी ज्ञात रहता है कि अमुक व्यक्ति नाना विद्याओं का स्वामी है, फिर भी लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते। विष-मिश्रित दुग्ध से लबालब भरा पात्र क्या पेयभूत है? नहीं है। उसी प्रकार कुशील, चरित्रहीन की विद्याएँ

PREVIEW ONLY

विष-मिश्रित दुग्ध तुल्य हैं, उन्हें कोई भी विज्ञ पुरुष प्राप्त नहीं करना चाहता। यदि अपनी विद्याएँ व कलाएँ जगत् को प्रदान करने का विचार है तो अपना आचरण पवित्र करो।

### 79 - Capability is accepted only when accompanied by laudable conduct

In his life, every man acquires, due to natural or unnatural causes, good as well as bad habits. When the man is established in own-nature, there is no place for outside activities. The man with inauspicious habits gets rebuked in the world. He is tormented physically, mentally and verbally. In the end, he gets a lowly state of existence. One inauspicious habit spoils all his capabilities. No one is interested in listening to the field of his capability. The man could have imparted a lot to the country but one inauspicious habit forbids him from imparting or taking anything. People no more wish to see him. Think; the glory of capability rests on the glory of conduct. Contemptible conduct shields many capabilities of the man. The man with contemptible conduct cannot talk about his laudable learnings in midst of great men. Men, in general, are aware of his capabilities but they still do not praise him. Is the milk filled to the brim in a pot, albeit poison-mixed, remains worthy for drinking? The learnings of the characterless person are like the poison-mixed milk; no intelligent man would like to acquire these. If you wish to impart your learnings and art to the world, adopt laudable conduct.

विचार
The Thoughts

### ८०. ज्ञानी-जन प्रचार पर नहीं आचरण पर विश्वास रखते हैं

व्यक्ति चाहे शुभ, प्रशस्त, भद्र, श्रेष्ठ, उत्तम, विवेकयुक्त कार्य करने का भाव करे या फिर असम्यक्, अनीतिपूर्ण, अन्यायपूर्ण, अनाचारयुक्त, छल-कपट वाले खोटे कर्म करने का भाव बनाए, परन्तु कार्य करने के पूर्व एक बार उस कार्य पर विचार अवश्य करे। विचार करे कि उसका परिणाम क्या होगा? कार्य के परिणाम का विचार किए बिना कार्य प्रारम्भ न करे। वर्तमान एवं भविष्य में, देश व राष्ट्र-व्यापि क्या फलित होगा, इतना अवश्य ही विचारे। हो सकता है आपका इस प्रकार का विचार ही आपको अशुभ, अभद्र पापाचार से आत्मरक्षा करने वाला गुरु बन जाए। बाह्य गुरु से व्यक्ति बात छुपा सकता है, अन्तरंग गुरु निजात्मा के विचारों से तो कुछ भी नहीं छुपता। सत्य यही है, आत्मगुरु यदि प्रबल है तो बाह्य गुरु भी सहकारी बन जाते हैं। स्व का निर्णय पूर्ण विपरीत है, तो भी स्वयं संसार के लोगों के मध्य गुरु संज्ञा को प्राप्त है। ऐसा व्यक्ति गुरुता शून्य होकर अप्रशस्त कार्य में स्वयं को संलग्न पाता है। यह सब क्यों हुआ? बिना विचार करके किया गया कार्य इसका कारण है। स्व-क्षमता का बोध भी व्यक्ति को होना चाहिए। दिखावा न कर यथार्थ जीवन जीना चाहिए। लोक-ख्याति में संलग्न जन आचरण पर कम और प्रचार पर अधिक विश्वास रखते हैं, परन्तु ज्ञानी-जन दिखावा अथवा प्रचार पर नहीं, आचरण पर विश्वास रखते हैं। देश एवं राष्ट्र में सामने आओ तो मलयगिरि चन्दनवनवत् सुगन्ध बिखेरो, दुर्गन्ध नहीं।

### 80 - Intelligent men rely on conduct rather than on publicity

Whether a man thinks of doing an auspicious, laudable, excellent and discriminative work or of doing a wrong, improper, unlawful, contemptible and deceitful work, he

PREVIEW ONLY

should reflect on its outcome beforehand. He should not take any work in hand without proper thinking. He must reflect on its impact on the country and the nation, in the present and in the future. It is possible that just your reflection beforehand on the impact of the work becomes your guru to protect you from inauspicious and ignoble deeds. One can conceal things from an external guru but not from the internal guru. If the internal guru is strong, the external guru too comes forward to help you. You may find a person who acts ignobly but is known as a guru in the world. How does this happen? This happens when the person acts without proper thinking. The man should keep in mind his capabilities. He should lead a simple life without ostentation. A person concerned much about external glory relies more on publicity rather than on conduct. The knowledgeable man, however, relies on conduct rather than on publicity. When working for the country and the nation, be a diffuser of the fragrance of Malayagiri sandalwood, not of stench.

विचार
THE THOUGHTS

## ८१. शुभ विचारों को साम्य-भाव से वर्द्धमान करो

चित्त विचारों का पिटारा है, वह कभी खाली नहीं होता है। कोई न कोई विचार उत्पन्न होते ही रहते हैं। विचारों का उत्पन्न होना घातक नहीं है। जब तक जीव शरीर को धारण किए है, विचार उत्पन्न होते ही रहेंगे। संसार में जब तक वीतरागता को प्रकट नहीं किया तब तक विचारधारा सतत चलती रहेगी। जितना रोकने का उपक्रम करोगे उतनी विचारणा आगे-आगे धावती है। विचार-क्रम मत रोको; विचारों की धारा को परिवर्तनशील समझो, इसलिए अशुभ विचारों को विराम देकर शुभ विचारों को सतत, साम्य-भाव से वर्द्धमान करो। स्वकीय वर्द्धमान विचारों के नियोग से ही स्वात्मा का मार्ग प्रशस्त होगा।

### 81 - Enhance auspicious thoughts through equanimity

The mind is a chest full for thoughts; it never gets empty. Thoughts generate incessantly. Generation of thoughts causes no harm. So long as the soul adopts the body, thoughts keep on generating. Until the soul attains conquest over all attachment, the flow of thoughts shall continue. Your effort to stop thinking will give rise to fresh thoughts. Do not try to stop the chain of thoughts; it is not going to cease. Try instead to eliminate inauspicious thoughts and to enhance the flow of auspicious thoughts through equanimity. Auspicious thoughts will make easy your path to realize the own-soul,

विचार
THE THOUGHTS

## ८२. पुरुषार्थ करो, कार्य सिद्धि भाग्य, दैव, समय पर छोड़ दो

जीवन में लाभ-हानि उभयरूपता का दर्शन होता ही रहता है; लाभ पर हर्षित भाव आता है, हानि पर विषाद, पर ये दोनों ही अवस्थाएँ अज्ञान-भाव हैं तथा लघु विचारशीलता का परिचय हैं। विराट् विचारशील उभय अवस्था में माध्यस्थ-भाव रखता है। हर्ष-विषाद की अति व्यक्ति की बुद्धि एवं स्वास्थ्य दोनों को ही प्रभावित करती है, चिन्ता-निमग्न की बुद्धि क्षीण होने लगती है। साथ ही शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। जीवन का विकास भी प्रभावित होने लगता है। शत्रु की शक्ति बढ़ने लगती

PREVIEW ONLY

है, मित्रगण समाप्त होने लगते हैं, और क्या? स्व-परिजन भी दूरी बनाने लगते हैं। कोई भी शरणभूत दृष्टिगोचर नहीं होते, साथी भी साथ छोड़ने लगते हैं। फिर यही सूत्र साथ देते हैं- 'सबके दिन एक से नहीं होते' तथा 'सब दिन एक से नहीं होते'। बलभद्र को भाई के लिए पत्तों में पानी लाना पड़ा, नारायण 'पानी-पानी' कहते जरत्कुमार के बाणों से मरणासन्न हो गए, प्राण-पखेरू उड़ गए। भाई, भाई को पानी नहीं पिला पाया। सर्व वैभव-सम्पत्ति, मित्रगण पुण्य द्रव्य के साथ ही साथ दे पाते हैं। पुण्य-क्षीणता पर कोई भी सहायक नहीं हो पाता, इस सत्य को कभी भी भूल मत जाना। पुरुषार्थ करो, कार्य सिद्धि को भाग्य, दैव, समय पर छोड़ दो। पुरुषार्थ में कमी नहीं रखनी चाहिए। भाग्यश्री के साथ अल्प-पुरुषार्थ भी कार्य पूर्ण करा देता है।

## 82 - Do your work, leave its accomplishment to merit, fate and time

In life, the man witnesses both, gain and loss; gain results in gaiety, loss in despondency. Both these states of mind are indicative of ignorance and pettiness of thoughts. The man with broad-mindedness maintains equanimity in both states. Excessive gaiety as well as despondency affect the mind and health; the intellect of the man under stress gets weakened and his health deteriorates. His growth in life gets stunted. The number of his foes increases and of friends decreases. Even the family members tend to distance themselves from him. No one seems to provide succour. Reflecting on these aphorisms will come to your rescue – 'the days of all are not alike', and 'all days are not alike'. While in a forest, great personality of 'Balabhadra' had to fetch water, in a makeshift cup of tree leaves, for his utterly thirsty younger brother 'Nārāyaṇa'; however, before he could reach 'Nārāyaṇa' and quench his thirst, 'Nārāyaṇa' got hit by the arrow of Jaratkumāra and died on the spot. Such an illustrious brother could not offer water to his thirsty younger brother! Never forget this truth – all grandeur, wealth and friends are able to assist you when your merit *(puṇya)* is working; without merit these fail to provide any help. Do your work, leave its accomplishment to merit, fate and time. Never show slackness in efforts. Assisted by fate, even small effort accomplishes the work.

विचार
The Thoughts

## ८३. एक श्रेष्ठ गुरु का चुनाव अवश्य ही कर लें

स्व-विवेक से जीने वाले सुख पाते हैं, गुरु-विवेक से जीने वाले विशेषता पाते हैं। जीवन में श्रेष्ठता, लोक-पूज्यता एवं परमार्थ के शिखर पर पहुँचने का विचार है, तो फिर एक श्रेष्ठ गुरु का चुनाव अवश्य ही कर लेना चाहिए। अपने अन्दर की पीड़ा को बाहर प्रकट करने का स्थान गुरु हैं। जीवन की भूलों का बोध एवं शोध करने वाला सद्-गुरु है, जो कि रत्नत्रय से विशुद्ध हो। वे सद्-गुरु कैसे हों? पात्रों के प्रति स्नेह रखने वाले हों, स्व-पर हित में जो संलग्न रहते हों, पर-निन्दा व स्व-प्रशंसा के प्रपंच से दूर रहते हों, जिनके पास बैठते ही विशिष्ट शान्ति एवं आनन्द का अनुभवन होता हो, दुःख, क्लेश क्षण-मात्र में शान्त हो जाते हों, सर्व विकार उपशमित हो जायें, विचारधारा अनेकान्तमय हो जाए, वाणी में स्याद्वाद स्फुटित होने लग जाए, प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव जाग्रत हो जाए, ईर्ष्या, डाह, मात्सर्य चित्त से स्पर्शित न होने पाए, धर्म-धर्मात्माओं के प्रति आदरभाव की जागृति

PREVIEW ONLY

हो तथा वात्सल्य की गंगा प्रवाहमान हो। संवेग भाव–शून्यों से आत्मदूरी बनाकर चलने का विचार स्वकीय मन में सदा स्थापित रखना। एक गुरु बनाना, पर अन्य किसी गुरु का स्वचित्त में अपमान नहीं करना। निर्ग्रन्थों का अपमान बहुत ही दुःखप्रद होता है।

### 83 - Select without fail an excellent guru

Those who live according to own discrimination attain happiness; those who live according to the guru's discrimination attain special status. If you wish to attain excellence, world-reverence and summit of spirituality, select without fail an excellent guru. The guru is an outlet for extraditing your internal woes. An excellent guru endowed with the pristine three-jewels *(ratnatraya)* makes you aware of your shortcomings and draws these out. Such an excellent guru maintains affection for his worthy disciples, remains engaged in the well-being of self and others, remains aloof from censuring others and praising self, his proximity endows unique tranquility and joy, he calms down instantly all suffering and agony, he puts to quiescence all perversions, he lets your thought-process adopt the doctrine of non-absolutism *(anekānta)*, he lets your speech get tinged with the language of conditional-predication *(syādvāda)*, he arises in you the disposition of benevolence toward all living-beings, he keeps envy, jealousy and spite away from you, he awakens in you reverence for the dharma and its followers, and he allows river Gaṅgā of affection flow uninterruptedly in you. Maintain always distance from those rid of the disposition of the fear of worldly existence. Adopt a guru but do not entertain disposition of dishonour for any other guru. Dishonouring any *Digambara (nirgrantha)* ascetic results in great misery.

विचार
THE THOUGHTS

### ८४. स्वयं को विचारक एवं श्रेष्ठ लेखक बनाईये

विश्व में शासकों का अन्त है, विचारक–लेखक ही जीवित रहते हैं। विचारशील लोग विश्व विकास में सहकारी होते हैं। कार्यशील शरीर से पुरुषार्थ करते हैं, विचारशील प्रज्ञा से पुरुषार्थ करते हैं। विचार अन्तरंग का पुरुषार्थ है जो प्रज्ञा की तीक्ष्णता पर आलम्बित है। शरीर का पुरुषार्थी स्वयं एकाकी एक कार्य करता है, अन्य के आदेशों से हीनता–दीनता की भावना से युक्त होकर। विचारशील शरीर से स्वयं तो कार्य करते नहीं दिखते, परन्तु उनके विचारों से सहस्रों व्यक्ति कार्य करते दिखते हैं। विचारों के साथ जो स्व–विचारों का लेखक होता है वह अपने यश एवं पुरुषार्थ की प्रसिद्धि से कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। चाहे लौकिक विचारक हो, चाहे परमार्थ–तत्त्व विचारक, दोनों ही यश–प्राण के दीर्घजीवी होते हैं। लेखक अध्ययनशील सद्–पुरुषों के अन्तःकरण में जीवित रहते हैं। ग्रन्थकर्ताओं को जगति के श्रेष्ठ नागरिक हृदय में विराजमान रखते हैं। उनकी कृतियों का अध्ययन करके स्व को पुण्यशाली मानते हैं। प्रत्येक प्रज्ञ–पुरुष को सतत श्रुताभ्यास करके स्वयं को विचारक एवं एक श्रेष्ठ लेखक बनाना चाहिए। वक्ता तत्काल तक ही जीवित रहता है। कितना ही प्रभावी क्यों न हो; मृत्यु के उपरान्त ही वक्ता समाप्त हो जाता है, परन्तु लेखक अपनी कृतियों में जीवित रहता है, कृति पठनीय होना चाहिए।

PREVIEW COPY

## 84 - Make yourself a thinker and an excellent writer

In the world, the rulers get finished; the thinkers and authors live long. Men with thoughtfulness help world development. Workers perform through physical work, authors through intellect. Thoughts are internal effort, dependent on the sharpness of the intellect. Physical effort is individual, subservient to the commands of others. Thinkers don't seem to make physical effort but thousands of men work according to their thoughts. The man who, while being a thinker, puts down his thoughts as an author does not die as his glory and fame of compositions last long. Whether a worldly thinker or a spiritual thinker, both live long in terms of their glory. Authors remain alive in the hearts of noble men inclined towards reading. Noble men of the world establish in their hearts the authors of sacred texts. They feel blessed on reading their compositions. Every man should practise incessantly the study of sacred texts and thereupon try to become a thinker and an excellent author. Speakers live as long as they are alive. But the author remains alive through his compositions, if these are worth the reading.

विचार
The Thoughts

## ८५. विचारवान् का लक्ष्य - उच्च आचार-विचार

उत्कर्ष व अपकर्ष उभय-धारा जीवन में सतत चलती है, इसमें विचारधारा का मुख्य स्थान है। जिसकी विचारधारा उत्कृष्ट होगी उसके लिए उत्कर्ष जयमाला लेकर तत्पर रहता है। जिसकी विचारधारा निकृष्ट है उसके लिए अपयश यष्टि लेकर खड़ा रहता है। यह मत सोचो; लोगों ने हमारा कितना उपकार किया है? यह सोचो; मैंने लोगों का क्या उपकार किया है? पर से उपकृत होने वाले दीन-हीन बहुसंख्या में हैं, लेकिन पर का उपकार करने वाले भव्य दानवीर अल्प ही हैं। उन अल्पों में अपना नाम अंकित कर लो, बहुसंख्यक भिखारियों की उपेक्षा करो। स्वयं अन्तःकरण से प्रश्न करो, श्रेष्ठ कौन है?

विचारवान् विवेकी व्यक्ति अपना नाम बहुसंख्यक में नहीं जोड़ना चाहता, अपितु बहु-गुण ज्ञाता में जोड़ना चाहता है। संख्या की प्रचुरता नहीं, गुणों की महिमा देखना चाहिए। महाजन भीड़ नहीं, गुणों पर लक्ष्य रखते हैं। जहाँ गुण-सागर से मिलन है वहाँ पर सामान्य नदी, नालों पर कौन दृष्टि डालता है? क्षीर-समुद्र का पानी पीने वाला लवण-समुद्र से क्या अपनी प्यास बुझाने जायेगा? श्रेष्ठ प्रतिभा प्रज्ञा-सम्पन्न पुरुष अल्प जीवन जीना स्वीकारते हैं, परन्तु यश-विहीन गुणहीन जीवन जीना स्वीकार नहीं करते। प्रतिक्षण उच्च विचार, उच्च आचरण पर लक्ष्य रखते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व इस बात पर आलम्बित नहीं है कि वह कितनी कक्षाओं को उत्तीर्ण कर चुका है। जो व्यक्ति मात्र कक्षाओं की उत्तीर्णता देखकर पर से प्रभावित होता है वह जीवन भर भ्रम, दुःख, क्लेश का सामना करता है।

यह मत विचार करो कि अमुक व्यक्ति कितनी कक्षाओं को उत्तीर्ण होकर आया है, अपितु आज की उसकी योग्यता देखो। फिर निर्णय करो कि वह व्यक्ति किस कक्षा के योग्य है। जीवन का विकास मात्र विद्यालय की पढ़ाई पर आलम्बित नहीं है। विकास व्यक्ति की योग्यता पर आलम्बित है। जिसने अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण नहीं किया हो उसे स्वयं में हीन-भावना उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। विवेक-बोध, सत्यार्थ-बोध, वस्तु के वस्तुत्व का बोध पोथियों के अभ्यास से प्राप्त हो, ऐसा नियम

PREVIEW ONLY

नहीं है। वस्तु को देखकर भी वस्तु के वस्तुत्व का बोध हो जाता है। प्रत्यक्ष-ज्ञेयों से ज्ञान में विशदता, निर्मलता अच्छी आ जाती है। शास्त्र-ज्ञान, शास्त्र के अनुकूल अभ्यास, अनुभव-ज्ञान भी श्रेष्ठ है। ज्ञानीजनों को विद्यालयों की कक्षाओं के साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने का भी अभ्यास करना चाहिए। योग्यता के अनुकूल कार्य-प्रणाली का भी ध्यान रखना चाहिए। विद्यालयी शिक्षा तथा व्यक्ति की योग्यता, दोनों का ध्यान रखा जाए, परन्तु योग्यता की ही प्रधानता रखी जाए।

## 85 - The thinker aims for sublime thoughts and conduct

In life, evolution and devolution take place constantly; these are mainly governed by the thought-process. For the man whose thoughts are sublime, evolution waits with a victory-garland, for the man whose thoughts are ignoble, dishonour waits with a punishing-stick. Don't think of what others have done for you; think instead of what you have been able to do for others. Unfortunate men who get benefitted from others are too many; noble and generous men who help others are but few. Get your name registered in the minority, ignoring the majority of beggars. You know who are great.

A thoughtful man does not wish to get his name included in the majority, instead he wishes his name to be included in those with abundance of qualities. Think about the importance of qualities rather than numbers. Great men aim for qualities, not for joining the crowd. While getting ready to submerge in the ocean of qualities, who would pay attention to normal rivers and drains? Why should the man who can quench his thirst from the milk-ocean go to the salt-ocean? Men with excellent intellect prefer to have a short but worthy life rather than a long but honourless and worthless life. They aim constantly for sublime thoughts and conduct. The personality of a man does not depend on the level of his worldly education. If you get impressed by the mere education of a man, you are bound to face lifelong doubts, sorrow and agony.

Rather than looking at the worldly education of a man, look for his current capabilities. The growth of life does not depend solely on schooling. It depends on capabilities. The one who has not got advanced schooling should not feel inferior. Knowledge concerning discrimination, truth and nature of objects does not, as a rule, rest on the study of books. Watching the object too makes you aware of its nature. Direct contact with the objects of knowledge makes your understanding pure and pristine. Knowledge of the scripture, practice in accordance, and experience too are worthy. A knowledgeable man should practise assessing the personality of the others. The work nature depends on the capability. Keep in mind both, the schooling and the capability, but give precedence to the capability.

विचार
THE THOUGHTS

## ८६. सद्-विचारवान् परम-अहिंसा भाव का आश्रय लेते हैं

धरती पर वे ही लोग धन्य हैं जो सदाचारी एवं सद्-विचारक हैं। सद् विचारवान् वे ही होते हैं जो परम अहिंसा भाव का आश्रय लेते हैं, साथ ही अपने विचारों को किसी पर भारभूत बनाकर थोपते नहीं हैं। विचार रखना चाहिए, पर बलात् उन पर चलने के लिए किसी को प्रेरित नहीं करना चाहिए। सामने वाले को भी विचार करने के लिए समय देना चाहिए। अपने प्रवाह में ही ले जाना धर्मात्मा जीव का

PREVIEW ONLY

धर्म नहीं है। किसी की बौद्धिक स्वतन्त्रता का हनन करना भी न्याय-मार्ग एवं अहिंसा धर्म के प्रतिकूल है। 'जियो और जीने दो' का सूत्र सबके लिए धारण करना चाहिए। अपनी बात रखने की स्वतन्त्रता सबके लिए है। अपनी बात मनवाने के लिए बलात् प्रेरित करना तथा अपने अनुकूल करना अहिंसा परमब्रह्म के प्रतिकूल है। शरीरजन्य, मानसिक तथा वाचनिक स्वतन्त्रता का हनन करना भी हिंसा है। पर को स्वानुकूल बनाने हेतु बार-बार किसी को प्रेरित करना पर-की स्वतन्त्रता का घात है। अहिंसानिष्ठ के सान्निध्य में जो आता है वह वैर-भाव का अभाव कर लेता है। अहिंसा-उपासक की महिमा यह है कि सिंह व गाय एक घाट पर एक साथ पानी पीते हैं, सिंह व गज एक साथ वन में क्रीड़ा करते हैं तथा चूहा, बिल्ली, सर्प, नकुल सहवास करते हैं। वहीं क्रूर, हिंसक के निकट भाई-भाई भी शत्रु बन जाते हैं। सुख-शांति की चाह है तो सदा अहिंसामय विचारों को स्व-में स्थान दो।

## 86 - Right thinkers swear by supreme non-injury

Only those men on this earth are blessed who have good conduct and thoughts. Men with good thoughts swear by supreme non-injury *(ahiṃsā);* however, they do not impose their thoughts on others. Have your thoughts but do not impose these on others. Let others have their own thoughts. A religious man should not force others to follow him. To suppress intellectual freedom of others is against the ways of justice and of the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. The aphorism preaching 'live and let live' is meant for all. To force someone to agree to your point-of-view and to act accordingly is against the tenet of supreme non-injury *(ahiṃsā)*. To suppress freedom of the body, mind or speech of others is injury *(hiṃsā)*. Do not insist others to follow you; this is suppression of their freedom. Anyone who comes in proximity of a true follower of non-injury *(ahiṃsā)* gets rid of his disposition of animosity. The glory of the adorer of non-injury *(ahiṃsā)* can be seen when in his proximity the lion and the cow drink water from the same pond, the lion and the elephant play together in the forest, and the mouse, the cat and the mongoose live at the same place. On the other hand, in proximity of the cruel and hostile man even brothers become enemies. If you long for happiness and peace give always room to non-injury *(ahiṃsā)* in your thoughts.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## ८७. योगी एकमात्र निज शुद्धात्म स्वरूप में स्थिर होता है

साधक का मुख्य धर्म समाधि है, बिना समाधि के निर्वाण पद असम्भव है। व्यक्ति निर्वाण पद प्राप्ति का लक्ष्य बनाकर जीते हैं, परन्तु समाधि पर लक्ष्य नहीं बना रहे। वे अपने जीवन में परम निर्वाण पद की साधना को ही प्राप्त नहीं हैं, फिर निर्वाण पद तो उनसे बहुत दूर है। शरीर, वचन, मन के माध्यम से जो आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन है वह योग है, जो कि कर्मास्रव का कारण है। समाधि-साधक विविध योग को स्वसाधना के बल से रोक लेता है। सर्वप्रथम अशुभ वृत्ति से आत्म-रक्षा करता है, शरीर से अशुभ अब्रह्मादि क्रियाओं से विरक्त होता है, वचनों से अशुभ भाषण नहीं करता, मन में अशुभ नहीं विचारता। त्रियोग को शुभ कार्यों में लगाता है।

योगी धीरे-धीरे साधना को वर्द्धमान करते हुए शुभ व्यापार को भी बन्द कर लेता है। एकमात्र निज शुद्धात्म स्वरूप में स्थिर होता है। सम्पूर्ण संकल्पों तथा विकल्पों से निज को सुरक्षित कर मात्र

चिद्ब्रह्म की उपासना करता है। आराध्य-आराधक भाव से भी भिन्न होकर, एकत्व स्वभाव में अभिन्न होकर, स्वरूप चिन्तवन को भी विराम देकर, स्वरूप में लीन हो जाता है। एकमात्र शुद्ध चिद्रूप में लीन रहता है। चित्त-वृत्ति का जहाँ निरोध है, स्व के अन्दर किसी भी पर-भाव का जहाँ अवलोकन नहीं है, वहाँ एक-एक-एकमात्र एक वह है। स्व-सत्ता का संवेदन होने पर पर-सत्ता का स्व में प्रवेश का पूर्ण निषेध हो जाता है। अन्य में स्व का निषेध, स्व में अन्य का निषेध हो जाता है।

### 87 - The supreme-ascetic *(yogī)* remains established in own pure self

The main dharma of the ascetic is deep meditation – *samādhi*. Liberation is not possible without meditation. Men aim for liberation but do not practise meditation. When they are not practising what is essential for attaining liberation, the attainment of liberation is far away. Vibrations in the space-points of the soul due to the activities of the body, the speech and the mind is *yoga*. These vibrations cause the influx of the karmas. The practitioner of meditation stops his *yoga* through self exertion. First he shields himself from inauspicious inclinations; he shuns evil activities like unchastity, doesn't speak or think anything immoral. Then he engages himself in auspicious activities.

Perfecting his practice, the supreme-ascetic *(yogī)* draws himself away even from auspicious activities. He remains established in own pure self. Protecting himself from all sense-of-mine *(saṃkalpa)* and self-consciousness *(vikalpa)*, he adores just the own supreme soul. Leaving the duality of the worshipper and the worshipped, he stations himself in non-dualism; he gets engrossed only in own self. His mind stops wandering and no external dispositions enter him. He experiences only and only his own self. As he experiences existence of only the pure self, the entry of all externalities is totally blocked. He sees his absence in others and absence of others in him.

विचार
THE THOUGHTS

### ८८. ब्रह्मभाव का विशिष्ट आनन्द

योगी जन ब्रह्मलीनता का विचार करते हैं। ब्रह्म-स्वभाव-सा आनन्द जगति पर कहीं अन्य नहीं है। अब्रह्म सेवी के अब्रह्म-भाव का दुःख, क्लेश, अशान्ति, अमंगल, हीन-भाव, प्रज्ञा-क्षय, भय, उत्साह-भंग, जगत्-प्रलाप वृद्धि, सामान्य अज्ञानी जनों से भी सम्पर्क-दीनता का भाव, मुख-मण्डल पर चारित्र-हीनता पग-पग पर आती है। ब्रह्म-भाव शून्य व्यक्ति का बौद्धिक, आर्थिक तथा सामाजिक ख्याति-जन्य सर्व-विकास पतन हो जाता है। उसकी पहचान श्रीराम, भगवान् महावीर स्वामी तथा तीर्थंकर आदिनाथ जैसे सर्वमान्य युगपुरुषों के समान नहीं होती; उसकी पहचान तो कंस, कमठ, रावण जैसे क्रूर, पापी, हिंसक, अनाचारियों के साथ होती है। जीवन में अपनी विशिष्ट पहचान नहीं बना पाए तो मानव जीवन का सार ही क्या?

ऐसा जीवन जियो कि लोग तुम्हारी नर-देह में परमात्मा का रूप देखें। ऐसा जीवन बनाने के लिए सामान्य जनों-सा जीवन नहीं जीना होगा, उसके लिए तो स्वयं के भोगोपभोग में, इन्द्रिय सुखों में न्यूनता लानी होगी। इतना ही नहीं, अपने दुःखों को भूल कर पर के दुःख, क्लेश मिटाने पर विचार करना होगा। सहज-भाव से जीवन जीते हुए आप महान् बन जाओगे, आपको बोध तब होगा जब आपके सम्मुख जन-सामान्य थाल सजाकर घृत के दीपक जलायेगा और आपकी पृथ्वी पर आरती

PREVIEW ONLY

उतारी जायेगी। आपकी दृष्टि जमीन को निहार रही होगी, लज्जा-गुण से युक्त प्रेम वात्सल्यमयी चमकती आपकी आँखें जगति पर भव्यों के लिए प्रेम की वर्षा कर रही होंगी। जन-सामान्य के मुख से जय-जयकारों की ध्वनि होगी।

विचार करो; ऐसा पल आपको कितना आनन्द-दायक व सुखप्रद होगा। सर्व विश्व की सम्पदा वहाँ पर आपको तुच्छ लग रही होगी। अहो! अहो! अहो! ब्रह्मभाव का कितना विशिष्ट आनन्द है; उसे वही वेदता है जो ऐसा जीता है, अन्य नहीं, अन्यथा भी नहीं। वसुधा पर जीवन में कितने ही सुन्दर इन्द्रिय भोगों का भोग करें, चित्त उदास ही रहेगा। भोगों के उपरान्त व्यक्ति के मुख-मण्डल पर चमक नहीं रहती है। ब्रह्म का क्षय व्यक्ति के चेहरे के प्रकाश को पश्चात्ताप के विराट् अन्धकार में डाल देता है, सम्पूर्ण चमक समाप्त हो जाती है। बुद्धि का विकास भी मन्द हो जाता है। कुशील का बल, वीर्य, लावण्य तथा शौर्य क्षणभर में न्यूनता को प्राप्त हो जाते हैं, शारीरिक-मानसिक-वाचनिक शक्ति नष्ट हो जाती है। वह स्वयं हीन-भावना से युक्त हो जाता है। लोग शील-सम्पन्न व्यक्ति के व्यक्तित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

## 88 - Unique bliss is attained on getting established in own self

Supreme-ascetics *(yogī)* think of getting established in own self. There is no bliss on this earth that matches that of getting established in own self. The man engaged in evil activities faces at each step suffering, agony, stress, unpropitiousness, inferiority complex, dumbness, fear, demoralization, world-condemnation, disillusionment of even normal and ignorant people, and marks of misconduct on his countenance. His intellectual, economic and societal glory and development comes to naught. He is known not among great presonages like *Śrī* Rāma, Lord Mahāvīra and Lord Ādinātha but among cruel, evil, merciless and characterless presonages like Kaṅsa, Kamaṭha and Rāvaṇa. What is the purpose of life without getting special recognition?

Live life in a manner that people see the supreme-soul *(paramātmā)* in your body. For attaining this, don't live a normal life; minimize on the enjoyment of consumable and non-consumable objects, and indulgence in sensual pleasures. Further; forgetting your own sufferings, you will have to think about mitigating the sufferings and agonies of others. This way, you will become great naturally; you will come to know about this feat of yours as people start waving in front of you the lamp fuelled by *ghee* as their mark of veneration. Your eyes will look downwards, humbly showering affectionate blessings for all worthy souls on earth. People will exclaim 'victory', 'victory' in your veneration.

Think of the joy and happiness this moment will provide you. All wealth in the world will seem insignificant! What ineffable joy does one experience as one gets established in own self! Only the self can experience this joy, no one else and by no means. Indulge in finest of sensual pleasures on earth, still the heart will remain melancholic. Sensual pleasures wipe off the lustre of the countenance. One gets into the mode of repentance. Development of the intellect gets stunted. The strength, power, attraction, and glory of the evil man get to naught in no time. He gets inflicted with inferiority complex. People shower abundant praise on the man of character.

PREVIEW ONLY

## ८९. आत्मनिर्भरता ही पूर्ण स्वतन्त्रता है

व्यवहार एवं परमार्थ दृष्टि से आत्मनिर्भरता पर विचार करना चाहिए। एकान्तिक विचार कभी भी वस्तु के सत्यार्थ धर्म के पास नहीं पहुँच पाते, विचारों में अनेकान्त दृष्टिकोण अनिवार्य है। व्यवहार की आत्मनिर्भरता से तात्पर्य स्वदेशी वस्तु का प्रयोग करना तथा परदेशी वस्तु का प्रयोग नहीं करना। जो वस्तु सात-समुद्र पार विदेश से देश में आयात हो रही है, उस वस्तु का उपयोग नहीं करना। स्वदेशी वस्तु का जितना अधिक प्रयोग होगा उतना ही हम और हमारा देश पराश्रय से मुक्त होगा। परजीवी-पने का अभाव होगा, किसी के दबाव में नहीं जीना पड़ेगा। स्वतन्त्र देश में परदेश की वस्तु से परतन्त्र नहीं होना पड़ेगा। पराश्रयी जीवन दुःख, क्लेश, सन्ताप का कारण है तथा अज्ञानमय जीवन है। स्वप्रज्ञा का कोई कार्य ही नहीं है। पर के आश्रित जीवन जीना महाकष्टप्रद है, क्षण-क्षण में अपमान के विष का घूँट पीना पड़ता है। आश्रयदाता आश्रयी के ऊपर अधिकार दिखाता है, सम्माननीय सभा में अपमान का भाव प्रकट करता है। आत्मनिर्भरता आनन्दमय जीवन है। भृत्यवृत्ति पराश्रयी जीवनशैली है। दूसरे के द्वारा क्रय किए हुए पुरुष में स्वसत्ता कहाँ? सम्प्रति जगत् की विचारधारा में भृत्य जीविका की तीव्रता चल रही है। अच्छे-अच्छे घराने के बालक-बालिकाएँ स्वजीविका स्वकीय कार्यों से नहीं करना चाहते, नौकरी करना अधिक पसन्द कर रहे हैं, परजीवी बनना चाहते हैं।

उत्तम कार्य स्व-व्यापार है, यदि नहीं कर पा रहे, तो भृत्य कर्म उन लोगों से ठीक है जो कुछ भी नहीं करना चाहते तथा पर के व स्व माता-पिता, भाई-भगिनी के आश्रय से जी रहे हैं। समाज, राष्ट्र, लोक में भी वही लोग सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं जो स्व-कदमों पर जीते हैं, इतना अर्थ अर्जित करते हैं कि स्वयं भूखे नहीं रहते साथ ही अपने परिवार को भी भूखे नहीं रहने देते। साधुजनों को उचित आहार-दान करते हैं; तीर्थ-रक्षा, धर्म-रक्षा, राष्ट्र-समाज की रक्षा में, प्राणिमात्र की रक्षा में भी स्वार्जित धन का सम्यक् उपयोग कर स्व-पर का कल्याण मार्ग प्रशस्त करते हैं।

भीख माँगना, पर के मुख को देख-देखकर जीना तथा दीनों का जीवन जीना पुरुषार्थी को शोभा नहीं देता। पुण्य-क्षीणता व्यक्ति को भीख माँगने के लिए विवश कर देती है या फिर प्रमाद, विवेकहीनता व्यक्ति को दरिद्री बना देती है। शक्ति से अधिक व्यय, शक्ति से अधिक दानशीलता, विवेकहीन दानशीलता भी व्यक्ति को भीख माँगने को बाध्य कर देती है। साथ ही कुव्यसन, कदाचार, खोटी प्रवृत्ति, मद्य-मांस-मधु का सेवन व्यक्ति को कंगाल कर देते हैं। सदाचार, शुद्ध भोजन, शुद्ध विचार, सद्संगति, अल्पव्ययता, पुरुषार्थशीलता व्यक्ति को उच्च स्थान प्रदान करते हैं। व्यवहारिक जीवन की आत्मनिर्भरता परमार्थ से अत्यन्त भिन्न है। स्वकर्तापना युक्त व्यवहार आत्मनिर्भरता है। पूर्ण आत्म-स्वतन्त्रता का अनुभवन तथा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से शून्य होना परमार्थ आत्मनिर्भरता है। अन्य जन क्या कर रहे हैं? वे मात्र सांसारिक सुखों की सामग्री की उपलब्धि स्व-पुरुषार्थ से कर रहे हैं। वे आत्मनिर्भरता इसे ही मानकर खुशियाँ मना रहे हैं, जबकि इन्द्रिय-सुख आत्मसुख-रिक्त है, वह पराधीन है। ऐसी आत्मनिर्भरता यथार्थ में पराधीनता ही है। स्वात्मा का सहज-सुख आत्माधीन ही है, वहाँ इन्द्रियों के भोग का कोई स्थान नहीं है। एकमात्र चैतन्य की अनुभूति है - आत्मा पूर्ण आत्मनिर्भर है, उसे अन्य स्त्री, पुरुष, नपुंसक अचैतन्यजन्य इन्द्रिय सुखों की पराधीनता नहीं है। आत्मनिर्भर को न किसी देश, राष्ट्र, राज्य, नगर की आवश्यकता है; न यान, वाहन की।

एक साधक की आत्मनिर्भरता देखो - संसार के सम्पूर्ण परालम्बनों का त्यागी निर्ग्रन्थ श्रमण सच्चा साधक भीख तो माँगता ही नहीं, वह आहार-औषध-अभय-शास्त्र के अतिरिक्त किसी भी

PREVIEW ONLY

संयम–ज्ञान शौचोपकरण से भिन्न द्रव्यों के दान को भी धारण नहीं करता। धन्य निर्ग्रन्थ दिगम्बर श्रमण दशा! पूर्ण आकिञ्चन्य जीवन शैली, भोजन के लिए बर्तन, रहने के लिए भवन–मठ, शरीर–आच्छादन हेतु वस्त्र भी नहीं होते। स्व–कर को पात्र बनाकर करपात्री, पाणिपात्र धारण करते, अन्य के बर्तनों में भी भोजन नहीं करते। यह है आत्म निर्भर दशा। स्व के सिर, दाढ़ी, मूँछ के बाल भी अयाचक व्रतधारी, दृढ़ वैरागी निस्पृह मुद्राधारक स्व–हाथों से अथवा गुरु आदि के हाथों से केशलुंचन करते हैं।

देशान्तर पर्यटन (विहार) हेतु किसी विमान, वाहन, गाड़ी, साईकिल, कार, स्वकीय–परकीय किसी भी प्रकार के वाहनों की सवारी नहीं करते। स्वकीय–परकीय से तात्पर्य साधु की तो होती ही नहीं, तो फिर स्वकीय कैसे? स्वकीय का तात्पर्य है व्यक्तिगत व्यक्ति की है, परकीय अर्थात् जो शासन की बस–सेवा आदि है उसे ग्रहण करना। आत्मनिर्भर मुनीगण व त्यागीजन हाथी, घोड़ा, बैल, ऊँट, मनुष्य, गधा आदि के द्वारा चलाए जाने वाले वाहनों पर भी नहीं बैठते। सदा जीव रक्षा करते हुए ईर्या समिति से दिन में सूर्य के प्रकाश में चार–हाथ भूमि देखकर पैदल चलते हैं। उन श्रमणों के विचार आत्मनिर्भरता पर संचालित हैं, सम्पूर्ण जीवन स्वाधीन जीते हैं। परावलम्बी जीवन स्वतन्त्रता का घात करता है, स्वावलम्बी जीवन आनन्दमय जीवन है। स्वतन्त्रता का जीवन तो श्रमण जीते हैं, परन्तु वे स्वछन्द जीवन नहीं जीते हैं। कर्म–जनित अवस्थाओं पर भी वे स्वज्ञान पुरुषार्थ से नियंत्रण करते हैं। कर्म–व्यवस्था को समझते हुए भी स्वतन्त्रता को नहीं भूलते। वस्तु–स्वतन्त्रता पर सत्यार्थ विचारशील को सदा ध्यान रखना चाहिए। समय प्रमाणकाल भी वस्तु स्वतन्त्रता से बाहर नहीं जाना चाहिए।

यदि जीव कर्म–व्यवस्था को जानते हुए यह समझने लग गया कि कर्म के अनुसार कार्य करना ही होगा तब कर्मानुसारी आत्मा हो जायेगी। उपादान के कमजोर होने पर आत्मा कर्म के अनुसार प्रवृत्ति कर्म–सापेक्षता में करती है। जब जीव स्वसत्ता को समझ लेता है तब वह जान लेता है कि कर्म व आत्मा में बन्ध का सम्बन्ध है, न कि स्वभाव का। कर्म पुद्गल द्रव्य की सूक्ष्म पर्याय अवस्था है। आत्मा, जीव, सत्त्व, प्राणी, भूतज्ञ, आत्मज्ञ, क्षेत्रज्ञ, ज्ञानी, जीव द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता है। दो द्रव्य कभी भी एकत्व को प्राप्त नहीं होते। दो द्रव्यों में परस्पर में 'अत्यन्ताभाव' होता है। जीव स्व–पुरुषार्थ के बल से आत्म–साधना करके कर्म स्कन्धों को स्व से पृथक् कर पूर्ण आत्मनिर्भर हो जाता है। यही जीव की शुद्ध निकल परमात्म दशा है, जिसे मोक्ष कहते हैं। शुद्ध सिद्ध–दशा, निर्वाण–दशा, मुक्त–दशा संसारातीत है। इस अवस्था में पहुँचा जीव कभी भी संसार के शारीरिक, वाचनिक, मानसिक आधी–व्याधि, ईति–भीति को प्राप्त नहीं होता। वह पूर्ण क्लेशमुक्त हो जाता है। पुनः संसार में कभी नहीं आयेगा। ऐसा जीव सादि–अनन्त सुख की दशा में पहुँच जाता है। यही परम आत्म–निर्भर दशा है, जो पूर्ण आनन्दकन्द ज्ञानघन से युक्त है। यही उपादेयता है।

PREVIEW ONLY

### 89 - Self-dependency bestows total freedom

Self-dependency should be viewed from both empirical and spiritual angles. Absolutistic views are not able to reach at the true nature of the object; non-absolutism is essential to know the whole truth. From the empirical point-of-view, self-dependency envisages using objects produced in own country and not using those imported from other countries. The more we rely on self-produced products, greater will we and our country be free from dependence on others. We will be free of pressure from others. The life dependent on others begets suffering, sorrow and agony and indicative of our

ignorance. It is the life of ignorance. The life dependent on others is very painful; one is forced to drink the poison of derision every instant. The conferrer exerts authority over the receiver and shows discourtesy to him in meetings. The life of self-dependency is a happy life. To be a subordinate means to be dependent on others. The man who has been sold cannot have independence. The system of employment is prevalent in the world. Boys and girls from even well-to-do families prefer to seek employment rather than to work on their own; they become dependent on others.

Self-business is good; if not feasible, employment is fine for those who are leading a life of dependence on their parents or relatives. In society, nation and world those who lead the life of self-dependence and earn enough to feed themselves and their kin are respected. They make good use of their self-generated money in giving the gift of food to the ascetics, and in protecting the places of worship, the dharma, the nation and society, and all living-beings; they thus pave the way for the well-being of self and others.

To spend life through begging, on mercy of others, and haplessly does not suit a man who can work. Due to lack of own merit a man resorts to begging, and inaction or lack of discimination makes him poor. Spending beyond own capacity, giving gift beyond means, and gifting money inappropriately force the man to beg. Also, evil addictions, conduct, inclinations, and consuming wine, flesh and honey turn him into a pauper. Good conduct, pure food, pure thoughts, good company, frugality, and right effort put the man on to a high pedestal. Seif-dependence of the empirical life is different from that of the spiritual life. Empirical self-dependence entails the sense of the doer. To experience total independence of the self, and to get rid of the material karmas *(dravya-karma)*, psychic karmas *(bhāva-karma)*, and quasi-karmas *(nokarma)*, is spiritual self-dependence. What are the people engaged in? They are just making efforts to accumulate objects that bestow worldly pleasure. They feel happy mistaking this to be self-dependence; they fail to realize that sensual-pleasure is rid of soul-happiness and dependent. This kind of self-dependence, in fact, is dependence. The natural happiness appertaining to own soul is dependent only on the soul; there is no place for sensual-pleasure in it. It experiences just the soul-consciousness. The soul is absolutely self-dependent; it does not depend on pleasures generated by other male, female or neuter persons or inanimate objects. The self-dependent has not to rely on any country, nation, state, conveyance or vehicle.

Look at the self-dependency of an ascetic. Renouncing dependency on all objects external, the true *Digambara* ascetics do not beg for anything; they do not accept even the gift of anything other than the food, the medicine, the shelter and the scripture or the implements that promote self-restraint and knowledge. Victory to the *Digambara* ascetics! They adopt the lifestyle of complete non-attachment; they do not have utensils for partaking of food, dwelling for residence, and clothes to cover their body. They accept the gift of food in the bowl made of their own hands, not in utensils of others. This is self-dependency! Such non-seeking, non-attached *Digambara* ascetics pluck periodically the hair on their head and face using own hands, or at most taking help of the guru or co-ascetics.

For moving about from one place to another, the *Digambara* ascetics do not use any aircraft or vehicle belonging to self or others. The word 'self' mentioned here means privately owned transport. The word 'others' means the public transport. Self-dependent

PREVIEW ONLY

ascetics do not use carts pulled by the elephant, horse, bullock, camel, human, and donkey, etc. Protecting living-beings, they observe strict regulation in movement; they move barefoot during the day in sunlight, watching carefully the four-hand path ahead. The thoughts of such ascetics are governed by self-dependence and they value freedom during their entire life. Dependent life destroys freedom while self-dependent life is joyful. Although ascetics live the life of freedom, still they do not lead an unbridled life. They face situations arising out of the fruition of the karmas through their knowledge and determination. Although aware of the scheme of the karmas, they do not let go their freedom. A true thinker should always keep in mind the independent nature of the objects. One should not forget, even for a moment, the independent nature of the objects.

If the man, knowing the scheme of the karmas, starts thinking that he must act according to the fruition of the karmas, then the soul will become subservient to the karmas. When the inherent strength of the soul is weak, it functions in accordance with the nature of the karmas. The man who understands the strength of own soul knows that the relation between the karmas and the soul is that of bondage, not of unity in nature. The karmas are the minute modes *(paryāya)* of the physical matter *(pudgala)*. The soul or *jīva* or *sattva* or *prāṇī* or *bhūtajña* or *ātmajña* or *kṣetrajña* or *jñānī* have existence independent to the karmas. The two substances *(dravya)* do not ever become one. Any two substances exhibit absolute non-existence *(atyantabhāva)* mutually. By own effort, comprising constant meditation on the soul, the man separates the bound particles of the karmas from his soul and becomes utterly self-dependent. This is the soul's supremely pure state of existence, called liberation *(mokṣa)*. This supremely pure state of liberation is beyond worldly existence. Such a soul never experiences worldly inflictions like sufferings due to the body, speech, mind, natural calamities or fear. It becomes totally free from all anxiety. It never has to come back to the world. It reaches the state of infinite happiness that has a beginning but is without end. This is the supreme state of self-dependency; the soul becomes one complete whole with happiness and knowledge. This is the state of the soul we must strive for.

PREVIEW ONLY

विचार
**The Thoughts**

## ९०. वस्तु स्व-स्वभाव में अस्ति-नास्ति

विचार वस्तु पर ही होता है, अवस्तु पर कोई विचार नहीं चलता। वस्तु चाहे स्व हो चाहे पर हो, चाहे स्व सत्-भूत हो चाहे स्व असत्-भूत हो अथवा पर सत्-भूत हो, विचार लतावत् होते हैं। लता स्वतन्त्र होते हुए भी पर का आलम्बन लेकर वृद्धिमान् होती है। उसी प्रकार विचार तो विचारवान् के अन्दर ही चलते हैं, परन्तु विचारों का विषय जो होता है वह भिन्न अर्थ होता है, कभी अभिन्न अर्थ भी होता है। ज्ञान में ज्ञेय स्व भी होता है, ज्ञान में ज्ञेय भिन्न वस्तु भी होता है। जड़-चैतन्य उभयभूत ज्ञेय ज्ञान का विषय बनते हैं। बाह्य जगत् ज्ञान का विषय बनता है, परन्तु प्रमेयों से प्रमाण (ज्ञान) की उत्पत्ति नहीं होती, ज्ञान से ज्ञेयों की भी उत्पत्ति नहीं होती, दोनों स्व-स्व में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। न प्रमाण प्रमेयों के अधीन, न प्रमेय प्रमाण के अधीन, दोनों में ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध अवश्य है, उत्पत्ति तथा

उपादान भाव नहीं है। वस्तु, पदार्थ, प्रकाश ज्ञान के ज्ञेय ही हैं उत्पादक नहीं हैं। ज्ञान पर-पदार्थ एवं प्रकाश से उत्पन्न नहीं होता। चैतन्य गुण अचैतन्य भिन्न द्रव्यों से कैसे उत्पन्न हो सकता है? जो वस्तु ज्ञान से जानी जाती है उसे भी जन-सामान्य ज्ञान का कारण मान लेते हैं। लोक में ज्ञेयों का जानना ज्ञान का कारण नहीं, अपितु जानना ज्ञान का कार्य है, जानन क्रिया है। जिन्हें जाना जा रहा है, वह कर्म है। ऐसी सम्यक् तत्त्व की गवेषणा करनी चाहिए।

विपरीत बोध विपरीत ही रहेगा, उससे समीचीन वस्तु तत्त्व का सम्यक् निर्णय नहीं हो पायेगा। अज्ञ लोक में ज्ञानी कहला सकते हैं, परन्तु यथार्थ में अज्ञानी ही रहेंगे। लोक में बबूल की लकड़ी को चन्दन का प्रचार कर सकते हैं, उसका नाम भी चन्दन कर दो, संज्ञा परिवर्तन सम्भव है, परन्तु किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वभाव को तो नहीं बदल पाओगे। ऐसा सम्यक् निर्णय तत्त्व का होना चाहिए। तभी आप देश, राष्ट्र, समाज के हितचिन्तक कहला पाओगे। यदि ऐसा विचार नहीं है तो वह साधक या श्रावक अपनी विद्वत्ता का फल प्राप्त नहीं कर सकेगा। कोई स्वर्ण के लिए रजत संज्ञा का प्रयोग करे तो कोई बात नहीं, संज्ञा का परिवर्तन पुरुष की वचन वर्गणा है, भाषा का प्रयोग है।

ध्यान रखो; स्वर्ण की रजत संज्ञा ही परिवर्तित कर पाओगे, स्वर्ण के स्वभाव को नहीं बदल पाओगे। स्वर्ण पीत वर्ण युक्त है तथा रजत श्वेत वर्ण युक्त है; दोनों के वर्ण गुण का परिवर्तन जगति पर कोई नहीं कर सकता। स्व-धर्म की वस्तु में जहाँ पर अस्ति है, वहीं पर-धर्म की नास्ति भी है। अन्यथा वस्तु उभय धर्मी एक साथ हो जायेगी। ऐसा होना 'असम्भव' दोष युक्त है। किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में, किसी भी अवस्था में, कोई भी द्रव्य स्व-स्वभाव का त्याग कर पर-द्रव्यभूत परिणमन नहीं करता। दो द्रव्य परस्पर में भले ही संयोग व संश्लेष को प्राप्त हो जायें, फिर भी स्वतन्त्रता ही रहेगी। इस स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने वाला कोई परमात्मा-ईश्वर नहीं है, अपितु वस्तु का वस्तुत्व ही ऐसा है जो अस्ति, नास्ति गुण के कारण स्वधर्म का नाश नहीं होने देता। वस्तु पर-धर्म को स्व में प्रविष्ट नहीं होने देती, यही सत्यार्थ वस्तु व्यवस्था है। जीव, पुद्गल में परस्पर संश्लेष सम्बन्ध होता है, इस कारण से जीव अशुद्ध कहलाता है, जीव एवं पुद्गल का पूर्ण पृथक् हो जाना मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र के धारण करने से होगी। समीचीन तत्त्व श्रद्धान, समीचीन तत्त्वों का बोध, समीचीन अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि महाव्रतों के पालन से जीव सत्यार्थ मोक्ष-मार्ग को प्राप्त होते हैं।

## 90 - The object has affirmation and negation in its nature

All thoughts pertain to objects, not to non-objects. Thoughts are like a vine that just derives support from other object; the object of thought may be self or other, existent or non-existent, or existent in other object. The vine is independent in itself but grows by deriving support from other surfaces. In the same way, thoughts are within the thinker but their subject matter is sometimes different and sometimes self. In knowledge, the object of knowledge may be the self or the other. Both the animate and the inanimate objects are the subject matter of knowledge. Outside world is the subject matter of knowledge but it is not the cause of valid-knowledge; also knowledge is not the cause of objects of knowledge; objects of knowledge and knowledge are independent to each other. Neither is the valid-knowledge dependent on object of knowledge nor is the object of knowledge dependent on valid-knowledge; these are related to each other in terms of knowledge and object of knowledge but not in terms of one being the cause of the

PREVIEW ONLY

development of other. The object, the substance and the light are objects of knowledge and not producers of knowledge, Knowledge is not produced by other objects or light. How can the quality of consciousness be produced by inanimate outside objects? People generally tend to mistake the object that is known through knowledge for the cause of knowledge. The objects of knowledge are not the producers of knowledge; to know is the work of knowledge and knowing its activity. The object of knowledge is the karma (noun). This is the way to investigate the true nature of the reality.

Wrong understanding cannot help in determining the true nature of the reality. The world may identify ignorant men as knowledgeable but they will remain ignorant. The wood of mangrove can be publicized as that of sandalwood, one may even change its name but no one can change its true nature. This way, think about the true nature of the reality. Then only can you be the called the benefactor of the nation, country and society. If the ascetic or the householder is not able to mould his thoughts in this way, he will not be able to attain the fruit of knowledge. If someone names gold as silver, it doesn't matter, this is just the change of word; nothing substantive.

Keep in mind that you can just change the name not the nature of a substance. Gold is yellow and silver is white; no one can change their attribute of colour. In a substance, there is affirmation of the attribute of the self and negation of the attribute of the other. Otherwise the object will acquire both the attributes simultaneously. This is a fault called 'impossibility'. The nature of a substance does not get transformed into the nature of another substance at any time, place or in any state. Two objects may get together or even mix like one whole, still these remain independent. This independence is not maintained by any supreme lord; it is the nature of the reality that forbids it from getting rid of its own attributes of affirmation and negation. No substance allows the nature of other substance enter into its own nature; this is the true scheme of things. The soul *(jīva)* and the physical matter *(pudgala)* enter into a combination that appears to be one whole; this is why the soul become impure. Total separation of the soul from the matter is liberation of the soul. Liberation is attained through the 'three jewels' *(ratnatraya)* comprising right faith, right knowledge and right conduct. By having right faith on the reality, right knowledge of the reality, and right adoption of the major vows – non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(acaurya)*, celibacy *(brahmacarya)*, and non-possession *(aparigraha)* – lead the soul to the true path to liberation.

PREVIEW ONLY

विचार
**The Thoughts**

## ९१. विज्ञ पुरुष स्ववचनों से अनेक भव्य जीवों का उत्कर्ष कर देता है

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में स्ववचनों पर विचार करना चाहिए। व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रकट करने की कला का नाम वचनपटुता है। वचनपटुता मानव को मानवता के शिखर पर ले जाती है। सहस्रों ही क्या लक्ष-कोटि सामान्य व्यक्तियों के मध्य में एक कुशल वक्ता वाक्पटु होता है। वाणी में मधुरता हो, शास्त्रों के संदर्भों से युक्त मोक्ष-मार्ग का उपदेश देने वाली हो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में धर्म व मोक्ष प्रधान हों तथा अर्थ व काम गौण हों। अर्थ व काम व्यक्ति स्वयं चुन लेता है, उसे सिखाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। काम, भोग, बन्ध की कथाएँ सुलभ हैं। उन्हें तो जीवों ने अनादि से सुनी हुई हैं। वचन शक्ति जगति को एकता व अखण्डता में बाँध सकती है। वचन शक्ति

धर्म, देश, समाज, राष्ट्र को छिन्न-भिन्न कर सकती है। आपके वचन ज्वाला का कार्य न करें, अपितु शीतल चन्दन का कार्य करें, टूटे हृदयों को जोड़ दें। बिखरे मोतियों को एक धागा जैसे माला का रूप देता है उसी प्रकार श्रेष्ठ वक्ता बिखरती संस्कृति व सभ्यता को एकता का सूत्र देता है।

वचन शक्ति एक बड़ा वरदान है, अन्य वरदानों का अंश नहीं, वह तो एक स्वतन्त्र वरदान है। 'कुरल काव्य' कर्ता यही कहते हैं। जीवन-मरण व्यक्ति की जिह्वा के वश है, इसलिए ध्यान रखो कि कुछ अनुचित भाषण न हो जाए। एक समय की अनुचित भाषा करोड़ों जीवों के प्राण ले लेती है। अनेक घर वाले बेघर हो जाते हैं। लाखों नारियों की माँगें मिट जाती हैं। करोड़ों-करोड़ों बच्चे माता-पिता विहीन हो जाते हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष ये सम्पूर्ण पुरुषार्थ विवेकहीन वक्ता के बोलने से प्रभावित हो जाते हैं। चाहे आप सामान्य नागरिक हों चाहे कोई धर्माचार्य, सम्प्रदाय के कर्णधार हों या राजा, महाराजा, सम्राट् अथवा राष्ट्र के नेता हों, सर्वप्रथम आपको भाषण कला सीखना चाहिए। वाक्य-विन्यास, सभा-बोध, प्रसंग, स्थिति, स्थान, समय सूचकता, आयु निर्णय, कनिष्ठ-वरिष्ठ, गुरुजन-सामान्यजन एवं श्रेष्ठ-ज्येष्ठ का विचार करके ही यथायोग्य बोलना चाहिए। जो इस बात का ध्यान नहीं रखता है, वह वक्ता सर्वत्र उपहास का पात्र बनता है। वह किसी भी क्षेत्र में भाषण देने खड़ा होगा, उसकी हँसी नियत है। श्रेष्ठ, वरिष्ठ ज्ञानी वक्ताओं को सर्वप्रथम सुनना चाहिए।

उच्च, श्रेष्ठ वाक्यपटु, कुशल, स्याद्वाद विद्या-युक्त, शब्द संचालक वक्ताओं को सुने बिना आप श्रेष्ठ वक्ता नहीं बन पायेंगे। धैर्य, उत्साह, रुचि-पूर्वक आप गुणग्राही दृष्टि से पूज्य-जनों को श्रवण करें। दुराग्रहता, कठोर शब्दावली पर स्वयं नियंत्रण करें। अहंकार, ममकार, आत्मप्रशंसा, पर-निन्दा की भाषा का प्रयोग करने के विचारों को शीघ्र स्वबुद्धि से बाहर ऐसे ही निकाल दें, जैसे सड़े फल को व्यापारी अपनी दुकान से शीघ्र ही बाहर फेंक देता है। दुर्वचन, अहंकार, ममकार की भाषा वक्ता के व्यक्तित्व पर सड़ान है, ऐसा समझें। चार-छह चाटुकारों को देखकर भाषण न करें, सम्पूर्ण जन-मेदिनी को देखकर भाषण करें। जाति, पन्थ, व्यक्ति, सम्प्रदाय, धर्म-विशेष को लक्ष्य कर उपदेश न हो, 'सर्व हिताय' की भावना से युक्त वचन हों। वाक्य-वाक्य में प्राणियों के प्रति करुणा की धारा स्फुटित हो। त्रैकाली जीव-दया हर एक प्रवचन का विषय बने।

आपका एक-एक शब्द इतना गम्भीर हो जिसमें विश्व-मैत्री भाव का दर्शन हो। करुणा, प्रेम, दया इतना भरा हो कि जगत् अपनी जन्मदात्री जननी को भूल जाये। मिश्री अपनी मिठास से नीम की पत्ती को भी मीठा कर लेती है, उसी प्रकार श्रेष्ठ वक्ता अपने मधुर वचनों से जगति के प्राणी-मात्र को अपना बना लेता है। एक को भी भिन्न नहीं मानता, प्रत्येक जीव में भगवान्-आत्मा का अवलोकन करता है। वक्ता, वैद्य, राजा, आचार्य, गुरु एवं सद्-साहित्य सृजेता विश्व के हित-विचारक होते हैं। अन्तरंग भाव में स्व कर्तव्य पर जो जीने वाले हैं, वे इन भावों के प्रति समर्पित होते हैं। बिना जन्म दिए आत्म-प्रेम देने वाले हैं, आत्मीय भाव रखने वाले हैं। वक्ता कल्याण मार्ग का उपदेश देता है तथा गुरु, आचार्य, कल्याण-मार्ग पर चलाते हैं। वैद्य शरीर को निरोगता देकर शरीर की रक्षा करता है। सद्-साहित्य सृजेता मानव-जाति को सदियों-सदियों तक सद्-विचार देकर धर्म-धर्मात्मा, संस्कृति की रक्षा करता है।

श्रेष्ठ राजा प्रजा की पुत्रवत् रक्षा करता है। जाति, पन्थ अथवा पेट के सम्बन्ध के बिना उक्त-जनों की भावना की निर्मलता ही इनके कल्याण का कारण बनती है। उपकार-भाव पुण्यात्मा जीव के अन्दर

PREVIEW ONLY

ही जन्म लेते हैं, पापी जीवों के अन्दर किसी भी जीव के प्रति करुणा, दया, अनुकम्पा, उपकार करने के परिणाम जन्म ही नहीं लेते। प्रतिक्षण स्व स्वार्थ वृत्ति में जीना, स्वकार्य को पूर्ण करने की चेष्टा में संलग्न रहना, अन्य के प्रति सद्-भावना के विचार ही उत्पन्न नहीं होना, इस प्रकार शुष्क तरु के समान जीवन पूर्ण कर कर्मोदय के अनुसार संसार की गतियों में पापी जीव संसार-भ्रमण का कष्ट प्राप्त करते रहते हैं।

धीर, विज्ञ पुरुष स्ववचनों के माध्यम से अनेक भव्य-जीवों का उत्कर्ष करता है तथा उन्हें अपकर्ष से बचा लेता है। वात्सल्य-पूर्ण वचनों का आत्मीय भाव से प्रयोग गोंद का कार्य करता है। जैसे गोंद कागज के टुकड़ों को भी एकत्व प्रदान करती है, उसी प्रकार श्रेष्ठ प्रज्ञ-पुरुषों की वाणी टूटे हृदयों को एकत्व प्रदान करती है। भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के लोगों को एक साथ बैठाने वाली सज्जन पुरुषों की पवित्र वाणी होती है। साधुजनों के प्रवचनों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए तथा असाधुजनों के वचनों से सदा ही आत्मरक्षा करना चाहिए। हृदय-विदारक वचनों से प्रयत्न पूर्वक बचना चाहिए। पाप-प्रवर्तक, मैत्री-भाव का अभाव करने वाले तथा सिद्धान्तों का खण्डन करने वाले वचन कभी न बोलें। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि के पोषक वचनों से धर्मात्मा जन शान्त-भाव से माध्यस्थता का व्यवहार करते हैं। न प्रीति, न अप्रीति; वे शान्त जीवन जीते हैं। आत्म-विशुद्धि की रक्षा तभी होगी जब जीव राग-द्वेष-वर्द्धक शब्द-सूलों से आत्मरक्षा करेगा। यदि शब्द-सूलों को कर्ण-रंध्रों में प्रवेश दिलाते रहे तो विशुद्धि का विघात निश्चित ही होगा।

## 91 - The words of a knowledgeable man help growth of many worthy souls

Every man should think about the words he utters in his life. The art of speaking well inheres in the personality of a man. This art takes the man to the summit of humanity. The man adept in speaking becomes special among thousands and thousands of men. The speech of the man should have pleasantness, dwell on the path to liberation as per the scripture, and mention about the four efforts pertaining to dharma, wealth-generation, family-initiation and liberation that men engage themselves in but also enlighten men about the importance of the efforts appertaining to dharma and liberation. The efforts appertaining to wealth-generation and family-initiation are natural to the man; these he learns without teaching. The stories of lust, enjoyment of sensual-pleasure and karmic-bondage are common. These are heard by the man from time immemorial. The power of speech can bind the world as a unified one whole. The power of speech can also break up the dharma, country, society and nation. Your speech should not perform the work of fire but of soothing sandalwood; it should be able to heal broken hearts. Just as a thread joins independent pearls into a garland, the same way an adept speaker provides the thread of unity to differing cultures and civilizations.

The power of speaking well is a great boon; it is independent of other boons. The author of *'Kurala Kāvya'* has said so. The life and death of others may depend on your speech, therefore, take care that you do not speak anything uncalled for. Your single uncalled for speech can cause death of millions of living-beings. Many can become homeless. Many women can become widows. Many children can become orphans. The non-discriminative speech of a man can affect the four efforts of others pertaining to dharma, wealth-generation, family-initiation and liberation. If you are a normal citizen,

PREVIEW ONLY

a religious guru, head of a sect, a monarch, a king, an emperor, or leader of a nation, learn first the art of speaking. Speak appropriately paying attention to your each sentence, the congregation, the context, the situation, the time, the age, whether addressing to a senior or a junior, whether he is your guru or a general man, and the greatness and superiority of the listener. The speaker not paying attention to this becomes a subject of ridicule everywhere. Wherever he speaks, he is ridiculed. Practise listening to the seasoned and knowledgeable speakers.

You cannot become an excellent speaker without first listening to great, skillful and splendid orators who are adept in the doctrine of conditional-predication *(syādvāda)* and know how to use each word. Listen to venerable men with patience, vigour and liveliness, and with an attitude of adopting their excellent skills. Control your prejudice and avoid using harsh words. Throw away, like a vendor throws away the rotten fruit, the language of self-aggrandizement, sense-of-mine, self-praise, and censuring others. Reckon that the use of such language is rottenness on part of the speaker. Do not speak according to the whims of a few adulators; keep in mind all the listeners. Do not speak to please a particular caste, sect, man, group or dharma; your speech should focus on 'well-being of all'. Each sentence should be awash with your feelings of compassion towards all living-beings. Let compassion in the three times – past, present and future – be the subject of your every discourse.

Each word that you utter should be sober and reflective of world-brotherhood. It should be so full of compassion, love and kindness that the listeners forget these attributes in their mother. The sugar-candy converts the bitterness of margosa (neem) into sweetness; in the same way, an excellent speaker using sweet words, makes the men of the whole world his own. He does not perceive men differently as he sees the existence of godliness in every individual. The speaker, the doctor, the king, the preceptor, the guru and the excellent writer all think of the welfare of the world. Those who live life based on their thoughts of duty have such excellent thinking. They bestow inner love and affection to even those not their offspring. The speaker gives discourse on the path to well-being while the guru and the preceptor make you traverse the path. The doctor protects your body by imparting it health. The author of excellent literature provides the gift of right thinking to humanity and thus protects the dharma and its followers, and the culture for centuries.

Worthy kings protect, like own sons, all subjects. Their love and affection for all, irrespective of caste, sect or kinship, brings forth propitiousness to them. Thoughts of beneficence arise only in meritorious souls; evil souls do not have dispositions of compassion, kindness, helpfulness or favour for other living-beings. Living for the self, busy always in own work, thinking never of cooperation with others are attributes of a man who lives and completes life like a standing dead tree, and he continues to wander in the world in various states of existence.

An intelligent man with forbearance causes growth of many worthy souls through his speech. Use of affectionate words with tenderness works like the sticking gum. Such words join together the broken hearts of men. The auspicious speech of noble men is capable of assembling together men of different views and culture. Listen carefully to the discourses of noble men and stay away from the words of ignoble men. Try never to

PREVIEW ONLY

listen to cruel and heartrending words. Never utter words that promote evil tendencies, hatred, and are against the true doctrine. Noble men adopt serene indifference for speech that promotes injury *(hiṃsā)*, falsehood *(asatya)*, stealing *(steya* or *caurya)*, unchastity *(kuśīla),* attachment-to-possessions *(parigraha)*, etc. Neither inclination nor repulsion; they live life peacefully. Purity of the soul can only be saved when the man protects himself from the arrows of evil speech that promotes attachment and aversion. If such arrows are allowed to enter your ear-drums, know for sure that your purity is going to get marred.

विचार
The Thoughts

## ९२. संसार में यशवान् ही बलवान्

जीवन में प्रभुत्व शक्ति चाहिए तो पुरुषार्थपूर्ण जीवन जीना होगा। बिना पुरुषार्थ के भाग्य की उत्पत्ति नहीं होती, सम्प्रति काल में जो भी भाग्य के साथ जी रहे हैं वे भूत के पुरुषार्थीजन हैं। जब भाग्य पुरुषार्थ का साथ देता है तभी कार्य पूर्ण होते दिखाई देते हैं। जो व्यक्ति सन्तुष्ट होकर जी रहे हैं वे अचेतनवत् जी रहे हैं; प्रमादयुक्त सन्तुष्टि विकास का गति-अवरोधक है। असावधान पुरुषार्थहीन को अभेद्य दुर्ग भी नाश से नहीं बचा पाता है तथा सावधान पुरुषार्थी का सामान्य घर भी शोभा पाता है। मन्द-मति, मंथर-गति वाले जीव अपने जीवन में उन्नति के दर्शन नहीं कर पाते। उन्नति के दर्शन स्वकीय जीवन में वे ही पुरुषार्थी पुरुष कर पाते हैं; जिनका भाग्य साथ देता है और उत्साह शक्ति प्रतिपल साथ रहती है। जिन पुण्यजनों की उत्साह शक्ति नष्ट हो चुकी है, उनके लिए स्वयं स्वर्ग का इन्द्र भी आकर उन्नति दिलाना चाहे तब भी उनकी उन्नति नहीं हो पायेगी। पुरुषार्थ तथा उत्साह शक्ति के साथ व्यक्ति का व्यक्तित्व भी अपना अहं स्थान रखता है।

व्यक्ति के लिए सबका प्रिय बनने के लिए मधुर-भाषण, अल्प-भाषण, मधुर मुस्कान, स्व-महत्त्व के साथ दूसरे के महत्त्व को समझने वाला, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का कुशल विचारक होना अनिवार्य है। जो लोग अपने आगे अन्य को कोई महत्त्व देना नहीं जानते, वे नीतिविहीन अज्ञ मात्र लोक में शत्रुओं, आलोचकों एवं निन्दकों को ही उत्पन्न कर पायेंगे। वे जैसी उन्नति चाहते हैं वैसी उन्नति कभी प्राप्त नहीं कर पायेंगे। यदि आप विश्व में विकास की भावना रखते हैं तो सर्वप्रथम दूसरों पर भी विश्वास रखना होगा। आन्तरिक भावों को अन्दर रखो; बहिरंग दशा पर सबके साथ प्रेम, वात्सल्य का व्यवहार करना सीखो। परस्पर के विश्वास के बिना किसी भी लौकिक एवं पारमार्थिक कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। भ्रमशील, शंकाशील व्यक्ति स्वकार्य में भी उत्तीर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता। एक तो शंकालु कार्य प्रारम्भ ही नहीं कर पाता, कदाचित् प्रारम्भ कर भी दिया तो वह मध्य में ही छोड़ देता है, कार्य की पूर्णता पर विचार कम ही कर पाता है। कार्य को दृढ़-विश्वासी, दृढ़-संकल्पी, दृढ़-उत्साही ही पूर्ण कर पाते हैं। साथ-ही जिन लोगों को अपने कार्य के प्रति दृढ़-निर्णय लेने की शक्ति नहीं है, वे कार्य की पूर्णता नहीं कर पाते। कदाचित् विधि, नियोग, भाग्य से कार्य पूर्ण होने भी जा रहा हो, परन्तु कार्य आरम्भ व पूर्णता के मध्य लोक में अपना उपहास करा ही लेते हैं। ज्ञानीजन ऐसे व्यक्ति से सावधान रहने लगते हैं।

अस्थिर-पुरुष विश्वास का पात्र नहीं होता; वह कब बदल जाए क्या मालूम? ऐसे व्यक्ति की बातों पर विश्वास कर लिया तो अपनी भी हँसी हो जायेगी, साथ ही अपने ऊपर भी लोक का विश्वास नष्ट

PREVIEW ONLY

हो जायेगा। दो बातें प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुष को सुरक्षित रखना चाहिए – एक यश, दूसरा विश्वास। विश्वास के बल पर ही व्यक्ति यश वृद्धि पाता है। संसार में यशवान् ही बलवान् है; बिना यश के बलवान्, धनवान्, विद्वान्, भाग्यवान् की भी कीमत नहीं है। श्री, धी की जैसे रक्षा करते हो वैसे ही व्यक्ति को अपने यश की रक्षा का विचार करना चाहिए। बिना विचार किए अन्धकारमय जीवन नहीं जीना चाहिए। संसार में अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए भी वह कार्य न करें जिससे यश का विनाश हो। वर्तमान का सुख मात्र जीवित काल तक का ही है, पर जो कष्ट सहन करके भी सत्यार्थ–मार्ग का त्याग नहीं करता उसका यश सदियों–सदियों तक जीवित रहता है।

चारित्र, शील, संयम, यश वृक्ष की जड़ हैं, बिना मूल जड़ के वृक्ष धराशायी हो जाता है। उसी प्रकार संयम, शील, चारित्र विहीन का यशतरु शीघ्र पतन को प्राप्त हो जाता है। स्वजीवन में वही नीति स्वीकार करनी चाहिए जो जीवन में अपयश प्रदान न करा सके; क्षण–क्षण, पग–पग देख कर चलना। संसार में मित्र ही नहीं; अमित्र भी आपकी गाथा गायें, ऐसा जीवन जियो। स्वकीय कमी का बोध आपके घनिष्ट मित्र को भी नहीं होना चाहिए। मर्यादा व न्याय–शून्य जीवन एक समय प्रमाण–काल भी नहीं जीना। शरीर का स्वास्थ्य विकृत होने पर प्राणों का वियोग होगा, पर शील के विकृत होने पर सर्व–वियोग हो जाता है। व्यक्ति को सर्व कार्यों को सँभालकर करना चाहिए; उनमें यश प्रधान है। आपको यशवान् एवं चारित्रवान् बनकर रहना चाहिए।

चारित्र–पतित का यश शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यश का प्रभाव समाज, देश, राष्ट्र, धर्म तथा विश्व पर पड़ता है। हमेशा लोक–मर्यादा, धर्म–मर्यादा एवं राज्य–मर्यादा का पालन करना चाहिए। भावों में अशुभ आ गया तो स्व–को ही कर्म विपाक भोगना पड़ेगा। शरीर से अशुभ हो गया तो कर्म–विपाक के साथ लोक अपवाद की तीव्र सन्तापजन्य पीड़ा सहन करना पड़ेगी, जो कि असहनीय होगी, मुख दिखाने के भी योग्य नहीं छोड़ेगी। क्षण–क्षण आत्म–ग्लानि की पिशाचिन कष्ट देगी। जिन पर आशीष वर्षाते थे; उनकी आँखों–से–आँखें नहीं मिला पाओगे। जिन्हें समझाते थे, वे अब आपको ही समझाने आयेंगे। गर्म–गर्म श्वासें कभी ठंडी होने का विचार नहीं कर पायेंगी। सगे मित्र–कुटुम्बी भी अन्य हो जायेंगे। शिष्य–समुदाय भी छोड़कर चला जायेगा। सम्पूर्ण–लोक सदाचार का उपासक है, अनाचार की उपासना सज्जनों के मध्य नहीं होती। प्रत्येक क्षण व्यक्ति को स्वसाधना पर लक्ष्य रखना चाहिए। चारित्रधनी के चरणों में धनी भी शीश झुकाते हैं, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है, आगम एवं लोक–सिद्ध है।

## 92 - Only a man of honour yields power in the world

If you are looking for lordship in the world you have to make efforts. Without efforts, fate does not come into being; your present good fortune is due to your past efforts. When fate accompanies efforts the work gets accomplished. The men who live leisurely resting on fate alone are leading an inanimate life; effortless contentment is an impediment to growth. Even an impregnable fort cannot save from destruction the man who is negligent and effortless. The man who is cautious and active lives safe and sound even in an ordinary house. The slow and tardy men do not witness growth in their lives. Only those men who make efforts, enjoy good fortune and have unfading spiritedness witness growth in their lives. The men whose power of spiritedness has exhausted cannot attain growth even if Indra himself comes down to help them. The personality of a man moves in consonance with his efforts and spiritedness.

To become universally adorable, the man must have these attributes: sweetness in speech, brevity, pleasing smile, appreciation of the importance of others, and aptness in the doctrine of the substance *(dravya)*, the place *(kṣetra)*, the time *(kāla)* and the disposition *(bhāva)*. The unwitted and ignorant men who treat others as inferiors just create enemies, criticisers and censurers. They will never attain growth as per their wish. If you wish to attain growth, first learn to have faith on others. Keep your inner feelings aside and learn to exhibit love and affection towards all. Without mutual faith, you cannot accomplish either worldly or spiritual tasks. The doubting and disbelieving man cannot accomplish own tasks. The doubting man is not able to begin a task; if somehow he begins it, he leaves midway without accomplishing it. A task gets accomplished only by the man who has strong faith, determination and spiritedness. Simultaneously, strong decision-making is required. Even if due to the availability of the manner, cause and fate the task is destined for accomplishment, still in the midst itself he gets ridiculed and leaves. Knowledgeable men maintain distance from such a man.

The inconsistent man is not worthy of faith. By putting faith on such a man, you yourself may get ridiculed. Faith of the world on you too will melt away. A discerning man should always keep in mind these two things: first, his honour, and second, his credibility. Only on the basis of his credibility the man gets honour. In this world only the man of honour is powerful; without honour, the strength, wealth, wisdom and fate have no value. Protect your honour as you protect your wealth and knowledge. Do not live the dark life of thoughtlessness. Do not perform, even in the face of calamities, any task that has the potential to destroy your honour. The happiness of the present lasts just this lifetime, but the honour of the man who does not stray away, even in the face of difficulties, from the path of truth stays alive for centuries.

Conduct, modesty, self-restraint and honour are the roots of the tree that is the man; without the roots the tree ceases to exist. That is why, the man without self-restraint, modesty and conduct soon faces extinction. Adopt in life only the policy that does not bring dishonour; be watchful at each step, at each moment. Live life in a manner so that not only your friends but even enemies sing stories of your praise. Do not disclose your weakness even to your fast friend. Don't lead, even for a moment, a life that is devoid of dignity and justice. Through deterioration in health one loses life but through deterioration in modesty one loses everything. Do each work carefully, keeping your honour uppermost in importance. Live a life of glory and conduct.

The honour of the man with loose character gets ruined in no time. Your honour impacts society, country, nation, dharma and the world. Follow always propriety in your behaviour towards the world, dharma and state. You will have to pay for all inauspicious thoughts that enter your mind. If your bodily actions become inauspicious, besides engendering demeritorious karmas, these will cause you grave and unbearable anxiety due to public censure. The she-demon of self-remorse will hurt you incessantly. You will not have the courage to look into the eyes of even those beings who earlier used to seek your blessings. Those who earlier sought your advice will now advise you. Prolonged stress will await you. Even your family members will distance themselves from you. Your disciples will desert you. The whole world adores good character; noble men never adore deplorable conduct. Fix your aim on spiritual practice. As per the scripture and the

PREVIEW ONLY

custom, it is universally proven that even people of wealth bow their heads in front of those who have the wealth of character.

विचार
THE THOUGHTS

## ९३. स्वस्थ रहने के लिए स्व-विचारों को स्वस्थ रखो

वचन-व्यवहार एवं अन्तरंग आचार-विचार पर विशेष स्वलक्ष्य बनाना चाहिए। स्व के वचन-व्यवहार, आचार-विचार ही व्यक्ति को आनन्द एवं क्लेश प्रदान करते हैं। अन्य वस्तु तथा व्यक्ति का वहाँ कोई स्थान नहीं होता। कितने ही लोग स्व में आनन्दमय जीवन जीते हैं। कितने ही लोग स्वयं में दु:खी रहते हैं। इतने अधिक संक्लेशता में चले जाते हैं कि परिणाम-स्वरूप वैद्य के घर जाते देखे जाते हैं। स्वयं उन्हें मालूम है कि उनका रोगी होना तनाव का परिणाम है, फिर भी उपचार कराकर धन, समय, शरीर एवं साधना का क्षय कर रहे होते हैं। स्व-विचार, वचन एवं आचार को स्वस्थ कर लें, तो क्यों व्यर्थ में बीमार होते? व्यक्ति के अन्दर वह योग्यता है जिससे वह व्यर्थ के संकट से बाहर आ सकता है; बस वह अपने विचारों को ठीक कर ले। व्यक्ति यदि अस्ति एवं नास्ति, विधि-निषेध, स्व एवं पर-पक्ष पर विचार करने लगे तो विकसित विचारवान् हो जायेगा।

यदि विकसित विचार हो जायें तो शीघ्र स्वस्थ भी हो जाए, क्षण भी नहीं लगेगा। विश्वास करो; जिसके विचार अविकसित, संकोची, कषायों तथा विषयों से अस्वस्थ हैं, उसकी बुद्धि, विवेकज्ञान, वचन-मन-शरीर सभी अस्वस्थ जानिये। व्यक्ति को सदा स्व-विचारों का ध्यान रखना चाहिए। एक ही विषय को बार-बार विचारों में लाने से प्रज्ञा पर दुष्प्रभाव पड़ता है, अन्त में विचार करने की शक्ति भी क्षीण ही क्या समाप्त हो जाती है। यदि आप राष्ट्र, विश्व संस्कृतियों के प्राणियों के हित-चिन्तक हैं तथा स्वात्म हित चाहते हैं तो स्व-विचारों को स्वस्थ रखो। बुद्धि पर विचारों का पूरा प्रभाव पड़ता है। अपने विचारों में जगत् के नाना प्रकार के परकीय विचारों को अधिक समय तक स्थान मत दो, पूर्ण स्वच्छ विचार रखो। विचारों की विशालता, स्वस्थता एवं स्वच्छता विश्वव्यापी सोच को जन्म देती है। फिर आप एक नगर, राज्य, देश, जनपद, सम्प्रदाय, पन्थ-परम्परा के मानव नहीं होंगे, आप विश्व-वसुन्धरा के माननीय हित-चिन्तक तथा जगत् के वात्सल्ययुक्त, विश्व की धरोहर होंगे। जहाँ भी आप होंगे वहाँ की भूमि प्रसन्न होगी।

## 93 - Laudable thoughts beget good health

You should specially aim at the attributes of your speech, and internal conduct and thoughts. Your speech, and conduct and thoughts are the causes of your happiness and misery. No outside object or person is responsible for this. Many people live happily within themselves; many people live miserably within themselves. People are seen visiting a doctor due to their internal miseries. They know that their illness is due only to their own stress, still they have to squander their money, time, bodily wellness and spiritual practice. If their conduct, speech, and thoughts were wholesome, why would have they fallen ill? The man has this capability of getting rid of this calamity provided he broadens his thoughts. If he starts thinking in terms of existent *(asti)* and non-existent *(nāsti)*, affirmation *(vidhi)* and negation *(niṣedha)*, and self *(sva)* and other *(para)*, his thought-process will develop.

PREVIEW ONLY

No sooner the thoughts of the man are broadened than he regains his health. Have faith that the man whose thoughts are undeveloped, petty, and marred with passions and sensual-pleasures is unhealthy in terms of his intellect, discrimination, speech, mind and body. Keep always in mind your own thoughts. Do not concentrate for long on a single thought; it affects your power of thinking. If you wish for the well-being of cultures of the nation and the world, besides of your own soul, maintain the health of your thoughts. Your intellect gets affected by your thoughts. To keep your thoughts pristine, do not devote a lot of time on thinking about others. Broadness, wellness and purity of thoughts provide global thinking. No more will you belong just to a particular town, state, country, or sect; you will be an asset for the whole of the humanity, the thinker of its well-being, and the spreader of affection all-around. Your mere presence will bring forth happiness.

विचार
The Thoughts

## ९४. अकेलेपन से मुक्ति, फिर निज स्वात्म-भाव में स्थापित होने का अभ्यास

वैराग्य-ज्ञान-शक्ति शून्य व्यक्ति के लिए अकेलापन एक अभिशाप बनकर आता है। अकेलापन का शिकार हुआ व्यक्ति स्व-पर हत्या जैसे अशुभ कर्म भी कर लेता है, पर की नहीं सुन पाता, अपनी पीड़ा सुना नहीं पाता। अन्दर-ही-अन्दर शून्य विचारों में डूबकर पागल भी हो जाता है। उसे अपना जीवन अन्धकारमय लगता है; न कोई सम्बन्धी, न मित्र, न शिष्य, न गुरु, न पड़ोसी, न कोई अन्य सहकारी जन। अध्ययन की भी रुचि नहीं, न गाना जानता है, न बजाना, न ज्ञान, न ध्यान। ऐसा जीवन जीने वाला लोक में मरण-तुल्य जी रहा होता है। जो लोग सर्वप्रथम विवेक-शून्य होकर विशिष्ट बनने के विचार से लोगों से स्वयं दूरी बनाते हैं, फिर जब कोई उनसे मिलना पसन्द नहीं करता तब स्वयं रोते हैं। वे लोग व्यवहार समाप्त कर चुके होते हैं।

स्वयं ही वात्सल्य देना सीखोगे तभी वात्सल्य प्राप्त कर पाओगे, बिना दिये कुछ मिलता नहीं। अव्यवहारिक जीवन शैली वाले का सम्पूर्ण जीवन रोते-रोते निकलता है। लोक में सम्बन्ध बनाकर जीना चाहते हो तो वात्सल्य, प्रमोद, स्नेह गुण स्वयं के अन्दर प्रकट करो। वैराग्य-ज्ञान-शक्ति नहीं है तो सभी से लोक-व्यवहार निभाना सीखो जिससे जन-सामान्य के मध्य प्रसन्न होकर जी सको। आज जो व्यक्ति कुशल ज्ञाता है उसकी प्रशंसा करना भी सीखो। पर की प्रत्येक प्रशंसा में स्व की प्रशंसा निहित होती है। सद्-गुणवान् वही होता है जो सद्-गुण-ग्राही होता है, गुण-ग्राही ही तो गुणवान् बनता है। गुण-ग्रहण भाव का अभाव जिसके विचारों में है वह गुणवान् कभी नहीं हो सकता है। एक-एक सिक्के को संग्रह करने वाला ही धनवान् हो पाता है। अल्प आय, अधिक व्यय करने वाला क्या वसुधा पर धनपति कहला पायेगा? वह धनपति बनने के स्वप्न ही देखे, धन तो नहीं देख पायेगा। इसी प्रकार से सद् गुणियों के गुण प्रशंसा शून्य सद्- गुणी नहीं बन पायेंगे। सृष्टि पर विकार-शून्य, व्यसन-शून्य, ईर्ष्या-शून्य, अहंकार तथा ममकार-शून्य, गुण-ग्राही लोग ही गुणवानों की ही नहीं, अपितु अन्त में कर्म-शून्य होकर भगवानों की श्रेणी में प्रवेश कर पाये हैं। सर्वप्रथम अकेलेपन से मुक्ति पाओ, शक्ति है तो एकाकी निज स्वात्म-भाव में निज को स्थापित करने का आनन्द के साथ अभ्यास करो।

### 94 - Get rid of seclusion first, then practise focus on own soul

For the man rid of the strength of world renunciation and knowledge, seclusion

PREVIEW ONLY

comes like a curse. The man tormented by seclusion even resorts to inauspicious karmas like killing others and suicide, is not able to listen to others, and to express his suffering to others. Engrossed in his own empty thoughts, he may become insane. He sees darkness all-around; he has no relative, friend, disciple, guru, neighbour or collaborator. He does not relish study, he does not know singing or playing music. He distances himself from acquisition of knowledge and meditation. He lives a deadened life. Initially, in his effort to become special he distances himself from others but when people start distancing themselves from him, he laments. Such men are devoid of demeanour.

Learn to give affection to become worthy of receiving it. The man without proper demeanour spends his whole life crying. Develop the attributes of affection, joy and love. Even if you lack the strength of world renunciation and knowledge, learn to observe the ways of the world so that you are able to live happily with others. Learn to praise the knowledgeable men. When you praise others, it reflects positively on you. The man who looks for good qualities in others himself becomes a worthy man. Without this attribute, one can never become a worthy being. Only the man who spends frugally can become a rich man. Can the man with meagre income and lavish spending ever become rich? Such a man can just dream of becoming rich! In the same way, those who do not see and praise good quality of others can never themselves become worthy men. In this world, only men who are rid of imperfections, addictions, envy, self-aggrandizement and sense-of-mine, and who adopt good quality of others, become truly worthy; in the end, they are able to attain the status of the Supreme Lord. First get rid of isolation and then, as per your strength, practise establishing yourself in own self so as to enjoy true happiness.

विचार
THE THOUGHTS

## ९५. दृढ़ आत्म-विश्वासी सम्पूर्ण सफलताओं का अधिकारी

उत्कर्ष-पूर्ण जीवन वह व्यक्ति जीता है जिसके विचारों में प्रतिक्षण आत्म-विश्वास है। संसार की सबसे बड़ी निधि आत्म-विश्वास ही है। विश्व का ऐसा कोई भी बड़ा कार्य नहीं है जिसे आत्म-विश्वासी पूर्ण करने की क्षमता न रखता हो। साथ ही वह सर्वजन समूह का स्नेह-पात्र भी बन जाता है, अन्य जनों को विकास की शक्ति भी प्रदान करता है। सर्वलोक आत्म-विश्वासी पर विश्वास भी करता है, क्योंकि वह प्रत्येक असम्भव कार्य को सम्भव कर लेता है। आत्म-विश्वास से शून्य व्यक्ति के पास अन्य प्रबल संयोग भी असफल हो जाते हैं। आत्म-विश्वासी के पास असफल कार्य भी सफलता में परिवर्तित हो जाते हैं। आत्म-विश्वास के बल पर एक मानव महा-मानव, तीर्थंकर जैसे पद पर अधिष्ठित हो जाता है, जो कि विश्व को स्याद्वाद, अनेकान्तवाद का सूत्रपात करते हैं।

आत्म-विश्वास की महिमा से श्रीराम पुनः अयोध्या के स्वामी बने, रावण हरित सीता को पुनः प्राप्त कर सके। एक नारी का आत्म-विश्वास देखो; रावण के प्रयासों को विफल कर स्व-शील धर्म की रक्षा की। आत्म-विश्वास का प्रचण्ड बल है कि अग्निकुण्ड में कूदकर विश्व को चमत्कारित कर दिया, सर्व लोक जय-जयकार से गुंजायमान् हो गया। प्रभु पार्श्वनाथ के दृढ़ आत्म-विश्वास ने वैरी के वैर को चुनौती दे डाली। प्रभु पार्श्वनाथ स्वामी अचलयोग में लीन रहे, कैवल्य ज्ञान को प्राप्त कर देवों की पूज्यता को प्राप्त हुए। वैरी कमठ भी हार स्वीकार कर भगवान् पार्श्व प्रभु के चरणों का दास बन गया।

PREVIEW ONLY

व्यवहार में देखें; सामान्य जीवन जीने वाले नागरिक भी देश के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री जैसे पदों पर आसीन हुए। विषमता में भी आत्म-विश्वास नहीं हटना चाहिए। भारत भूमि पर महान्-महान् निर्ग्रन्थ साधु हुए, सतियाँ हुईं जिन्होंने अपने जीवन में घोर उपसर्ग-परीषह सहन किए। शारीरिक, मानसिक, वाचनिक वेदनाओं को सहन किया, लोगों के तिरस्कारों को पुरस्कार के रूप में स्वीकार कर आगे बढ़ते रहे, अपने-अपने क्षेत्र में महारथी हुए। जीवन में हार नहीं मानना चाहिए, कार्य-प्रणाली एवं चारित्र विशुद्ध होना चाहिए, जगत्-हित भावना हृदय में निवास करना चाहिए और विरोधों में प्रसन्न रहना सीख लेना चाहिए।

प्रसन्नता कार्य-पूर्णता का मंगल मंगलाचरण है। यदि चित्त प्रसन्न नहीं तो जगत् का कोई भी मंगलाचरण कार्य पूर्णता का हेतु नहीं बन सकता। आत्म विश्वासी को स्व-पर भावों को पढ़ते हुए प्रतिक्षण प्रसन्न होने का सम्यक् विचार रखना चाहिए। स्व-विचारों में स्वयं के प्रति अविश्वास नहीं आना चाहिए। परमात्मा के प्रति विश्वास हटने पर जीव का अकल्याण हो जायेगा और स्व-पर से विश्वास हट गया तो कार्य विफल हो जायेगा। जीवन की सम्पूर्ण सफलताओं का अधिकारी प्रसन्नचित्त आत्म विश्वासी है, अन्य नहीं।

### 95 - The resolute, self-confident man has a claim to all success

The man whose thoughts incessantly are full of self-confidence lives a life of growth. The greatest wealth in the world is self-confidence. No work in the world is impossible for the man with self-confidence. Moreover, he is adored by all and also provides strength of growth to others. The world puts its faith on him due to his capability to make possible even an impossible task. Even the availability of all supporting paraphernalia fail to help the man rid of self-confidence to accomplish any task. On the strength of self-confidence the man becomes great; he even attains the status of a *Tīrthaṃkara*, the promulgator of the doctrines of conditional-predication *(syādvāda)* and non-absolutism *(anekāntavāda)*.

On the strength of self-confidence, *Śrī* Rāma regained the throne of Ayodhyā after reclaiming wife Sītā who was abducted by Rāvaṇa. See the self-confidence of Sītā; she protected her chastity from Rāvaṇa. It was due to her self-confidence that she was miraculously saved as she willingly jumped into the huge fire lit to burn her to ashes. The whole world echoed the words of 'victory', 'victory' for her. Through self-confidence Lord Pārśvanātha challenged the enmity of Kamaṭha. Lord Pārśvanātha established himself in utterly stable and pure meditation *(yoga),* attained omniscience and became worthy of adoration by the world. The enemy Kamaṭha, after accepting defeat, too had to bow down in front of the Lotus Feet of Lord Pārśvanātha.

Look at the world around; even citizens leading a simple life have been able to attain high status as the President and the Prime Minister of the country. Your self-confidence should not die down even in the face of adversities. The Indian landscape has witnessed many great ascetics and chaste nuns who endured grave calamities and disasters. They endured bodily, mental and verbal pain, accepted dishonour from the public as reward and moved ahead; they became great in their respective fields. Never accept defeat in life. Let your way of doing things and conduct be pure, let the thoughts of world well-being percolate in your heart and let you learn to be happy in the face of opposition.

PREVIEW ONLY

The work done with happiness is its invocation. No ritualistic invocation will help in the accomplishment of the task if you are unhappy. Every instant, while reading the thoughts of self and others, the self-confident man should maintain the noble thought of maintaining his happiness. Never lose your self-confidence. There is the loss of propitiousness with the loss of faith on the supreme-soul *(paramātmā)*; with the loss of confidence in self and others the work will remain unaccomplished. A happy and self-confident man, and none other, is entitled to all success in life.

विचार
THE THOUGHTS

## ९६. घनिष्टता व मित्रता उच्च विचारशील के साथ ही करें

विचारशीलता विकासशीलता है, बिना विचारशीलता के विशालता में प्रवेश नहीं हो सकता। आत्म-विकास चाहिए तो विचारों को विशालता प्रदान करो। विश्व वसुधा पर वे ही महान् हुए, जिन्होंने अपने हृदय एवं विचार विशाल किए हैं। जो भी जीव नष्ट हुए हैं वे सब विचारों के हीन तथा हृदय के संकोची होने के कारण हुए हैं। अपने जीवन में महानता या हीनता व्यक्ति के विचारों पर आलम्बित है। व्यक्ति को प्रतिपल स्वकीय विचारों का विकास करना चाहिए। जो विकासशील हैं तथा जो विकासहीन हैं, दोनों का अध्ययन सतत करना चाहिए। विकासशील विकसित कैसे हुए, विकासहीन पतन को कैसे प्राप्त हुए, इस पर गहन विचार की आवश्यकता है।

व्यक्ति के विकास में विश्व-विकास निहित होता है। बौद्धिक विकास एक व्यक्ति का ही क्यों न हो, उससे सहस्रों व्यक्तियों का विकास होता है, आजीविका चलती है। जिस प्रकार एक कोई लेखक, उसने एक ग्रन्थ का सृजन किया तो कागज चाहिए, लेखनी भी चाहिए, एक व्यापारी को व्यापार मिला, ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। उस ग्रन्थ में गूढ़ रहस्य का कथन किया गया था, रहस्यमयी ग्रन्थ अध्ययन करने वाले लाखों लोग ज्ञान प्राप्त कर स्व-पर का कल्याण करते हैं। देखो, एक व्यक्ति के माध्यम से लाखों-करोड़ों जीवों का हित होने लगा। समझो, एक बौद्धिक विचारक के नियोग से अनेकों का अनुग्रह (उपकार) हुआ। विचारक के पार्थिव शरीर का तो विनाश हो जाता है, परन्तु उसके व्यक्तित्व, कृतित्व का विनाश नहीं हो पाता। संसार के हृदय-हृदय में उसका वास रहता है, इसलिए प्रतिक्षण (प्रतिपल) विकास का विचार करना चाहिए। अपने विचारों को विकासशील बनाईये, विचारों की संकुचिता का विसर्जन कर देना चाहिए। संकुचित विचार वाला व्यक्ति न स्वयं का ही विकास कर पाता है, न अन्य का ही।

जीवन में किसी से विमर्श करना हो तो सर्वप्रथम उसकी विचारों की सीमा का बोध कर लेना; विकसित सोच वाला है या संकुचित सोच वाला, पूर्ण ज्ञानवान् है या पुण्यक्षीण? स्वयं के जीवन में कैसे जी रहा है, दु:ख के साथ या सुख के साथ, यश के साथ या अपयश के साथ, धर्म के साथ या अधर्म के साथ, शील के साथ या कुशील के साथ, सज्जनों के साथ या दुर्जनों के साथ, उत्साह के साथ या अनुत्साह के साथ, सभी को सुख देता है या दु:ख? सर्व विषयों को समझ कर जो विधि-निषेधात्मक जीवन जीता है उससे ही सलाह लेना चाहिए अथवा विचार-विमर्श करना चाहिए। असफल, उत्साह-विहीन, अनुत्तीर्ण व्यक्तियों से सलाह लेने नहीं जाना चाहिए।

जो स्वजीवन में ही सफल नहीं हो सके, वे अन्य को क्या सफलता का दिग्दर्शन करायेंगे? इसलिए स्व-पर वृद्धि का भाव रखते हो तो सर्वश्रेष्ठ जनों का ही सम्पर्क करो। हीन-दीन

चारित्र-शून्यों से सदा ही आत्म-रक्षा करें। देश, राष्ट्र, समाज, धर्म की भी रक्षा करें। मित्रता भी योग्यवानों के साथ ही करें। अयोग्य जनों के साथ भजन, भोजन, भाषण, मित्रता भी न करें। सुख चाहिए तो सहयोग सबका ही करें। सम्राट्, राजनेता, साधुजनों का धर्म कर्तव्यभूत है, परन्तु घनिष्टता व मित्रता परीक्षा करके उच्च-आचरण, उच्च विचारशील, करुणा, दया, अनुकम्पा, अहिंसा धर्मी के साथ ही करें।

बुद्धिवानों की मित्रता ही श्रेष्ठ है; अज्ञानियों की मित्रता शत्रुवत् है, वह क्षण-क्षण में पीड़ा का कारण बनती है। अनेकों विपत्तियों को सहसा ही प्रदान करा देती है। शांति, आनन्द, सुख, यश, चारित्र, बल, विद्या, प्रज्ञा चाहिए तो श्रेष्ठ जनों के साथ वास करो, साथ ही सद्-साहित्य के साथ रहो, श्रेष्ठ ग्रन्थों का पठन-पाठन करो। विवेक बुद्धि को जाग्रत रखना है तो श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान पूर्ण अध्ययन एवं प्रज्ञावन्तों की गोष्ठियों में जाओ। ज्ञान रहेगा, तो स्वशक्ति का विवेक जाग्रत रहेगा। अज्ञ, विवेक-विहीन, सेवक जनों के पास वास करने का फल मात्र प्रमाद, अज्ञानता ही है। जो तत्त्वज्ञान शून्य हैं, मात्र भौतिक सुख भोगी हैं, जड़मति हैं, भूत-भविष्य पर जिनका कोई चिन्तवन नहीं है और वर्तमान मात्र को देखने वालों से प्रज्ञावानों को सदा आत्मरक्षा का विचार करना चाहिए, अन्यथा घोर आपत्ति एवं अपयश की ज्वाला में जलना पड़ेगा, इसमें किञ्चित् मात्र भी संशय नहीं है।

## 96 - Intimacy and friendship with only the man with laudable thinking

Thoughtfulness means growth; no development is possible without thoughtfulness. If you seek self-development, give expanse to your thoughts. In the world landscape only those men who have provided expanse to their hearts and thoughts have been able to become great. All those with mean thoughts and small hearts have witnessed extinction. The greatness or diminutiveness in life depends on the thoughts of the man. Try to give expanse to your thoughts every moment. Study those who are witnessing growth and those witnessing decline. Think deeply about the cause of their growth and decline.

World-development rests on the development of the people. The intellectual growth of even one person causes growth of thousands of men and provides them sustenance. For instance, an author who has written a sacred text requires paper, pen and then a publisher. Hundreds of thousands of men will benefit from the study of the profound teachings contained in it. Think; one intellectual man has been able to benefit hundreds of thousands of men. The body of the thinker gets destroyed but his personality and compositions live forever. He lives in the hearts of every man on earth; think, therefore, every moment about your development. Shedding away all mean thoughts make your thoughts expansive. The man with mean thoughts cannot cause growth of self or others.

When you need to discuss a topic with a man, assess his level of thinking. Ask yourself these questions: Is his thinking broad or narrow, is the man knowledgeable or lacks merit? Is he leading a life of happiness or misery; is he honourable or disgraceful; is his life full of dharma or perversity; is he virtuous or immoral; is his company noble or ignoble; is he spirited or spiritless; does he endow to others happiness or misery? If the man has the understanding of affirmation and negation in his living, he is worthy of advising you; you may approach him. Don't go for advice to men who are unsuccessful, spiritless, and failures.

Those men who are unsuccessful in own life are not fit to give discourses on success

PREVIEW ONLY

to others. Maintain contact only with the best of men. Protect yourself from men who are pitiable and ignoble. Try also to protect the country, nation, society and dharma. Make friends with worthy men. Don't pray, eat and speak with or befriend unworthy men. The king, the leader and the ascetic have to observe their duties, still for intimacy and friendship choose only men with high conduct, thoughts, compassion, mercy, tenderness and faith on the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*.

Friendship with only the men of wisdom is worthy; friendship with the ignorant men is denigrating, it causes constant pain and trouble. Live with noble men if you wish for peace, gaiety, happiness, honour, conduct, strength, learning and sound intellect in your life. Be in company with good literature and study sacred texts. Keep your power of discrimination awake by reading excellent texts on the reality of substances and attending conferences of intellectuals. Acquisition of knowledge will keep awake your power of discrimination. The fruits of living in the company of ignorant, indiscriminating and subservient men are just inaction and ignorance. Protect yourself from the men who are unaware of the reality, who remain engaged only in sensual-pleasures, who are dumb-witted and who live only in the present without concern for the past and future. Otherwise, be sure that grave calamity and dishonour are in store for you.

विचार
THE THOUGHTS

## ९७. आत्म-उत्कर्ष के लिए स्व-विचारों में विशालता लाओ

सम्यक् विचार व्यक्ति को महान् बना देते हैं। विचारों की विशालता जीवन को भी विशालता प्रदान करती है। विचारों की दीनता-हीनता व्यक्ति को दीन-हीन बना देती है। यदि आप आत्म-उत्कर्ष की भावना रखते हैं तो सर्वप्रथम स्व-विचारों में विशालता लाओ। जिस अल्प-व्यय से बहुलाभ प्राप्त होता हो, उस अल्प-व्यय को स्वीकार कर लेना चाहिए। जिस अल्प-अपमान से भावीकाल में बहु-सम्मान की सम्भावना वर्द्धमान होती है, उस अल्प-अपमान को भी स्वीकार कर लो, फिर जीवन पर्यन्त आनन्द रहेगा। जिस अल्प-सम्मान के पीछे जीवन पर्यन्त आँखों में आँसू गिराने पड़ें, ऐसा सम्मान किस काम का? ऐसा विचारो, ऐसा सुनो, ऐसा कार्य करो जिससे पाप-कर्म रुधन करें, पुण्य-कर्म प्रसन्न रहें। पाप-पुण्य शून्य दशा आनन्दमय हो जाए। पल-पल, क्षण-क्षण आनन्द-ही-आनन्द रहे, ऐसा स्वयं का चिन्तवन करो। चित्त में अन्य कोई अशुभ विचार ही न आयें।

## 97 - Adopt broad thinking for self-development

Right thoughts make a man great. Broad thinking provides expanse to life. Narrow-mindedness makes life pitiable. If you wish for self-development adopt broad-thinking. If a little expenditure is going to yield good profit, accept that little expenditure. If a little disgrace is going to yield great honour in the future, accept that little disgrace to be happy in future. Of what use is that little honour of today which results in misery for the rest of life? Think, listen to and do only that which make your demeritorious karmas cry and meritorious karmas smile. Let you be rid of all karmas, meritorious and demeritorious and attain the state of supreme happiness. Think about the state in which you have incessant bliss. No inauspicious thought should engage your mind.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## ९८. अप्रशस्त कर्म-प्रकृतियों को पुण्यात्मा पुण्यभूत परिणत करा लेता है

अशुभ विचार अपना अशुभ माने कि इस पुण्यवान् के यहाँ पर मुझे आने का अवसर ही नहीं मिल रहा। पुण्य-भाव गद्‌गद् हो जाए, अहो! अहो! अहो! मुझे इस भाग्यवान् के यहाँ से कहीं जाना ही नहीं, ऐसा मेरा अहोभाग्य, परम-सौभाग्य। पुण्यात्मा जीव अपने प्रशस्त-भावों से कर्म-प्रकृतियों को पुण्यभूत परिणत करा लेता है, अप्रशस्त प्रकृतियों को भी प्रशस्त कर लेता है। जो कर्म अशुभ रूप से फलित होने वाले थे, उन्हें भी प्रशस्त पुण्यात्मा शुभरूप फलित कर लेता है। यह बहुत बड़ी सहज प्रक्रिया है, जैसे औषधि के वर्द्धमान शक्ति-अंश हीयमान विषादि के शक्ति अंशों को संक्रमित कर औषधभूत परिणत कर लेते हैं। जैसे अस्त्र-शस्त्र विद्या में कुशल योद्धा अपने अधिक शक्तिमान अस्त्रों से शत्रुओं के अस्त्रों की शक्ति को क्षीण कर युद्ध में विजय प्राप्त कर लेता है।

### 98 - A man with merit converts evil karmas into meritorious karmas

Inauspicious thoughts should get a feeling of distress on not being able to get a chance to enter the mind of the meritorious man! On the other hand, auspicious thoughts should feel highly blessed that they get a chance to live forever in the mind of the meritorious man! The meritorious man, through his laudable thoughts, converts even evil karmas into meritorious karmas. The karmas that were ready for fruition in an inauspicious manner, get converted into those with auspicious outcomes. This process is normal; it is like a powerful medicinal chemical can convert the weak toxic particles of poison into a medicine. Or, it is like a fighter highly skilled in the use of weaponry can win over his enemies equipped with more advanced weapons.

विचार
The Thoughts

## ९९. शक्ति-अंश सिद्धान्त

जिस वस्तु व व्यक्ति में शक्ति-अंश अधिक होते हैं वह अन्य को स्व-रूप परिणत करा लेती है। साधु पुरुष के शक्ति-अंश अधिक हैं, तो वह असाधुओं को भी साधु रूप कर लेता है। साधु स्वभाव यदि अल्प शक्तिमान हुआ तो असाधु स्वभाव साधु स्वभावी को प्रभावित कर उसे भी असाधुभूत कर लेता है। यह सिद्धान्त सार्वकालिक, सार्वक्षेत्रिक है, जो सर्व कार्यों में लगता है। इसी सिद्धान्त से विष का निर्माण होता है, इसी सिद्धान्त से औषधियाँ बनती हैं और इसी सिद्धान्त पर मंत्र, तंत्र, यंत्र फलित होते हैं। वरदान भी इसी सिद्धान्त पर फलित होते हैं। संगति, कुसंगति का प्रभाव शक्ति-अंशों पर ही निर्भर है। वस्तुओं एवं व्यक्तियों का सुख-दुःख रूप होना भी शक्ति-अंश सिद्धान्त का ही परिणाम है। एक व्यक्ति को एक वस्तु या व्यक्ति सुख रूप फलित हो रहा है। दूसरे व्यक्ति को वही वस्तु व व्यक्ति दुःख रूप फलित हो रहा है। यह भेद किस बात का संकेत दे रहा है? विचार करो, निर्णय भी करो और तदनुसार वैसा जीवन भी जीना प्रारम्भ करो। अन्य में व स्वयं में शक्ति-अंशों का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल अन्वेषण करना सीखो।

### 99 - The doctrine of the degree of attribute

The object or person with higher degree of a particular attribute transforms the other object or person with lower degree of the same attribute into accepting its nature. If a

PREVIEW ONLY

noble man has a high degree of nobility, he transforms ignoble men into nobility. Also, ignoble men have the power to transform noble men into ignobility. This doctrine applies to all times, places and tasks. This doctrine is applied in making poison and medicines; it is also applied in *mantras*, *tantras*, and *yantras*. Even bestowal of boons rests on this doctrine. The impact of good or bad company rests on the degree of the particular attribute in different persons. The objects or persons become the sources of happiness or misery strictly according to this doctrine. An object or person becomes the source of happiness for one person. The same object or person becomes the source of misery for another person. Think about the cause; take a decision and live accordingly. Investigate, minutely and comprehensively, the degree of particular attributes in self and others.

विचार
THE THOUGHTS

## १००. स्वाध्याय - जीवन विकास का महान् सूत्र

विज्ञ पुरुष प्रत्येक अवस्था में अध्ययन (स्वाध्याय) करते हैं। जीवन विकास का महान् सूत्र स्वाध्याय है। क्षण भर भी मिले समय को व्यर्थ नहीं जाने देना। आत्मा को अमरत्व की विद्या बताने वाला स्वाध्याय शीघ्र कर लेना। सद्-साहित्य का स्वाध्याय एकत्व-विभक्त्व भाव की परम-औषधि दाता है। वस्तु के वस्तुत्व का सत्यार्थ-बोध कराने वाला कोई है, तो वह है श्री जिनागमों का स्वाध्याय। आगम अभ्यास पूर्ण हो जाये, फिर स्वसमय के साथ-साथ पर-समय के अध्ययन का भी सम्यक्-विचार करना चाहिए। लोक में जितने भी नर-श्रेष्ठ हुए हैं, होंगे एवं हैं, वे सब स्वाध्याय से ही हुए हैं, इसलिए सतत स्वाध्याय में लीन रहो। शुद्ध-निर्दोष शब्द, अर्थ, उभय, कालाचार, विनयाचार, उपधानाचार, अनिह्नवाचार, बहुमानाचार इन आठ अंगों से युक्त होकर स्वाध्याय करना स्वात्म हितकारी है। इन आठ अंगों का विस्तार इस प्रकार से है- शास्त्रों को शुद्ध पढ़ना, सत्यार्थ अर्थ निकालना, दोनों कार्य सम्यक् करना, समयानुसार अध्ययन करना अथवा अकाल में आगमों का अध्ययन नहीं करना, विनयपूर्वक शास्त्रों का अभ्यास करना, जब-तक ग्रन्थ पूर्ण न हो जाए तब तक कोई नियम धारण करना, गुरु एवं ग्रन्थ का नाम नहीं छिपाना, ग्रन्थों का बहुमान करना। ग्रन्थों का बहुमान ज्ञान का सम्मान है। ज्ञान के सम्मान बिना ज्ञान का आदान कैसे होगा?

## 100 - Study of the scripture – the mantra for self-development

The learned men study the scripture in all situations. Study of the scripture is the mantra for self-development. Do not waste even a moment of your time. Study of the scripture teaches the way to transform the soul into the state of infinite bliss. It is the supreme medicine that clears up all confusion about the soul's oneness and separateness with other substances. The true knowledge of the objectness (nature) of the substances is obtained only by studying the Jaina scripture. After studying the scripture, one should meditate on the true nature of the self and others. All great men – past, present and future – attain greatness only through the study of the scripture; engage yourself constantly in the study of the scripture. Purity of these eight limbs needs to be observed while studying the scripture: 1) *śabda,* 2) *artha,* 3) *ubhaya,* 4) *kālācāra,* 5) *vinayācāra,* 6) *upadhānācāra,* 7) *anihnavācāra,* and 8) *bahumānācāra*. These eight limbs are explained as under: 1) correct and unblemished reading; 2) understanding the correct

PREVIEW ONLY

meaning; 3) both – correct reading and meaning; 4) observance of propriety of time – do not study the scripture at an inappropriate time; 5) studying with due humility and modesty; 6) observance of some vow (rule for self) till the completion of the scripture; 7) not concealing the name of the guru and the sacred text; and 8) reverence for the scripture. Reverence for the scripture entails reverence for knowledge. How can one acquire knowledge in the absence of reverence for the scripture?

विचार
The Thoughts

## १०१. ज्ञानाभ्यास के बिना नर-जीवन अन्धकारमय है

विश्व में सर्वश्रेष्ठ निधि ज्ञान है, इसके बिना नर-जीवन अन्धकारमय है। ज्ञानाभ्यास में सदा लीन रहो। ज्ञानी एवं अज्ञानी के जीवन में बहुत अन्तर है। लोक दृष्टि एवं परमार्थ उभय स्थिति में देखो, विचार करो। अज्ञानी नर के साथ जगत् के लोग पशुवत् व्यवहार करते हैं तथा ज्ञानी के साथ देववत्। यह भेद गुण अपेक्षा, स्वभाव अपेक्षा होता है। मनुष्य देह में पशुत्व व्यवहार यदि अच्छा नहीं लगता, तो फिर सदा प्रमाद छोड़ ज्ञान का अभ्यास करो। श्रुताभ्यास मानव जीवन के लिए वरदान है। हीन-भावना एवं अपमान से बचने का मूलमंत्र है। प्रमाद जीवन का प्रबल शत्रु है, विकास का अवरोधक, विनाश का सेतु। आत्म-विकास चाहिए तो प्रमाद का विनाश करो अन्यथा जीवन का ही विनाश हो जायेगा, फिर नहीं कर पाओगे स्व का विकास। श्रेष्ठ कार्यों में उदास भाव 'प्रमाद' है। पापों से उदासीनता हो, अशुभ कर्म एवं व्यसनों से उदासीनता हो, तो गुण-वृद्धि होगी। विकास के हेतुओं से उदासीनता तो विनाश का कारण है। आत्म-द्रव्य स्व-स्वभाव में अहेतुक है। शुभ-अशुभ परिणाम सहेतुक हैं। सहेतुकों पर नियंत्रण रखना विशुद्ध बुद्धिमान् का स्व-कर्तव्य है। अपने कर्तव्य का ध्यान 'धर्म' है।

## 101 - Without knowledge-acquisition the life of a man is full of darkness

The best treasure in the world is knowledge; without knowledge the life of a man is full of darkness. There are major differences between the life of a learned man and an ignorant man. See and think from both points-of-view – the worldly and the spiritual. The world treats an ignorant man like an animal and the learned man like a deva. This difference is due to their attributes and nature. If you do not wish to be treated like an animal, leave sloth and go for the acquisition of knowledge. The knowledge of the scripture is a great boon for the man. It is the mantra for getting rid of the inferiority complex and dishonour. Sloth is a great enemy of man, it impedes growth and a facilitator of destruction. If you desire self-development, get rid of sloth, otherwise your life is doomed for destruction. Sloth means disinclination towards performing laudable tasks. If you are disinclined towards evil deeds, inauspicious karmas and addictions, your virtues will increase. Disinclination towards the causes of development results in destruction. The substance of soul is non-performing in its own nature. However, the auspicious and inauspicious dispositions are performing in their nature. It is the duty of the truly knowledgeable man to keep control over performing things. And, to keep in the mind own duty is 'dharma'.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## १०२. कार्य सिद्धि के लिए पुरुषार्थ एवं भाग्य दोनों की सत्ता

यदि आप अपने जीवन में नि:श्रेयस तथा अभ्युदय उभय विकास का लक्ष्य रखते हैं, तो सावधानी भी रखनी चाहिए। जीवन का विकास व्यक्ति के भाग्य एवं पुरुषार्थ पर प्रतिष्ठित है। जो लोग लोक में विशिष्ट स्थान को प्राप्त हुए हैं वे मात्र पुरुषार्थ से ऊँचे नहीं उठे, न मात्र भाग्य से ही, पुरुषार्थ एवं भाग्य दोनों की बराबर सत्ता में कार्य की सिद्धि होती है। जो व्यक्ति इनमें से एक पर ही विश्वास किए बैठा है, वह अपने जीवन में असफलता, निराशा एवं हीनभावना को ही देख पायेगा। उसे विकास के दर्शन तो दुर्लभ हैं। कार्य करने मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं होती, कार्य सिद्धि के लिए कार्य के साथ भाग्य लाना होगा। भाग्यहीन को श्रेष्ठ वस्तु का संयोग नहीं होता। विश्व में जितनी भी उत्कृष्ट भोग-सामग्रियाँ उपलब्ध हैं, वे सब पुण्यात्माओं के लिए हैं, पुण्यक्षीण तो पुण्यवानों के अनुचर बनकर अपना जीवन पूर्ण कर लेते हैं। पुण्य भोगी के प्रति द्वेष बुद्धि न करके, उस जीव के भूत के कार्यों का विचार करना चाहिए। भूत में अच्छे काम न किए होते तो आज ऐसा वैभव कैसे प्राप्त करता? ईर्ष्या के स्थान पर गुणियों की अनुमोदना करना सीखो। प्रशंसनीय की प्रशंसा करने की शक्ति स्वयं के अन्दर वर्द्धमान करो, जिससे स्वयं का पुण्य भी वर्द्धमान हो।

### 102 - Both, effort and fate, are required for accomplishment of work

If you aim for excellent and progressive development in your life, be careful too. Development in life depends on fate as well as effort. Men who have attained special status in their lives have done so as a result of both, fate and effort; neither fate alone nor effort alone can accomplish the work. If you rest only on one of these, failure, despair and sense of inferiority are in store for you. The man who rests only on one of these cannot witness development. Fate plays its role along with effort for accomplishment of work. The man without fate does not get access to proper means to do the work. All the best objects of enjoyment in the world are meant for those with merit; men without merit just spend their lives as their subordinates. Rather than having a sense of jealousy for men with merit, think about their past deeds. Without laudable deeds of the past, how would they be able to enjoy the grandeur of today? Think of approving such worthy men rather than engendering a sense of jealousy for them. Develop the strength to praise the worthy; this will enhance your own merit.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## १०३. वे निर्धन भी श्रेष्ठ हैं जो श्रीजिन-भक्ति में चित्त लगाते हैं

ईर्ष्या, डाह, क्लेश, किसी के घर में सम्पत्ति भरने नहीं आते, अपितु इनसे घर की शान्ति, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, प्रीति, स्नेह एवं वात्सल्य का क्षय होता है। आपके पास धन न भी हो धर्म तो हो, शान्ति-आनन्द का वातावरण तो रहे, जिससे आप आत्म-शान्ति का वेदन कर सकें। वह सम्पत्ति भी किस काम की जिसके पीछे परस्पर की प्रीति का क्षय हो जाए? माँ, भाई, पिता, पुत्र, पत्नी आदि सम्बन्ध ही नष्ट हो जायें, जगत् हँसी करे? वह निर्धन श्रेष्ठ है, जो सुबह-शाम, रात्रि के पूर्व, सूर्य के प्रकाश में निरोग होकर परिवार के साथ दाल-रोटी खाकर प्रसन्न रहता हो, प्रभु भजन में चित्त लगाता हो। प्रभु एवं परमात्मा की भक्ति में जब भक्त लीन होते हैं तब सम्पूर्ण पर-विकल्पों से शून्य होकर

भक्ति रस का आनन्द लेते हैं। जैसे पुष्पों का आनन्द भ्रमर लेते हैं, उसी प्रकार श्रीजिन-भक्त प्रभु भक्ति के मकरंद का स्वाद लेते हैं और अशुभ-विकल्पों से आत्म-रक्षा करते हैं।

### 103 - Laudable are those who, though poor, have devotion for Lord Jina

Jealousy, envy and anguish do not come forward to enrich you; on the other hand, these destroy your peace, wealth, health and affection. Even if you do not have money, you can still have dharma and an environment of peace and happiness so as to enjoy self-contentment. Of what use is that wealth which destroys mutual affection? The wealth that destroys the affection of relations like mother, brother, father, son and wife? That poor man is laudable who in the morning and evening – before sunset and in sunlight – eats simple vegetarian food with his family and remains healthy and happy, and also spends time in devotion to Lord Jina. When the devotee gets engrossed in devotion, he gets rid of all externalities and enjoys the nectar of devotion. Just as the bees enjoy the flower, in the same way, the devotees enjoy the nectar of devotion to Lord Jina and thereby protect themselves from all inauspicious leanings.

विचार
THE THOUGHTS

### १०४. आत्महत्या कष्ट-मुक्ति का उपाय नहीं है

भक्ति एक विज्ञान है। तनाव में जीने वाला प्रतिक्षण आत्मिक क्लेश प्राप्त करता है। स्वयं के कृत कर्मों पर विचार करते-करते और अधिक दुःखी होता है। उसका परिणाम यह होता है, वह व्यक्ति मानसिक, शारीरिक अस्वस्थता को प्राप्त हो जाता है, फिर वह स्वयं के जीवन से निराश होकर आत्महत्या जैसे अशुभ-कृत्य कर बैठता है। वह समाज, परिवार, राष्ट्र का अहित कर, परलोक में प्रवेश कर गया। उसने तनाव, क्लेश-भावों से आत्महत्या की, इसलिए अगला भव (गति) भी अशुभ ही मिलेगा। जिस दुःख को सहन नहीं करने के कारण आत्महत्या की थी, वही और उससे भी अधिक कष्ट अगली पर्याय में भोगना पड़ेगा। आत्महत्या कष्ट-मुक्ति का उपाय नहीं है। यदि आत्महत्या कष्ट-मुक्ति का उपाय होता तो सर्वसाधु भगवन्त आत्महत्या ही कर लेते, वे तो समता-भाव, माध्यस्थ-भाव, समाधि-पूर्वक प्राणों का विसर्जन करते हैं।

### 104 - Suicide is not a means to get rid of sufferings

Devotion is the science of discrimination. The man under stress undergoes anxiety every moment. His suffering increases as he thinks about his deeds. He reaches a stage of mental and bodily ill-health. He feels defeated by life and and resorts to the inauspicious acts like suicide. Causing harm to society, family and nation he reaches another world. Since he commits suicide under dispositions of stress and agony, his next life is bound to be inauspicious. He will get greater sufferings in the next life than the sufferings he was unable to bear in this life. Suicide is not a means to get rid of sufferings. Had suicide been a means to get rid of sufferings, all noble ascetics would have committed suicide! They, in fact, leave their present life with dispositions of equanimity, neutrality and meditation.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १०५. आत्महत्या, समाधि, बलि-यज्ञ का वास्तविक स्वरूप

आयु पूर्णता पर सच्चे साधु आत्महत्या तथा आत्महत्या जैसी समाधि भी नहीं करते, न अग्नि में प्रवेश करते हैं, न पर्वत से गिरते हैं, न जल-निमग्न होते हैं। लोक में जो भोले प्राणी शास्त्रों की भाषा एवं भाव नहीं समझ पाए, वे अग्नि में प्रवेश, जल में निमग्नता व पर्वत से पतित होकर मृत्यु करने को समाधि समझ बैठे, जबकि उसका अर्थ गम्भीर था, उसे समझो। लोक में प्रथम अग्नि में प्रवेश को समाधि मानते हैं, पर उसका तात्पर्य 'ध्यानाग्नि' है। ध्यान-रूपी अग्नि में प्रवेश कर योगीजन अपने पूर्वकृत अशुभ पाप-कर्मों को जलाते हैं, न कि हुताशन में भस्म हो जाते हैं।

लौकिक लोग दूसरी समाधि मानते हैं जल-निमग्न, उसका अर्थ समझो। आत्मा नदी है; उसमें संयम, समता, साम्य-भाव, माध्यस्थ परिणाम रूपी नीर है। ये पर-भावों से उपेक्षा ही है। ऐसे जल (नीर) में योगी का डूबना अर्थात् जीवन में आए उपसर्ग-परीषह से होने वाली पीड़ाओं से स्वयं को पीड़ित नहीं होने देना, यह जल-समाधि है। न कि असमय में नदी, सरोवर, सागर में डूबकर प्राण दे देना समाधि है। तीसरी पर्वत से पतित होना समाधि मानते हैं। अहो आश्चर्य! कितना गंभीर विषय लोग नहीं समझ पाए। पर्वत से पतित होना समाधि बिल्कुल सत्य है। समझो; कितना सुन्दर विषय है, हमारे देश के ऋषियों, मुनियों, योगियों ने कितना विशद चिन्तवन कर यह रूपक तैयार किया, पर अज्ञ-जनों ने रूपक को तद्रूप मान लिया। तत्त्वज्ञानी, अध्यात्म-विद्या में कुशल साधु आत्महत्या जैसे कार्यों को समाधि कैसे स्वीकार करते?

सती-प्रथा जैसी विकृति को राजाराममोहन राय ने समाप्त कराया। सती से तात्पर्य अग्नि में जलना नहीं था, वह शीलवती नारी अब अन्य पुरुष को नहीं चुनेगी, अपितु धर्म-ध्यान की अग्नि में तपेगी अर्थात् शीलपालन कर धर्म, कर्म में लीन रहेगी; बलात् जलना-जलाना नहीं है। उसी प्रकार पर्वत से पतित का तात्पर्य अहंकार, मद, घमण्ड, अभिमान के पर्वत से पतित प्राणी ही समाधि को प्राप्त होता है, यह अर्थ है।

अश्वमेध यज्ञ को ही लीजिए- धर्म-ग्रन्थ हिंसा की शिक्षा नहीं देते। अश्व की गति द्रुत होती है, उसी प्रकार मन की गति द्रुत है। भड़कते मन को वश में करना अश्वमेध यज्ञ है, न कि घोड़ों को हवन-कुण्ड में स्वाहा कर देना। शास्त्रों, पुराणों की भाषा गूढ़ उपमा, रूपक, यमकादि अलंकारों से पूर्ण होती है; उसे वस्तुत्व दृष्टि से समझना चाहिए। भैंसा की बलि देने वालो समझो; मूक प्राणियों ने आपका क्या बिगाड़ा है, जो आप उनकी बलि दे रहे हैं? रूपक इतना गंभीर हो गया; लोग समझ ही नहीं पाए। भैंसे का रक्त बहा दिया, उसका घात कर दिया। उसका तात्पर्य समझो; आत्म-विकास चाहिए, अध्यात्म तत्त्व को समझना है, ध्रुव-धाम पर समरसी भाव को प्राप्त करना है, तो भैंसे के समान जीवन मत जियो; प्रमाद का त्याग करो। भैंसा प्रमाद का प्रतीक है। पशु-पक्षी की बलि नहीं चढ़ाना, अपितु भगवद् स्वरूप की प्राप्ति हेतु प्रमाद, आलस्य, अनुत्साह की बलि चढ़ाना है, उसका त्याग करना है। विषय यह है, न कि हिंसा की प्रवृत्ति करना।

भारत देश 'अहिंसा परमो धर्मः' सूत्र का जयघोष करने वाला महान् देश है। भक्ति एक विज्ञान है। गम्भीर विचारों से पूर्ण सूत्र है। जब व्यक्ति शान्त चित्त से परमात्म-भक्ति में संलग्न होता है, तब अन्तरंग भावदशा पवित्र होने लगती है। व्यक्ति का सोच शौच होने लगता है, क्रूरता समाप्त होकर

PREVIEW ONLY

शान्त, निर्मल, दया, करुणा पूर्ण भाव बनने लगता है। परिणाम-स्वरूप विद्रोह के स्थान पर साम्यभाव खड़ा हो जाता है। सभी के प्रति एकत्व-भाव का जन्म हो जाता है। गरीब-अमीर, साम्यवाद, गोरा-काला, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेद समाप्त होने लगता है। एकत्व-भाव से वर्ण भेद, जाति भेद, रंग भेद, पन्थ भेद, सन्त भेद, कुटुम्ब भेद, उपजाति भेद, क्षेत्र भेद, भाषा भेद, कर्म भेद, कार्य भेद, उम्र भेद, ज्ञान-विज्ञान भेद, नगर भेद, सर्व भेदों में महाभेद, सिद्धान्त भेद, समाप्त होने लगते हैं। सम्पूर्ण भेदों में भेद-भाव की भावना बहुत ही घातक है। भेद करो, परन्तु द्वेष मत करो।

## 105 - The real nature of suicide, self-annihilation and sacrificial-rituals

At the completion of their lives, true ascetics do not commit suicide or perform devotional actions, which they call *samādhi*, like entering into the fire, falling down the hillock or submerging in the water. The simple and ignorant men did not understand the true import of the words of the scripture and mistook entering into the fire, falling down the hillock or submerging in the water for *samādhi* – self-annihilation. When the scripture talks about self-annihilation by entering into the fire, it means entering into the 'fire of meditation'. Supreme ascetics burn their inauspicious and evil karmas by entering into the fire of meditation; they do not burn their bodies.

Another form of *samādhi* known in the world is self-annihilation by getting submerged in the water. Understand the true meaning; the soul metaphorically is called a river filled with the water of the dispositions of self-restraint, equanimity, and neutrality. All these dispositions mean getting away from the thoughts that are foreign to self. The *samādhi* of submerging in the water, therefore, means getting submerged in such dispositions and not getting agonized due to afflictions caused by calamities and adversities. To get submerged in a river, pond or ocean for untimely death is not *samādhi.* Another form of self-annihilation is by falling down the hillock. Amazing! It is true but people have not been able to understand the real import of this serious and beautiful subject. Our religious leaders and ascetics used a metaphor which ignorant men could not understand. How could they have accepted suicide as *samādhi*?

The immoral practice of the widow immolating herself in her deceased husband's pyre was got abolished by Rajarammohan Roy. The real meaning of the teaching was not to burn herself in the fire but to burn self in the fire of meditation on dharma and to remain engrossed in the deeds of dharma, without longing for another man. In the same way, falling down the hillock means to come down from the hillock of vanity and pride; only then will one attain true *samādhi*.

Take the case of *'aśvamedha yajña'* or sacrificing the horse; the scripture never teaches killing. The mind wanders at a brisk speed, like that of a horse; to control the wandering of the mind is *'aśvamedha yajña'*. The language of the sacred texts is profound and it uses figures of speech such as metaphor, allegory and alliteration; these need to be understood as per the true nature of the objects. Those who sacrifice the *'bhaiṅsā'* – the buffalo – must understand the following. The allegory has been taken too seriously, without thinking and people started shedding the blood of the buffalo. The buffalo is a huge animal and a symbol of indolence. If you wish to understand spirituality and soul-development, and attain equanimity do not live the life of a buffalo. To attain

PREVIEW ONLY

godhood do not sacrifice mute animals but sacrifice your sloth, indolence and spiritlessness. This is the real purport of the scripture, rather than killing animals.

Bhārata (India) is a great country which proclaims the glory of the aphorism '*ahiṃsā paramo dharmaḥ*' – 'non-injury is the supreme dharma'. Devotion is the science of discrimination. When the man with peace of mind dedicates himself to devotion of the supreme-soul, his inner dispositions start getting purified. As his thoughts get purified, he gets rid of cruelty and becomes peaceful, pristine, merciful and compassionate. The idea of confrontation is replaced by the sense of equanimity. He starts thinking of unity with all. The differences like rich or poor, fair or dark complexioned, and castes like *brāhmaṇa, kṣatriya, vaiśya* and *śudra* get liquidated. The differences of tribe, caste, colour, sect, guru, family, subcaste, dwelling, language, karma, deed, age, scientific temper, town, and, most importantly, of the doctrine start disappearing. Creating differences is dangerous. Differentiate but without the disposition of aversion.

विचार
THE THOUGHTS

## १०६. अहिंसा एवं एकता से ही विश्व विकास सम्भव

जहाँ भेद की आवश्यकता है, वहाँ भेद भी अनिवार्य है। स्व-स्व धर्म एवं सिद्धान्तों में भेद है, वह तो है। जामुन, अनार एक नहीं हैं, गुण एवं धर्म अपेक्षा से भेद है सो है, परन्तु 'फल' संज्ञा अपेक्षा अभेद है। नाना पन्थ, सम्प्रदाय का भेद है, परन्तु हम सब मानव जाति के अथवा भारतीय हैं, उसमें अभेद है। देश हित के लिए तो एक रहो। जीव के अन्दर निर्मलता एकता पर ही आयेगी। अहिंसा, करुणा, दया, वात्सल्य तो सभी का एक है। जिस बात पर एकता है, उस एकता पर तो भारतवासियों, विश्व, राष्ट्रों को एक रहना ही चाहिए। एकता में जो आनन्द है, वह परस्पर का विरोध प्रदान नहीं कर सकता। यह सम्पूर्ण देश, विश्व, राष्ट्र के नागरिकों को एवं धर्माचार्यों को ध्यान देने योग्य बात है। विश्व एकता की शिक्षा भक्तों को दें, विश्व रक्षा, एकता एवं अखण्डता से ही होगी। शासकों के अहंकार, ममकार, ईर्ष्या-भावों से अखण्डता सम्भव नहीं है। अस्त्रों-शस्त्रों से विनाश ही है, विकास नहीं। एक युद्ध में अपार जन एवं धन की हानि होती है, शत्रुता वर्द्धमान होती है। किसी की हार, किसी की जीत की चाह भाव-हिंसा भी प्रचुर कराती है। देश एवं विदेशों की समस्या का समाधान अहिंसा ही है।

## 106 - World development possible only through non-injury and unity

Where distinction is necessary, it must be applied. There are differences in religions and doctrines. Blackberry and pomegranate are not the same in respect of their qualities and nature but these are one in respect of both being called 'fruit'. There are differences in men due to their allegiance to sects and religious orders but they are one as they all belong to the human race and are Indians. Remain united for the sake of the country. Unity brings tenderness. Non-injury *(ahiṃsā)*, compassion, mercy and affection are ground for unity. Remain one in respect of subjects of mutual agreement. The happiness that unity affords cannot be got through mutual conflict. This fact should be noticed by all citizens of the country and religious preachers. The leaders should teach world unity; the world can be saved only through unity. The dispositions of conceit, sense-of-mine

PREVIEW ONLY

and jealousy in the rulers cannot bring forth world unity. Weaponry is the cause of destruction only, never of development. A single war causes untold loss of men and money, and enhances enmity. The thoughts of victory of one and defeat of other cause great psychic-injury *(bhāva hiṃsā)*. Only through non-injury can the problems of the country and the world be solved.

विचार
The Thoughts

## १०७. विश्व रक्षा के लिए सन्धि कर्म ही श्रेष्ठ

सम्यक् वार्ता-पूर्वक सन्धि कर्म ही श्रेष्ठ है। सम्प्रति के युद्ध महा-विकराल हैं, आधुनिक अस्त्र महाविनाशक हैं। सम्पूर्ण विश्व अग्नि की ज्वाला में जल रहा है। ऐसे अस्त्रों का निर्माण चल रहा है जिससे विश्व-संस्कृति का अस्तित्व कराह रहा है। विश्व रक्षा के लिए राजनेताओं की कषायों का उपशमन आवश्यक है।

## 107 - Go for treaty for saving the world

Reaching at agreements through mutual discussion is required in the world. Today's wars are monstrous; weaponry is highly destructive. The whole world is burning in the fire. New and more destructive weapons are being made which threaten the existence of the human race. For protecting the world, the political leaders must subside their own passions.

विचार
The Thoughts

## १०८. आत्महत्या के सोच से दूर रखें सद्विचार

परमात्म-भक्ति एक विशिष्ट विज्ञान है। व्यक्ति को प्रतिक्षण श्रेष्ठ-जनों की संगति करनी चाहिए, जो कि सद्विचार, सद्ज्ञान, सद्चारित्र की रक्षा करती है। जीवन को सही दिशा मिलती है। युवा उम्र में व्यक्ति मार्ग से उन्मार्ग को शीघ्र स्वीकार लेता है। उसका परिणाम; वह भविष्य में बहुत ही कष्टप्रद, हास्यप्रद, दीन-हीनता में परिवर्तित होते देखा जाता है। सोच की शुचिता विलीन हो जाती है। उसका फल अत्यन्त भयंकर होता है। उसके जीवन का आनन्द पूर्ण समाप्त हो जाता है, मृत्यु की इच्छा जाग्रत होने लगती है। जहाँ जीने का भाव था, वहाँ मृत्यु प्रिय लगे, अहो आश्चर्य! जीव कितना दुःखी है, जो कि मरने को तैयार हो रहा है! आत्महत्या करना किसी समस्या का समाधान नहीं, अपितु समस्या का बढ़ जाना है। आत्महत्या करने वाला स्वयं की समस्या को परिवार, कुटुम्ब, वंश व देश को सौंप जाता है।

## 108 - Laudable thinking keeps at bay the thought of suicide

Devotion to the supreme-soul is an excellent science of discrimination. The man should always keep company of excellent men; this protects his thinking, knowledge and conduct. Life gets into the right direction. Youth is easily led to wrong path. As a result, the future of a young man becomes painful, derisory and miserable. His strength of thinking vanishes. The result is dreadful. All happiness of life gets evaporated and he starts longing for death. It is amazing; men want to live and he longs for death! He must

PREVIEW ONLY

really be under severe pain. Suicide, however, is not a solution to any problem; it aggravates the problem. The man committing suicide transfers his problems to his family, progeny and country.

विचार
THE THOUGHTS

## १०९. विवेकपूर्ण कार्य ही अमृत रसायन

विवेकशील, विज्ञ प्राणी दुःखों को समता से सहन करता है। वह अपनी विवेकशील प्रज्ञा के द्वारा सम्यक् विचार-पूर्वक जीवन में निर्णय करता है। अविवेकी का प्रत्येक निर्णय अश्रुपात एवं उपहास कराता है और विवेकी का प्रत्येक निर्णय सम्यक् होता है। कार्य की पूर्णता पर सुख-शान्ति तथा यश मिलता है। विवेकपूर्ण कार्य सदियों का इतिहास सुरक्षित करा देता है, आने वाली आगे की पीढ़ियों के लिए वह अमृत रसायन है। मुमुक्षु जीव स्व-पर हत्या के हेतुओं से सदा आत्म-रक्षा करता है। स्व-पर प्राणों की कीमत का बोध उसे है, जो कि जगति पर हितकारी है। उसका यह बोध धर्म, राष्ट्र, समाज, देश के लिए भी हितकारी है।

### 109 - Working with discrimination is the real nectar

A man with discrimination and knowledge endures sufferings with equanimity. He makes decisions in life with his discriminative intellect derived from right thoughts. All decisions of the non-discriminative man cause him despair and ridicule; all decisions of the discriminative man are worthy and, when implemented, cause him happiness, peace and glory. Work done with discrimination creates history for centuries and is a nectar for future generations. The man longing for liberation always protects himself from causes that result in injury *(hiṃsā)* to self and others. He is aware of the value of life of self and others; this is an admirable attribute for the world. This attribute is good for the dharma, nation, society and country too.

विचार
THE THOUGHTS

## ११०. भक्त हृदय के अशुभ कर्म भी शुभ में संक्रमित हो जाते हैं

भक्ति-मार्ग का विज्ञान समझना चाहिए, वह अनेकता में एकता स्थापित करता है। भक्ति-मार्ग अखण्डता का मार्ग स्थापित करता है। किसी भी पन्थ, सम्प्रदाय का व्यक्ति हो, जब वह भक्ति में लीन होता है, तब उसका जीवन भक्तिमय हो जाता है। सभी भक्त 'एवंभूत नय' की दृष्टि से एक प्रभु भक्तिमय हो जाते हैं। अशुभ वर्गणाएँ, अशुभ कर्म भी शुभ में संक्रमित होने लगते हैं, व्यक्ति दुःख, क्लेश से मुक्त आनन्द की अनुभूति लेते हैं। पूज्य, पुराण एवं वर्तमान, भावी गुरुजनों, गुणीजनों के प्रति जो मायाचार शून्य गुणानुराग है, वह भक्ति है। भक्त हृदय विकसित कमल तुल्य होता है। विकसित (खिला) कमल पराग को बिखेरता है, भक्त हृदय प्रभु भक्ति के मकरंद को सर्वत्र प्रवाहमान करता है। गद्गद् परिणाम से युक्त प्रसन्नचित्त भक्त हृदय गली-गली के पर्ण-पर्ण को प्रसन्न कर देता है। भक्त हृदय को प्रत्येक स्थान आनन्दमय दिखता है। खेद, क्लेश, रोग, शोक, भक्त हृदय को कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता, उसे सर्वत्र सुख, शान्ति, आत्मानन्द ही दृष्टिगोचर होता है। उत्साही को उत्साह के ही दर्शन होते हैं, खिन्न को खिन्नता के ही, दुखियों को दुःख के ही और सुखियों को मात्र सुख के

PREVIEW ONLY

ही। व्यक्ति की दृष्टि स्वयं की अनुभूति के अनुसार ही बन जाती है।

### 110 - Through devotion even inauspicious karmas get transformed into auspicious karmas

Understand the logic behind the path of devotion; it establishes unity in diversity. It establishes the path that is undivided. The life of the man, belonging to any sect or religious order, becomes devotional when he is engrossed in devotion. From the specific *(evaṃbhūta)* standpoint *(naya)* – to ascertain an object as it is in its present state or mode – each devotee is engrossed in devotion only. Inauspicious minute particles fit to turn into karmas and inauspicious karmas start getting transformed into auspicious karmic matter; getting rid of sorrow and agony, the man starts experiencing happiness. Devotion is the praise with affectionate inclination towards the qualities of the venerable, past and present gurus and other laudable personages. The heart of a devotee is like a blossoming lotus. The blossoming lotus yields pollen and the heart of the devotee yields the all-pervading nectar of devotion. The happy and gleeful devotee makes happy all leaves in every lane on his way. The heart of the devotee sees happiness, peace and gleefulness everywhere; it does not see dismay, agony, disease and sorrow at any place. The man with enthusiasm sees enthusiasm, with despair sees despair; with sorrow sees sorrow and with happiness sees happiness. The man sees according to his own inner feeling.

विचार
The Thoughts

### १११. सद्संगति से यश एवं सम्पत्ति

संगति पर व्यक्ति का व्यक्तित्व आलम्बित होता है। भोजन, भाषण, भजन, भूषण, भरण-पोषण एवं संगति व्यक्ति पर अपना गम्भीर प्रभाव छोड़ते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व या तो वर्द्धमान होता है या हीयमान होता है। जैसी संगति होगी वैसा प्रभाव होगा। विचारशील, चरित्रवान्, भद्र-परिणामी, मन्द-कषायी, मृदुभाषी, प्रशस्त चिंतक की संगति सद्गति, यश एवं सम्पत्ति का साधन बन जाती है। इससे विपरीत जनों की संगति नाश का कारण है। तत्त्वज्ञ प्राणियों को सुसंगति का ही आश्रय लेना चाहिए, अन्य दीनजनों का नहीं। ऐसा महा-मनीषियों का उपदेश है, इसे आत्मशान्ति एवं आत्म विकास हेतु प्रमुदित मन से स्वीकार करना चाहिए।

### 111 - Good company begets glory and wealth

The company that a man keeps determines his personality. The food he eats, his speech, prayers, adornment, upbringing and the company leave a lasting impression on him. These make his personality either better or worse. If the company he keeps is of the people who are thoughtful, noble, ethical, righteous, soft-spoken and contemplative, it begets a laudable state of existence hereafter, glory and wealth. The company of the people not having such attributes is the cause of destruction. The knowledgeable men should rely only on good company. This has been preached by great sages and should be accepted cheerfully in order to attain the peace of mind and soul-development.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## ११२. मायावी, वक्र हृदयी को मित्र नहीं बनाना

मित्रता एवं आचरण की पवित्रता पर प्रतिक्षण विचार करना चाहिए। उज्ज्वल स्वभावी, सुख-दुःख में साथ देने वाला व्यक्ति कहीं मिलता हो तो उसे मित्र बना लेना चाहिए। सरल हृदयी मित्र अपने हृदय तुल्य है। मायावी, वक्र हृदयी को मित्र नहीं बनाना; वक्र परिणामी, स्वार्थी, कपटी मित्र की मित्रता की अपेक्षा अग्नि ज्वाला में प्रवेश कर लेना अच्छा है। जो मित्र अन्तस् के रहस्य को प्रकट करने वाला हो, विश्वासघात करने वाला हो, शस्त्र-प्रहार करने वाले शत्रु से भी अधिक कष्टप्रद है। यदि किसी सज्जन पुरुष ने अपको अपना मित्र बना लिया हो तो आप उसकी अन्तरंग कमजोरी को उसकी हत्या का अस्त्र न बनायें। संसार में संसारी प्राणी किसी-न-किसी कमजोरी से पूर्ण होते हैं। जीवन की एक भूल किसी के जीवन में कभी भी ठीक नहीं होती है, किसी के जीवन के मध्य में सुधर जाती है, किसी के जीवन के अन्त में सुधर जाती है। व्यक्ति भूल-सुधार कर महान् बन जाता है, परन्तु भूल को तूल देने वाले, कमी का प्रचार करने वाले, धर्म-धर्मात्मा का उपहास कर स्व-पर की सम्यक् आस्था का नाश करा देते हैं। ऐसे विश्वास-घातक मित्रों एवं शत्रुओं से सदा ही आत्म-रक्षा का विचार करना चाहिए। ऐसे चारित्र-नाशक प्राणियों के द्रव्य-भाव प्राणों का हरण करने वाले, हमारी आस्था के नाशक तथा शत्रुओं के हितचिंतक होते हैं। ऐसे आत्म-घातक नरों से अन्तिम श्वास तक स्व की रक्षा करना चाहिए।

### 112 - Do not befriend a deceitful and dishonest man

Think always about your friendship and purity of conduct. If you find a man who is good-natured and stands by you in happiness and misery, befriend him. A simple-hearted friend is like your heart. Do not befriend a deceitful and dishonest man; it is better to enter into fire than to befriend a dishonest, selfish and deceitful man. The man who discloses to others your secrets and is disloyal to you gives more pain than the enemy who hits you with a weapon. If some noble man has chosen you as a friend, do not use his internal weakness as a weapon to kill him. All worldly men suffer from weaknesses, one or more. Some men are not able to rectify their weakness throughout their lives, some are able to do it in the middle, and some at the end. A man becomes great after rectifying his weakness; those who harp on the man's past weakness, publicize it, and ridicule the dharma and its followers, destroy the right faith of self and others. Always think of protecting yourself from such disloyal friends and enemies. Such disparaging men cause injury to the physical and psychical life of living-beings, destroy our faith and provide support to our enemies. Protect yourself from such harmful men till your last breath.

विचार
THE THOUGHTS

## ११३. विश्व आपका कुटुम्ब हो, सभी घर आपके हों

जो मित्रवत् व्यवहार करते हैं, परन्तु अन्तरंग में कपट भाव रखते हैं, पर के विकास को देखने की आँख जिनकी पूर्ण बंद हो चुकी है, वे लोग आत्म-विश्वास के पात्र नहीं होते। वे दया के पात्र हैं, उन्हें देखकर दया-भाव रखो। मित्र हों या शत्रु, सभी मैत्रीभाव के योग्य हैं। प्राणिमात्र के प्रति दुःख

PREVIEW ONLY

अनुपपत्ति का भाव 'मैत्री' है। सामान्य जीव नहीं समझते वस्तुत्व के सत्यार्थ को; सत्यार्थ समझने लगें तो कषाय-वश न होकर, क्षमा, मैत्री भाव में अपना जीवन जियें। विश्व कुटुम्ब जैसा रहे, ऐसा जीवन जीना चाहिए। राष्ट्र के सभी घर आपके हों, घर-घर के द्वार पर आपके लिए स्वागत में मंगल-कलश हों। विश्व-मैत्री के लिए विशिष्ट विशुद्धि एवं पुण्य चाहिए। तीव्र कषायी, घोर पापी जीवों के अन्दर स्वकीय वंश, कुटुम्ब, परिवार, सन्तान, स्व-बन्धुओं के प्रति भाव-विशुद्धि नहीं बनती, फिर अन्यों के प्रति हो यह कठिन कार्य है। अहर्निश दया, करुणा, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य का भाव बना कर जीने का विचार करते रहना चाहिए। स्वात्म-प्रदेशों में सदा अहिंसा के संस्कार उत्पन्न रहें, किसी भी प्रकार की क्रूरता, दीनता के कुसंस्कार आत्म-प्रदेशों में स्व-स्थान स्थापित न कर पायें, प्रतिक्षण प्राणिमात्र के प्रति करुणा-भाव रहे, उपकारी के प्रति ही नहीं, अनुपकारी के प्रति भी करुणा का भाव जगे गौ-स्तनवत्। गाय के थनों से गोपाल दुग्ध निकालता है, कषायी भी दुग्ध निकाले तो उसके लिए भी गाय दूध देती है।

## 113 - Let the world be your family, all homes be your homes

The men who act as friends but are crooked and are not able to see the development of others do not merit trust. They need mercy; pardon them. Maintain a sense of friendship for friends and enemies. Friendship means infallible-coexistence *(anupapatti)* of compassion for all living-beings. Ordinary men do not understand the real nature of objects; if they do, they will spend their lives with dispositions of forbearance and benevolence rather than of degenerating passions. Live life in which the world is your family. Let all homes in the world be your homes; let all homes display for you the welcoming sign of the auspicious pot at their entrance. For world-friendship, you need special purity and merit. The minds of utterly evil men are not able to engender the purity of thoughts even for their own progeny, family, offspring and sibling; how can they engender pure thoughts for others? Think constantly of living with dispositions of forbearance, compassion, love and affection. Let the disposition of non-injury *(ahiṃsā)* engulf constantly the space-points of your soul; let no thoughts of cruelty or inferiority enter your mind; let you have compassion, like the cow's udder, towards all living-beings – for those who help you and for those who harm you. The cow's udder provides milk to the cowherd as well as to the man with evil passions.

विचार
The Thoughts

## ११४. सम्यक्-नीति का प्राण अहिंसा धर्म है

साधु-स्वभावी प्रत्येक जीव के प्रति साम्य-भाव रखता है। देश में मात्र वे ही साधु-स्वभावी लोग हैं, जो किसी भी प्रकार से, किसी भी कारण से, किसी के प्रति हिंसा, क्रूरता, देह से सिर छिन्न-भिन्न करने की बात नहीं करते, अपितु प्राणिमात्र के प्रति दया-भाव रखते हैं। न्याय, नीति, देश, राष्ट्र, समाज, घर-व्यवस्था, शिक्षा एवं नियम-पद्धति - ये सब मैत्री, करुणा, वात्सल्य-भाव युक्त हों। ऐसा कोई नियम धर्म नहीं होता कि जो आपकी बात नहीं माने उसकी हत्या कर दी जाये। धर्म का मार्ग सर्व-जीव सुखमय होता है। कोई नहीं सुनता आपकी बात तो उसकी उपेक्षा की जाए, साथ ही यह भी विचार करने का स्थान रखा जाए कि यह आवश्यक नहीं आपकी बात ही सत्य हो। यदि अन्य पुरुष,

PREVIEW ONLY

राष्ट्र, समाज, देश, अहिंसा धर्म के अनुकूल है, तो उसे धैर्यपूर्वक सुनकर स्वीकार किया जाए, यह न हो कि मेरी नहीं सुनता तो प्राणदण्ड दे दिया जाए। पूर्व में यदि लोगों ने भावुकता के निर्णय लिए हैं तो मुझे भी ऐसा भी करना चाहिए, यह सम्यक्-नीति नहीं है। पुरानी पुस्तकों में तत्काल-स्वभावों की भावुकता में कुछ लिखा गया हो, उसे अहिंसा धर्म के प्रतिकूल ही मानकर, अहिंसा धर्म का ही पालन करना श्रेयस्कर है। प्रेमभाव, मैत्री तथा वात्सल्य-भाव सभी के प्रति विश्वास उत्पन्न कराता है।

### 114 - Non-injury *(ahiṃsā)* is the lifeblood of the right way of living

The noble man maintains a sense of equanimity towards all living-beings. Only those men are noble who show kind-heartedness towards all living-beings and do not talk about injuring, being cruel or killing anyone in any manner and for any reason. Let all – the process of judgement, policies, country, nation, society, family. education and rules – be full of friendship, compassion and affection. No true religion can preach killing the man who does not conform to your views. The true path to dharma must lead to happiness for all. If someone doesn't listen to you, ignore him; also keep in mind that what you are saying may not necessarily be true. If the other person, nation, society or country is following the path of dharma, listen carefully with patience and accept that. You cannot hang to death the person who doesn't listen to you. If some others have taken hasty decisions in the past, you need not follow them. If some ancient authors have written, according to the then prevailing circumstances, anything that promotes injury *(hiṃsā)* do not follow it; stick to the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. Love, benevolence and affection begets trust of all.

विचार
THE THOUGHTS

### १९५. क्रूर शासक का पतन निश्चित

राष्ट्र व्यवस्था मैत्री-भाव से चलती है। क्रूर-नीतिज्ञों के शासन का पतन हो जाता है। अन्यायी का काल दीर्घ नहीं होता, न्यायवान् का काल जन-जन के हृदयों में कभी समाप्त नहीं होता। क्रूर-शासक पूर्व पुण्ययोग से अधिक-से-अधिक अपने जीवन काल तक क्रूरता युक्त शासन कर ले, परन्तु उसकी मृत्यु पर लोग खुशी के दीप जलाते हैं। कभी-कभी क्रूर शासक समय पूर्व ही प्राण-पतन या शासन-पतन को प्राप्त हो जाता है। स्व-सन्तान के द्वारा ही क्रूर शासकों का नाश होते देखा गया है। अन्य शासकों द्वारा नाश कर दिया गया है। अधीनस्थ जनों का पालन स्व-शरीर व स्व-भावों जैसा करना चाहिए, तभी जन-जन के हृदयों में शासन होगा, अन्यथा नहीं। शासक मात्र शासक बनकर ही न रहे, राज्य सिंहासन पर बैठकर आज्ञा, आदेश, दण्ड-निग्रह के साथ अनुग्रह का भी ध्यान रखे। अपने अधीनस्थ जनों एवं प्रजाजनों के प्रति कपट-रहित, वात्सल्य-भाव, आत्मप्रीति-भाव बनाकर चले।

### 115 - A cruel ruler is certain to witness downfall

Benevolence is the foundation on which the administration of a state runs. Cruel administrators have to witness downfall. The unjust ruler lasts for a short time whereas the just ruler lives forever in the hearts of the people. A cruel ruler, by virtue of his past meritorious karmas, may rule till his lifetime but people rejoice when he dies. Sometimes

his life or rule is cut short. There are instances of the heir to the throne eliminating a cruel ruler. He may also get eliminated by other rulers. To make a place in the hearts of the people, the ruler must look after his subjects as one looks after one's body or mental happiness. He should not rule just by authority; as a ruler he sure has to give commands, instructions and punishments, but he must keep in mind the welfare of the people. He must exhibit honesty, affection and love for his subordinates and subjects.

विचार
The Thoughts

## ११६. मत-भेदों में मन-भेद न करें

आज है तो कल है, उत्तरचर-पूर्वचर हेतुओं पर विचार करें। प्रजा विशाल तो राज्य विशाल, प्रजा धनी तो राजा एवं राज्य धनी। राजा विद्वान्, प्रजा ज्ञानवान् तो सर्व राज्य विद्वान् कहलाता है। राज्य में साधु पुरुषों के होने से राज्य संस्कारवान्, चरित्रवान् बनता है, इसलिए सर्वगुण युक्त जनों से देश सम्पन्न कहलाता है। नदी, तालाब, सरोवर, कुआँ, बाग, जंगल, पर्वत सर्व प्रकार के पशु-पक्षियों से सम्पन्न राज्य-व्यवस्था, साथ में परस्पर प्रीति, उपकार के परिणाम, साम्प्रदायिक सद्भावना, गुणीजनों की विनय, प्रत्येक प्राणी की कीमत, मानव-मानव का अर्घ समझे, राजा प्रजा की सम्पत्ति का स्वकीय सम्पत्ति जैसे संरक्षण करे, तो देश महान् बनेगा। स्व पेट-पेटी भरने के भाव जिस देश में होंगे, उसका उत्थान असम्भव जानो, पतन तो निश्चित मानो।

भारत देश नाना सम्प्रदायों का घर है, सभी यहाँ परस्पर में प्रेम से रहते हैं, यह इसकी विशेषता है। सहकारिता का भाव भारत के हृदय-हृदय का पाठ है, गिरते को उठा लेना, असाधु को भी साधु बना लेना भारत की पहचान है। ऋषि, मुनियों का निर्द्वन्द्व विचरण भारत की शान, रहते यहाँ सभी सम्प्रदाय के इन्सान, उनके हृदय में बसता है धर्म-अहिंसा महान्। एक साथ सभी विचारते हैं; जो है, सो है। चलो, छोड़ो अशुभ कर्म, अशुभ ध्यान, 'जियो और जीने दो' यह सूत्र भारत में गूँजता महान्। राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र भक्ति, सर्व सामान्य नागरिकता, धर्म-निरपेक्षिता, सर्व देशों से भिन्न, यही विशिष्ट भारत की विशेषता है। शान्ति-प्रिय, सार्वभौम, सर्व संस्कृतिमय, सर्व सम्प्रीतिमय, सर्व धन-धान्यमय, साधु एवं वीरों की भूमि, भारत देश। बाल, युवा, वृद्ध साधुजनों का एक ही रहे उद्देश्य, सदा-सदा ऊँचा रहे, भारत देश। स्व-स्व पद के अनुकूल चलें, धन-धरती से ही नहीं, चारित्र से भी पतित न हो भारत देश।

सर्व देशों में परमात्मा की पाषाणमय, धातुमय प्रतिमा मिल सकती हैं, पर सच्चे-धर्मात्मा-साधु मिलते हैं, भारत देश में। विश्व भ्रमण भले हो, परन्तु समाधि-मरण भारत देश में हो। प्रत्येक नेता एवं जनता का धर्म है कि वे अपने देश की विश्व-गुरुता का सम्मान करे, अध्यात्म-विद्या का आश्रय लेकर जीवन जिये और अन्य को भी जीने दे। समझें सत्यार्थ उपदेश को। साम्प्रदायिक विसंवाद से सदा रक्षा करें। यही परमोपदेश; विसंवाद न कर संवाद करते रहें। मत-भेदों में मन-भेद न करें। अपने साधु-स्वभाव का दें परिचय, यही मानव जीवन की विशेषता है। परमार्थ से एकमात्र एकत्व भाव स्वात्मा का, अन्य नहीं, परमभाव आत्मभाव। सबके मध्य निज को देखो; सबसे भिन्न एक निज में अभिन्न, यही है नर जीवन का सार, शेष इसी का विस्तार। कषाय-भाव से स्व-रक्षा करो, सर्व-रक्षा स्वत: हो जायेगी। प्रत्येक जीव को परमार्थ-उपदेश पर भी विचार करते रहना चाहिए। सिद्धि समय पर क्रम से ही होगी, इसलिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

PREVIEW ONLY

## 116 - Dissent should not result in malevolence

Because today exists, there will be tomorrow; keep in mind the non-contradictory causes that exhibit subsequence *(uttaracara)* and precedence *(pūravacara)*. If the subjects are large in number, the kingdom is large; if the subjects are wealthy, the king and kingdom are wealthy. If the ruler is wise and the subjects are knowledgeable, the whole nation is called learned. A nation is called high in culture and character if noble men exist in it; the existence of people with high skills makes the nation prosperous. A nation becomes great through existence of attributes such as rivers, ponds, wells, gardens, forests, mountains, all species of animals including birds, the qualities of mutual affection, benevolence, religious goodwill, reverence for the virtuous, value of every individual, mutual respect among men, and the ruler protecting the property of the subjects like his own. The nation in which the tendency is to fill own stomach and coffer cannot prosper; it is certain to witness downfall.

India is a country that is home to various religions; that all live in harmony is its uniqueness. In India, cooperation resides in every heart; providing support to the falling and converting ignoble into noble are its uniqueness. The ascetics and sages roam around freely in India, and individuals belonging to various religions live together. Citizens subscribe to the great dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. All think in terms of 'it is, as it is'. Leave all inauspicious karmas and contemplation. The great dictum, 'live and let live', resonates in India. India is known as a distinctive country because here people have great love and dedication for the country, all are considered equal, and it is secular. India is a country that adores peace, is sovereign, multi-cultural, friendly towards all, rich in all kinds of harvest, abode of noble and brave men. All – the young, youth and old – must always aim to make India great. Work as per your responsibility; make India great not only in terms of wealth and land but also in terms of character.

One can finds the idols of God – made of stone or metal – in every country but the true and real ascetics are found only in India. One may travel the globe but India is the country to embrace death in a peaceful manner. Every leader and individual in India must respect the fact that India is considered a 'world-guru'. Learn to live a spiritual life and let others lead such a life. Understand the true preaching. Protect the country from religious conflicts. This is the supreme preaching; no conflicts must arise. Dissents should not result in malevolence. Exhibit nobility; this is the mark of human-life. The soul has oneness only with itself, with nothing else; this is the supreme nature of the soul. See the self while living with others, own soul is altogether different from everything external. This is the quintessence of the reality; rest everything is its elaboration. Protect yourself from passions; this way, all will automatically get protected. Every individual must reflect on spiritual preaching too. The final aim will be achieved in due course of time but continue to make efforts.

विचार
THE THOUGHTS

## ११७. हेय, उपादेय तथा उपेक्षा का सदा ध्यान रखो

विश्व-हितार्थ विचारक सदा स्वयं को जगति पर भार-मुक्त रखता है, चित्त से हल्का व्यक्ति ही

विशिष्ट-विचार कर सकता है। स्वकीय चित्त को वजन (भार) देने वाला ऊँचाईयाँ प्राप्त नहीं कर सकता। विकासशील एवं विकसित प्रज्ञावान् पुरुष स्वबुद्धि में किसी बात को स्थिरता प्रदान नहीं करते। जो बात स्व-पर हितकारक नहीं है, मात्र शब्द-जाल, कषाय की वृद्धि का कारण है, उसे सुनना ही नहीं चाहिए। तनाव की वृद्धि करने वाले वचनों की उपेक्षा कर देनी चाहिए। हेय, उपादेय, उपेक्षा का सदा ध्यान रखना चाहिए। जो व्यक्ति हेय को हेय, उपादेय को उपादेय और उपेक्षणीय को उपेक्षा-दृष्टि से नहीं देख पाते हैं, वे लोक में अन्तरंग एवं बहिरंग दुःख को प्राप्त होते हैं। स्वात्मा को उभय दुःख-मुक्त देखना चाहते हो तो माध्यस्थ भाव का आश्रय लो; इसके बिना आत्म-शान्ति असम्भव है।

### 117 - Always keep in mind what needs to be accepted, rejected or ignored

The thinker with a world-view always keeps himself light-hearted; only a light-hearted man can have laudable thoughts. The man with a heavy heart cannot reach great heights. Knowledgeable men who are development-oriented and developed do not retain in their minds anything for too long. Do not listen to anything that is not meant for the well-being of self and others and is just a play of words, causing increase in evil passions. Be indifferent to words that are liable to increase stress. Always keep in mind what needs to be accepted, rejected or ignored. The men who fail to distinguish between what needs to be accepted, rejected or ignored are subjected to internal and external misery. If you wish to see your soul free from both types of misery, take help of the disposition of equanimity; no peace of the soul is possible without this.

विचार
THE THOUGHTS

### ११८. आत्मशान्ति के घातक स्वकीय भावों से उपेक्षा रखो

साधुजन स्वात्मा को क्लेश का विष प्रदान नहीं करते हैं। अन्य जन, अन्य वस्तु से माध्यस्थ (उपेक्षा) भाव करना सभी समझते हैं, यहाँ पर विशिष्ट विचार करने की आवश्यकता है। पर-पदार्थ, पर-भावों से मात्र उपेक्षा नहीं करनी, अपितु स्वकीय उन भावों से, उन विचारों से उपेक्षा भाव रखो जो भाव आत्मशान्ति के घातक हैं, संक्लेशता के उत्पादक हैं, कलह व क्लेश-वर्धक हैं। उन आत्मघातक विचारों पर नियंत्रण करो, जो विचार भार बनकर बुद्धि को नष्ट कर देते हैं। आकांक्षा की तीव्रता तथा पुण्योदय की क्षीणता व्यक्ति को बहुत कष्ट देती है। पुण्यक्षीण व्यक्ति को स्व का भूत-भावी-वर्तमान कुछ भी दिखाई नहीं देता। स्वयं के लिए कुछ अच्छा करने की सोचता है, परन्तु लोक में उसके लिए उल्टा ही घटित होता है। स्वतन्त्रता के विचार में ही वे परतन्त्र हो जाते हैं। लोक-विरुद्ध, धर्म-विरुद्ध, क्रिया कर्म करके उपहास के पात्र बनकर, अपमान और अपयश को प्राप्त हो जाते हैं। कदम बढ़ाओ तो सर्वप्रथम स्व-पुण्य एवं स्व-योग्यता, सुभग, शुभ-नाम कर्म की प्रकृतियों पर विचार कर लेना चाहिए। यदि प्रथम हेतु पुण्य ही क्षीण है, तो फिर आगे योग्यता भी कार्यकारी नहीं है।

### 118 - Get rid of the thoughts that destroy your own peace of mind

Noble men do not feed their souls the poison of anxiety. Everyone knows how to ignore other men and objects; still further thinking is required. It is not enough to ignore

other men and objects but what is important is to ignore the thoughts of self that destroy own peace of mind, cause anxiety and increase strife. Control self-destructive thoughts that tend to be a burden on you and destroy your intellect. Excessive desires and lack of past meritorious karmas are causes of great misery. The man who lacks past meritorious karmas doesn't have bright past, present or future. He thinks of doing good but something undesirable happens. While thinking of becoming independent, he becomes dependent. He becomes a subject of ridicule, humiliation and disgrace by performing activities that are against the ways of the world and the dharma. When you take the step, first think of your own past meritorious karmas, capabilities, good-temperament *(subhaga)* and other auspicious classes of the name-karma. If the past meritorious karmas are not present, even the capabilities may fail to fructify.

विचार
THE THOUGHTS

## ११९. ज्ञानीजन अपने निर्णय के प्रभाव का सूक्ष्म विचार करते हैं

प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने पूर्व-पुण्य की रक्षा करे, वर्तमान में त्रियोग सँभाल कर पुण्य बन्ध के श्रेष्ठ कार्य करे, किसी भी प्रकार से अपने योगों को विपरीत न करे। योग की चंचलता, अशुभ प्रवृत्ति, कषाय-भाव की तीव्रता क्षण-क्षण में पुण्य प्रकृति का क्षय करती है, इसलिए ज्ञानी जीव अपनी कषायों पर नियंत्रण करते हैं। ज्ञानी जीव प्रत्येक कार्य का निर्णय विचारपूर्वक ही लेते हैं। बिना विचार किए गए निर्णय केवल कष्टप्रद तथा उपहास के कारण ही नहीं, अपितु मृत्यु के भी कारण बन जाते हैं। जीवन में ज्ञानीजन जो भी निर्णय लेते हैं, वह पूर्व में स्व-पर विमर्श कर लेते हैं। निर्णय ऐसा हो जिससे सन्तापित परिणाम न हों, सदा चित्त प्रसन्न रहे। स्व-मन में गद्गद् भाव रहे, जो आनन्द को सदा प्रवाहिमान करे।

विचार किए बिना स्व निर्णय का बाहर प्रकटीकरण नहीं करना चाहिए। जगत् के मध्य कच्चा (आर्द्र) घट प्रकट नहीं किया जाता, घट को कुम्भकार स्व-गृह में सुखाता है, अग्नि में पकाता है, तब फिर बाजार में लाता है। इसी प्रकार ज्ञानीजन अपनी गूढ़ बात के विषय में स्वयं विचार करते हैं; उसका लोकव्यापी क्या प्रभाव होगा? भूत, भविष्य, वर्तमान तथा देश, राष्ट्र, समाज, कुल एवं धर्म पर उसका क्या प्रभाव होगा? यह भी विचार करते हैं कि स्व-जीवन, यश:कीर्ति और चारित्र पर उसका क्या प्रभाव होगा? इन उपरोक्त सर्व-बातों पर विचार करना विवेकी के लिए अनिवार्य है। यदि ऐसा विचार कर व्यक्ति स्व-जीवन का निर्णय करता है, तो व्यर्थ के सन्ताप तथा पश्चाताप को कभी प्राप्त नहीं होगा, अन्य की दृष्टि से कभी भी पतित नहीं होगा, सदा लोक-पूज्यता को प्राप्त होगा। भाव-दशा का ज्ञान स्वयं को है, स्वयम्भू भगवान् को या मन:पर्यय ज्ञानी मुनिराज को। सामान्य जीव तो आपके व्यवहारिक जीवन को ही देखता है, उसी पर विचार करता है। व्यवहार जीवन समीचीन रीति से जीना चाहिए। अपने तथा अपने आश्रित-जनों की क्रिया, चर्या, विचारशीलता, निर्णय-वृत्ति पर समीचीन दृष्टि रखना चाहिए। सज्जनों को लोकापवाद से सदा भयभीत रहना चाहिए।

## 119 - Wise men think minutely about the effect of their decisions

Every man should conscientiously protect his past merit, taking care of his three-fold activities (yoga) he should remain engaged in meritorious karmas, and should desist

PREVIEW ONLY

from all demeritorious activities. The volatility of the yoga, inauspicious inclinations and severity of passions incessantly tear down merit and, therefore, wise men control their passions. They decide on their activity after due thought. Thoughtless decisions are not only painful and cause ridicule, these may even result in death. Before taking any decision in life, wise men discuss it out with self and others. No decision should result in anxiety; it should provide happiness. It should bring delight in the mind, maintaining the flow of happiness in life.

Do not disclose your decision to others without giving it a proper thought. The potter does not present to the market a wet earthen pot that is still waiting to be fired in his kiln. In the same way, wise men think about the effect of their decision on the world before making it public. They think about its effect on the country, nation, society, progeny and dharma in the three times – past, present and future. Also, they think about its effect on own life, glory and renown, and conduct. It is essential for a discriminating man to think about all these aspects. He shall never have to face undue anxiety and remorse, will not lose his goodwill, and shall always be venerated in the world. Only you yourself, or the self-enlightened *(svayambhū)* Supreme Lord, or the advanced ascetic equipped with the knowledge called telepathy *(manaḥparyaya-jñāna)* can read your mind. Ordinary men just watch your outward life and think about that. Live life in a righteous manner. Keep a watchful eye on your own activities, thought-process and decisions, and of those dependent on you. Always be weary of public slander.

विचार
THE THOUGHTS

## १२०. लज्जा की रक्षा तथा सद्-गुणों का बहुमान करो

पापों एवं पापों के हेतुओं से जो डरकर रहता है; वह कभी लोकापवाद को प्राप्त नहीं होता, ऐसा विज्ञजनों का विचार है। जिसके भीतर लज्जा गुण है, वह शीघ्र अशुभ-प्रवृत्ति को छोड़ देता है। जिसकी लज्जा ही नष्ट हो चुकी है, उसे सुधारना अत्यन्त कठिन कार्य है। सर्वप्रथम व्यक्ति को अपनी लज्जा की रक्षा करनी चाहिए, निर्लज्जता प्रकट नहीं करनी चाहिए। लज्जा एवं विनयशीलता व्यक्ति के अन्दर दो गुण हैं, जो सर्वलोक को अपना बना देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में विनयशील और लज्जाशील व्यक्ति ही निवास करते हैं। पर-घर में शत्रु भी निवास कर सकता है, किन्तु पर-हृदय में विनयशील, लज्जाशील, विशिष्ट साधु-पुरुष ही निवास कर पाते हैं। असाधुजनों के मध्य सहस्रों असाधुजन निवास कर सकते हैं; पर साधुजनों के मध्य साधु हृदयवान् ही निवास कर पाते हैं। असज्जनों की भीड़ में प्राप्त सम्मान अपमान ही है। साधुजनों के मध्य अल्प-वात्सल्य प्राप्त हो जाना बहु-सम्मान से भी श्रेष्ठ है। ऐसी संगति की सदा खोज करो जिसके संयोग से गुणों का एवं गुणीजनों का निजात्मा में संयोग हो, दुर्गुणों का अपमान हो, सद्-गुणों का बहुमान हो।

## 120 - Protect your self-esteem and honour your virtues

Wise men proclaim that those who remain weary of the causes of evil are not subjected to public slander. The man with self-esteem soon gets rid of inauspicious activities. The man who has no self-esteem is beyond redemption. The man should, as a priority, protect his self-esteem. Self-esteem and modesty are the two virtues that

PREVIEW ONLY

connect the man with the whole world. The man with these virtues lives in the hearts of every man. An enemy can live in the house of another man but only a man with the virtues of modesty, self-esteem and exquisite nobility can live in the hearts of other men. An ignoble man can be surrounded with thousands of characterless men but only the men of character can live with a noble man. To get venerated by the crowd of ignoble men is, in fact, a dishonour. To be able to get even slight affection among the men of virtues is better than receiving great honour. Always be on the lookout for the company that puts your soul in proximity to virtues and virtuous men, and for the company that denigrates evil tendencies and honours virtues.

विचार
THE THOUGHTS

## १२१. कष्टों में भी प्रसन्न होकर जीना सीखो

विकार विचारों के कीड़े हैं। विकार-युक्त विचार श्रेष्ठ-आचार को खोखला कर देते हैं। श्रेष्ठ-चिन्तक, विचारवान् मनीषी को भी विकार सामान्य तथा उन्मत्त पुरुष बना देते हैं। जीवन का कोई अकरणीय निर्णय लेने के पूर्व इस 'विचार' कृति का अध्ययन अवश्य ही कर लें। कभी-कभी लाखों विद्वानों की बात लोगों को समझ में नहीं आती है, वही बात पुस्तकों, ग्रन्थों में लिखी हो तो व्यक्ति को समझ में आ जाती है। विषमताओं एवं कषायोदय काल में विकारी-भावों के उपस्थित होने पर जीवन का शीघ्र कोई निर्णय करने के पूर्व, समीचीन तत्त्वोपदेशक कोई पुस्तक (ग्रन्थ) को पढ़ने बैठना चाहिए। आपको शीघ्र ही शान्ति, आनन्दपूर्ण समाधान मिलेगा। बहुत-बड़े अशुभ-कृत्य कर्म से आपकी आत्म-रक्षा हो जाएगी, फिर आप स्वयं परिवार को सुख दे पायेंगे, धर्म, समाज, देश का विकास कर पायेंगे।

विषमता के काल में मरने की न सोचकर कुछ श्रेष्ठ करने की सोचो; मृत्यु किसी भी समस्या का सम्यक्-समाधान नहीं है। यदि महानता प्राप्त करने की भावना रखते हो तो कष्टों में प्रसन्न होकर जीना सीखो। प्रत्येक स्थिति को 'देखो, जानो और जाने दो', उसमें लीन मत हो जाओ। जीवन-लीला का नाश मत करो, आत्मघात मत करो, स्व पर करुणा करना सीखो। विषमताएँ रुलाने के लिए नहीं आतीं, अपितु कुछ विशेष सिखाने के लिए आती हैं। विषमतायें स्व-पर की परीक्षा भी करा देती हैं; स्वयं के धैर्य की परीक्षा हो जाती है, पर की मित्रता की भी परीक्षा हो जाती है। विचार करो; अच्छे दिनों के साथी कितने हैं और बुरे दिनों के कितने? प्रशंसक, निन्दकों का भी ज्ञान हो जाता है। सुदामा और कृष्ण, चन्दनबाला और वर्द्धमान (महावीर भगवान्), शबरी और राम का सत्यार्थ-बोध कष्ट के दिनों में ही होता है। हृदय से चाहने वाले कभी साथ नहीं छोड़ते; मायावी, कपटी, बनावटी कभी विषमता के काल में साथ नहीं देते। इस बात को हृदय पटल पर स्वर्णाक्षरों में अंकित कर लो।

## 121 - Learn to live happily in the midst of adversities

Faults are the worms for thoughts. Faulty thoughts devoid the man of laudable conduct. Faults make a learned man an ordinary and frantic man. Do not take any unworthy decision in life; first read this composition *'Vicāra'*. Sometimes the spoken ideas of hundreds of thousands of learned men do not go down well into the mind but the same ideas when read in sacred texts are well assimilated. If lowly thoughts enter your mind when being surrounded by adversities and passions, do not take a hasty decision; sit

down and read a sacred text on the reality. Soon you will get a solution that restores your peace of mind and happiness. You will save yourself from committing a major unworthy act; you will then make yourself and others happy and be able to assist in the development of the dharma, society and country.

When adversities overwhelm you, think of doing something laudable rather than of ending your life. Ending your life is not a solution to any problem. If you wish to become great, learn to live happily during adversities. In every situation adopt the policy of 'look, know and let go'. Don't end your life, learn to have mercy on self. Adversities come not to put you to grief but to teach you something special. Adversities also are a test for you and others; your patience and genuineness of your friends. Think, who remained with you during good times and during bad times. You will come to know about your admirers and backbiters. True learning from the stories of Sudāmā and Kṛṣṇa, Candanabālā and Lord Mahāvīra and Śabarī and Rāma gets manifested during adversities only. Those who really love you don't ever leave you; the deceitful, insidious and pretentious men are sure to leave you during adversities. Engrave this in your heart as a golden rule.

विचार
THE THOUGHTS

## १२२. अशुभ सोच व्यक्ति के लिए महाविनाशक

जीव स्वयं ही स्वयं का शत्रु तथा मित्र है। पुण्य-पाप का बन्ध जीव स्वयं ही करता है; कोई अन्य, अन्य के पुण्य-पाप बन्ध का कर्ता नहीं है, इसलिए अन्य को कभी दोष नहीं देना। विपाक-काल में समता धारण करना सीखो। विपत्ति केवल दुःख देने ही नहीं, अपितु शिक्षा भी देने आती है। व्यक्ति को विपत्ति के कारण एवं विपत्ति के कार्य पर विचार करना चाहिए। विपत्ति की पीड़ा मंद हो जायेगी। यह बात सभी को ज्ञात है कि बिना कारण के कार्य नहीं होता। जीवन में जो भी सुख-दुःख दृष्टिगोचर हो रहा है, उसका कारण भी आपको दिखता है। यदि शान्त-भावों से सत्यार्थ-विचार करें तो स्वयं के भूत, भविष्य, वर्तमान प्रत्येक को बुद्धिमान् जानता है। कुछ विपत्तियाँ भूत कर्मोदय से आती हैं; पूर्व भवों में कृत कर्मों का फल वर्तमान में आता है। सब कुछ वर्तमान में अच्छा कर रहे हैं, फिर भी कष्ट दिखते हैं। बड़े-बड़े महापुरुषों को भी कष्ट तथा उपसर्ग सहन करना पड़े। वर्तमान बड़ा अच्छा जी रहे हैं, फिर भी कष्ट आयें तो वे कोई अन्य परमात्मा कृत नहीं; ऐसा तो बिल्कुल ही नहीं।

अरे मित्र! परमात्मा पर भी तो विपत्तियाँ आयीं। श्री राम को वनवास देखना पड़ा, नारायण श्रीकृष्ण का जन्म जेल में, मृत्यु जंगल में भाई जरत्कुमार के बाणों से हुई। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी पर भी उपसर्ग हुआ, भगवान् महावीर स्वामी को भी उपसर्ग सहन करना पड़ा। वे सभी कष्ट तथा उपसर्ग पूर्व-कृत कर्मों के विपाक (फल) हैं। सर्वदा दुःख, क्लेश, विपत्तियाँ पूर्व-कृत कर्मविपाक ही नहीं होता, यदि सर्वदा, सर्वथा कर्मोदय ही मानते रहे, तो कर्माधीन हो जाओगे। कर्म बन्ध भी मात्र द्रव्य-कर्म के आधीन नहीं है। यदि सर्वथा कर्माधीनता स्वीकार कर लिया, तो पुरुष के पुरुषार्थ का क्या होगा? जीव-आत्मा (पुरुष) स्व-पुरुषार्थ से कर्म-हानि भी कर सकता है। कर्म-क्षय करके स्वयं ही जीव स्वयम्भू (परमात्मा) बन जाता है। अशुभ-ही-अशुभ कर्म करने वाला व्यक्ति संसार की दुर्गतियों में शारीरिक-मानसिकादि क्लेश को प्राप्त करता है। पूर्वकृत पापोदय पर विचार करने के साथ

वर्तमान क्रिया-कलापों पर भी विचार करना चाहिए। वर्तमान के क्रिया-कलापों के कारण कितने व्यक्ति पागल, उन्मत्त हो रहे हैं। मरण तक को प्राप्त हो चुके हैं। जो जी रहे हैं, वे बिचारे महा-मानसिक पीड़ा से पीड़ित हैं, प्रतिक्षण स्वात्मा को दु:ख दे रहे हैं।

मानसिक शक्ति के अभाव में लोग पागल हो जाते हैं; विचार-शक्ति, बौद्धिक स्तर पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है। रोते हैं तो रोते ही रहते हैं, हँसते हैं तो हँसते ही रहते हैं, बोलते हैं तो बोलते ही रहते हैं। यदि मौन रखें, तो फिर वे मौन ही रहते हैं। विवेक काम नहीं करता, संक्लेशता का जीवन प्रारम्भ हो चुका है। व्यक्ति का अशुभ सोच महाविनाशक है।

काम-वासना का राग विश्व का सर्वनाशक है। चाहे युवा हों या युवती, परस्पर का राग जब किसी भी कारण से विद्वेष में परिवर्तित होता है तब दोनों का जीवन गर्त में होता है। दोनों कुलों का भी क्षय होते दिखता है। वर्तमान कृत की भी कहानी विशाल है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह संग्रह - ये पाँचों ही पाप जीव को कष्टप्रदायी हैं, इन पापों में संलग्न कोई भी जीव सुख के सागर में निमग्न नहीं हुआ, अपितु अहर्निश दु:ख-ही-दु:ख प्राप्त किया है। वह मानसिक महापीड़ा से पीड़ित होकर या तो पागल हो रहा या फिर आत्महत्या कर अपना अर्घवान् जीवन नष्ट कर रहा; पर इससे क्या मिला? इस लोक को भी नष्ट किया, परलोक में भी दु:ख मिलना है। संक्लेश भाव से मरने वाले स्वर्ग-सुख प्राप्त नहीं करते, अपितु नरक, तिर्यंच, पशु-पक्षी, वनस्पति में उत्पन्न होकर तीव्र वेदना को प्राप्त होते हैं। मेरे मित्रो! थोड़ा तो विचार करो, जीवन की एक भूल कितनी बड़ी हो जाती है? अपयश, धन-हानि, प्राण-वियोग यह सब अशुभ-कर्मों का प्रभाव है। देखते ही देखते सर्वनाश हो जाता है।

## 122 - Inauspicious thinking is extremely wrecking

The man himself is his friend or enemy. He himself causes bondage of meritorious or evil karmas; no other person is the cause of his bondage of the two types of karmas and, therefore, never blame others. When the karmas get to fruition, learn to adopt equanimity. Adversities do not cause just the suffering; these also teach you lessons. The man should think about the cause and the effect of adversities; this will mitigate your suffering. Everyone knows that for every effect there is a cause. You can see the cause of whatever joy and suffering you experience in life. Thought in a calm manner, the man can see his past, future and present. Some adversities appear in the present due to the fruition of the past karmas; although you are doing good, the suffering does not seem to disappear. Even the greatest of men had to bear with adversities and calamities. If in spite of you living a laudable life in the present adversities and calamities do appear, these are certainly not caused by a so-called super god.

O friend! Even Supreme Lords had to suffer calamities. *Śrī* Rāma was exiled to forests; *Nārāyaṇa Śrī* Kṛṣṇa was born in a lockup and had died in a forest by the arrows of brother Jaratkumāra. Lord Pārśvanātha and Lord Mahāvīra both had to face calamities. All these calamities are due to the fruition of the past karmas. However, all suffering, anxiety and adversities are not absolutely dependent on the fruition of the past karmas; else you will make yourself wholly subservient to the karmas. Bondage of the karmas is not absolutely dependent on the material-karma *(dravya-karma)*. Had it been so, what role will human effort play in life? The human soul can subdue the impact of the karmas by own effort. By destroying the karmas through own effort, the man becomes

the self-enlightened *(svayambhū)* Supreme Lord. The man ever engaged in inauspicious karmas gets evil states of existence in the world and continues to suffer physically and mentally. So, while thinking about the fruition of the past evil karmas, think also about your present activities. Many people are becoming insane due to their present activities and facing death. Those alive are suffering from grave mental agony and, as a consequence, causing their souls incessant suffering.

In the absence of mental strength men become insane; the ability to think and the intellectual level get absolutely demolished. When crying, they continue crying; when laughing, they continue laughing; when speaking, they continue speaking; and when maintaining silence, they continue to maintain silence. Rid of all discrimination, their life is marked by agony only. Inauspicious thought is extremely wrecking.

Strong lustful tendencies cause great harm to the world. Whether the man or the woman, as their mutual attachment turns into mutual dislike the life of both falls into a pit. The families too of both fall apart. The story of the present karmas too is epochal. These five evil-karmas – injury *(hiṃsā)*, falsehood *(asatya)*, stealing *(steya* or *caurya)*, unchastity *(kuśīla* or *abrahma)* and attachment-to-possessions *(parigraha)* – are causes of misery. Any man engaged in these evil-karmas has never been able to get immersed in the ocean of happiness; he has just constant sufferings to face. Tortured by grave mental agony, he is either becoming insane or committing suicide and thus destroying his valuable life. But what is in store for him? He has suffered in this life and destined for evil life hereafter. In their next life, those who die under mental agony do not attain happiness appertaining to the heavens but have to suffer great misery appertaining to the hells or to the states of existence as plants and animals. My friends! Think; even a small mistake in life may cause long-term harm. Dishonour, poverty and loss of life are the fruits of inauspicious karmas; all things good vanish in no time.

विचार
**The Thoughts**

## १२३. जीवन की कीमत समझो

प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है; वह स्व-पर के जीवन की कीमत समझे। मानव जीवन की प्राप्ति कठिन ही नहीं, अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन है। यह खेल-कूद से प्राप्त नहीं हुई। जब जीव महासाधना करता है, तब मानव देह, सुकुल, सुलक्षण, सुबुद्धि, विवेकशीलता, श्रेष्ठ-संगति की प्राप्ति, साधु-स्वभाव, प्राणिमात्र के प्रति वात्सल्य-भाव, देश, राष्ट्र, धर्म, समाज के प्रति भक्ति-भाव, राष्ट्रवासियों के प्रति साम्य-भाव को प्राप्त करता है। साथ ही, ऊँच-नीच भाव तथा भाषाओं में राग-द्वेष भाव के अभाव को प्राप्त करता है। राग-द्वेष भाव का करो अभाव, परस्पर गाँव, नगर, जंगल, वन, पर्वत, तीर्थ-क्षेत्रों में भी मैत्री-भाव रखो, क्लेश-भाव नहीं। किसी भी क्षेत्र में विकास का भाव यदि आपके अन्दर उत्पन्न हुआ है, तो जगति में क्लेश-भाव का अभाव करना होगा। मैत्री-भाव विश्व विकास का साधन है। जो कार्य मैत्री-भाव से पूर्ण किया जा सकता है, वह कार्य शत्रुता-भाव (अहंभाव) से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। यदि स्व-पर का विकास भाव आपके अन्दर जाग्रत हो रहा है, तो दुतकारना नहीं, दुलार देना सीखो। विवेक के साथ विनय रहती है, विवेक भी विनयवान् का ही साथ देता है। विनयहीन, मैत्री-शून्य के पास विवेक रहना पसन्द नहीं करता। लोक का उच्च शिखर चाहिए तो स्व-प्रज्ञा का पूर्ण सम्यक् प्रयोग करो।

PREVIEW ONLY

## 123 - Understand the value of your life

It is the duty of every man to understand the value of life of self and others. To get human life is not only difficult, it is extremely hard to come by. In eighty-four lakh seats-of-birth *(yoni)*, human birth is the best. Your birth has not been attained by playing around. When the soul engages itself in great spiritual endeavour only then does it get the human body, high progeny, good marks, good intellect, power of discrimination, good company, noble nature, affection for all living-beings, devotion towards the country, nation, dharma and society, and a sense of equality with the fellow citizens. Moreover, it sheds the dispositions of superiority and inferiority, and attraction and aversion towards the languages. So, get rid of attraction and aversion, and exhibit benevolence towards all villages, towns, forests, hills and places of pilgrimage. If you wish to develop a place of pilgrimage, get rid of disinclination towards all other places. Benevolence is the means of world development. The work which can be accomplished through benevolence cannot be accomplished through enmity. If you engender the sense of development for self and others, learn to bestow on others affection rather than contempt. Discrimination is accompanied by humility; a person with humility becomes discriminating. Discrimination does not accompany the person who is rid of humility and benevolence. If you wish to attain great heights in the world, make good use of your intellect.

विचार
THE THOUGHTS

## १२४. सर्वत्र सम्मान के साथ जियो

प्रेम पयस् है, जिससे लोक में क्रूर-से-क्रूर काले-सर्पवत् लोग भी शान्त हो जाते हैं। सभी प्राणियों के साथ वात्सल्य का व्यवहार करना ही श्रेष्ठ है। किसी से कुछ लेना है तो सम्मान के साथ देना भी सीखो। अपमान के साथ राज्य-पद भी तुच्छ है। सम्मान का विष भी श्रेष्ठ है। वहाँ क्या जीना, जहाँ पर अहोरात्र अपमान का विषपान करना पड़े? वन-खण्ड में जाना; श्मशान में जाकर चिता को देख-देख अपने चित्त से पर्याय की अनित्यता का चिन्तवन कर, स्व-परिणामों को सँभालकर जीना ही श्रेष्ठ है, अन्य कोई आलम्बन लेने योग्य नहीं है। जियो सर्वत्र सम्मान के साथ। ऐसे-ही काम करो; जिससे किसी का अपमान न हो।

## 124 - Live with honour all around

Love is the vital fluid that has the power to tranquilise even the cruelest of men, poisonous like the black cobra. It is highly desirable to exhibit affection towards all living-beings. If you wish to acquire something from others, learn also to give to others with due honour. To acquire the position of a king but with indignity is worthless. To drink poison with dignity is fine. Why to live in a place where you have to drink the poison of indignity day in and day out? It is worthwhile to go to the woods, or else to stay at a cremation ground meditating on the transitoriness *(anityatā)* of the mode *(paryāya)* of life and thereby taking care of your dispositions. No other refuge is worth seeking. Live with honour wherever you live. Engage yourself only in those works which do not cause dishonour to others.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १२५. किसी के प्राणों की रक्षा में होने वाली हानि को भी स्वीकार करें

अपमान, मान-कषाय की अपुष्टि पर हीन-भावना का जीवन जीते हुए व्यक्ति संक्लेशता को प्राप्त होकर मृत्यु पर विचार करने लगता है। तीव्र हीन-भावना के वश होकर वह आत्महत्या जैसा क्रूर कर्म करने को तैयार हो जाता है। वह कहीं भी, किसी भी प्रकार से आत्महत्या करने को तैयार रहता है। तनाव में आए सम्बन्धी को अधिक समय तक एकान्त निवास नहीं देना चाहिए, उसके साथ किसी-न-किसी को अवश्य रहना चाहिए। इस बात की खोज करना चाहिए कि उसकी यह अवस्था किस कारण से हुई है? उस कारण पर विचार करके, उसका निराकरण करा कर, अपने बन्धु को आप बचा सकते हैं। एक प्राणी के असमय में प्राण-वियोग को आप रोक सकते हैं। अहिंसा परमब्रह्म के उपासक आप बन सकते हैं। ऐसा बनना विवेक, बुद्धि-कौशल्य तथा उपशम-भाव पर आलम्बित है। कषाय-भावों को प्रचण्ड मत होने दो, कितने ही विपरीत हेतु उपस्थित क्यों न हो जायें, शान्त-भाव से विचार करना सीखो। शीघ्र विपरीत निर्णय मत ले लेना। भावुकता के निर्णय अशुभ रूप में फलित होते हैं। निर्णय ऐसा हो जिसमें न तो स्वयं का ही अहित हो और न ही पर का। स्व-पर की रक्षा हो, धर्म तथा यश की भी रक्षा हो, प्राणिमात्र आनन्दित रहे, किसी को पीड़ा न हो। पर-पीड़ा से करोड़ों लाभ प्राप्त होते हों, तब भी उसे शीघ्र छोड़ देना ही श्रेष्ठ है। अल्प अथवा बहुत हानि होने पर भी यदि किसी के प्राणों की रक्षा हो रही हो तो उस हानि को प्रसन्न होकर स्वीकार कर लेना चाहिए।

## 125 - Accept the loss incurred in saving the life of others

When a man is dishonoured and his passion of pride gets hurt, under the influence of resulting inferiority complex and anxiety, he starts thinking of committing suicide. It is due to grave inferiority complex that he gets ready to commit the cruel act of suicide. He gets ready to commit suicide at any place and in any way. Do not let the person under extreme stress live in seclusion for long; let someone accompany him most of the time. Try to explore what made him reach this stage. By solving the root of his problem you may save the life of your brother. You can save a living-being from untimely death. You can become a true follower of the dharma of supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)*. It will depend on your discrimination, intellectual skill and quiescence. Never allow your passions to flare up; howsoever adverse conditions arise, learn to think calmly. Never take a hasty decision. Emotional decisions fructify in inauspicious manners. Your decision should not cause harm to you and others. It should result in the protection of self and others, of the dharma and glory, and joy to all living-beings; it should hurt no one. Even if by hurting others you stand to gain immensely, reject that decision immediately. On the other hand, if your decision results in saving a life but is sure to cause you small or big loss, accept it cheerfully.

विचार
The Thoughts

## १२६. 'धर्मस्य मूलं दया'

जीव दया महाधर्म है; बिना दया के लोक में कोई धर्म नाम की वस्तु नहीं है। अहिंसा, दया, करुणा से सुभाषित धर्म ही धर्म है। जीव-हत्या चाहे धर्म के नाम से हो या अन्य किसी भी हेतु से हो,

PREVIEW ONLY

वह हत्या ही है। हत्या को धर्म कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'धर्मस्य मूलं दया' - अर्थात् धर्म का मूल दया है। जिसके पास मूल ही नहीं होगा, वहाँ वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, फलोदय कहाँ सम्भव है? यह स्पष्ट है, धर्म तो अहिंसा ही है। प्राणी-पीड़ा चाहे बलि कर्म से हो, चाहे शिकार से हो, चाहे अशुभ व्यापार से हो, चाहे आपके अशुभ आहार से हो, वह तो हिंसा ही है। हिंसा धर्म नहीं हो सकता। हिंसा कर्म को धर्म संज्ञा देने वाला कभी भी धर्मात्मा व धर्म अथवा परमात्मा हो ही नहीं सकता। परमात्मा प्राणि-मात्र की रक्षा की बात करता है, न कि किसी की हत्या को धर्म कहता है। हिंसा धर्म हो गया, तो फिर पाप कर्म कौन सी वस्तु होगी? जहाँ अहिंसा है, वहीं धर्म है। जो अहिंसा के विश्व-मंत्र को जानता है, वही सच्चा धर्मात्मा है। सम्पूर्ण लोक को जो अहिंसा का उपदेश देता है, वही परमात्मा है। अहिंसा में जो जीता है, वही महात्मा है। जो अहिंसा धर्म पर विश्वास करता है, जीवों पर करुणा, दया, वात्सल्य-भाव रखता है, वही सच्चा गृहस्थ (भक्त) है।

## 126 - 'Compassion *(dayā)* is the seed of dharma'

Compassion towards living-beings is the great dharma. Without compassion there is nothing that can be called dharma. That dharma is true dharma which is adorned with the virtues of non-injury *(ahiṃsā),* compassion *(dayā)* and benevolence *(karuṇā)*. Killing of living-beings, even if in the name of dharma, is nothing but killing. Killing can never be accepted as dharma. Compassion is the seed of dharma. Without the seed, the origination, steadiness, growth and fruition of the tree is not possible. It is therefore clear that non-injury *(ahiṃsā)* constitutes dharma. Injuring living-beings in whatever way – sacrificial killing, hunting, commercial activity or food intake – is nothing but injury *(hiṃsā)*. Whosoever calls any activity that results in injury as dharma can never be a man of dharma and can never become a supreme-soul *(paramātmā)*. A supreme-soul preaches protection of all living-beings; it can never call killing as dharma. If killing were to be the dharma, what will be the evil karma? Where there is non-injury *(ahiṃsā),* there is dharma. The man who knows the universal mantra of non-injury *(ahiṃsā)* is the real virtuous man. The one who preaches non-injury *(ahiṃsā)* to the whole world is the real supreme-soul *(paramātmā)*. The one who lives with non-injury *(ahiṃsā)* is the real great-soul *(mahātmā)*. The one who has faith on the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* and is equipped with the virtues of benevolence, compassion and affection is the real householder or devotee.

विचार
THE THOUGHTS

## १२७. अहिंसा ही परम धर्म है

दया-हीनता नहीं धर्मात्मा की पहचान। दया, करुणा भारत भूमि की है जान। भगवान् आदिनाथ से भगवान् महावीर स्वामी, पद्म श्रीराम, श्री बलभद्र, हनुमान आदि महापुरुषों ने इस भूमि पर जन्म लेकर अहिंसा धर्म का पालन एवं संवर्धन किया है। अहिंसा के प्रभाव से सम्पूर्ण लोक भगवान् महावीर स्वामी की श्रद्धा से जय-जयकार कर रहा है। वर्द्धमान भगवान् महावीर स्वामी की अहिंसा इतनी प्रसिद्ध हुई कि अहिंसा का दूसरा नाम ही भगवान् महावीर स्वामी हो गया और भगवान् महावीर स्वामी अहिंसक हो गए। व्यर्थ की प्रवृत्ति, वचनालाप, गमनागमन का भी परिहार करने को तीर्थंकर

PREVIEW ONLY

भगवन्तों ने कहा है। किसी भी चर्या से प्राणियों को पीड़ा न हो और स्वयं को भी पीड़ा न हो।

पर-पीड़ा व स्व-पीड़ा दोनों ही संक्लेशता के कारण हैं, जो आत्मा को क्लेश का कारण हैं। अन्दर-ही-अन्दर जीव प्रचुर वेदना का वेदन करता है। पीड़ित करते हुए अन्य कोई दृष्टिगोचर नहीं होता, स्वयं ही स्वयं के द्वारा विचारों में पीड़ित रहता है, दिन-रात दुःखी रहता है। प्राप्त सुख-साधन भी उसे सुखी नहीं कर पाते, मानसिक दुःख के कारण व्यक्ति आत्महत्या जैसे कृत्य कर लेता है। आत्महत्या का विचार करने वाले व्यक्ति से उसके उस कृत्य को करने के पूर्व कहीं समय मिल जाये तो उसे समझाया जा सकता है। जो व्यक्ति आत्महत्या करने का निर्णय कर चुका है, उसकी भाव-दशा, अन्तरंग वेदना की प्रचुरता तीव्रतर, तीव्रतम होगी; वह सन्ताप की सीमा पार कर चुका होगा। आश्चर्य; मानव स्वकीय सुर-दुर्लभ मानव देह की हत्या का विचार ही नहीं, उपक्रम कर रहा है।

धर्मात्मा-पुरुषों का कर्तव्य है कि जैसे पर-अस्त्रों, शस्त्रों से भिन्न पुरुषों की रक्षा का पूर्ण पुरुषार्थ कर उसे बचा लेते हैं, उसी प्रकार मानसिक-पीड़ित की भी रक्षा करनी चाहिए। उसे आत्मीयता देकर उसके अन्तरंग-भावों को जानकर, जिस कारण से वह सन्तापित है उस कारण की खोज-कर, करणीय को पूर्ण करा दो, अकरणीय विचारों को सद्-उपदेश से शान्त करा दो। उसके लिए धार्मिक वातावरण उपस्थित करा दो, उसे तीर्थ क्षेत्र की वन्दना हेतु ले जाओ, सद्-साधु पुरुषों की संगति में ले जाओ, उसका वातावरण परिवर्तन करा दो। जैसे बने; पर का सन्ताप मिटा दें, जिससे उसका आत्महत्या का विचार समाप्त हो जाए। वह सामान्य जीवन जीना प्रारम्भ कर दे, स्वकीय कर्तव्य-पथ पर शान्ति से चलने लगे। स्व-पर के हितमार्ग का आश्रय लेकर वह देश, धर्म समाज की उन्नति पर विचार करे।

## 127 - Non-injury *(ahiṃsā)* is the supreme dharma

Non-compassion is not a mark of the man of dharma. The lifeblood of India comprises compassion and benevolence. Great men – from Lord Ādinātha to Lord Mahāvīra, *Padma Śrī* Rāma, *Śrī* Balabhadra and Hanumāna – took birth on this land and embraced and advanced the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. Due to his preaching of non-injury *(ahiṃsā)*, the whole world is singing the praise of Lord Mahāvīra. His preaching of non-injury *(ahiṃsā)* is so well-known that non-injury *(ahiṃsā)* became a synonym of Lord Mahāvīra, and Lord Mahāvīra a non-injurer. The Supreme Lords, knows as *Tīrthaṃkara*, have preached shedding of useless activities, speech and roaming around. No activity should result in injury to living-beings, self and others.

Causing injury either to self or to others are both causes of anxiety to the soul. The man causing such injury experiences great pain from inside. No one seems to give him pain but his own thoughts give him pain; he suffers misery day and night. No external paraphernalia is able to provide him solace; due to his internal suffering he even commits the evil deed of suicide. If one gets time, such a man can be counselled before he commits suicide. The thought-process and internal pain of the man who has decided to commit suicide shall be extremely negative; he would have crossed the limit of tolerance of anxiety. As human birth is extremely difficult to get even for the devas, it is amazing that a man not only thinks of but goes on to exscind own body.

PREVIEW ONLY

It is the duty of the men of dharma to protect the man suffering from mental agony as they protect others from the attack of weapons. You should offer him affection, and after investigating the causes of his agony and assessing his mental state, do whatever possible to convince him, through noble preaching, not to insist on any act not worth doing. Create an environment of dharma for him, take him for pilgrimage, provide him the company of noble men, and change his surroundings. Do whatever you can to end his agony and to put a brake to his thought of committing suicide. Let him lead a normal life of performing peacefully his duties. Convince him to lead a life that is good for self and others; a life that thinks of the development of the country, dharma and society.

विचार
THE THOUGHTS

## १२८. सत्यार्थ-विचारशील व्यक्ति के लिए भारत अखण्ड एक है

सत्यार्थ-विचारशील व्यक्ति विश्व को विकासशील बनाता है। वह नवीन-नवीन विचारों से जगति को नवीन-दिशा देता है। किसी भी श्रेष्ठ-कार्य करने का यदि विचार बनता है, तो अपने विचार को गुप्त, सुरक्षित रखते हुए, अन्य विचारकों के विचारों का भी संग्रह करना चाहिए। जो कार्य की पूर्णता, विशिष्टता तथा सुन्दरता को वर्द्धमान करने वाले हों ऐसे सर्व-विचारों का अध्ययन करना चाहिए। सुविचारों में स्व-विचारों का मिलान कर कार्य करना चाहिए। श्रेष्ठ कार्य ही लोक-पूज्यता को प्राप्त होता है। भारत देश के वर्तमान संविधानवत्, नाना देशों के संविधानों का विचार करके, फिर सभी वर्गों के विशिष्ट प्रज्ञ-नेताओं, विद्वानों ने संविधान पुस्तक का आकार दिया। भारत गणतंत्र राष्ट्र, सम्प्रदाय तथा धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। सभी को स्व-स्व धर्म के पालन की स्वतन्त्रता है, साथ ही राष्ट्रीय-भावना के साथ भारत अखण्ड एक है, सभी भारतवासी भारतीय हैं।

### 128 - India is one for the thinker seeking truth

The man seeking truth promotes the development of the world. He provides new directions to the world through his innovative thoughts. When you think of doing any noble task, keep your thoughts secret and safe till you gather the thoughts of the other thinkers on the subject. Study all thoughts that lead to the accomplishment of the work, are special, and add to the attractiveness of the world. Start the work after matching all good thoughts with your own thoughts. Only excellent works are revered in the world. The constitution of India took its final shape after studying the constitutions of different countries, and discussion with leading intellectuals from all sections of society. India is a republic, and secular country. Each individual has the freedom to follow his religion; still India is one whole and all its citizens are Indians.

विचार
THE THOUGHTS

## १२९. भारत का भगवान् - वर्द्धमान महान्

पन्थ, सम्प्रदायों के कारण भारत की अखण्डता का नाश नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण देश परस्पर वात्सल्य-पूर्ण भारत की पूज्य तीर्थभूमि को सम्मान देता है। धर्म-निरपेक्षता भारत की पहचान

PREVIEW ONLY

ही नहीं, अपितु जान है। सर्व-सम्प्रदाय हमारे भारत को अपना बनाने की कोशिश न करें, अपना भारत मानने का पुरुषार्थ करें, प्रदेश-प्रदेश का विकास करें। देश में अहिंसा परमब्रह्म का नाद करें। मैत्री भाव का प्रसार हो, क्रूरता का व्यवहार न हो। न कोई छोटा, न कोई बड़ा। जो गुण वर्द्धमान वही भारत में महान्, गुणहीन नहीं भारत का भगवान्। देश को ऐसे लोगों से आत्म-रक्षा करनी चाहिए, जो गुणहीन हों, व्यसनों से युक्त हों, साधना, आराधना, चारित्र, सदाचार से हीन हों, दुराचारी हों, पर-स्त्री पर-पुरुष सेवी हों, धूम्रपान, मद्यपान, चरस, गाँजा, भाँग-सेवी हों, व्यापार युक्त आरम्भ, सारम्भ में लीन हों, वित्त-प्रिय करोड़ों की सम्पत्ति के स्वामी अपने आप को भगवान् कहलाते हों।

भगवान् तो वीतरागी होते हैं, जिन्हें संसार के किसी भी पदार्थ से कोई भी प्रयोजन नहीं है, जिनके भोजन (कवलाहार) का भी अभाव होता है। सम्पूर्ण रज-मल विहीन, दोष मुक्त, कैवल्य-ज्ञान गुण युक्त परमात्मा होता है। स्व-स्वभाव में परमेश्वर को जगत् की कोई भी वस्तु प्रभावित नहीं करती। स्वयं में पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा परमात्मा न किसी से प्रभावित होते, न किसी को प्रभावित करते ही हैं। प्रभु के गुणों के नियोग से जीव स्वतः उनसे प्रभावित होते हैं। पूर्ण-आनन्द में लीन कोई जीव है, उसका नाम ही तो परमात्मा है। सर्व दोष-मुक्त अनन्त गुण-युक्त परमेश्वर जगत् के सहज अकारण बन्धु हैं। किसी भी प्रकार की निन्दा एवं स्तुति उन्हें प्रभावित नहीं करती। निन्दा करने वाले का अहित नहीं करते, स्तुति करने वाले से प्रभावित नहीं होते और न ही उसका कोई हित ही करते हैं। हित-अहित तो जीव के स्व-कर्मोदय का परिणाम है। प्रत्येक जीव पूर्ण-स्वाधीन है। शुभाशुभ कर्मों से मुक्त वह आत्मा परमात्मा हो चुकी है, वह पूर्ण विकल्प-शून्य है।

## 129 - God in India is the one who has great qualities

The unity of India cannot be compromised due to sects and religious orders. Each citizen of the country has respect for the affectionate and revered place of pilgrimage that is India. Secularism is not only a mark of India but its lifeblood. Let individual sects not try to make India their own but think in terms of their India and strive for the development of every state. Let the dharma of supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)* reverberate all over. Let brotherhood, not cruelty, be the way of mutual interaction. Let no one be inferior or superior. In India, the one with high degree of qualities is great, the one who lacks qualities is not a god in India. The country should protect itself from the people proclaiming themselves gods but lack qualities, are home to addictions, have lowly spiritual-practice, devotion, conduct and deportment, are immoral, are lustful towards other men or women, are addicted to smoking, drinking or drugs, are ever-engaged in worldly activities, and have accumulated immense wealth due to their love for money.

God is one who has vanquished all attachment and, therefore, has no concern for any worldly object; he even doesn't accept morsels of food *(kavalāhāra)*. The Supreme Lord has no excreta, is unblemished, and is endowed with omniscience *(kevalajñāna)*. Stationed in own nature, no object of the world affects him. All-knowing and all-seeing, he neither impresses anyone nor gets impressed by anyone. However, others on their own get impressed by his qualities. The Supreme Lord is the one who is ever engrossed in ineffable happiness. The Supreme Lord is free from all blemishes and is endowed with infinite qualities; he is the natural benefactor of the world. He pays no heed to either

PREVIEW ONLY

calumny or worship. He does not harm the one engaged in calumny or bestow boons to the one engaged in worship. Whatever harm or benefit that accrues are the results of individual's own fruition of the karmas. Each soul is absolutely independent. The soul that is rid of all karmas, auspicious and inauspicious, becomes the Supreme Lord and frees itself from all dispositions.

विचार
THE THOUGHTS

## १३०. राष्ट्र-निर्माण के सूत्र

विवेकशील, विचारवान् पुरुष सदा राष्ट्र, धर्म, संस्कृति, साहित्य विकास का विचार करता है। जिसकी राष्ट्र के प्रति भक्ति है, वह सम्पूर्ण राष्ट्र के जड़ एवं चैतन्य पदार्थों की रक्षा के भाव रखता है। राष्ट्रीयता-शून्य व्यक्ति राष्ट्र में करुणा, दया, अहिंसा, प्रेम, वात्सल्य की गंगा क्या प्रवाहित कर पायेगा? अपने स्वार्थों को ध्यान में रखने वाला नेता राष्ट्र की धरोहर का नाश कर देगा, स्वकीय घर भरेगा, राष्ट्रहित नहीं कर पायेगा। देशभक्त वही हो सकेगा जो राष्ट्र को स्वगृह-सा देखेगा, प्रजा को स्व-परिवारवत् देखेगा। राष्ट्र की सम्पत्ति की रक्षा स्व-सम्पत्ति के समान करेगा। देश के प्रत्येक वर्ग के प्रति वात्सल्य-भाव रखेगा, प्रत्येक नागरिक को गुणवान् बनाने का विचार उसके अन्दर होगा। एक विशेष विचारणीय बात यह है कि राजकीय-जनों का कर्तव्य है कि वे प्रतिवर्ष योग्य-छात्रों का अन्वेषण करें; उसमें जाति के प्रतिबन्ध से प्रयोजन नहीं, योग्यता ही प्रयोजन है। उन छात्रों के अन्दर राष्ट्र-भावना एवं सर्व-सम्प्रदायों के लिए सद्भावना का बीजारोपण किया जाए। वे छात्र विभिन्न विद्याओं के पारंगत हों, उन्हें तद्-तद् विषय के क्षेत्रों में स्थापित किया जाए। सदाचार, शिष्टाचार, अहिंसा-धर्म में निष्ट हो साधुजनों के प्रति उनमें निष्ठा एवं दया-भावना स्थापित की जाए।

## 130 - The mantras for nation-development

The discriminating man thinks always of the development of the nation, dharma, culture and literature. The man with patriotism thinks of the protection of nation's animate and inanimate objects. How can the man without nationalism facilitate the flow of the river Gaṅgā of benevolence, compassion, non-injury *(ahiṃsā)*, love and affection through the nation? A selfish man will cause the destruction of the wealth of the nation; he will only be interested in filling his own coffers. A patriotic man sees the nation as his home, and all citizens as his family. He will protect the wealth of the nation as he protects his own wealth. He will be affectionate towards all sections of society and will strive to make every citizen virtuous. A point to ponder is that those in power should every year scout worthy students, without consideration of caste. Seeds of patriotism and goodwill towards all should be sown in them. These students, experts in different fields, should be provided with opportunities in their respective fields. They should be taught to embrace good conduct, deportment and the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*, besides reverence and kind-heartedness for noble ascetics.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १३१. अभिनव, विकसित एवं विश्व अध्यात्म गुरु भारत की कल्पना

अभिनव भारत, विकसित भारत, विश्व अध्यात्म गुरु भारत की कल्पना है। सम्पूर्ण विश्व की विशेषताओं का संग्रह कर स्वदेश की विशेषताओं का प्रसार किया जाये। देश के सर्व-साधुजनों से आग्रह है कि वे समाज में सद्भावना का विस्तार करें, धर्म-ग्रन्थों के अन्दर से गूढ़ रहस्य निकाल कर देशवासियों के मध्य रखें, जिससे एकत्व-भाव जाग्रत हो। घृणा, ईर्ष्या, डाह की भावना समाप्त हो, सभी समुदाय के साधुजन राष्ट्र एवं विश्व-हित के बारे में विचार करें, अन्य-भाव प्रकट न करें, स्व-स्व सम्प्रदाय को स्व-सीमा में रखें। देश के अन्दर मात्र अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहवाद का दिव्य-संदेश प्रदान करें। कार्य-कुशलता, पुरुषार्थ-शीलता, देश के प्रति बहुमान - ये तीन बातें पूर्ण उनके अन्तःकरण में प्रविष्ट करा देनी चाहिए। साथ ही प्रत्येक नागरिक को श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। परस्पर में स्वाध्याय अध्ययन की प्रेरणा देना चाहिए। स्वाध्याय से सदाचरण स्वतः पलता है। एकान्त में रहस्यमयी ग्रन्थों के अध्ययन से शुभ करने की तथा अशुभ से बचने की अन्तःप्रेरणा प्रकट होती है। परम-सत्य शुद्धात्म तत्त्व की प्राप्ति के साथ भाषण कला प्रकट होती है। मेरे देश के ही नहीं, अपितु विश्व के नागरिकों के सत्यार्थ-बोध हेतु वस्तु के वस्तुत्व को जानना होगा।

## 131 - The dream of new, developed and world's spiritual-guru India

Here we aspire to make a new India that is developed and world's spiritual-guru. Assimilate all things good in the world and promote the strengths of your country. We plead all ascetics in the country to promote goodwill in society and to bring forward the secrets hidden in our holy scriptures so as to advance mutual harmony. Let the dispositions of hatred, envy and spite come to an end and let the ascetics of all sects think about the welfare of the nation and the world. Each sect should remain within its own boundaries. The ascetics should preach only the divine message of non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(asteya, acaurya)*, celibacy *(brahmacarya)*, and non-possession *(aparigraha)* to the country. Every citizen should be made to imbibe the three traits of work-efficiency, hard-work, and respect for the country. Further, every citizen should be encouraged to study laudable literature. Mutual study of the sacred texts should be encouraged. The study of the sacred texts automatically promotes good conduct. The habit of studying the sacred texts in seclusion encourages you to indulge in auspicious acts and to desist from inauspicious acts. As one grasps the supreme truth about the reality of the pure soul, the art of speaking gets manifested. Not only the people of my country but the citizens of the world will have to understand the nature of the objects – *vastutva* – to know the truth.

विचार
**The Thoughts**

## १३२. सम्प्रति विश्व को आवश्यकता है, भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों की

यदि देश को बौद्धिक सम्पदा से युक्त करना है तो नागरिकों को 'कुरल-काव्य', 'आत्मानुशासन', 'नीतिवाक्यामृतम्', 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'पंचास्तिकायसार', 'नियमसार', 'सत्यार्थ-बोध',

'वस्तुत्व' महाकाव्य के अलावा पुराण शास्त्रों व आगमों का विनय-पूर्वक गहनतम अभ्यास, स्वाध्याय करना ही चाहिए। जिस देश का बौद्धिक-स्तर विशाल है उन्नति उसी देश के भाल पर है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पूर्णतः भी स्वाध्याय से ही सम्भव है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। ऐसा सत्यार्थ-बोध इच्छुओं को समझना चाहिए। सम्प्रति विश्व को आवश्यकता है भगवान् महावीर स्वामी की। विश्व विकास का विचार करना चाहिए। विश्व में विकास होगा तो सम्पूर्ण राष्ट्रों का विकास होगा। राष्ट्र के विकास से सभी राज्यों का विकास होगा। राज्यों के विकास में सभी संभागों, जनपदों, नगरों, ग्रामों का विकास निहित है। सम्पूर्ण नगर, ग्रामवासियों का विकास, न कि मात्र नेताओं, अधिकारियों व धनपतियों का विकास। सर्वविकास से तात्पर्य मात्र धन, धरती, भोजन, पानी, मकान ही ग्रहण नहीं करना। इन सब बिन्दुओं के साथ सदाचार, न्याय, नीति एवं परस्पर वात्सल्य का भी विकास हो। एकांगी विकास विश्व का विकास नहीं है, सर्व-मुखी विकास होना चाहिए। मानव-जाति मात्र का नहीं, सभी जीवों का विकास हो। अन्याय, अनीति, छल-कपट, व्यभिचार, अभक्ष्य भक्षण, सुरापान, वेश्यावृत्ति, जुआ, चोरी, परस्त्री सेवन, मांस, मद्य, मधु, शिकार, व्यर्थ भाषण, संक्लेश परिणामों का त्याग होना चाहिए। इन सबका सभी के हृदयों में अभाव होना अनिवार्य है। श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए तथा महामानव बनने के लिए धर्म-पुरुषार्थ का आलम्बन लेना अनिवार्य है। बिना धर्म-पुरुषार्थ के जो मात्र अर्थ तथा काम में लिप्त है उसे मोक्ष-पुरुषार्थ की सदा अनुपलब्धि ही रहेगी।

## 132 - The world today needs the preachings of Lord Mahāvīra

If India were to be endowed with intellectual wealth its citizens must study deeply and with due modesty sacred texts including *Kurala-Kāvya, Ātmānuśāsana; Nīti Vākyāmṛtam, Samayasāra, Pravacanasāra, Pañcāstikāyasāra, Niyamasāra, Satyārtha Bodha, Vastutva Mahākāvya*, and other ancient scriptures. Only the country with broad intellectual base can witness development. Realization of knowledge, faith and conduct is possible only through the study of the scriptures. Men desirous of advancement must understand this truth. The world today needs Lord Mahāvīra. Think of world-development; world-development will ensure the development of all nations. The development of a nation will ensure the development of all its states. The development of a state will ensure the development of all its divisions, municipalities, towns and villages. This will ensure the development of all its people and not merely of the leaders, the officials, and the rich. Overall development entails not just the development of wealth, land, food, water and housing. Besides, there should be development of conduct, justice, righteousness, and mutual affection. Development should not be one-sided; it should comprise all aspects of life. Welfare not just of human beings but of all living-beings. The following vices should be done away with from the hearts of every individual: injustice, wicked policies, deceit, promiscuity, eating unmerited food, drinking liquor, prostitution, gambling, stealing, intercourse with the wife of another, consuming flesh, wine and honey, hunting, garrulity, and anxiety. To live a laudable life and to become great it is essential to make efforts in the direction of dharma. The men who are ever engaged in wealth-generation and sensual-gratification will not be able to put efforts on the attainment of liberation.



PREVIEW ONLY

## १३३. राग-द्वेष की ज्वाला में न स्वयं जलें, न विश्व को जलायें

अर्थ, काम, वासना की पूर्ति के लिए सामग्री संग्रह हेतु बन सकते हैं यदि लाभान्तराय का क्षयोपशम रहा तो। लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम प्रशस्त नहीं है और साता का उदय नहीं है तो व्यक्ति इच्छाएँ ही कर पायेगा, इच्छित सामग्री तथा इच्छित भोग नहीं भोग पायेगा। यह सिद्धान्त अटल है। प्रत्येक व्यक्ति को सत्यार्थ-बोध-पूर्वक वस्तु के वस्तुत्व को समझना चाहिए। विश्व के प्रत्येक नागरिक को प्रतिदिन विश्व-विकास, मैत्री-भाव, सर्व-हित परिणाम, माध्यस्थता का व्यवहार करना चाहिए। वे राग-द्वेष की ज्वाला में न स्वयं जलें, न विश्व को जलायें। अस्त्र-शस्त्र की दुनिया में परिणामों पर नियंत्रण करें अन्यथा एक-पल में सर्व-विश्व का विनाश हो जायेगा। राष्ट्रों के राष्ट्रपतियों के मन मचलने पर धर्म, संस्कृति, धर्मस्थान, मानव जाति ही नहीं, सम्पूर्ण जातियाँ नष्ट हो जायेंगी। धैर्य का आलम्बन लेकर कषाय-भाव को शान्त करें, स्व-जातियों को ही नाश करने का विचार न करें।

वर्तमान में भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों की आवश्यकता है, न कि रावण की कामुकता या कौरवों के लोभ की। सम्प्रति काल में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य की उतनी ही आवश्यकता है जितनी भगवान् महावीर स्वामी के काल में थी। पूर्व में धर्म के नाम पर हिंसा होती थी, वर्तमान में लोग धर्म के साथ राज्यों एवं राष्ट्रों के नाम पर कषाय-पोषण व हिंसा-कर्म में लीन हैं। परस्पर वात्सल्य-भाव को वर्द्धमान करना चाहिए, प्राणिमात्र के उपकारों पर विचार करना चाहिए। मानव के लिए धरती पर प्रत्येक वस्तु उपकार कर रही है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्नि-कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रस जीव जैसे गाय, बैल, भैंस, हाथी, घोड़ा, बन्दर, भालू, पक्षीगण मयूर आदि सभी प्राणीगण मनुष्यों का उपकार कर रहे हैं। मानव को भी अपना धर्म-कर्तव्य का त्याग न कर, कर्तव्य का ध्यान रखना चाहिए। मानव मानव रहे, दानव न बने। रूस, यूक्रेन के साथ विश्व में शान्ति स्थापित हो, अणु-बमों का प्रयोग न कर सृष्टि पर सभी 'जियो और जीने दो' का पाठ पढ़ें। चारित्र के साथ अणुव्रतों का पालन करें, यही सम्यक् विचार विश्व में भगवान् महावीर स्वामी की जन्म-जयन्ती पर उद्घोषित हो।

PREVIEW ONLY

## 133 - Don't burn yourself and the world in fire of attachment and aversion

In case your destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)* of the karmas pertaining to obstruction-of-gain *(lābhāntarāya)* is present, objects can fulfill you desires for wealth, sensual-pleasures and lust. If the destruction-cum-subsidence of the karmas pertaining to obstruction-of-gain is not present, the man will just be able to desire without being able to enjoy the objects. This doctrine is rock-solid. Every man should understand, as it is, the nature of the objects – *vastutva*. Every citizen of the world should practise daily the virtues of world-development, brotherhood, well being of all, and equanimity. Do not burn either yourself or the world in the fire of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*. In the world equipped with highly destructive armament, keep control over your dispositions; else the world would finish in an instant. If the heads of nations become hotheaded, the dharma, culture, places of pilgrimage, and not only humans but all living-beings will be destroyed. Take refuge in patience and tranquilize your passions so as not to destroy your own people.

Today we need the doctrine of Lord Mahāvīra and not the lustfulness of Rāvaṇa or the greed of the Kauravas. Today the virtues of non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(asteya)* and celibacy *(brahmacarya)* are as necessary as these were during the time of Lord Mahāvīra. In the past, violence used to take place in the name of the dharma; today, besides the dharma, violence is resorted to for satisfying individual passions in the guise of the welfare of the state or the nation. Enhance mutual brotherhood; think about the welfare of all living-beings. Every single object on earth is of some use to mankind. One-sensed beings – earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied and plant-bodied – and *trasa* beings having two or more senses – like the cow, ox, buffalo, elephant, horse, monkey, bear, and birds such as peacock – do favour to mankind. Humans should also not overlook their dharma-based duty; they should not become demons. Let there be peace in the whole world, including Russia-Ukraine; let the atom-bomb not be used at all and let all follow the dictum of 'live and let live'. Observe conduct with minor-vows *(aṇuvrata)*; this laudable thought should be advanced to the world on the birth anniversary of Lord Mahāvīra.

विचार
THE THOUGHTS

## १३४. महापुरुषों के गुण-स्मरण से पुण्य की वृद्धि होती है

महापुरुषों का गुण-स्मरण, शान्ति एवं आनन्दकारी होता है, भव-सन्तति के क्षय का कारण बनता है, पाप-कर्म समाप्त होता है, पुण्य की वृद्धि होती है। शारीरिक-मानसिक क्लेशों का भी नाश होता है। आत्म-शान्ति प्राप्त होती है। निर्वेद, संवेग भाव प्रकट होते हैं, उन जैसे बनने के भाव आते हैं तथा महापुरुषों जैसे महान् कार्य करने के विचार भी उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति अनाचार से आत्मरक्षा कर, श्रेष्ठ श्रेयो-मार्ग पर चलने का पुरुषार्थ करता है। सज्जनों को भगवान् स्वयम्भू ऋषभदेव से भगवान् महावीर स्वामी पर्यन्त सर्व-तीर्थंकर, मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम, महाबली हनुमान, केवली, श्रुत-केवली, चक्री आदि महापुरुषों का गुण-कीर्तन करते रहना चाहिए। अन्तिम जीवन कैसे निकालना है, इस पर विचार अवश्य ही करना चाहिए। शुभ-कर्म करने वाले स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करते हैं। अशुभ-कर्म करने वाले जीव नरक, पशु आदि खोटी योनियों में भ्रमण कर घोर-दुःख प्राप्त करते हैं, जिनका वर्णन करना बहुत कठिन है। व्याख्यान करने से करुणा आती है, नयन अश्रु-पूरित होते हैं, फिर अन्य दुःख की क्या बात करें? पुण्य-क्षीण न स्वयं पुण्यकर्म कर पाते हैं, न पुण्यकर्म करने वालों की अनुमोदना कर पाते हैं, न ही पुण्य-पुरुषों व पुराण-पुरुषों का गुणगान कर पाते हैं।

## 134 - Recollecting the qualities of great personages adds to merit

Recollecting the qualities of great personages brings peace and happiness; shortens worldly-existence, and causes destruction of demerit and increase of merit. Bodily and mental inflictions get mitigated. Internal peace is attained. Dispositions of mundane indifference and of perpetual fear of worldly existence are manifested. One thinks of emulating them and do works as they have done. Such a man desists from evil acts and makes efforts to tread the path of virtues. Noble men should continuously adore the virtues of great personages including the Ford-makers *(Tīrthaṃkara)* from self-enlightened *(svayambhū)* Lord Ṛṣabhadeva to Lord Mahāvīra, the Great Epitome-of-

PREVIEW ONLY

propriety *Śrī* Rāma, the Super-powerful Hanumāna, the Omniscients *(kevalī)*, and the Knowers-of-the-entire-scripture *(śrutakevalī)*. Think, without fail, on how you should behave as you approach the end of your life. Those who engage themselves in auspicious karmas get the next birth as a celestial being. Those who engage themselves in inauspicious karmas roam around in lowly states of existence like infernal beings and animals, undergoing untold sufferings. Those rid of merit are not able to engage themselves in meritorious activities, accord approval to those engaged in meritorious activities, and adore the virtues of the men-of-merit and great personages.

विचार
The Thoughts

## १३५. सदाचार उभयलोक में आनन्द-प्रद

विशिष्ट पुण्य चाहिए, तभी श्रेष्ठ-कार्य करने-कराने एवं किए गए की प्रशंसा के परिणाम हो पाते हैं। दुष्टों की गोष्ठी में बैठने की अपेक्षा श्रेष्ठ-जनों की गोष्ठी में बैठकर पूर्व, वर्तमान, भावी काल में होने वाले महापुरुषों का कीर्तन करो, नाम-ध्येय का ध्यान करो। यद्यपि परमार्थ से ये सभी स्वात्मा से भिन्न हैं, तथापि व्यवहार से उपादेय हैं। तत्त्व-ज्ञान में लीन होना सभी जीवों के वश की बात नहीं है, इसलिए व्यवहार का आश्रय लेकर अनाचार से आत्मरक्षा कर लेना चाहिए। सदाचार उभयलोक में आनन्द-प्रद है। वर्तमान में स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन, स्वस्थ वाणी होती है तथा लोक में यशःकीर्ति होती है, परलोक में दुर्गति से आत्मरक्षा होती है। साधुजनों से स्तुत्य सदाचार का ही आलम्बन लेना चाहिए तथा अनाचार से सदा-ही आत्म-रक्षा करना चाहिए। विज्ञ-पुरुषों का पुरुषार्थ सदाचार के लिए ही चलता है। लोक में प्रत्यक्ष देखो, अनाचारियों की क्या दुर्दशा होती है तथा हो रही है। समाज, राष्ट्र में अपयश, राज्य-दण्ड, सर्वस्व-नाश, अन्त में दुर्गति; अनाचारी के लिए यही उपहार है।

## 135 - Good conduct bestows happiness here and hereafter

You need to have exalted merit to be able to do, or get done, or accord approval to laudable activities. Instead of wasting your time in the company of ignoble men, sit in the company of noble men and think about and sing the praise of great personages of the past, the present and the future. From the spiritual standpoint, though all noble men are different from own-soul but still are to be accepted from the empirical standpoint. It is not possible for all men to get engrossed in the knowledge of the reality, and, therefore, they should protect their souls from evil dispositions by taking refuge in the empirical standpoint. Good conduct bestows happiness here and hereafter. In the present life it bestows healthy body, mind and speech, and glory and renown in the world; hereafter it saves you from getting lowly states of existence. Take refuge in the conduct that is adored by noble men and save yourself always from evil acts. Knowledgeable men make efforts to adopt good conduct. Note the pitiable miseries that the men engaging themselves in evil activities go through in the world. The rewards the man of evil tendencies gets in return include dishonour in society and nation, state-punishment, all-round destruction, and evil state of existence hereafter.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## १३६. भाषाओं का ज्ञाता सिद्धान्तों का भी ज्ञाता हो

विश्व की सम्पूर्ण भाषाएँ स्वकीय भावों की अभिव्यक्ति का ही साधन हैं। साहित्य एवं इतिहास की रक्षा भी भाषाओं के माध्यम से होती है। विविध-भाषा-ज्ञाता विविध क्षेत्रीयजनों से अपनी बात का आदान-प्रदान कर लेता है। नाना-भाषाविद् की प्रसिद्धि को भी पुण्योदय पर प्राप्त कर लेता है। किसी के मुख की ओर नहीं देखता, अपितु अपने मुख से सामने वाले को उत्तर एवं प्रत्युत्तर देने की योग्यता रखता है। सामान्य-जन उसे ज्ञानी समझते हैं। ध्यान रखो; भाषा ज्ञाता के लिए एक माध्यम है, वह वस्तु के वस्तुत्व का ज्ञाता हो ही, यह नियामक नहीं है। भाषा-ज्ञानी को स्थान अवश्य दिया जाए, परन्तु विशिष्ट स्थान सिद्धान्तों के ज्ञाता को ही दिया जाए। विषय का भाषान्तर तो कराया जा सकता है, परन्तु सिद्धान्तान्तर नहीं कराया जा सकता। कार्य किसी भी भाषा से नहीं होता है, कार्य की पूर्णता तो विषय के सिद्धान्तों पर आलम्बित है।

जो सिद्धान्तों एवं सूत्रों पर हस्तक्षेप करता है वह वस्तु-व्यवस्था भंग करने का विचार तो कर रहा है, परन्तु भंग कर नहीं पायेगा। कारण? जो कार्य जिस विधि से एवं सूत्रों, सिद्धान्तों से होता है उसमें वही विधि, सिद्धान्त तथा सूत्रों का प्रयोग होगा। अन्य का प्रयोग नहीं हो सकता। कार्य-पूर्णता के योग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आवश्यकता है, वह पूर्ण चाहिए पड़ेगी। देश के अधिकृत अधिकारी व नेता का कर्तव्य है, भाषा एवं प्रभुत्व सत्ता का प्रयोग देश की किसी भी प्रयोगशाला पर न किया जाए, न ही आरक्षण का प्रयोग हो। यदि अपने कार्य की गुणवत्ता को संरक्षित रखना चाहते हैं तो मूल सिद्धान्तों के ज्ञाता की प्रज्ञा का ही प्रयोग करें। देश-विकास के लिए भाषा आवश्यक है, अनेक भाषाओं के ज्ञाता पुरुष भी होना चाहिए, कोई भी भाषा विरोध योग्य नहीं। किसी भी भाषा का विरोध मत करो, चाहे क्षेत्रीय हो, देशीय हो अथवा विदेशी, सभी स्व-स्व भाषा में अपनी कार्य प्रणाली को पूर्ण करते हैं। विश्वव्यापी तो कोई भी भाषा नहीं बन पाई, आंग्ल-भाषा भी सम्पूर्ण-विश्व में पूर्ण रूप से नहीं बोली जाती। विश्व के अधिकांश राष्ट्र स्व-राष्ट्रीय भाषा का ही प्रयोग करते हैं। राज्य कार्य हो, चाहे सामान्य गृह कार्य अथवा विद्यालय का पठन-पाठन; सब अपने-अपने देश की भाषा में हो रहा है।

PREVIEW ONLY

## 136 - A linguist should have the knowledge of the doctrine too

All languages in the world are the means to express the thoughts of the self. Literature and history are preserved through languages. A linguist can communicate with people from different regions. On fruition of merit, he attains renown too. He does not have to depend on someone else for communicating with others. General people accept him as a knowledgeable man. But keep in mind that language is a medium for acquisition of knowledge; it is not necessary that the linguist would know the true nature of the objects – *vastutva*. The linguist certainly should get a place but the place-of-pride must belong to the man who knows the doctrine. Any subject can be rendered into a different language but the doctrine must remain the same in all languages. The work gets accomplished not through the language but through the doctrine.

The man who tries to interfere with the doctrine and the facts of nature can think of

disturbing these but is bound to fail. Why? To accomplish any work certain process, doctrine and facts of nature are to be employed. There is no other way to accomplish the work. There should also be an essential concomitance of proper substance *(dravya)*, place *(kṣetra)*, time *(kāla)* and disposition *(bhāva)*. The officials and leaders of the country should, as a duty, ensure that no research laboratory in the country be subjected to dominance of particular language or authority; reservations should be done away with for special tasks. If you wish to maintain high-quality output of work, use the knowledge of only the men who know the tenets. For the development of the country, language is necessary and there should also be men who know multiple languages; there is nothing against any language. Do not oppose any language – regional, national or foreign. All accomplish work in their own language. There is no universal language; even English is not spoken throughout the world. Most nations have and use their own national language. All work – pertaining to the state, the normal household or the institutional learning and teaching – is done in own national language.

विचार
THE THOUGHTS

## १३७. भाषा, सम्प्रदाय के नाम पर देश को खण्ड-खण्ड न किया जाए

तीर्थंकरों की दिव्य-देशना भी 18 महाभाषाओं और 700 लघु भाषाओं में होती थी, परन्तु महावक्ता तीर्थंकर भगवन्तों ने यह कभी नहीं कहा कि यही भाषा पूर्ण उपादेय है। सम्प्रति देखा जाता है कि एक राष्ट्र में ही अनेक भाषी लोग रहते हैं। अपनी-अपनी देशीय, क्षेत्रीय भाषा को महान् कहकर अन्य भाषा-भाषी और उनकी भाषा का घोर अपमान कर देश की अखण्डता पर खण्ड-खण्ड का दोष स्थापित कर, विद्वेष एवं विरोध खड़ा करते हैं। भारत की अखण्डता, धर्म-निरपेक्षता को सुरक्षित रखा जाए। भाषा, सम्प्रदाय के नाम पर हमारे देश भारत को खण्ड-खण्ड न किया जाए। भारत में जो रहता है, वह अपने आपको भारतीय मानकर देश की आध्यात्मिक शक्ति को वर्द्धमान करे। भारत तीर्थ-भूमि है, इस तीर्थ-भूमि की पवित्रता को सुरक्षित रखें। भारत एक ऐसा महान् देश है जिसमें नाना मत, नाना भाषायें, नाना पन्थ तथा सम्प्रदाय अपने-अपने स्वरूप से अवस्थित हैं। फिर भी देशभक्ति, अध्यात्म-विद्या के बल पर सभी एकता के साथ देश-विकास, आत्म-विकास के कार्यों में संलग्न हैं।

## 137 - Do not fracture country's unity in the name of language or sect

The divine-preaching of the Supreme Lords, the *Tīrthaṃkara*s, is in eighteen major-languages and seven-hundred minor-languages; still they never said that only one particular language is worth adopting. In today's world we see that many languages are spoken in a single country. Some proclaim their own national or regional language to be the greatest, they denigrate other languages and, in the process, fracture not only the unity of the country but also give rise to hatred and opposition. India's unity and secularism should be maintained. Our country should not be fractured in the name of language or religious belief. Every citizen who lives in India is an Indian and should strive to enhance its spiritual prowess. India is a place of pilgrimage; maintain its sanctity. India is a great country in which different ideas, languages, sects and religious

PREVIEW ONLY

beliefs are able to live in their own respective space. Still, on the strength of patriotism and spiritual knowledge, all are engaged in the development of the country and self.

विचार
THE THOUGHTS

## १३८ भारत, भारत ही रहेगा; अन्य नहीं हो सकता

श्रेष्ठ गुरुजनों, प्रभुओं की भूमि भारत है। भारत, भारत ही रहेगा, भारत को अन्य बनाने का भाव ही न लायें। सम्पूर्ण भारत-भूमि विश्व को भोजन एवं भजन प्रदान करती है। जब-जब विश्वव्यापी कोई घटना घटती है, तब भारत सर्व-पक्षों को गौण करके सभी का सहयोग करने खड़ा हो जाता है। जो देश हमें शत्रु मानते हैं, उन देशों को भी भोजन देने को भारत तैयार रहता है; भारत के अध्यात्म की यही पहचान है। भारत देश को जगत्-जननी कहा जाता है। साहित्य, पुरातत्व का विपुल भण्डार भारत देश है, ऋषियों, मुनियों, साधु-सन्तों की भूमि भारत देश है। शास्त्रों के पाठों का गुंजन भारत में ही सुनाई पड़ता है। निर्ग्रन्थों, श्रमणों के दर्शन भारत के बाहर नहीं होते। भाषा व्यवहार के पीछे देश-भेद भावना को वृद्धिंगत न करें, राष्ट्रोन्नति पर विचार अवश्य करें। ऐसे कार्य करें जिनसे सम्पूर्ण-विश्व भारत देश की ओर आकर्षित हो। विश्व के लोग हमारे देश में आकर शान्ति का संवेदन कर पायें।

## 138 - India shall ever remain India, it cannot change

India is the land of excellent gurus and Lords. India shall ever remain India; don't ever think of changing it. India imparts food and songs of praise to the whole world. In case of any mishap in the world, India comes forward, unconcerned about own interests, to offer help to all. India is ready to supply food to even those countries which see it as an enemy. This is the mark of its spiritual legacy. India is called the birthplace of the world. India has great treasure of literature and artifacts; it is the land of sages, ascetics and mendicants. The sounds of the reading of sacred texts reverberates here. You don't get to see the sky-clad or naked *(nirgrantha)* ascetics outside India. Don't create differences between countries on the basis of languages; think about the development of your nation. Engage in works that tend to attract the attention of the whole world towards India. Let the people of other countries experience peace as they tour India.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## १३९. सद्-साहित्य के पठन-पाठन से ही संस्कृति व सदाचार की रक्षा

भौतिक मार्ग सुविधा दे सकता है, परन्तु शान्ति नहीं दे पायेगा। शान्ति के लिए आध्यात्मिक जीवन शैली बनाना पड़ेगी। जिस त्याग, तपस्या से नव-पीढ़ी दूर जा रही है, उसे पुनः भारत की मूल-संस्कृति के पीछे लगाया जाए। 'सत्यार्थ-बोध', 'वस्तुत्व महाकाव्य' आदि का अभ्यास अनिवार्य अंग रहे। विपुल साहित्य का और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के ग्रन्थों का पठन-पाठन संस्कृति, सदाचार की रक्षा करेगा। जिस भाषा में सदाचार, संस्कृति, पुरातत्व, आत्महित की बात की गई हो, उसे ही पढ़ना चाहिए। जिस साहित्य में आत्महित नहीं, सदाचार, संस्कृति, पुरातत्व के प्रति उत्साह नहीं, अपितु स्वधर्म, परिवार के प्रति अनुत्साह भरा जाए, ऐसे साहित्य के पठन-पाठन को सदा के लिए

छोड़ देना चाहिए। जहाँ संस्कृति का ही क्षय हो, करुणा, दया, मानव-मानव की कीमत समाप्त हो रही हो, ऐसी शिक्षा न लेना एवं न ही देना चाहिए।

### 139 - Reading of good literature protects the culture and conduct

The path leading to materialism can provide you amenities, not peace. For peace you will have to adopt a spiritual lifestyle. The new generation should be directed back towards the virtues of renunciation and austerities, the foundational aspects of Indian culture. The study of literature including *Satyārtha Bodha* and *Vastutva Mahākāvya* should be made compulsory. The study of profound literature and languages including Sanskrit, Prākṛta and Apabhraṃśa will protect your culture and conduct. You should accept the language that fosters conduct, culture, antiquity and soul-development. The literature that does not foster self-development, conduct, culture and antiquity but generates disdain for the dharma and family should never be read. Do not either impart or adopt any learning that causes destruction of the culture, and does not value the virtues like compassion, kind-heartedness and humaneness.

विचार
THE THOUGHTS

### १४०. राष्ट्रभाषा का विकास करें

शासन एवं जनक-जननी को शिक्षा पर विशेष विचार करना चाहिए। देश की संस्कृति सुरक्षित रहे, 'माता-पिता' शब्द जीवित रहे। जिससे प्रीति वर्द्धमान हो, वात्सल्य जीवित रहे, प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रहे, ऐसी भाषा एवं वचनों का प्रयोग करें। तीर्थंकर भगवन्तों की जो देशना होती थी वह सर्व-भाषात्मक होती थी। हमारा देश महापुरुषों की जन्मभूमि है; उन्होंने जन्म लेकर इस देश को धन्य किया। धन्य-भूमि पर राष्ट्रभाषा का विकास करें, इसलिए कि सिद्धान्तों को स्वभाषा में शीघ्र सीखा जा सकता है। बुद्धि तथा चित्त का गमन स्वभाषा में शीघ्र होता है। छात्र स्वभाषा में सर्व-विद्याओं को शीघ्र सीख सकता है और राष्ट्र-विकास में सहकारी बन सकता है। क्षमता है तो अन्य भाषाओं को भी सीखना चाहिए, जिससे अन्य-भाषीजनों के भावों को सम्यक् समझ सकते हैं।

### 140 - Develop the national language

The administration and the parents should give special attention to education. Let the culture of the country remain safe; let the phrase *'mātā-pitā'* (mother-father) remain alive. Use language and speech that fosters love, affection and compassion for all living-beings. The divine-preaching of the Supreme Lords, the *Tīrthaṃkara*s, used to be multi-lingual. Our country is the land of great men; they have made this land auspicious. Develop the national language on this auspicious land as the doctrine can easily be assimilated in own language. The intellect and the mind are at ease in own language. The student can easily adopt all learnings in own language and take part in nation-building. If you have the skill, learn other languages too so that those proficient in other languages can also appreciate your profound teachings.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १४१. किसी भी भाषा व संस्कृति का अपमान न करें

भाषा प्रेम में परस्पर प्रेम की वृद्धि होगी, प्रान्तों, देशों के प्रति साम्य-भाव बनेगा। अतः भाषाओं एवं संस्कृतियों के प्रति सद्भावनायें रखें। किसी भी भाषा व संस्कृति का अपमान कर किसी की भी भावनाओं का घात न करें। हमारे देश में सर्व-सम्प्रदाय हितकारी, धर्म-निरपेक्ष संविधान का विधान अटल रहे। वात्सल्य-भाव से भारत में भारतीय बनकर रहें। यदि सर्व-सम्प्रदाय अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के सिद्धान्तों का आश्रय लेते हैं, तो फिर किसी प्रकार के साम्प्रदायिक विसंवाद हो ही नहीं सकते।

### 141 - Do not denigrate any language or culture

Love for languages will enhance mutual love, and create harmony between nations and states. Maintain goodwill for languages and cultures. Do not bruise the feelings of others by denigrating their languages and cultures. Let the constitution of India, that is for the well being of all sects and is secular, remain intact. When in India, cultivate affection and be an Indian. If all sects take refuge in the doctrines of non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(asteya, acaurya)*, celibacy *(brahmacarya)*, and non-possession *(aparigraha)*, there is no scope for any religious discord among people.

विचार
THE THOUGHTS

## १४२. कम से कम अणुव्रतों को तो सभी अवश्य धारण करें

जगत् भ्रमण एवं दुःख नाश के विचार पर ही सर्व-सम्प्रदायों की नींव है। निर्णय यह करना कि अन्य को दुःख देकर क्या स्वयं को दुःख से मुक्ति मिल सकती है? हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह की वृद्धि से कौन व्यक्ति सुखी हो पाया है? इनसे तो इह-लोक, पर-लोक में दुःख ही प्राप्त होता है; शोक में ही डूबना पड़ेगा। श्रेष्ठ लोगों को पंच-महाव्रतों, अणुव्रतों पर लक्ष्य रखना चाहिए। महाव्रत धारण की सामर्थ्य हो तो महाव्रत धारण करें, महाव्रत धारण की शक्ति न हो तो अणुव्रतों को अवश्य धारण करना चाहिए। यदि सम्पूर्ण विश्व स्व-स्व देश में स्व-संविधान में अणुव्रतों को स्थापित कर दे, तो विश्व में शान्ति तथा आनन्द छा जायेगा।

### 142 - Everyone should at least observe the minor-vows *(aṇuvrata)*

The foundation of every sect is the thought as how to get rid of worldly-existence and misery. You have to decide whether it is possible for you to get rid of misery by causing misery to others. Which man has become happy by indulging excessively in injury *(hiṃsā)*, falsehood *(asatya)*, stealing *(steya* or *caurya)*, unchastity *(kuśīla)* and attachment-to-possessions *(parigraha)*? These are vices which engender misery here and hereafter. Worthy men should aim at the observance of the major-vows *(mahāvrata)* and the minor-vows *(aṇuvrata)*. If you have the capability, adopt the major-vows; if not, adopt definitely the minor-vows. If all nations of the world incorporate the minor-vows in their constitutions, the whole world shall experience peace and happiness.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १४३. प्रथम व्रत अहिंसा

प्रथम व्रत अहिंसा है। प्राणिमात्र पर करुणा, दया-भाव है तो कोई किसी भी प्राणी की हत्या नहीं करेगा। फिर हिंसा-जन्य अपराध समाप्त हो जायेंगे और सम्पूर्ण जीव निर्भय होकर आनन्द के साथ प्रीतिपूर्वक विचरण करेंगे। परस्पर प्रेम, मैत्री, वात्सल्य-भाव का जन्म होगा। मानव के साथ पशु-पक्षी भी सुख से जी सकेंगे। किसी प्राणी को पर के द्वारा घात का भय नहीं सतायेगा। सर्व-विश्व अहिंसा परमब्रह्म का उपासक हो जायेगा, फिर सर्व-लोक में विभिन्न प्रकार के प्राणी दृष्टिगोचर होंगे। अहो! वह कैसा क्षण होगा! पृथ्वी पर प्रत्येक प्राणधारी स्व-प्राणों की रक्षा कर पायेगा। सम्पूर्ण पृथ्वी धर्ममय हो जायेगी। प्राणियों को मानव में भगवान् दिखने लग जायेंगे।

### 143 - The first vow is non-injury *(ahiṃsā)*

The first vow is non-injury *(ahiṃsā)*. In presence of compassion and kind-heartedness for all living-beings, no one will kill anyone. All crimes due to violence will vanish and all living-beings will roam around without fear and with mutual goodwill. There will be mutual love, brotherhood and affection. Even animals will live happily with human beings. No one will live under the fear of violence. The whole world will follow the dharma of supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)*; you will get to see many species of living-beings. Amazing! What a beautiful moment it will be for the world! Every living-being on earth will be able to protect its life. The earth will transform into the land of dharma. God will get personified in humans.

विचार
The Thoughts

## १४४. संसार के सर्व जीवों की रक्षा मानव का कर्तव्य

अहो मानवों! मत बनो नर-अधम, बनो नरोत्तम, प्राणिमात्र के प्राणों की कीमत समझो। जो स्वप्राणों की रक्षा का भाव रखते हैं, उन्हें पर-प्राणों की रक्षा के भी भाव रखना चाहिए। प्रत्येक जीव स्वकीय जीवन जीने का अधिकार रखता है। मानव-धर्म के अनुरूप संसार के सर्व जीवों की रक्षा को अपना कर्तव्य स्वीकार करें। यदि ऐसा नहीं किया तो मानवता रो पड़ेगी। जगति पर जो प्राणों को धारण करने वाले जीव हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ विचारवान् प्राणी मानव हैं, इसलिए उनका धर्म बनता है कि सर्व-जीवों के हित के विषय में विचार करें। पर्वत, नदी, सागर, सरोवर, कुआँ, वन, उपवन, जंगल, बीहड़, वृक्ष, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पशु, पक्षी के अलावा क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा ब्राह्मण, इन चारों वर्णों के मानव की परस्पर रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का धर्म है।

### 144 - To protect every living-being is the dharma of the man

O men! Do not be petty; understand the value of life of every living-being and become great. As you think of protecting your own life, think of protecting the life of others too. Every living-being has the right to live. If humanity is your dharma, accept it as your duty to protect every living-being on earth. Humanity will cry if you fail in observing this duty. The best and the most intelligent of all living-beings on earth is the human and, therefore, it is his/her dharma to think about the well being of all living

PREVIEW ONLY

beings. Every citizen of the world must think of protecting the mountains, the rivers, the oceans, the ponds, the wells, the forests, the woods, the rugged terrains, the trees, the air, the fire, the water, the land, the animals including birds, and all the four classes of men – *kṣatriya, vaiśya, śūdra, and brāhmaṇa.*

विचार
THE THOUGHTS

## १४५. पर्यावरण की रक्षा के लिए त्रस-स्थावर जीवों की रक्षा करें

आपको लग सकता है कि इन सब जीवों की रक्षा से मुझे क्या लाभ? समझो ज्ञानी! आपको इनकी रक्षा से लाभ-ही-लाभ है। विवेक-पूर्वक स्वप्रज्ञा से विचार करो, बुद्धि खुल जायेगी। संसार का सर्व-सुख तथा परमार्थ सबकी रक्षा से ही सम्भव है। पंच-स्थावर एवं त्रस जीवों की रक्षा के बिना मानव जीवन सुरक्षित नहीं है। सामान्य नागरिक जी रहे हैं सभी के होने से, पर उन्हें अपनी अल्प-प्रज्ञा से समझ ही नहीं आ रहा है कि उनका जीवन किसके माध्यम से सुरक्षित है। पर्यावरण की रक्षा त्रस-स्थावर जीवों के संरक्षण एवं संवर्धन से ही सम्भव है। विचारशीलता, विनयशीलता, दयाशीलता, अध्ययनशीलता, लेखनशीलता, देश-विकासशीलता, नय-प्रमाण बोधशीलता संसार के सभी जीवों के पास नहीं होती; विशिष्ट विज्ञ, क्षेत्रज्ञों के पास ही होती है। जिस विषय का स्वयं को ज्ञान तथा सोच नहीं है तो तद्-ज्ञाता, ज्ञानीजनों की बात को सरल, सहज-भाव से स्वीकार करना चाहिए।

## 145 - To protect environment, protect the *trasa* and *sthāvara* living-beings

What benefit will you accrue by protecting all living-beings? Understand, O wise man! You stand to gain by protecting them. Think with proper discrimination and intellect. Worldly happiness and spiritual development are possible for those protecting all living-beings. Human life is not safe without the protection of the five kinds of immobile (one-sensed, *sthāvara)* living-beings – earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, and plant-bodied – and the mobile living-beings with two or more senses, called the *trasa jīva*. Their presence enables the human beings to live; the humans may not appreciate this due to ignorance. The environment can only be protected through the protection and growth of the *trasa* as well as the *sthāvara* living-beings. Thoughtfulness, modesty, kind-heartedness, studiousness, authorship, development-orientation, and understanding of the standpoint *(naya)* and the valid-knowledge *(pramāṇa)* are not common among men; these are found only in some particularly intelligent men. Accept naturally the knowledge and the thinking of the knowledgeable men on the subjects that you do not yourself comprehend well.

विचार
THE THOUGHTS

## १४६. हानिकारक वस्तु को भी अविवेक से नष्ट न करें

राजा का धर्म है कि जिस वस्तु से हानि होती हो उसे शीघ्र ही नष्ट नहीं करना चाहिए। तद्-ज्ञाता पुरुषों से विचार करना चाहिए, फिर हानि से बचने का उपाय खोजना चाहिए और लाभ की व्यवस्था बनाना चाहिए; न कि नाश करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया तो राज्य, राजा दोनों का नाश होना

PREVIEW ONLY

निश्चित समझना चाहिए, इसमें कोई शंका न करे। विज्ञ-पुरुष प्रत्येक वस्तु को अग्निवत् उपयोग करते हैं। अग्नि-ज्वाला दहन अवश्य करती है, जो भी वस्तु अग्नि के मध्य आयेगी वह राख हो जायेगी। कितने ही जंगल की अग्नि में राख हो गए। वन-औषध, वनचर-जीव, वनवासी-मानव तक जल गए। देश की कितनी ही माताएँ, बहिनें अग्नि में राख हो गयीं। अग्नि चाहे सामान्य ईंधन रूप में हो, चाहे विद्युत् रूप से प्रकट हो, चाहे गैसादि की ज्वाला हो, सभी का धर्म जलाना है। क्या राज्य-शासन, देश-शासन या जिन-शासन अग्नि का सृष्टि से अभाव कर देगा? अग्नि के क्षय (अभाव) से क्या विश्व जीवित रह पायेगा? अग्नि दाहक ही नहीं, पाचक-धर्मी भी है, प्रकाशक धर्मी भी है।

एक धर्म देखकर अग्नि के नाश का विचार नहीं किया जा सकता। जैसे अग्नि का उपयोग सावधानी-पूर्वक किया जाता है, वैसे-ही सभी घातक सामग्री का उपयोग करो। अग्नि के बिना विश्व हाहाकर करेगा। उसी प्रकार शेष स्थावरों के बिना, त्रस जीवों के बिना, लोक में हाहाकार मच जायेगा। सम्पूर्ण-विश्व को विशेष बनाने वालों की विशेषता क्षणमात्र में नष्ट हो जायेगी। विश्व-भूमि पर जो चेतन-अचतेन पदार्थ हैं उनके प्रति सद्-विचार रखो। किसी के नाश का विचार मत करो। प्रजातंत्र में सबके साथ सद्भावना-पूर्वक ही विकास कर पायेंगे। तीर-तमंचा से स्व-पर का विनाश तो कर पायेंगे, परन्तु बौद्धिक विकास कभी नहीं कर पाओगे। जो क्रूर, कलह-प्रिय, युद्ध-प्रिय, पर-धर्म नाशक शासक हुए हैं, उन्होंने साहित्य, संस्कृति एवं साधु-जनों का नाश ही किया है। स्व-मान, स्व-भोग विलासिता पुष्टिकरण की नीति में आकण्ठ डूबकर देश की प्रजा प्रसन्न नहीं कर सके। खोटा, अश्रु-पूरित इतिहास बना गए। अश्रद्धा, अनास्था को जन्म देकर चले गए।

### 146 - Do not destroy indiscriminately even harmful things

The ruler should, as a duty, not destroy immediately anything that seems harmful. He should consult experts on the subject, think about the means to get protection from the possible harm and if there are ways to convert the harm into benefit. If this is not done, the destruction of the kingdom and the king is certain. Intelligent people use everything in a manner they use the fire. The fire certainly burns the thing that comes in its contact. Conflagration has turned many forests into ash. Many medicinal plants, wild animals and woods-dwelling humans have perished. Many mothers and sisters have been burned to ashes by fire. All modes of fire, whether produced by normal fuel, electricity, or combustible gas, burn. Now; should the administration of the state or nation think of eliminating the fire from the world? Can the world survive without the fire? The fire is not just an agent for burning, it supports digestion and it also provides illumination.

So, one cannot think of destroying the fire due to its one attribute. Just as the fire is used with care, use all destructive substances with care. Just as without the fire there will be chaos in the world, there will be a similar situation if all the immobile (one-sensed, *sthāvara)* living-beings and the mobile *(trasa)* living-beings, save the human, are eliminated. The world will lose instantly everything that makes it special. Have positive thoughts in respect to all animate and inanimate objects in the world. Do not think of destroying anything. In a democracy, development rests on goodwill of all. The arrows and guns can be instruments of destruction of self and others but not of intellectual development. All cruel, discord-loving, and war-loving rulers have caused the destruction of the dharma, the literature, the culture and the noble men. They have not

PREVIEW ONLY

been able to do good to their subjects by themselves getting neck-deep into the waters of self-aggrandisement and sensual-gratification. They have perished after creating evil and tearful history. And, after bringing forth disbelief and scepticism.

विचार
THE THOUGHTS

## १४७. बड़ी मछली छोटी मछली को न निगले

किसी भी धर्म, सम्प्रदाय के राग में राजा एवं नेताओं को अन्य धर्म, सम्प्रदाय के विनाश का विचार नहीं करना चाहिए। राजा व नेता के सम्बन्धी व उनके हितचिन्तक भी उनकी आड़ में राज्य-विरुद्ध, राजनीति तथा संविधान के विरुद्ध कोई भी कार्य करें तो राज्य-धर्म का पालन करते हुए, वंश, सम्प्रदाय, परिवार, मित्र, भाई, जाति, बन्धु, अधिकारी, अन्य राज्यतंत्र कोई भी हो, उसे प्राण-रक्षा करते हुए कठोर दण्ड देना उचित है। ध्यान रहे कि देश में अनीति, अन्याय की वृद्धि न होने पाए। सज्जन-पुरुष राज्य में पीड़ित न रहें, सभी सम्यक् न्याय-प्रिय रहें। न्यायमूर्ति शब्द का अपमान देश में न होने पाए।

ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्री के 'भारत' में अन्याय, कुनीति का साम्राज्य स्थापित न होने पाए। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, गृहमंत्री, वित्तमंत्री से लेकर राज्यों के मुख्यमंत्रियों के साथ-साथ सेनाध्यक्ष, प्रशासन का कर्तव्य है कि देश-प्रदेश, जनपदों में व नगर, ग्राम-शैलियों में ही नहीं, अपितु घर-घर में मत्स्य-न्याय लागू न होने पाए। तात्पर्य समझो मत्स्य-न्याय का- जैसे छोटी मछली को शक्तिमान बड़ी मछली निगल जाती है, उसी प्रकार से बड़े लोग पुण्य-विशेष-युक्त, अधिकार-युक्त, धन-युक्त, राज्यपदों पर अधिष्ठित, लोक में बड़े, बुद्धि से बड़े, ये सब जो हैं वे जिन्हें न्यून अथवा छोटे लोग कहते हैं उन्हें निगल न जायें। तात्पर्य यह है कि 'बड़े लोग' तथाकथित 'छोटे लोगों' की सुख-सम्पत्ति-यश का नाश न करें। न ही वे किसी के धर्म को बदलें, न किसी के अधिकृत न्याययुक्त, धर्मयुक्त स्थल, तीर्थ-भूमि, प्रतिमा, मूर्ति, साहित्य आदि का हरण करें, न उनमें परिवर्तन करें। तस्कर व घातक न बनें, अपितु रक्षक, पोषक बनें, जिससे सदियाँ-सदियाँ उनका गुण-स्तवन कर सकें।

## 147 - The big fish should not swallow up the small fish

Due to his attachment for a particular religion or sect the ruler or the leader should not think of destroying other religions or sects. If any relative or well-wisher of the ruler or the leader does any unworthy act that is against the state, its policies or constitution, he should be accorded strong punishment, short of capital punishment, irrespective of him being a member of the progeny or sect or family, a friend, a brother, an officer, or an administrator. No wrong policies or injustice should be tolerated in the state. Noble men should not be subjected to any torture and all should welcome justice. The word *'Nyāyamūrti'* – the epitome of justice – that is used for a judge should not be denigrated.

The rule of injustice and wrong policies should not prevail in 'Bhārata' (India), named after Bharata *cakravartī* (king-of-kings), son of Lord Ṛṣabhadeva. It is the duty of the Prime Minister, the President, the Home Minister, the Finance Minister, the Chief Ministers, the Chief of the Army, and the administration to ensure that nowhere in the

PREVIEW ONLY

country – states, municipalities, towns, villages or even homes – the 'fish-logic' prevails. The 'fish-logic' means the big fish swallowing up the small fish. The influential men with merit, power, wealth, status and intellect should not swallow up those who are 'low' in any sense. The idea is that the 'big men' should not destroy the happiness, honour or wealth of the 'small men'. They should not try to change anyone's religion, to acquire or change legally established places of their worship and pilgrimage, their idols, or literature. Do not become a smuggler but become a protector and a nurturer so that the songs of your praise are sung for centuries.

विचार
THE THOUGHTS

## १४८. प्रजा का पालन वत्सवत् करो

प्रत्येक मानव की ही नहीं, अपितु प्रत्येक प्राणी की रक्षा का भाव होना चाहिए। छल-कपट, मायाचारी से नहीं; सत्य, धर्म, प्रेम, वात्सल्य के बल पर। प्रजातंत्र का पालन करते हुए सत्ता अर्जित करना चाहिए; प्रजातंत्र विश्वास का तंत्र है। प्रजा का पालन वत्सवत् करोगे तो प्रजा स्वयं आपको स्वीकार कर लेगी। लोक में प्रत्येक वस्तु समाज, राज्य, साधु-असाधु के काम आती है। कार्य-गति विभिन्न हो सकती है, पर आवश्यकता पड़ती है। जैसे जो साधक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन पूर्ण सत्यता के साथ करता है; उसे लोक में स्त्री से कोई प्रयोजन नहीं है, तो क्या वह लोक में स्त्रियों के अभाव का विचार करे? अरे भाई! ऐसा नहीं है। साधक के लिए स्त्री के प्रति अब्रह्मभाव, कायप्रवीचार, मैथुन-सेवन का त्याग है, परन्तु आहारचर्या, भिक्षावृत्ति में उसके द्वारा प्रदत्त भोजन का त्याग नहीं है। वहाँ समझना चाहिए कि भोजन का ग्रहण तो करना ही होता है, इसलिए विवेकपूर्वक वस्तु के बारे में निर्णय लें। यदि स्वयं निर्णय-क्षमता का अभाव है और आप शीर्ष-पुरुष हैं, तो तद्-तद् विषय के शीर्ष ज्ञाता व अनुभवी लागों से निर्णय करायें, आज्ञा आप दें।

## 148 - The ruler should foster his subjects as sons

Have the disposition of protecting not only every human being but all living-beings. Not on the strength of trickery or deceit but on the strength of truthfulness, dharma, love and affection. Attain the seat of power upholding the values of democracy, which has faith as its base. If you foster your subjects like your own child, people will accept you. Every object in the world is of some use to society, state, and noble as well as ignoble men. The work and its time may differ but the object is needed. For example, a spiritual practitioner who is strictly observing the vow of celibacy *(brahmacarya)* has no concern with any woman; does it mean that he should think of a world rid of all women? Let us understand. The spiritual practitioner observing the vow of celibacy does not require a woman as he has renounced all dispositions of lust and intercourse, but still he can and has to accept food prepared and offered by women. Even the aforementioned spiritual practitioner has to get and accept food; he should take a decision with due discrimination. If you, although at the helm of affairs, lack the ability to take a sound decision, take help from the men who have knowledge and experience in the particular field and then pronounce your order.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १४९. स्त्री-शिक्षा एवं स्त्री-रक्षा की आवश्यकता

स्त्री–शिक्षा एवं स्त्री–रक्षा - ये दो बातें विश्व के लिए चिन्तवन, विचार करने का विषय है। सम्पूर्ण राष्ट्रों को इस पर विचार करना चाहिए। साथ ही धर्म, संस्कृति की रक्षा तभी होगी जब जनक–जननी, भाई–बन्धु भी इस विषय पर पूर्ण गम्भीरता के साथ कदम उठाएँ। नारी–शिक्षा एवं रक्षा पर विचार नहीं किया तो भावी काल सुसंस्कृति, सदाचार, मानवधर्म से शून्य हो जायेगा। श्रेष्ठ संस्कृतियाँ क्षय को प्राप्त हो जायेंगी। धर्म–स्थान, धर्म–ग्रन्थ सब नष्ट हो जायेंगे। वर्तमान के लोगों को स्व–भोग का जीवन जीकर नहीं मर जाना चाहिए। भविष्य में संस्कृति की रक्षा पर भी विचार करना चाहिए। मानव एक सामाजिक प्राणी है, पशुवत् जीवन जीने वाला नहीं है। मनुष्य के रूप में दानव संस्कृति से स्त्रियों की रक्षा करना चाहिए।

## 149 - The necessity of education and protection of women

Woman-education and woman-protection are two aspects that need thinking by the world, by all nations. Further, the dharma and the culture will be protected only when the parents and brothers too think and act seriously about this. If the aforesaid two aspects are not thought-through seriously the future will be devoid of good culture, conduct and humaneness. Good cultures will vanish. Places of pilgrimage and the sacred texts will get destroyed. The present generation should not spend its entire life in just satisfying its lustful tendencies. It should also think about the protection of culture for the future. Man is a social being and should not live the life of an animal. All should protect women from the demon-like men.

विचार
THE THOUGHTS

## १५०. आतंक, अनाचार से राष्ट्र को कलंकित न करें

भिन्न जाति की कन्या से परिणय कर स्व–जाति के संस्कारों का क्षय नहीं करना चाहिए। स्व–स्व जाति में विवाह–संस्कार की पवित्र–परम्परा का पालन सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों को करना चाहिए, यही मानव जाति का धर्म है। जो जिस कुल, सम्प्रदाय में जन्मा है, उसे उस परम्परा कुल, धर्म, सम्प्रदाय की कन्या से विवाह करना चाहिए। राक्षसी–विवाह, गन्धर्व–विवाह नहीं होना चाहिए, मात्र देव–विवाह ही श्रेष्ठ है। पालक का कर्तव्य है पुत्र–पुत्रियों को सुसंस्कार प्रदान करें। क्रूर स्थानों पर न जायें, न लायें। अज्ञानता से स्व–जीवन का नाश न करें। कुलाचार का विघात न करें। कुलघातियों पर विश्वास भी न करें।

अहिंसा, करुणा, दया जहाँ हो, वहाँ अपना पाणिग्रहण (विवाह) करें, जिससे श्रेष्ठ अपत्य (पुत्र) का जन्म हो जो भारत देश की गरिमा विश्व–वसुन्धरा पर प्रवाहिमान करे और सम्पूर्ण–विश्व को शान्ति व आनन्द का पाठ पढ़ा सके। आतंक, अनाचार से जाति, समाज, राष्ट्र को कलंकित न करें, क्रूरतापूर्ण जीवन न जियें, अपितु साधुता का जीवन जियें। अहो! मेरे देश के युवाओं! विचार करो; आपके पास प्रशस्त प्रज्ञा, बुद्धि है। जैसे पयस् जीवन को वर्द्धमान एवं सुन्दर बनाता है, परन्तु यदि कोई उसमें विष मिला दे तो वह स्व–पर की मृत्यु का कारण बन जाता है, उसी प्रकार युवा–जीवन पयस्, दुग्ध, पानी, अमृत के तुल्य है। जिसमें सद्बोध, सद्दृष्टि, सदाचार की मिश्री मिल जाए तो अतिश्रेष्ठ

PREVIEW ONLY

है। जैसे परम-स्वादिष्ट, शरीर-पोषक आहार क्षुधा-पीड़ा का उपशम कराने में समर्थवान है, वैसे-ही युवा-जीवन में सुसंस्कार मिश्री के समान हैं। संस्कारित होकर जीवन में स्व-पर को मधुरता व मिठास प्रदान करें। आतंकी न बनें, आप सात्त्विक-सच्चे साधु बनें। तीर-तमन्चा के स्थान पर संयमोपकरण पिच्छी धारण करें। जीवों के उपकार पर विचार करें। पूर्व-विकृत हृदय भी सँभल जाते हैं, क्रूरता को छोड़ दया-धर्म अपनाने से। आपके नाम पर देश आनन्द मनाए; देश को रुदन नहीं, आनन्द दो।

आतंक से प्रभावित न हों। प्रतिक्षण सुंदर-जीवन जियें। जीवन भयभीत होकर पूर्ण न करें, अपितु परिवार के साथ रहकर प्रभु-भक्ति करें। स्वाध्याय, जप-तप करें। आप समाज, राष्ट्रसेवा कर सभी के प्रिय बन जायें, देश के नाम पर आप सम्मान प्राप्त करें। यह आपकी विशेषता नहीं, यह तो हमारे देश की विशेषता है। आपके नाम से देश सम्मान को प्राप्त हो, यह आपकी विशेषता है। क्या आप कभी विचार नहीं करते कि जिस देश को भगवान् आदिनाथ से भगवान् महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों ने, श्रीराम, हनुमान जैसे अनेक साधु-जनों, मुनियों ने अपनी त्याग-तपस्या, विशिष्ट ज्ञान से अध्यात्म का गुरु बना दिया, ऐसे भारत देश में जन्म लेकर मैं कंस, रावण, कमठ, कीचक, दुर्योधन जैसा जीवन जीकर कैसे स्वयं, परिवार, देश एवं धर्म का यश नाश कर सकता हूँ?

## 150 - Do not cause disgrace to country through terrorism and immorality

Do not crush the culture of your own caste by marrying a girl of different caste. It is the duty of the whole world to follow the laudable tradition of marriage in own caste; all should marry in the caste, dharma, and culture of their birth. Demonic or forceful marriage and marriage without social sanction should not be performed. Ceremonial marriage with the bride's consent is good. All guardians should foster good attributes in their sons and daughters. Don't take them to brutal places. Don't destroy your life through ignorance. Don't crush your family traditions and don't put your trust on those who do this.

Marry to one in whom the qualities of non-injury *(ahiṃsā)*, compassion and kind-heartedness exist. This will ensure the birth of a worthy son capable of maintaining the pride of India and teaching the lessons of peace and happiness to the world. Do not cause disgrace to your country by resorting to terrorism and immorality; do not live a cruel life; instead live a noble life. O youth of my country! Think; You have laudable knowledge and intelligence. A vital fluid provides growth and worthiness to life; however, if mixed with poison it causes death. The period of youth is like the vital fluid – water, milk or nectar. If the sugar-candy of right knowledge, perception and conduct is added to it, it becomes even better. As the toothsome and nourishing food is able to satiate hunger, good impressions got during the period of youth do the work of the sugar-candy that adds sweetness to life. Don't become a terrorist; become a true ascetic. Instead of adopting the arrow or the gun, adopt the feather-whisk *(picchī)*, the implement of restraint. Think about the welfare of living-beings. Your disgruntled heart will become contented if you forsake cruelty and adopt kind-heartedness. Let the country rejoice, not shed tears. in your name.

Don't get influenced by terrorism. Live every moment of life happily. Don't live under fear; instead live happily with your family and engage in the adoration of the Lord. Study sacred texts and engage in chanting of the mantras and observing austerities.

PREVIEW ONLY

Become adorable by serving society and nation and let you be an honour for the country. It will be an honour to the country, not you. If you cause honour to the country, it is your honour. Our country has been made the world-teacher through renunciation, austerities and special knowledge of personages including the twenty-four Supreme Lords *(Tīrthaṃkara)*– from Lord Ādinātha to Lord Mahāvīra – *Śrī* Rāma, Hanumāna, besides many sages and ascetics. After taking birth in such a country, how can you cause destruction of self, family, country and dharma by leading the life of Kaṅsa, Rāvaṇa, Kamaṭha, Kīcaka and Duryodhana?

विचार
THE THOUGHTS

## १५१. जीवन ऐसा जियो कि लोग आपके नाम का अभिवादन करें

कुछ तो विचार करो, धैर्यपूर्वक शान्त-भाव से सोचो, पृथ्वी पर आकर हमने क्या विशेषता की? स्व का जीवन नर्क बना लिया? बिलखते जनक-जननी का ध्यान करो; बहन क्या राखी बाँध पा रही है? पत्नी व बच्चों के साथ क्या आप शान्ति से रह पा रहे हो? आपके कारण राष्ट्र के नागरिक शान्ति से नहीं जी पा रहे हैं। मत करो ऐसे कार्य जिनसे भूत, भावी वर्तमान तीनों काल विकृत हों। देश की बहू-बेटियाँ आपका नाम सुनते ही काँप जायें, ऐसा जीवन मत जियो, अपितु ऐसा जीवन जियो जिससे मानव क्या पशु-पक्षी भी आपका नाम सुनकर गद्-गद् हो जायें। ऐसी शक्ति का संचार करो कि सूखे सरोवर जलमय हो जायें, सूखी वनस्पति फल-पुष्पों से पूरित हो जाये, सम्पूर्ण मही (पृथ्वी) आनन्दमयी हो जाये। प्रत्येक जीव के अन्दर 'जियो और जीने दो' का सूत्र उद्घोषित होने लगे। विश्व सपूतो! ऐसा जीवन जियो जिससे प्रातः उठते ही लोग आपके नाम का अभिवादन करें। ऐसा जीवन मत जियो कि आपका नाम सुनते ही लोग आकुलित हो जायें, जनसामान्य भय से आक्रान्त हो जायें, स्वजीवन की सुध-बुध ही भूल जायें। ऐसा राक्षसी-जीवन जीने वाले क्या जगत् को करुणा, दया, अहिंसा की शिक्षा दे पायेंगे, इन लोगों से क्या नारी की शिक्षा एवं रक्षा हो पायेगी?

## 151 - Live a life that brings glory to your name

Think patiently and peacefully; what extraordinary works have you performed on this earth? Have you made hell of your life? Think about the crying parents: is your sister able to tie the sacred thread of *rākhī* on your wrist? Are you able to live peacefully with your wife and children? Due to you the citizens of the country are not able to live life peacefully. Do not engage yourself in activities that spoil your past, present, and future. Do not live a life that makes the daughters of the country tremble with fear as they hear your name. Live a life that makes not just the humans but the birds and animals delightful as they hear your name. Generate strength from within which would enable your mere presence for the dried-up ponds to become full of water, for the dried-up vegetation to blossom with fruits and flowers, and for the entire earth to become happy. May the mantra of 'live and let live' reverberate within every soul. O worthy sons of the world! Live a life which provides reverence to your name and people salute it the first thing in the morning. Don't live a life which makes your name a symbol of anxiety, fear and utter disorientation for the people. Can the men leading such a demonic life teach the lessons

PREVIEW ONLY

of compassion, kind-heartedness and non-injury *(ahiṃsā)* to the world? Will the women be able to receive education and security in their presence?

विचार
The Thoughts

## १५२. नारी शिक्षित हो तथा रीति-नीति की भी ज्ञाता हो

वह संस्कृति नहीं महान् जिसमें नारी-शिक्षा तथा नारी-रक्षा दोनों का अभाव है। स्त्री को भोग्या मानकर उसका शोषण करना, यह महापुरुषों का धर्म नहीं और न ही महापुरुषों से पोषित संस्कृति का ही धर्म है। नारी-शिक्षा के विरोधी देश को अज्ञानता के अन्धकार में डालने वाले हैं। जिस घर, नगर, देश, राष्ट्र में नारियाँ शिक्षित हैं, उस देश, राष्ट्र का बौद्धिक विकास स्वत: होता है। पढ़ी-लिखी माँ बच्चों को संस्कारों के साथ शिक्षा प्रदान करती है। राष्ट्र अज्ञानियों के भार से मुक्त होगा, यदि पढ़ी-लिखी माँ संस्कारवान् होगी। नारी को लौकिक शिक्षा से अधिक धार्मिक-शिक्षा प्राप्त करना चाहिए। साथ ही वह रीति-नीति की भी ज्ञाता हो जिससे परिवार (कुल) के श्रेष्ठ संस्कार निरन्तर वर्द्धमान रहें। ऐसी नारी की स्व-सन्तान ही देश की श्रेष्ठ नागरिक बनकर राष्ट्र-हितकारी, विकासकारी नेता बनती है। नैतिक पुरुष ही धर्म-संस्कृति-रक्षक श्रेष्ठ साधु बन सकता है।

## 152 - Women should be well-educated and apt in the ways of the world

The culture that does not value the education and the security of women cannot be great. Great men do not consider women as objects of enjoyment and exploitation; also, it is not the dharma of the culture nourished by them. Those who oppose education of women are pushing the country into darkness of ignorance. The home, town, country or nation in which women are educated automatically attains intellectual development. An educated mother imparts values and education to her children. If the mother is educated and cultured, the nation gets rid of the weight of the ignorant people. The woman should receive not only the worldly education but, more importantly, the religious education. Further she should be well-versed in the ways of the world so that her family imbibes good values. The offspring of such a worthy woman become excellent citizens and worthy, development-oriented leaders of the country. Only a noble man who protects the dharma and the culture can become a worthy ascetic.

PREVIEW ONLY

विचार
The Thoughts

## १५३. छात्र व छात्राएँ सात्त्विक जीवन जियें

नारी-शिक्षा संयमशीलता के साथ हो। कन्या-विद्यालयों में मात्र कन्यायें ही अध्ययन करें। बालकों के विद्यालयों में मात्र बालक ही अध्ययन करें। ऐसा करने से बौद्धिक विकास प्रशस्त होगा; कुमार एवं कुमारी व्रत का पालन हो सकेगा। सन्तान में कुसंस्कार नहीं पड़ पायेंगे। छात्र व छात्राएँ सात्त्विक जीवन जियें, चरित्रवान् बनें, ब्रह्मचर्य की रक्षा के साथ। इससे वर्ण, जाति, कुल, वीर्य में शुद्धि रहेगी तथा देश बलवान् बनेगा। स्व-स्व जाति धर्म में अध्ययन-काल बितायें। कन्याएँ पर-वर्ण में न जाकर स्वधर्म, स्व-वर्ण में परिणय को प्राप्त हों जिससे उनके धार्मिक संस्कार सुरक्षित रहेंगे। शिक्षा-काल में माता-पिता का ध्यान पुत्र-पुत्रियों पर रहे। अध्ययन-काल में वासना-जन्य राग दशा प्रकट न होने पाए।

### 153 - All students – boys and girls – should lead a pious life

Restraint should accompany education of girls. Separate institutions should exist for education of boys and girls. This will ensure their right intellectual development and also the observance of the vow of chastity. The offspring will be saved from evil tendencies. All students – boys and girls – should lead a pious life; they should observe good character with celibacy. This will ensure the purity of their class, caste and reproductive cells and make the country strong. Let all students study their own religion. Let the girls marry the grooms of their own religion and class so as to protect the values of their respective religions. Parents should keep an eye on their student offspring. Students should refrain from lustful tendencies.



## १५४. आपकी सन्तान भी धर्म वृद्धि का कारण बने

उचित समय पर, स्व-कुल रीति से, स्व-जाति (कुल) में ही धार्मिक संस्कारों के साथ अहिंसक भावना से युक्त स्थान, धर्म-संस्कृति की रक्षा हेतु सन्तान को जन्म दो। मात्र इन्द्रिय-सुख भोगकर धर्म व राष्ट्र-द्रोही न बनें, न समलिंग की पुष्टि करें। काम-सुख भी धर्म वृद्धि का कारण बना रहे। सदियों-सदियों तक देश बलवान्, धैर्यवान्, वीर्यवान् रहे। देश के युवा-युवतियाँ विवेकपूर्वक विचार करें। पशु-पक्षी भी अपनी सन्तान को जन्म देते हैं, उनका पालन-पोषण स्नेह, प्रीति के साथ करते हैं, स्तनधारी स्तनपान कराते हैं। चोंच वाले अपनी चोंच से स्व-बच्चों का उदर पूर्ण करते हैं। प्रतिक्षण उनकी परकीय आक्रमण से रक्षा करते हैं।

टटई पक्षी खुले आकाश में खेत, छत या अन्य स्थानों पर अपने अण्डे रखता है। जब-तक बच्चे न निकल आयें, तब-तक दिन-रात अण्डों के पास घूमता रहता है। मादा पक्षी ओज-आहार अण्डों को देती है। नर एवं मादा दोनों पक्षी अण्डों व उसके उपरान्त बच्चों के रक्षण में संलग्न रहते हैं। उन्हें बोध है; पंख लगते ही ये बच्चे उड़ जायेंगे, फिर भी स्व-कुल की रक्षा के लिए बच्चों को जन्म देते हैं तथा पालन करते हैं। आप समलिंगता में काम-सुख, वासना की पूर्ति तो कर लोगे, परन्तु राष्ट्र, धर्म तथा कुल का क्षय कर दोगे। शरीर-शक्ति का क्षय होगा ही, परन्तु फल कुछ नहीं होगा। आपका कर्तव्य है कि आप राष्ट्र में श्रेष्ठ नागरिक हों, धर्म-मार्ग प्रशस्त करें, इन्द्रिय सुख भोगों से विरक्त रहें, संन्यास मार्ग पर आरूढ़ होकर मोक्ष-सुख का पुरुषार्थ करें। फिर संसार के जन्म-मरण के विकल्प ही समाप्त हो जायेंगे। साथ ही जिन्हें जन्म दिया हो उन्हें श्रेष्ठ संस्कार देकर उनका मोक्षमार्ग भी प्रशस्त हो।

### 154 - Your offspring should also be promoters of the dharma

Give birth to an offspring so as to protect the dharma and the culture – at the right time, as per the family tradition, within your caste, following the values of the dharma and at a place that is peaceful and non-violent. Do not betray the dharma and the nation by becoming just a lewd enjoyer of the senses; do not encourage homosexuality. Even sexual enjoyment should contribute to promotion of the dharma. Let the country be strong, enduring and virile for many centuries. The youth of the nation should think about this with due discrimination. Even animals, including birds, give birth to their

PREVIEW ONLY

offspring and nurture them with love and affection. Mammals breast-feed their infants. Birds use their beak to feed their infants. All protect their offspring from external attack.

The bird, called *'ṭaṭaī'* leaves its eggs under the open sky – in a farm, on a roof, or at such other places. Till hatching takes place, the eggs are watched very carefully, The female bird provides incubation to the eggs. Both the male and the female protect the eggs, and after hatch, they protect the young offspring. Both are aware that as the offspring get wings, they will fly off but still, to save their progeny, they produce and foster them. In homosexuality, you can satisfy your lust but will cause the destruction of the nation, dharma and family. Physical strength will wane without yielding any fruit. It is your duty to become a good citizen of the country, to further the cause of the dharma, to get detached from sensual-enjoyment, and to tread the path of renunciation and thus make effort to attain happiness appertaining to liberation. The question of birth and death will then vanish. Foster laudable values in your offspring so that they too can tread the path to liberation.

विचार
THE THOUGHTS

## १५५. (सम्राट्) ऋषभदेव द्वारा ब्राह्मी एवं सुन्दरी को प्रदत्त शिक्षा

भगवान् ऋषभदेव ने लिंग-भेद न कर पुत्र एवं पुत्रियों को बराबर का स्थान दिया। जो भेद है; वह तो उनके स्व-कर्म-जन्य व्यवस्था है, उसे समाप्त नहीं किया जा सकता, वह तो 'जो है, सो है'। माता-पिता का जो कर्तव्य सन्तान के प्रति है, वह आदिनाथ स्वामी ने पूर्ण किया। यद्यपि तीर्थंकर सम्राट् के पुत्रियाँ नहीं होतीं, परन्तु काल-दोष से सनातन अनादि-अनन्त श्रमण-संस्कृति में इस युग के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ (अपरनाम वृषभदेव, ऋषभदेव) ने राज्यकाल (गृहस्थ) अवस्था में एक सौ तीन सन्तानों में दो पुत्रियों को भी जन्म दिया। पुत्रियों का पुत्रों के समान सम्पूर्ण पालन-पोषण तो किया ही, साथ ही नारी-शिक्षा की प्रधानता पर विचार कर ब्राह्मी एवं सुन्दरी दोनों कन्या-रत्नों को लिपि-विद्या एवं अंक-विद्या प्रदान की। जो अक्षर विद्या तीर्थंकर सम्राट् ने प्रदान की थी, वह सम्प्रति में 'ब्राह्मी लिपि' के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण प्राचीन शिलालेख ब्राह्मी लिपि में उपलब्ध हो रहे हैं, यह वही ब्राह्मी लिपि है जिसे तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को सिखाई थी। अंक-विद्या, गणितीय परम्परा वही है जो तीर्थंकर वृषभदेव ने अपनी द्वितीय पुत्री सुन्दरी को प्रदान की थी।

## 155 - (King) Ṛṣabhadeva's teachings to Brāhmī and Sundarī

Lord Ṛṣabhadeva gave equal importance to sons and daughters, without any gender discrimination. The differences are based on their respective karma-based scheme and that cannot be abolished; 'it is, as it is'. The duty of the parents towards offspring was fully carried out by Ādinātha Svāmī. The Supreme Lords *(Tīrthaṃkara)* do not give birth to daughters – that is, when they are kings, before adopting supreme renunciation to become the sky-clad *(nirgrantha)* ascetic *(muni)* – but due to the present faulty eon in the beginningless and endless ascetic-system, the first *Tīrthaṃkara* Lord Ādinātha (Vṛṣabhadeva and Ṛṣabhadeva are synonyms) gave birth to one hundred and three offspring, including two daughters. Not only did (King) Ādinātha foster the daughters

PREVIEW ONLY

same as sons, giving importance to women-education he imparted the knowledge of letters and numbers to his two daughter-gems, Brāhmī and Sundarī. The knowledge of letters that (King) Ādinātha imparted is known as Brāhmī script in today's world. We find numerous ancient inscriptions in the same Brāhmī script that (King) Ādinātha Svāmī taught to daughter Brāhmī. Today's arithmetic and mathematics systems emanate from the knowledge that (King) Vṛṣabhadeva imparted to daughter Sundarī.

विचार
THE THOUGHTS

## १५६. पुत्र-पुत्री में भेद राष्ट्र-नाश, धर्म-नाश का कारण

समाज में कन्या के जन्म पर वह प्रसन्नता नहीं देखी जाती, जो पुत्र के जन्म पर देखी जाती है। कुछ लोग पुत्री का जन्म उपहास के रूप में देखते हैं। कहीं-कहीं नवजात कन्या को गला दबाकर मार दिया जाता है, भ्रूण हत्यायें हो रही हैं। 'पुत्री नहीं पुत्र चाहिए', यह लिंग-भेद राष्ट्र-नाश, धर्म-नाश का कारण बन रहा है। देश की दीवारों पर यह लिखना पड़ रहा है - 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'। बेटी के शत्रु हत्यारे माता पिता एक क्षण स्वयं विचार करें, आपको जन्म देने वाली भी कोई पूर्व में कन्या अवश्य हुई होगी, तभी वह आपकी माता बनी। अपकी माँ की हत्या यदि नानी कर देती, तो आपका जन्म कैसे होता?

प्रत्येक सन्तान अपने भाग्य का खाती है, आप व्यर्थ के कर्ता न बनें। गरीब कन्या भी महारानी बनी है, धनिक की बेटी भी दरिद्री बनी है। स्वकीय पुण्य-पाप का फल जीव भोगता है। उपादान रूप से कोई अन्य, अन्य के सुख-दुःख का कर्ता-हर्ता नहीं है। अन्य जो सुख-दुःख के कारण दिख रहे हैं, वे सब निमित्त कारण हैं। त्रिकाल में भी अन्य वस्तु एवं अन्य व्यक्ति, अन्य वस्तुत्व (व्यक्ति) के उत्पादनकर्ता नहीं हो सकते। यही वस्तुत्व का सत्यार्थ-बोध है। भ्रूण हत्या कर स्व-सन्तान के हत्यारे मत बनो, सुख से जियो और जीने दो। कन्या की हत्या, परस्त्री सेवन व्यसन, वेश्या व्यसन पवित्र सम्बन्धों का नाश कराने में पूर्ण सहकारी है। देश में कुँआरे युवा घूम रहे हैं, धन देकर भी विवाह नहीं हो रहे। माँ, बहिन, बेटियों के प्रति भी कुभाव, कुकृत्य के लोक में दर्शन हो रहे हैं। भूखे श्वान जैसे रोटी के टुकड़ों पर झगड़कर परस्पर में छीनते हैं, वही दशा कामी-नरों की हो रही है। पर-मत, पर-धर्मी कन्याओं को भी छीन रहे हैं, वे श्वान से भी खोटे लोग हैं। वे इच्छापूर्ति के उपरान्त लड़कियों के प्राण ले रहे हैं। स्व-जाति के प्रति विवेक-ज्ञान देना, दिलाना शासन का कार्य है। वे प्रत्येक समाज में कन्या-रक्षा का संविधान नियत करें और विवाह स्व-स्व जाति, पन्थ, धर्म में करें। किसी के कुल धर्म का नाश न करें, भारत भूमि की पवित्रता को जीवन्त रखें।

## 156 - Discrimination between the son and the daughter causes destruction of the nation and dharma

In society, the joy seen on the birth of a son is not seen on the birth of a daughter. Some people even ridicule the birth of a daughter. There are instances of strangulating the new-born girl and also of feticide. The wish for a son and not for a daughter is causing the destruction of the nation and the dharma. Graffiti, rendered into English, 'Save the daughter, educate the daughter' is seen. Those who kill their daughters must think for a

PREVIEW ONLY

moment: the one who gave you birth must once be a girl before becoming your mother. If she had been killed by your grandmother, your birth was not possible.

Every offspring is fed by own fate; do not unnecessarily make yourself the doer. Even a poor girl is seen to become a queen and a rich girl to become a pauper. All living-beings enjoy the fruits of own merit and demerit. No one else is the substantive-cause *(upādāna kāraṇa)* – the doer or the abductor – of your happiness or misery. All others are just the instrumental-cause *(nimitta-kāraṇa)*. Other objects or persons cannot, in the three times, become the substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* of transformations taking place in objects or persons. This is the truth of the nature of the objects – *vastutva*. By the act of feticide do not become the killer of your offspring; live happily and let others live. Killing of females, and addictions of intercourse with other's wife and prostitution advance wholesomely the destruction of pious relations. You will find many bachelors not able to get married even when they are ready to spend money. You also see impious treatment of mothers, sisters and daughters. Loquacious men are behaving like hungry dogs fighting for a piece of bread. They are abducting the girls of other sects and religions; they are worse than dogs. They kill girls after satisfying their lust. It is the duty of the administration to make people knowledgeable about their respective castes. The administration should make rules for protection of women and for marriage in own caste, sect and religion. Do not destroy anyone's dharma of progeny. Maintain the piousness of the land of India.

विचार
THE THOUGHTS

## १५७. बच्चों को माता-पिता समय अवश्य दें

देश, कुल, जाति की शुद्धि सन्तान की गुणवत्ता का मूल कारण है। इस शुद्धि से नरोत्तम सन्तान होती है। कन्याओं की कुल शुद्धि, जाति शुद्धि व रक्षा के साथ-साथ उनके संस्कारों की रक्षा करना माता-पिता का कर्तव्य है। धर्म-ग्रन्थों में वर्णित कुलाचार का ज्ञान करायें। शिशु अवस्था से ही स्व-कुल, धर्म की सत्यार्थता से परिचय करायें। बच्चों को समय अवश्य दो। जो पालक सन्तान को समय नहीं दे पा रहे हैं, वे स्व-संस्कृति का नाश स्वयं के द्वारा ही कर रहे हैं। जन्म देने वाली माँ ने भृत्य-कर्म में धाय माँ (बाई) के हाथ में सन्तान को शिशु अवस्था में सौंप दिया। अब स्वयं विचार करें कि धाय जिस जाति, कुल, वंश, परम्परा की होगी उसकी वर्गणायें और विचार तो वही होंगे। धाय अपनी स्वयोग्यता, स्वपद्धति से ही शिशु में संस्कार डालेगी। कुलीन सन्तान भी धाय माँ की संगति से अकुलीन विचार-युक्त हो जाती है।

स्व-माँ की ममता, पिता का दुलार, दादी-दादा के संस्कार बच्चे को प्राप्त ही नहीं हुए। बड़े होने पर माता-पिता रोते हैं; कहते हैं- 'क्या करुँ, बेटा-बेटी के लक्षण ही नहीं समझ आ रहे, उनमें माता-पिता के प्रति कोई कर्तव्य ही नहीं झलकता।' अरे मित्र! कहाँ से यह कर्तव्य झलकेगा? भरण-पोषण का काल था, तब आपने अपने बच्चों को समय ही नहीं दिया। आपको अर्थ दिखता था, भृत्य-वृत्ति या व्यापार अथवा कृषि-कार्य में संलग्न रहे, सन्तान को संस्कार नहीं दे पाए। सन्तान ने स्वयं जो संस्कार प्राप्त किए हैं, वे ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बचपन में माता-पिता सन्तान को समय देते तो वृद्ध-अवस्था में दुःख-सुख के काल में सन्तान जनक-जननी को अवश्य ही समय और सेवा देती।

PREVIEW ONLY

माता–पिता सन्तान को शिशु–काल में न समय दे पाये, न संस्कार, न उनकी सेवा की। उसका प्रतिफल आज सामने है कि सन्तान भी अपने माता–पिता को न समय, न सेवा दे रही है। अन्तिम संस्कार तक में भी उपस्थित नहीं हो पा रही है। माता–पिता भारत में हैं तो बेटा–बेटी विदेश में। न कोई सेवक, न अन्तरंग भावना को सुनने वाला, फलतः माता–पिता के घुटते–घुटते प्राण छूटे। भवन, वाहन, यान सब सूने रह गए। रोने वाले भी किराये के, कोई नाम लेने वाला भी नहीं रहा। छोटे परिवारों तथा पढ़े–लिखे परिवारों की यही दुर्दशा दिखाई दे रही है।

## 157 - Parents must give time to their children

The purity of the country, progeny and caste contribute to the quality of your offspring. This purity bestows the qualities of greatness to children. It is the duty of parents to not only maintain and protect the purity of progeny and caste of their daughters but also advance their values. Make them aware of the virtues of the worthy conduct, as described in the sacred texts. From an early stage, introduce them to the truth of your progeny and dharma. You must give your time to them. The parents who are not able to give time to their children are themselves causing destruction of their culture. The natural mother has left her infant to the care of a foster mother. Now think. The vibes of the foster mother and her thoughts will be according to her caste, progeny and tradition. She will imbibe values to the infant as per her own capability and method. A virtuous child becomes an individual without merit.

The child raised by the foster mother is deprived of the love of mother, affection of father, and ethics of grandparents. When such children grow up, parents are seen lamenting, "What to do? The sons/daughters do not show good signs; they do not seem to have any sense of duty towards the parents." O friend! Where from this sense of duty appear? When they needed fostering, you didn't have time for them. You were busy in earning money, in your employment or business or agriculture; you were not able to imbibe values in your children. Whatever values the children imbibed when they were young are now getting manifested. Had the parents given time to their children when they needed fostering, the children would have certainly taken care of their parents in old-age and shared their happiness and misery. The parents have not been able to give time for fostering their young ones. As a result, the offspring too is neither giving time to the parents nor serving them. Children do not present themselves even during the last rites of their parents. The parents are in India and the son or the daughter is in a foreign country. Parents here have no one to look after them and no one to listen to their woes and sentiments; they end their life under great agony. The house, the car or vehicle are all left deserted. Those who assemble for the last rites are hired people; no one remains to take their name. This state of affairs is clearly visible in small and well-educated families.

विचार
THE THOUGHTS

## १५८. एक सन्तान को जन्म देने वाली पद्धति हानिकारक है

एक सन्तान को जन्म देने वाली पद्धति भी समाज व्यवस्था को भंग कर रही है। कई सम्बन्ध ही अब समाप्त हो रहे हैं। बुआ, मौसी का तो अब देश से पलायन होता जा रहा है। छोटे परिवार के

PREVIEW ONLY

विकल्प में साधु-समाज को चाहिए कि वह तत्त्वोपदेश करे, समाज को वस्तु के वस्तुत्व का सत्यार्थ बोध प्रदान करे। समाज में सन्तान ही नहीं बचेगी, तो साधु कहाँ से आयेंगे? साधु-विहीन समाज कभी भी धर्म एवं संस्कारों का विकास नहीं कर पायेगा। धर्म वृद्धि हो, देश वृद्धि हो, संस्कार-संस्कृति वर्द्धमान हो, इसके लिए संस्कारवान् सन्तान चाहिए। युवाओं के अन्दर धर्म के लिए उत्साह शक्ति चाहिए।

## 158 - The practice of having a lone child is causing harm

The practice of having just one child is causing harm to society. Many relations are vanishing. Relations like *'buā'* (father's sister) and *'mausī'*(mother's sister) are more or less extinct. The ascetics should make people aware of the reality and give them the knowledge of the true nature of the objects – *vastutva*. If there are no offspring, where from the ascetics come? Society devoid of ascetics will never be able to promote the dharma and the values. Well-groomed children are needed for the development of the dharma, country, values and culture. The youth should have vigour for the dharma.

विचार
The Thoughts

## १५९. निर्णय-क्षमता से युक्त में ही नेतृत्व की क्षमता

युवाओं का धर्म द्वैतभूत है; स्वधर्म रक्षा, पर-धर्म रक्षा। बल, वीर्य, पौरुष क्षमता से जो युक्त है, वही यथार्थ में युवा है। निर्णय-क्षमता सभी के पास नहीं होती। जो निर्णय-क्षमता से युक्त होता है, वही युवा धर्म, समाज, देश, राष्ट्र एवं विश्व के नेतृत्व की क्षमता रखता है। नेता वही बने जिसके पास निर्णय क्षमता हो। अन्य किसी के निर्णय की कठपुतली बनकर जीना पड़े उसे नेता बनकर नहीं आना चाहिए। जिसके निर्णय का सम्मान सम्राट्, चक्री व साधुजन भी करें, ऐसे व्यक्ति को शीघ्र नेता बन जाना चाहिए। नेता को जगत् के वृद्धों का सम्मान का सर्वप्रथम विचार करना चाहिए। वृद्ध-सम्मान एवं वृद्ध-सेवा गुणवृद्धि का कारण है। सच्चे साधुओं एवं वृद्धों की सेवा से प्रशस्त वर्गणाओं की प्राप्ति होती है, जिसके प्रभाव से व्यक्ति श्री, धी एवं अधिकार को प्राप्त करता है।

## 159 - The leadership should be able to take sound decisions

The youth has dual dharma; to protect the own dharma and to protect the dharma of others. The real youth is one who is endowed with the attributes of power, strength and vigour. Not everyone possesses the ability to take decisions. Only the youth who is capable to take decisions can lead the dharma, society, country, nation and world. Only the one who can take decisions should become a leader. Do not become a leader if you are willing to dance to the tune of others. The man whose decisions are valued by the king, the king-of-kings, and the ascetics should soon become a leader. The leader should respect the veterans of the world. Giving respect to the veterans and engaging in their service will result in enhancing your own qualities. Engaging in the service of the true ascetics and the veterans surround you with good vibes which, in turn, endow you with prosperity, intellect and authority.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## १६०. युवा शक्ति को सम्यक् दिशा-निर्देशन मिले

लोक पूज्य होना है तो पूज्य पुण्य-पुरुषों का बहुमान करना सीखो। जैसा करोगे, वैसा ही प्राप्त करोगे। भावों की विशुद्धि-पूर्वक सदा स्व-कर्तव्य का पालन करो। देश में प्रत्येक जीव के भाव करुणामय हों, सभी को शुद्ध भोजन, शुद्ध पानी के साथ शुद्ध वाणी भी प्राप्त हो। साथ-ही परमब्रह्म अहिंसा-धर्म की सहज उपलब्धि रहे। इन्हीं भावना के साथ युवा पीढ़ी अपने द्वैत-धर्म का पालन करे। युवाओं को सर्वप्रथम अपने जीवन को संस्कारवान् तथा सदाचारी बनाना होगा। द्वैत-धर्म से तात्पर्य है स्वजीवन एवं माता-पिता (परिवार) का सम्यक्-रीति से पालन करना। सम्पूर्ण लौकिक व्यवहार का पालन करते हुए धर्म, संस्कृति, देश के विकास के विषय में विचार करना तथा तदनुकूल आचरण करना। भूत से वर्तमान तक ही नहीं, अपितु भावी-काल में भी युवा धर्म-संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन करेंगे। वे ऐसा कर रहे हैं और कर चुके हैं। युवा-शक्ति को सम्यक् दिशा-निर्देशन मिलता रहे।

### 160 - The youth should be able to get access to right counsel

If you wish to become venerable, learn to give respect to men who are venerable and meritorious. You get what you give. Observe your duties with purity of thoughts. May every living-being in the world have compassion, and get access to pure food, water and speech. May the dharma of supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)* be accessible to all. The young generation should observe its dual dharma with these thoughts. The youth, as the first step, should make themselves cultured and adopt good conduct. The dual dharma here means taking good care of your own life and of the family, including parents. While following the ways of the world, one should think about the development of the dharma, culture and country, and observe good conduct. Not only have they done it in the past and doing in the present, the youth shall protect and promote the dharma and culture in the future too. The youth should be able to get access to right counsel.

विचार
THE THOUGHTS

## १६१. भारत की युवा शक्ति व्यसन-मुक्त हो

भारत की युवा शक्ति विश्व की धरोहर है। इन युवाओं के भीतर कुछ करने का ही भाव नहीं आता, अपितु सर्वश्रेष्ठ कार्य करने का भाव उनके अन्तःकरण में लहरें लेता है। राजा से भगवान् बनने का भाव भारत की युवा शक्ति के अन्दर आता है। जिस देश में युवा शक्ति है और वह भी विवेकशील, विचारशील, चरित्रशील है, वह केवल एक देश ही नहीं है, वह बहुत बड़ा शक्ति का पिण्ड है। सम्पूर्ण विश्व को मित्र बनाना अथवा शत्रु, यह सामर्थ्य देश के युवाओं के पास ही है। व्यसन-युक्त युवा राष्ट्र को नष्ट कर देगा, व्यसन-मुक्त युवा राष्ट्र को गरिमामय बना देगा।

### 161 - The youth of India should be free from addictions

The youth of India are the treasure of the world. The youth not only wish to do something, they yearn for doing the best. The youth of India not only think of becoming the rulers; they think of attaining godhood. The country that has the youth-power equipped with the virtues of discrimination, thoughtfulness and conduct is not just a

PREVIEW ONLY

country, it is a great mass of strength. The power to make the world a friend or a foe lies only in the youth. The youth drowned in addictions will destroy the nation and the youth free from addictions will bring honour to the nation.

विचार
THE THOUGHTS

## १६२. कार्य क्षमता युवाओं के पास ही है

प्रत्येक ज्ञानी, साधुजनों को युवाओं की द्वैतता पर बहुमान आना चाहिए। वे यदि स्व-कर्तव्य न समझें, फिर भी उन्हें कर्तव्य का बोध वात्सल्य से कराना चाहिए। जिन्हें कर्तव्य का बोध है और कर्तव्य कर भी रहे हैं, उन्हें सदा 'धन्य' कहना चाहिए। प्रशंसनीय की प्रशंसा करना चाहिए। जो श्रेष्ठ-कार्यों की प्रशंसा करना नहीं जानता, वह अपने कर्तव्य से दूर है। गुणीजनों का उत्साह भंग करने वाला उनका शत्रु है। गुणीजनों को देखते ही गुणग्राही जनों के अन्दर प्रेम-वात्सल्य की लहर आ जाती है। युवा शक्ति के प्रशंसक देश-विकास के मित्र हैं। कार्य क्षमता युवाओं के पास ही है, बाल व वृद्धों के पास सम्प्रति कार्य-क्षमता नहीं है। बाल की कार्य क्षमता अनुत्पन्न है, वृद्ध की नष्ट हो चुकी है। इसलिए युवा पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। बालकों को सँभालो, ये भावी कार्य करते हैं। वृद्ध का सम्मान करो, ये कार्य कर चुके हैं; उनका उपकार है।

## 162 - Only the youth have the strength to work

The wise and noble men should take pride in the dual capabilities of the youth. If the youth are not able to appreciate their duties, make them understand the same with affection. Hail the youth who not only appreciate their duties but are also fulfilling them. Always praise the worthy. The one who fails to praise the good work is not carrying out one's duty. The one who discourages the men of qualities is an enemy. No sooner than they see the men of qualities, strong waves of love and affection start taking shape in men keen to adopt good qualities. Those who praise the power of the youth encourage nation-development. The strength to work lies with the youth; in the present, the children and the elderly don't possess that strength. The strength to work is yet to take shape in the children and in the elderly it has subsided. Give, therefore, greater attention to the youth. Take care of the children for the sake of the future. Give respect to the elderly for their beneficence; they have already accomplished their work.

विचार
THE THOUGHTS

## १६३. परमार्थ में अपमान-सम्मान का कोई स्थान नहीं

परस्पर का ध्यान रखना महान् लोगों का कार्य है। अभागे लोग न कार्य करना जानते हैं, न कार्यकर्त्ताओं की प्रशंसा करना ही जानते हैं, न कार्य कराना जानते हैं। सम्मान को मान-कषाय का साधन बनाकर शक्ति-वर्धक प्रक्रिया स्वीकार करो। व्यवहार से सत्कार करना प्राचीन परम्परा है, परमार्थ में अपमान-सम्मान का कोई भी स्थान नहीं है। परमार्थ में एकमात्र शुद्ध निजात्म तत्त्व ज्ञायक-भाव पर लक्ष्य है। न कोई अपमान है, न सम्मान। इस परम सत्य को भी समझना चाहिए।

PREVIEW ONLY

योगीजन, साधु–पुरुष इसी अध्यात्म विद्या के बल पर घोर–उपसर्ग व परीषहों पर विजय प्राप्त करते हैं। जगत्–वन्द्य अरिहन्त, सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर अनन्त–सुख को प्राप्त होते हैं। वे संसार के दुःखों से मुक्त हो जाते हैं।

## 163 - There is no place for honour and dishonour in spirituality

Great men keep mutual considerations in mind. The pitiable men do not know how to work, to appreciate others, and to get work done. Consider honour as the pride-passion *(māna-kaṣāya)* and concentrate on your work with vigour. To honour someone is an ancient worldly tradition but in spirituality there is no place for honour and dishonour. Spirituality is concerned only with the pure own-soul characterized by knowledge. One must understand this ultimate truth. The supreme-ascetics *(yogī)* and noble men endure grave inflictions and calamities with the help of their spiritual learning. After attaining the states of the Omniscient Lord *(Arihanta* or *Arhanta)* and of the Liberated-soul *(Siddha)* – the states that are worshipped by the world – they attain infinite happiness. They get liberated from all worldly woes.

विचार
THE THOUGHTS

## १६४. वस्तु सामान्य-विशेषात्मक

जीवन का रहस्य समझना अनिवार्य है। बिना जीवन–रहस्य बोध के व्यक्ति जीता तो रहेगा, परन्तु जीवन के रहस्य जाने बिना ही मरण को प्राप्त कर लेगा, वह अधूरा–का–अधूरा ही चला जायेगा। जीवन की प्रत्येक अवस्था को एक घटना के रूप में देखो; फिर उन पर विचार करो। स्वयं का जीवन आपको घटनाओं का पिण्ड दिखेगा। फिर बाह्य घटनाएँ, अन्य की घटनाएँ आपको किंचित् भी प्रभावित नहीं कर पायेंगी। जीवन के सर्व–आश्चर्य समाप्त हो जायेंगे। कोई कितनी ही बड़ी बात करे, आपको सामान्य रूप में ही दिखेगी। यह बहुत बड़ी बात है कि आप जगत् की बड़ी–से–बड़ी बात को छोटी समझकर सामान्य में रख सकें। विशेषों को विशेष तो समझना, परन्तु उनमें इतना विशेष मत देख लेना कि सामान्य का दर्शन ही बन्द हो जाए। वस्तु सामान्य–विषेशात्मक है; न सामान्य से रहित विशेष है और न विशेष से रहित सामान्य। उभयात्मक वस्तु को समझो।

## 164 - An object has both, the specific and the general attributes

Understand the secrets of life. Without this understanding the man although will continue to live and die ultimately, but with no substantive attainment. See every stage in life as an event and then reflect on it. You will see your own life as a mass of events. After this, no external and internal events will be able to influence you in any way. All surprises in life will go away. You will consider even major events as normal happenings. To be able to consider even a major happening in the world as a normal event is a great attribute. See specific as specific but not to the extent that you fail to see the general in it. An object has dual attributes, specific and general; general is not without specific, and specific is not without general. Understand this duality of objects.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १६५. द्रव्य सामान्य, पर्यायें विशेष

सामान्य जीवन में अनेक घटनायें हो जाती हैं जो विशेष बन जाती हैं। द्रव्य सामान्य रहता है। पर्यायें परिवर्तनशील अर्थात् विशेष होती हैं; इसे सिद्धान्त की अपेक्षा विशेष कहा है। गुणों की अपेक्षा भी सामान्य-विशेष समझो। सभी जीव-अपेक्षा सामान्य हैं, कोई गणितज्ञ है, कोई न्यायाचार्य, कोई सिद्धान्त-शास्त्री, कोई व्याकरणाचार्य इत्यादि विशेष हैं। कुछ व्यक्ति होते तो सामान्य हैं, परन्तु मान-कषाय में विशेष बनते हैं। यद्यपि कषाय विशिष्ट होने से विशेष हैं, फिर भी सभी सकषाय जीवों की अपेक्षा से वे भी सामान्य हैं। मनुष्य, मनुष्यत्व की अपेक्षा से सामान्य है, पशु अपेक्षा मनुष्य विशेष है। पशु, पशुत्व परिणाम की अपेक्षा से सामान्य है। जीवत्व की अपेक्षा से तो सभी जीव सामान्य हैं। महासत्ता की अपेक्षा से तो सभी द्रव्य ही हैं। द्रव्यत्व की अपेक्षा सामान्य, इस प्रकार सामान्य-विशेष को समझना चाहिए और सम्यक् विचार करना चाहिए।

## 165 - The substance is general, modes are specific

In a general life, many events take place that make life specific. The substance *(dravya)* remains general *(sāmānya)*. The modes *(paryāya)* change and are termed specific *(viśeṣa)* in the doctrine. Understand the concept of general-specific in respect of qualities *(guṇa)* too. All are general *(sāmānya)* in terms of being humans or souls *(jīva)*. However, in terms of being a mathematician, a judge, a scholar or a grammarian, they are specific *(viśeṣa)*. Some individuals are general but become specific due to their pride-passion *(māna-kaṣāya)*. Although due to their particular pride-passion *(māna-kaṣāya)* they are specific, but if we consider all individuals as having passions they too become general. All humans are general in respect of their humanness, however, in relation to animals, humans are specific. All species of animals are general as all are animals. Also, since animals too have a soul, they are general in respect of those having a soul – *jīvatva*. In respect of their grand-power-to-exist *(mahāsattā)*, all are just substances *(dravya)*. So, in respect of being a substance, all are general. Understand the concept of general and specific in this manner.

विचार
**The Thoughts**

## १६६. जीव के शुभाशुभ परिणाम भी कथंचित् आत्मा से भिन्न हैं

वस्तु स्व-स्वभाव से सामान्य-विशेषात्मक है, इस बात को समझकर पुनः चिन्तवन करो। जब सामान्य-विशेष वस्तु का स्वभाव ही है, फिर हम किस बात के विशेष बन रहे? उत्तर स्वकीय अन्तःकरण में उपस्थित हो जायेगा। मात्र स्वकर्तापन का भाव आत्मा में कष्ट उत्पन्न कर रहा कि- 'मैं विशेष हूँ'। 'मेरे सामने अन्य कोई नहीं है, प्रत्येक क्षेत्र में मैं ही श्रेष्ठ हूँ'। ऐसा अहंभाव व घमण्ड आत्म-सुख एवं शान्ति का घात कर रहा है। अज्ञप्राणी को यह विवेकपूर्ण विचार ही नहीं आ रहा है कि जो भी कषाय-भाव हैं वे आत्मा के शुद्ध भाव नहीं हैं, अशुद्ध भाव हैं। जो कर्म-सापेक्ष भाव हैं वे नष्ट होने वाले भाव हैं, इनके पीछे अपने शुद्ध स्वभाव का घात क्यों करें? शुभाशुभ-परिणामों को कथंचित् आत्मा से भिन्न, अतद्-भाव रूप में देखना चाहिए। तभी जीव जीवन से भिन्न होकर जीव

PREVIEW ONLY

के लिए समय दे सकेगा। जब-तक जीवन पर लक्ष्य है, तब-तक स्व-चैतन्य-प्रभु जीव-द्रव्य पर लक्ष्य नहीं जा पायेगा।

### 166 - The auspicious-inauspicious dispositions too are somehow different from the soul

Reflect again on your understanding that the object is both general *(sāmānya)* and specific *(viśeṣa)*. When such is the nature of the object, how can we consider ourselves specific? The answer lies within you. Your own sense of being a doer is making you think that you are specific and troubling you. Your feeling, "No one matches me and I am the best," is destroying your own peace and happiness. The ignorant man fails to appreciate that the dispositions of passions *(kaṣāya)* are not part of the pure soul; these belong to the impure soul. These dispositions are karma-dependent and not permanent; why should you mire your soul's pure nature by these dispositions? From a particular standpoint, look at the auspicious-inauspicious dispositions as different from the soul; these are not the soul. Then only, keeping the life aside, one can concentrate on the soul. So long as the aim hinges on the life, concentration on own conscious-supreme soul-substance *(jīva-dravya)* is not possible.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १६७. संसार-भ्रमण के कारण

जीवन से निर्लिप्त होकर जीव विचार करे; पर्याय-जन्य नाना जीवन परिवर्तित कर लिए, फिर भी उसको आत्म-शान्ति नहीं मिली। द्रव्य-कर्म, नोकर्म एवं भाव-कर्म सापेक्ष हैं। जीव आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञाओं से युक्त है। इन चार संज्ञाओं के पीछे जीव नाना जीवन धारण करता रहता है, उन जीवनों में पुनः-पुनः इन चारों संज्ञाओं में लिप्त होकर नवीन कर्मबन्ध करके संसार में नाना जीवनों को प्राप्त कर महाक्लेश को प्राप्त करता रहता है। यह परम्परा जीव की अनादि से चली आ रही है। इस परम्परा के नाश का मोही-प्राणी विचार ही नहीं कर पा रहा है। उसी-उसी में निमग्न होकर निजात्म-प्रभु को कष्ट दे रहा है। कब वह घड़ी आयेगी जब निजात्म-देव को कर्म-बेड़ियों से बाहर करने का जीव विचार करेगा?

### 167 - The causes of worldly transmigration

The man should think, detaching himself from life, that in the past he had had to live many lives in different modes; still he has not got the inner peace. The material karmas *(dravya-karma)*, quasi-karmas *(nokarma)* and the psychic karmas *(bhāva-karma)* are not independent. The living-being *(jīva)* has four basic instincts *(saṃjñā)* – of food, fear, unchastity and possessions. Because of these instincts it continues to get different lives. In any fresh life, it again gets involved in these four instincts, causes bondage of fresh karmas and gets a new mode of life; it thus continues to suffer great misery. This tradition is continuing since beginningless time. The soul with delusion *(moha)* is not able to think about snapping this tradition. Getting involved repeatedly in similar activities, it is causing misery to the own supreme-soul. Will a time come when the worldly soul reflects

on freeing the own supreme-self from the shackles of the karmic bondage?

विचार
**The Thoughts**

## १६८. स्व-भूल को आत्मसाधना से ठीक करो

अहो! अहो! अहो! मोह-माया में लिप्त जीव को यह भान ही नहीं है कि संतापित-आत्मा कितनी पीड़ा को प्राप्त होती है। दिन-रात रम्य व अरम्य स्थान पर, साधु व असाधुओं के मध्य, उसको किंचित् भी शान्ति की प्राप्ति नहीं होती। जब व्यक्ति प्रमाद या बुद्धिपूर्वक अशुभ कर्म कर ले अथवा ली हुई प्रतिज्ञा को भंग कर ले अथवा उसका किया अशुभ कार्य लोक में प्रकट हो जाये अथवा किसी विशेष को ज्ञात हो जाये, तब जो आत्म-वेदना होती है उसकी व्याख्या शब्दों में नहीं की जा सकती। सम्पूर्ण लोक उस पीड़ित व्यक्ति को काटता है, चन्द्रमा की शीतल चाँदनी उसे दाह देती है। वह न किसी से कुछ बोल पाता है, न किसी की सुन पाता है।

करुणाशील ऐसे व्यक्ति की अन्तरंग वेदना समझकर उसे बार-बार सान्त्वना दें। उसने भूल की है; उसका स्व-चित्त ही उसे दण्ड दे रहा है। 'हाय! हाय! हाय! मैंने ऐसा कुकृत्य क्यों किया? जिससे धर्म, यश, कुल, जाति, समाज, देश का क्षय हो रहा है।' एक पाप को ढकने के लिए उसे लाखों प्रकार के असत्य, मृषा वचनों का प्रयोग करना पड़ता है। साधुता तो यही है; भूल हुई है तो अधिकृत जनों के मध्य भूल को शीघ्र स्वीकार कर, दण्ड स्वीकार कर, उसे पुनः पवित्र-जीवन जीने का विचार करना चाहिए। आत्महत्या जैसे कुकृत्य का विचार न करे। लोक-निन्दा तो ठीक; नहीं भी कर पाये आत्म-निन्दा तो ठीक, स्व-साधना व आत्म-साधना से सब कुछ ठीक कर ही सकते हैं, ऐसा विचार करो। स्व-भूल पर ऐसा विचार करो कि जगति से धर्म का नाश न होने पाये। सर्व जगत् में ऐसे 'धर्मात्मा' न हों जो सम्यक्-मुद्रा से असम्यक् कार्य करते हुए सत्यार्थ-मार्ग को दूषित करते हैं।

## 168 - Rectify your past mistakes through spiritual practice

Alas! The soul engrossed in delusion *(moha)* and deceit *(māyā)* has no idea of the misery it is suffering. It is not able to get even an iota of peace, day in and day out, in the appealing and unappealing places, or in the company of noble and ignoble men. When a man gets involved, due to negligence or willfully, in an inauspicious karma, or when he breaks a solemn vow, or when his unworthy act becomes known to the world or some particular person, the agony that he suffers cannot be expressed in words. The entire world seems ready to cut him to pieces, and the soothing moonlight seems to burn him. He is not able to either speak or listen to anyone.

Understanding his agony, the compassionate men should constantly console such a person. Remember, his own mind is punishing him. "Alas! Why have I indulged in such a deplorable act that is causing the destruction of my dharma, honour, progeny, caste, society and country?" To cover up his one fault. he has to resort to hundreds of thousands of lies. The noble way is that he should confess his fault in front of the authority, undergo the punishment, and think of leading a pious life all over again. He should not think of committing the evil act of suicide. He should think that let the outside world censure him; even if he missed the chance to expiate, he can still rectify everything by resorting to concentration on the self and his soul. Prompt him to think that in no way his past evil act

PREVIEW ONLY

should result in destruction of the dharma on the earth. May the world be rid of the 'noble men' – *dharmātmā* – who, although adorning the garb of an ascetic, indulge in evil acts and blemish the true path.

विचार
THE THOUGHTS

## १६९. राजनेताओं व साधुओं को लोगों की आस्था का ध्यान रखना होगा

देश-हित तभी सम्भव है, जब राष्ट्र-नेता सम्यक् नेतृत्व करें। राष्ट्र को दिए वचनों का अक्षरशः पालन करें, पद के लिए झूठे वचन न दिए जायें। पुनः समय आयेगा। यही प्रजा जो प्रजातंत्र की स्वामी है, वह मृषा भाषण करने वाले को पुनः अपना नेता नहीं चुनेगी, इस बात का राजनेताओं को ध्यान रखना चाहिए। दूसरी ओर साधुजन संसार, शरीर, भोगों से बुद्धिपूर्वक अपने आपको भिन्न करके आ गए हैं। उन विकल्पों से अब दूर ही रहना चाहिए, क्योंकि आप साधु हैं। जन-जन के आस्था के केन्द्र हैं; जन-जन की आस्था पर कोई आँच नहीं आनी चाहिए। साधुओं को पावन-पवित्र ही रहना चाहिए। यदि केन्द्र ही असुरक्षित है, तो सामान्य स्थानों का क्या होगा? आत्म-साधना, आत्म-कल्याण के साथ-साथ साधु समाज का कर्तव्य है कि वह स्व पर पूर्ण नियंत्रण रखते हुए, जगति को सदाचार, सद्विचार, दया, करुणा का जीवन्त उपदेश दें। जाति, पन्थ, सम्प्रदायों में वात्सल्य भर दें। लोग अपनी परम्परायें नहीं छोड़ सकते, परन्तु परस्पर कटुता तो छोड़ ही सकते हैं।

### 169 - Leaders and ascetics should preserve people's faith

The well-being of the nation is possible only when leaders lead in the right manner. They should strictly fulfill the promises made to the nation; no lies. The leaders should remember that in a democracy the people elect their leaders and they will refuse to reelect a liar. On the other hand, the ascetics have, as a choice, detached themselves from the world, body and sensual-pleasures. They must adhere to their vows. They are the centres of people's faith which should not get maligned. They should lead a pious life. If the centre is unsafe, what will happen to the periphery? While indulging in self-development and maintaining complete self-control, the ascetics should propagate among all the message of good conduct, right thinking, kind-heartedness and compassion. They should promote love and affection among various castes, sects and religions. Men may not leave their traditional rituals but they certainly can leave mutual enmity.

विचार
THE THOUGHTS

## १७०. साधक स्वात्म-ज्ञान की दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव करें

साधुजनों से ही सम्यक् मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है। साधकों को चाहिए कि वे शान्त भाव से ज्ञायक-भाव, माध्यस्थ-भाव, साक्षी-भाव का आश्रय लेकर स्वयं को इतना शान्त करते जायें, इतना शान्त करते जायें, जिससे कषाय-भाव, विकारी-भाव, कामादि-परिणाम पूर्ण विराम ले लें। पर-भावों के प्रति ममत्व एवं द्वेष-भाव सहज रूप से आत्म-प्रदेशों में बचें ही नहीं। तब ही स्वात्म-ज्ञान की दिव्य-ज्योति का प्रादुर्भाव होगा। फिर किसी को करुणा, दया की व्याख्या ही नहीं करना पड़ेगी। कारण? दिव्यज्ञानी पुरुष केवली सर्वज्ञ संज्ञा को प्राप्त कर लेगा। उनकी उपस्थिति जहाँ भी होगी वहाँ

PREVIEW ONLY

प्राणिमात्र जन्म, जाति के वैर का त्याग कर देंगे। मानव क्या, पशु–पक्षी, सिंह–गाय–हाथी, नकुल–सर्प, बिल्ली–चूहा आदि प्राणी भी एक साथ वात्सल्य से रहेंगे। वे सभी अत्यन्त शान्त हो जायेंगे। प्रभु के पास आते ही न कोई युद्ध होगा, न क्लेश; एकमात्र शान्ति, शान्ति और शान्ति रहेगी।

### 170 - The ascetic should kindle in him the divine light of soul-knowledge

Only the noble ascetics lead you to the right path. The ascetics should, with a peaceful mind and taking refuge in the dispositions of knowledge, equanimity and vision, make themselves tranquil to the extent that all their passions *(kaṣāya)*, faults, and lustful tendencies get to complete quiescence. No attachment or aversion towards alien objects should remain in the space-points of your soul. Only then the divine light of soul-knowledge will kindle in you. At this stage the talk of compassion and kind-heartedness will become futile. Why? The man with divine knowledge will become an Omniscient Lord *(savajña, kevalī)*. Due to his mere presence at any place all living-beings there will give up their enmity, from birth or caste-based, towards others. Not only men, even animals including birds, and naturally hostile animals like lion-cow-elephant, mongoose-snake and cat-mouse will live together with mutual affection. All will become extremely peaceful. In proximity of the Omniscient Lord there shall be no war or angst; peace, and only peace, shall prevail.

विचार
The Thoughts

### १७१. भोग को त्याग कर योग स्वीकार करना ही श्रेयस्कर

सम्पूर्ण लोकवर्ती साधुजनों को यही संदेश है कि वे अन्तरंग–साधना पर विशेष लक्ष्य रखें, बाह्य लोक की अपेक्षा आत्म–वैभव का अन्वेषण करें। पूर्व साधकों ने आत्मस्थ होकर आत्मानन्द को प्राप्त किया है। साधुजन निर्माण–कार्यों को विराम देकर, निर्वाण–मार्ग पर विशेष लक्ष्य रखें। जब साधक अन्तरंग के आनन्द में मग्न हो जायेगा, तब बाह्य अशुभ प्रवृत्तियाँ स्वत: शान्त होने लगेंगी। जो बाह्य–प्रवृत्तियों से बहुत अधिक प्रभावित हैं, वे सभी अभी अन्तरंग से अपरिचित ही हैं, इसलिए लौकिक, राजनैतिक पदों की ओर दौड़ रहे हैं।

साधु–वेष में स्व–मत से भी विचार करें तो राज्य और योग साधना दोनों एक साथ नहीं हो सकते। पूर्व में भी बड़े–बड़े राजा–महाराजा, चक्री, राजनीति एवं राज्य से विरक्त हो गए। इसके उपरान्त उन्होंने राज्य–व्यवस्था का त्याग कर पूर्ण विरक्त होकर, आत्मसाधना की तथा संसार–भ्रमण से मुक्त हुए। एक प्रशस्त मार्ग–दर्शन दे गए। संसार में शान्ति साधना के मार्ग पर ही है, भोग को त्याग कर योग स्वीकार करना श्रेयस्कर है। योग छोड़ भोग पर चलना अयोग्य है। राजनीति का त्याग कर शुद्ध योगी का मार्ग ही प्रशस्त है। स्वात्म–सिद्धि के लिए, अध्यात्म–विद्या में लीन होने के लिए, स्वयं के अन्दर बैठने के लिए, समय सारभूत होने के लिए स्वयं में ही बैठना, अन्य में नहीं, अन्यथा नहीं। यही परम–सत्य साधना है। राग–द्वेष शून्य, परम–वीतराग दशा का अनुभवन, अन्य का नहीं लेश। स्वात्म–साधक के लिए सम्पूर्ण वसुन्धरा ध्यान–केन्द्र है, वह अन्य कृत्रिम केन्द्रों का विचार मन में नहीं रखता; यही सत्य है।

PREVIEW ONLY

## 171 - After quitting all sensual-enjoyment, adopt yoga

A message to all ascetics of the world: they should aim for internal, spiritual practice; they should investigate the glory of the self rather than of the world outside. All ancient sages had stationed themselves in the self and attained soul-happiness. Rather than engaging themselves in building activities, they should tread the path to liberation. As the ascetic gets engrossed in soul-happiness, all external, evil inclinations automatically get to quiescence. Those who are excessively engaged in external activities are unaware of the glory of the self and, as a result, seek worldly and political accomplishments.

If ascetics think-through, they shall realize that worldly engagements and practice of yoga do not blend well. Many great kings and kings-of-kings of yesteryears had left their vast kingdoms to adopt asceticism. Taking complete leave from all state activities, they engaged themselves in spiritual practice and attained freedom from worldly transmigration. Peace lies in the path of spiritual practice and, therefore, it is better to adopt yoga after quitting all sensual-enjoyment. It is not laudable to quit yoga and adopt sensual-enjoyment. Shedding all political activities and adopting pristine yoga is laudable. To attain soul-purity, spiritual-learning and concentration, station yourself in the self, nowhere else. This is the ultimate truth of spiritual practice. This state is rid of all attachment and aversion; it results in the state of supreme detachment, nothing else. The ascetic is able to meditate at any place on the earth; he does not require a special place to get engaged in meditation, This is the truth.

विचार
THE THOUGHTS

## १७२. श्रेष्ठ विचार ही प्राणियों के कल्याण का हेतु

जीव को मात्र मानव का होना महान् नहीं बनाता, अपितु व्यक्ति का आचार एवं विचार उसे महान् बनाते हैं। श्रेष्ठ आचरण लोक में पूज्यता, आदर एवं सम्मान दिलाता है। परलोक में स्वर्ग एवं मोक्ष का साधन बनता है। स्वयं के आचरण की विशिष्टता व्यक्ति को विशेष लाभ दिला पाती है; वह उसके अभ्युदय व नि:श्रेयस का कारण है। महाव्रतियों एवं अणुव्रतियों का उत्कृष्ट-चरित्र व मायाचारी-शून्य सत्यार्थ आचरण साक्षात् एवं परम्परा से निर्वाण सुख-दाता है। आचार के साथ विचारशील सृजेता, लेखक साहित्यकार तथा काव्य-कला युक्त कवि स्व-साधना के साथ विश्व को वस्तु के वस्तुत्व का सत्यार्थ-बोध प्रदान करके स्व-पर कल्याण करते हैं।

विचार आगम-सिद्धान्त के आलोक में हों। व्यर्थ के विचार स्व-पर के घातक, शत्रु हैं। तत्त्व-ज्ञान शून्य विचार न लिखे जायें, न बोले जायें, यही श्रेष्ठ है। तत्त्वज्ञान-विहीन विचारों का उत्पन्न होना व नष्ट होना जल में लहरों के तुल्य है। वे किसी व्यक्ति के इष्ट की कोई सिद्धि नहीं कराते। सिद्धान्त तथा आगम-शून्य व्यक्तियों के विचार जल-मन्थन के तुल्य हैं। जैसे पानी के मथने से कुछ भी नहीं निकलता, पुरुषार्थ व्यर्थ ही जाता है, उसी प्रकार से तत्त्वज्ञान-विहीन विचारकों के विचार स्व-पर की आत्म-सिद्धि के साधन नहीं, अपितु मात्र क्लेश के साधन हैं। तत्त्वज्ञान-विहीन निर्ग्रन्थ दीक्षा भी निष्फल है, इसलिए प्रत्येक भव्यवर मानव का कर्तव्य है कि वह सतत तत्त्व-ज्ञान का अभ्यास करते रहें, जिससे श्रेष्ठ विचारों का उद्‌भव हो सके।

PREVIEW ONLY

व्यक्ति के सिद्धान्त–मण्डित श्रेष्ठ विचार सदियों–सदियों तक प्राणियों के कल्याण का हेतु बनते हैं। उन विचारों का वर्तमान एवं भावी पीढ़ी अनुसरण करती है। व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, परन्तु विचार लोगों की आस्था में जीवित रहते हैं। नवीन–नवीन लोग सद्–विचारों का प्रचार करते रहते हैं। वे स्वयं किसी जीव को नहीं सताते और दूसरों को भी सद्–उपदेश करते हैं। जीव–हिंसा नहीं करना, मात्र इस उपदेश से जीव रक्षा तो हुई इसके साथ में हिंसा करने वाले की भी अशुभ कर्म–बन्ध एवं कुगति के गमन से बचाव हो गया। लाखों लोगों का कुभावों से एवं कुभव भ्रमण से बचाव हो गया। परमब्रह्म अहिंसा के उपासकों को वर्द्धमान करो। अहिंसा का सम्मान अहिंसक व्यक्ति के सम्मान से होगा। देश में जो भी अहिंसक विचारशील हैं, उन सबका सत्कार करो। यदि संस्कृति की रक्षा का भाव है, तो क्रूरता का धर्मस्थान पर कोई सम्मान नहीं होना चाहिए।

## 172 - Only laudable thoughts bring propitiousness for all

Just being a man does not make one great; his conduct and thoughts make him great. Laudable conduct bestows him reverence, honour and prestige. And, it becomes the means for him to attain heavenly abode and liberation. The exquisiteness of conduct bestows on man special favours; it provides him with prosperity and ultimate happiness. Laudable conduct, rid of deceit, of the observers of the great-vows *(mahāvrata)* and the minor-vows *(aṇuvrata)* is the bestower, directly and conventionally, of the happiness appertaining to liberation. Thoughtful men of literature following good conduct – writers, authors and poets – besides their own spiritual upliftment, bring propitiousness to self and others by expounding the true nature of the objects *(vastutva)*.

Thoughts should be illumined by the scripture and the doctrine. Useless thoughts are enemies of the self and others. Do not write or speak the thoughts that are rid of the knowledge of the reality. Such thoughts arise and vanish like the waves in water. They do not serve any purpose for anyone. Thoughts rid of the doctrine and devoid of scriptural-knowledge are akin to churning water; nothing is going to come out of these. Similarly the thoughts of the thinkers without the knowledge of the reality do not advance their soul-development; instead, they give rise to agony. Even the asceticism rid of the knowledge of the reality serves no purpose. Worthy men should, therefore, strive to acquire the knowledge of the reality incessantly so as to give rise to worthy thoughts.

Thoughts adorned with the doctrine bring propitiousness for all, for centuries. The present and the future generations follow such thoughts. The man dies but his thoughts continue to move the people. New people keep on arriving and continue to propagate such thoughts. They themselves do not cause misery to any living-being and teach the same to others. If just the preaching – 'do not kill anyone' – is able to save the life of a living-being, it has saved the person who would have committed the evil act from the bondage of inauspicious karmas and consequent attainment of an evil state-of-existence. Hundreds of thousands of souls have thus been saved from evil disposition and evil states-of-existence. Encourage men having faith in the supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)*. To adore non-injury *(ahiṃsā)*, give reverence to men who observe the virtue of non-injury. Bestow honour on men who propagate the thought of non-injury. If you think of protecting the culture from ruin, cruelty should find no place in any place of dharma.



PREVIEW ONLY

## १७३. सत्यार्थ-मार्ग पर लोगों की आस्थायें वर्द्धमान करें

हमारे किसी भी क्रियाकलाप से संस्कृति के प्रति अनास्था की उत्पत्ति किसी के अन्दर होती है, तो उसका परिणाम आपको भोगना पड़ेगा। कोई व्यक्ति हमारे निमित्त से सत्यार्थ-मार्ग से च्युत हो रहा है अथवा हो चुका है अथवा होने वाला है, ऐसा त्रिकालवर्ती विषय पर विचार करो। हमसे कितना बड़ा अपराध हो गया; हम किसी व्यक्ति को सम्यक्- मार्ग से पतित कराने में निमित्त बन गए। सत्यार्थ-मार्ग की आस्था कराना अत्यन्त कठिन कार्य है; उसे कराना चाहिए था। 'मैं पापी आस्था तुड़ाने में हेतु बन गया। अहो! अहो! अहो! कौन-से भव के घोर पाप-कर्म का उदय आ गया? आस्था की मुद्रा में अनास्था खड़ी करा दी।' प्रत्येक मुमुक्षु भव्य जीव को इस पर विचार करना चाहिए और स्वकीय चर्या एवं क्रिया आगमानुकूल हो, सत्यार्थ-मार्ग पर लोगों की आस्थायें वर्द्धमान होवें, हीयमान न होवें। स्व एवं पर की श्रद्धा दृढ़ता को प्राप्त हो, ऐसा विचार करो, तदनुसार आचरण भी करो। ऐसा भाव भव्य-जीवों के अन्दर आता है, दीर्घ संसारी अथवा अभव्यों के अन्दर सम्भव नहीं है।

### 173 - Strengthen the faith of the people on the true path

If any act of yours generates disbelief in rich cultural heritage, its responsibility will lie on you. Think before you act; no one should be led astray from the true path in the three times – past, present and future. Think about your misdeed if you become responsible for leading someone astray. The worthy ascetic should think: "Alas! I am the evil man who has led someone astray. What evil karma from my past life has come to fruition? In the garb that stands for right faith, I have led someone astray. I should, instead, be the one to lead others to the difficult-to-follow right path." He should, therefore, strive to make his conduct and act as per the teachings of the scripture so that people's faith gets strengthened, not weakened. Strive to strengthen your own right faith and of others, and act accordingly. This kind of thought-process takes place only in worthy souls; not in those who have very long worldly-existence or are unworthy.

विचार
THE THOUGHTS

## १७४. व्यक्ति की विश्वास-योग्यता का आकलन करें

जो जीव दया-भाव से आर्द्र चित्त हैं, उनके ही अन्तःकरण में श्रेष्ठ विचारों का उद्भव होता है। विचार और कार्य व्यक्ति के हृदय को खोलकर दिखा देते हैं। व्यक्ति के हृदय में क्या चल रहा है, यह व्यक्ति विश्वास योग्य है या नहीं, इसका निर्णय भी हो जाता है। जब-तक व्यक्ति की पूर्ण परीक्षा न कर लें, तब-तक उस पर विश्वास करना मूर्खता है। वह सम्पूर्ण विधाओं में पारंगत, कुशल है, परन्तु व्यवहार-कुशलता शून्य है, सत्यवादिता से रिक्त है, चोरी व्यसन से युक्त है, परस्त्री में अनुरक्त है, मायाचारी जिसके अंग-अंग में निहित है, ईर्ष्या, डाह की ज्वाला से जिसका अन्तःकरण जल रहा हो, जो स्वार्थ में मिष्ठ-भाषी हो तथा पीठ पीछे स्वामी की निन्दा करने में कुशल हो, तीव्र लोभी हो, लोभ में आकर स्वामी की हत्या भी कर सकता है, ऐसे व्यक्ति को न ही अपना मित्र बनाने का विचार करें, न ही भृत्य बनाने का। ऐसा व्यक्ति सर्वनाशक है, जगत् का अहितकारी है। ऐसे व्यक्ति पर करुणा भी करो तो दूरी बनाकर। यदि स्व-जीवन एवं जीवन के आनन्द को जीवित रखने का सम्यक् विचार है तो ऐसे व्यक्ति को स्वगृह, स्वप्रतिष्ठान, स्वानुष्ठान से पृथक् रखने का ही विचार करें।

PREVIEW ONLY

### 174 - Rely upon a man after evaluating his trustworthiness

Worthy thoughts take place in men whose hearts are full of kind-heartedness. The thoughts and actions reflect the heart of the man. On the basis of these you are able to decide if he is worthy to rely upon. It is foolishness to rely upon a man without evaluating his trustworthiness. The man with the following attributes is not worthy to be either your friend or servant: although skilled in all learnings but inapt in his dealings with the world; does not speak the truth; addicted to stealing; carries lust for other's wife; is full of deceitfulness and burning with the vices of envy and spite; speaks pleasingly in front of the master out of selfishness but censures him at the back; is overtly greedy and can even kill his master out of greed. Such a man harms everyone in the world. Even if you wish to be merciful towards him, maintain a distance. If you wish to make your own life happy and blissful, keep such a person away from your home, establishment and all your rituals.

विचार
THE THOUGHTS

### १७५. हिंसक व्यक्ति संक्लेशता का ही कारण बनते हैं

जीवन-घाती कितना ही कुशल-पुरुष क्यों न हो, उसकी कुशलता से सदा अप्रभावित रहना। क्रूर, हिंसक, दया-करुणा रहित, प्रेम-वात्सल्य हीन जनों से स्वस्थान को सूना ही रखना श्रेयस्कर है, अन्यथा स्व के प्राणों का घात ही परिणाम होगा। आचरण, कुल व जाति हीन जनों पर शीघ्र विश्वास नहीं करना। ऐसे लोग स्व-स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकते हैं, उन्हें नीच-कर्म से कोई ग्लानि नहीं है। ऐसे लोगों से वे ही कार्य ले सकते हैं और कार्य दे सकते हैं जो पूर्ण प्रभुत्व-शक्ति सम्पन्न हैं। यथा जिनके पास राजतंत्र, दण्डतंत्र है एवं जो गुप्तचरों के साथ हैं। जिनके पास प्रभुत्व-शक्ति नहीं है और जो धन, राज्य, पुण्य से रहित हैं, उन्हें सदा सज्जनों को ही अपने कार्य हेतु रखना चाहिए।

सज्जन लोग आत्म-विशुद्धि में साधन बनते हैं। असाधु लोग संक्लेशता का कारण बनते हैं। उनके जीवन में इतने अधिक विकल्प रहते हैं कि उनके संसर्ग से आपका जीवन ही विकल्पों का घर बन जायेगा। इस प्रकार के लोग प्रतिक्षण नवीन-नवीन क्लेश खड़े कर देते हैं, मरने-मारने को तैयार रहते हैं। स्वार्थ में मधुर-मधुर भाषण भी करते हैं, परन्तु अवसर पाते ही आपके अंग-अंग के टुकड़े कर सकते हैं और आपका सर्व स्वाहा कर सकते हैं। फिर भी ऐसे लोगों को कोई भृत्य, मित्र, भर्ता बनाए तो उसका तीव्र राग कहें या फिर तीव्र दुर्भाग्य कहें? स्व-विचारों को सँभालने हेतु इस प्रकार के लोगों को उनके कर्मोदय पर छोड़ देना चाहिए। उन जीवों का तीव्र कषायोदय चल रहा है। तीव्र कर्मोदय पर व्यक्ति को सम्यक् उपदेश भी सुन्दर नहीं लगते।

### 175 - The men of violence engender nothing but anxiety

Never get impressed by the man, howsoever skilled, who kills others. Maintain distance from the man who is cruel, violent, without mercy and compassion, and rid of love and affection; otherwise you may lose your own life. Don't put blind faith on men of bad conduct and who are lowly in respect of their progeny. Such men can do anything to satisfy their selfish ends; they have no disgust for vicious karmas. Only those who have absolute power and authority – for example, men with state authority, judicial power and detectives – can get work done from such ignoble men. If you do not have such power

PREVIEW ONLY

and do not have enough wealth, authority and merit, keep such men at bay and keep company of noble men only.

Noble men bring forth soul-purification; ignoble men bring forth anxiety. Ignoble men have so many ifs and buts in their lives that their company makes your life too a home to ifs and buts. This way, every instant they tend to generate new anxieties amid an environment of killing and getting killed. They may utter sweet words to satisfy their selfish ends but can ruin you and cut you to pieces if doing this favours them. Still, if someone makes such men as their employee, friend or spouse, this can be due to utter attachment or else utter misfortune. Leave such men at the mercy of their own fruition of the karmas so as to protect yourself from vicious thoughts. Such men are experiencing a severe rise of passions. The man who is experiencing grave fruition of the karmas fails to pay heed to worthy discourses.

विचार
THE THOUGHTS

## १७६. मोह-मद युक्त प्राणी का स्वहित पर विचार नहीं होता

मोह-मद युक्त प्राणी हेय-उपादेय को पूर्ण भूल जाते हैं, उन्हें वस्तु का सत्यार्थ-वस्तुत्व दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रतिक्षण विपरीत क्रिया-कलापों में ही उनका समय पूर्ण होता है। वे लोग इस विपरीतता में ही आनन्द मनाते हैं। बार-बार यह विचार करके कि क्या कभी इनका हित भी होगा, उनके हितचिन्तक दु:खी होते हैं। ये लोग क्यों नहीं सुधरते? इन्हें सुधर जाना चाहिए, पर नहीं सुधरते हैं और स्वयं में प्रसन्न दिखते हैं। फिर सुधार चाहने वालों को विचार करना चाहिए कि जब उन्हें स्वयं ही स्वहित पर किंचित् भी विचार-विवेक-क्लेश नहीं है, तो फिर हम ही क्यों स्वजीवन के निषेक उनके हित-विचार में नष्ट करें। एक बार, दो बार या अधिक-से-अधिक तीन बार संकेत अवश्य करो, फिर भी यदि वह जीव सुधरने का विचार नहीं बना पा रहा है तो फिर तटस्थ (माध्यस्थ) भाव धारण कर लो। स्व-परिणामों को दु:ख मत दो। ऐसा कार्य नहीं करना जो स्व-पर के लिए त्रिकाल कष्ट का कारण बने तथा लोक में जयवन्त यश का अन्त करा दे।

## 176 - Men with delusion fail to think about their own welfare

Men with delusion fail to appreciate what is worthy of acceptance or rejection; they fail to see the true nature of the objects – *vastutva*. They are incessantly engaged in unmerited activities but seem to enjoy doing them. Their well-wishers worry about such men and wonder when will they appreciate what is good for them. Why do they not reform themselves? But they seem to be happy. Their well-wishers should think that when such men themselves are not thinking or worried about own welfare, why should they waste their precious time thinking about the well-being of such men? Indicate to such men – once, twice or at most thrice – the way to reform their lives but if in spite of your counselling they fail to respond positively, adopt a neutral attitude towards them. Don’t cause wretchedness to your own dispositions. Don’t do anything that may harm you or others in the three times, and diminish your reverence and glory in the world.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १७७. सदाचार को सर्व-आचारों का मूल समझो

यश:कीर्ति का नाश मानव का सर्वनाश समझना। यश और चारित्र का जीवन ही सत्य जीवन है। यश लौकिक सुख दाता है, चारित्र परमार्थ सुख दाता है। चारित्रवान् उभय लोक में आनन्द का वेदन करता है। इस लोक में चारित्र विषयातीत आत्म-आनन्द-दाता है और परलोक में कर्मातीत परम-आनन्द प्राप्त कराता है। अनन्त आनन्द का पिण्ड अशरीरी-सिद्ध भगवान् हैं। उस परम-स्थान को, सिद्धों के आनन्द को, चरित्रवान् ही पा सकता है, अन्य कोई सामान्य जीव नहीं प्राप्त कर सकता। सम्पूर्ण आनन्दों का घर सम्यक्त्व, सदाचार, संयमाचार, स्वरूपाचार से प्रारम्भ होता है।

यदि व्यक्ति सदाचारी नहीं है तो अन्य कोई भी आचार शोभा नहीं पायेगा। सदाचार को सर्व-आचारों का मूल ही समझो। जो सर्व-जीवों के प्रति साम्य-व्यवहार रखता है, अहिंसा, करुणा, दया जिसमें है, रात्रि-भोजन त्यागी है, शाकाहारी है, मांस-त्यागी है, अभक्ष्य-त्यागी है, अनीति तथा अन्याय से उपेक्षा भाव रखता है, वही सदाचारी है। किसी पुरुष-स्त्री के प्रति ही नहीं, अपितु नपुंसक को देखकर भी भावों में विकार नहीं लाना, सभी जीवों के प्रति सद्भावना जहाँ है, वहीं सदाचार है। जहाँ कदाचार की हानि हो, वहीं है सदाचार। सदाचारी पुरुष लोक में सर्वत्र विश्वास एवं सम्मान का पात्र होता है। प्रत्येक सज्जन मानव सदाचारी पर ही विश्वास करता है। दुराचारी पर अन्य पुरुष ही क्या, स्व की जन्मदात्री जननी एवं जनक भी विश्वास नहीं करते हैं। सर्वत्र अपमान की ज्वाला में उसे झुलसना पड़ता है। अपने भी उसके अपने नहीं होते। माता-पिता, गुरुजन भी उसे अपने पास रखना पसन्द नहीं करते।

## 177 - Good conduct is the root of all observances

The destruction of glory and renown of a man is his obliteration. The life of glory and renown is the true life. Glory provides worldly happiness; conduct provides spiritual happiness. The man with conduct gets happiness in both the worlds, here and hereafter. In this world conduct provides happiness that is beyond the senses and in the next it provides supreme happiness that is beyond the karmas. The Liberated Lords (the *Siddha)* – rid of material body – are a mass of infinite happiness. The supreme abode and the infinite happiness of the Liberated Lords can only be attained by the man of conduct, not by other ordinary men. The pursuit of all kinds of happiness begins with right faith, right conduct, self-restraint and meditation on the true nature of own-soul.

Without good conduct, no other observances get laudability. Consider good conduct as the root of all observances. The man with good conduct will have qualities including: observances of non-injury *(ahiṃsā)*, compassion and kind-heartedness; no partaking of food after sunset; partaking of only vegetarian food; no consumption of flesh; no consumption of prohibited food items; abstaining from sexual inclination towards men, women or even the third gender; and goodwill towards all living-beings. Good conduct prevails in the absence of evil conduct. The man of conduct receives the trust and honour everywhere in the world. Every noble man trusts only the man of conduct. What to talk of others, even own parents don't trust the man without conduct. At every place, he has to get charred in the fire of disgrace. No one seems to belong to him. Even his parents and teachers don't relish his company.

## १७८. प्रज्ञावान् पुरुष यश को प्राप्त

विचारशील व्यक्तित्व स्व-पर कल्याण के लिए दीपक है। वह स्व-पर प्रकाशन का कार्य करता है। विचारशीलता प्रज्ञावान् की प्रज्ञा की परिचायक है। पग-पग पर प्रज्ञावान् पुरुष यश को प्राप्त होता है। सद्-साहित्य का पठन-पाठन; सद्पुरुषों के सदुपदेश; ज्ञानी जनों के मध्य सद्गोष्ठी; काव्य कला युक्त कविजनों एवं धर्मात्मा जनों का सम्मेलन; राज्याधिकारी, श्रेष्ठ-वक्ता, राजनेता, धर्माचार्यों की संगति; सादा जीवन; शुद्ध निरामिष शाकाहार; काम, क्रोध, मान, माया, लोभ काषायिक भावों से आत्म-रक्षा; यह सब करने से प्रज्ञा प्रचण्ड होती है, विचार शक्ति वर्द्धमान होती है। अपनी विचार शक्ति के बल से विचारवान् पुरुष जगत् पूज्यता को प्राप्त कर लेता है। कुशल वक्ता, कुशल-विचारक सर्वत्र अपना अधिकार प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक मुख में उसका नाम गुञ्जित होता है। बाल-गोपाल, नेता-अभिनेता, सेठ-सम्राट् ही नहीं, अपितु साधुजन भी विचारशील के श्रेष्ठ विचारों की भूरि-भूरि प्रशंसा करने में थकते नहीं हैं। आप प्रशंसा चाहते हैं तो गुणज्ञता को प्राप्त करो। बिना गुणज्ञता के प्रशंसा का प्रवेश नहीं होता। विचारवान् बनो, आचारवान् बनो, विवेकवान् बनो, भगवान् बनो; पर बनोगे तभी जब जीव सर्वप्रथम गुणवान् बनेगा, गुणहीन का नहीं कोई स्थान।

## 178 - The man of intellect gets glory

The man of thoughts is a lamp that illumines the path of well being of self and others. The ability to think is the mark of intellect. The man of intellect gets glory at every step. In order to enhance your intellectual and thinking power engage in activities including: reading and teaching of good literature; listening to noble men; interacting with learned men; attending conferences of the skilled poets and the men of dharma; meeting with state authorities, speakers, leaders, and preceptors; simple living; partaking of pure, vegetarian food; protecting self from dispositions of unchastity, anger, pride, deceit, and greed. On the strength of his thinking power, the man of intellect gets reverence from the whole world. The skilled speaker and thinker receives a place of authority everywhere. His name reverberates in every mouth. Not only the young, the leaders and actors, the rich and rulers, even noble men do not get tired of praising profusely the noble thoughts of the thinker. If you wish praise, attain intellectual excellence. ‘No entry’ for praise without intellectual excellence. Attain the status of a thinker and a noble man, get the power of discrimination, and get to godhood. You will only be able to acquire all this by first becoming a man of qualities; there is no room for the man without qualities.

विचार
THE THOUGHTS

## १७९. स्वार्थ में मित्र तथा स्वार्थ-हानि में शत्रु समझो

सामान्य जीवन में कथन करना कि विचारों को पवित्र रखो; यह बात बोलना सरल है, परन्तु विचारों को पवित्र रख पाना पुरुषार्थ-साध्य है। प्रचण्ड पुरुषार्थी ही विचारों को पवित्र रख सकता है। अल्प पुरुषार्थ विचारों को विशुद्ध नहीं रख सकता। सम्पूर्ण आकांक्षाओं की पूर्ति चल रही है, वहाँ कोई यह न कहे कि मेरे विचार पवित्र हैं। विषयानन्द को विचारों की पवित्रता स्वीकारना स्व के प्रति छल-भाव है। विषयों की साधन सामग्री से रिक्त होकर विचारों से मिलो, फिर कहना कि हमारे विचार

PREVIEW ONLY

पावन हैं। विषमताओं में स्व-विचारों का निर्णय करो, संकटों की बेला में विचारों की पवित्रता को देखना। तब देखना ज्ञायक-भाव से कि अन्तरंग में क्या चल रहा है।

विषमता के काल में समता रखने की सामर्थ्य स्वात्मा में उत्पन्न करने की क्षमता लाओ। विषमता के काल में अन्तरंग कषाय-ज्वाला में दग्ध होने लगता है। क्षण-मात्र में अपने भी पर दिखने लगते हैं, मित्रों में भी शत्रु-भाव जाग्रत हो जाता है। आप जिनके हितचिन्तक थे उनके प्रति भी क्षण में अहित विचारक हो जाते हैं। यह सब कब नहीं होता? अज्ञ प्राणी का कषाय भाव आते ही सब कुछ बदल जाता है, इसलिए तो कहता हूँ, मत मानो किसी को मित्र, न मानो किसी को शत्रु। स्वार्थ में मित्र, स्वार्थ-हानि में शत्रु मानो। प्रज्ञ-पुरुष, ज्ञानी-जन, आत्म तत्त्व के ज्ञाता, विश्वहित विचारशील जन शीघ्र निर्णय नहीं लेते, वे शत्रुओं के प्रति भी शत्रु-भाव का अभाव कर लेते हैं; वे एकमात्र अपने शुद्ध-स्वभाव पर लक्ष्य रखते हैं।

### 179 - That which serves the soul is an ally; that which harms it is a foe

In normal life, it is easy to say that you keep your thoughts pristine; to be able to do it depends on your effort. Only the man who makes great effort is able to keep his thoughts pristine; not the man who makes insufficient effort. The man engaged in gratifying all his senses should not say that his thoughts are pristine. This will amount to cheating the self. Get rid of all objects of sense-gratification and then only you may say that your thoughts are pristine. Test your thoughts in adverse circumstances and crisis situations. Watch as a keen observer what is going on within you at such times.

Generate the ability to maintain equanimity in the face of adversities; this is the time when your thoughts start getting scorched in the fire of passions *(kaṣāya)*. In no time, those close to you seem to be faraway and the friends appear to be enemies. You start thinking of harming even those whose well-being you always wished for. When does all this not happen? For an ignorant man everything changes on the rise of passions; therefore, I say, "Don't consider anyone an ally or a foe." That which serves your soul is an ally; that which harms it is a foe. The men who are intelligent and knowledgeable, who have the knowledge of the soul-substance, and who think about the well-being of the world, do not take hasty decisions. Such men do not engender the thought of enmity even towards the enemies; their focus remains on the pure soul-nature.

विचार
THE THOUGHTS

### १८०. आध्यात्मिक जीवन विश्व सम्पदा

भौतिक विकास पर विचार करने वाले संख्यात विचारक हैं। संसार में रसायन पर बहुत अन्वेषण हुए, वर्तमान में भी लोग कर रहे हैं। जीवन लीला पूर्ण होते ही सम्पूर्ण अन्वेषण अकार्यकारी हो जाते हैं। भौतिक विकास विनाश के साथ है। आध्यात्मिक विकास आत्मा को परमात्म-पद प्रदान करा देता है, कभी भी जिस पद का विनाश नहीं है, सादि अनन्त है; जिसका प्रारम्भ तो है, परन्तु अन्त नहीं है, अर्थात् विनाश नहीं है। आध्यात्मिक जीवन जीने से चिर-स्थायी अवस्था की प्राप्ति होती है। अध्यात्म का चिन्तवन व जीवन संसार से विपरीत है। संसार के कषाय-लिप्त जीव जो विचार करते हैं, वे तुच्छ विचार हैं। अध्यात्म-तत्त्व विचार ही जगत् हितकारक हैं। अध्यात्म विचारधारा से शरीर, मन, वाणी

PREVIEW ONLY

तीनों ही स्वस्थ रहते हैं। जब तीनों साम्यता को प्राप्त हो जाते हैं, तब जीव आत्म-शान्ति, सुख का वेदन करता है। जीव जगति पर शरीर सहित होने पर भी स्वात्मा को शरीर-शून्य, अशरीरीभूत वेदता है और सम्पूर्ण तामसिक, अशुभ प्रवृत्तियों को छोड़कर शुभोपयोग में लीन रहता है तथा शुद्धोपयोग पर लक्ष्य बनाकर चलता है। पल-पल स्वात्म देव से मिलन के भाव रखता है, एक-क्षण भी व्यर्थ में नहीं जाने देता। मोक्षमार्ग का साधक परभावों से विरक्त भाव का ही विचार करता है, अन्य भाव तो उसके लिए अप्रयोजनीय हैं। ज्ञानी-जन प्रयोजनभूत भूतार्थ पर ही दृष्टि रखते हैं, अभूतार्थ पर अपना लक्ष्य नहीं ले जाते; ले जाना भी नहीं चाहिए। स्वलक्ष्य से भ्रान्त बुद्धि व्यभिचारी बुद्धि कहलाती है।

## 180 - Spiritual life is the wealth of the world

There are numerous thinkers on material development. Many inventions have been done and are being done in the field of chemistry. As the life ends, all inventions become futile. Material development accompanies destruction. Spiritual development bestows the supreme status to the soul; this state of the soul is indestructible, it has a beginning but not the end. Living a spiritual life bestows the state of eternity. Spiritual thinking and spiritual life are opposite to the ways of the world. The thoughts mired with passions *(kaṣāya)* are lowly thoughts. Thoughts based on the reality are for the well-being of the world. Spiritual thoughts keep the trio of the body, mind and speech healthy. When these three get to quiescence, the soul experiences peace and happiness. Although still with the body, the soul experiences a bodyless state; it shuns all evil and inauspicious inclinations and remains engrossed in auspicious-cognition *(śubhopayoga)* while aiming for pure-cognition *(śuddhopayoga)*. Every instant, without wasting a second, it strives to meet God that resides in own-soul. The man treading the path to liberation maintains distance from all thoughts external to the self as these are futile for him. Knowledgeable men keep an eye on what is useful and real; justly, they do not aim for anything that is far from the reality. The intellect that does not aim at the real is perverse intellect.

विचार
THE THOUGHTS

## १८१. सदाचारी से धर्म-धर्मात्मा की सुरक्षा

ज्ञानीजन स्व एवं पर को सत्यार्थ मार्ग की ओर ही ले जाते हैं, विपरीत मार्ग से सदा स्व-पर की रक्षा करते हैं, करुणा-भाव से। संसार की सबसे बड़ी करुणा है, सदाचार से दूर नहीं चले जाना। पुण्यात्मा भव्य जीव ही अपने चारित्र की रक्षा कर पाता है, पुण्यक्षीण, पापी जीव स्व-पर की रक्षा नहीं कर पाता। पुण्यात्मा भव्य जीव निमित्त मिलने पर भी स्व में दृढ़ रहता है। कुभाव, कुसंगति, कुविचार, कुशास्त्र, कुज्ञान, कुदर्शन व्यक्ति को पतित करा देता है। जिन्हें यथार्थ में आत्महित का विचार है उन्हें चाहिए कि उपरोक्त अवस्थाओं से सदा आत्म-रक्षा करें तथा अन्य भव्यवर जीवों को भी सुरक्षित रखें। सदाचारी का विशेष कर्त्तव्य है कि वह अपने जैसे सचारित्रवानों की संख्या की वृद्धि करें, तभी आप अपने गुणों की रक्षा कर पायेंगे। पापियों के मध्य धर्मात्मा क्या अपनी रक्षा कर पायेंगे? एकान्तिक भावों से स्वधर्म का पालन कठिन है। विशाल विवेक एवं सोच के साथ विचार करो, विवेकहीन जनों की वृद्धि होने पर आप जैसे पढ़े-लिखे त्यागीवृन्द अहिंसा धर्म का पालन करने वाले आप ही नहीं बचोगे,

फिर धर्म कौन पालेगा? अपनी सुरक्षा पर भी विचार करो। जो धर्म–धर्मात्मा पर उपसर्ग करने वाले हैं, उनकी उपेक्षा ही मत करो, प्रेम से उनके हृदय के विचारों को भी सुनो और उन्हें भी सत्यार्थ–बोध प्रदान करो। राजदण्ड के भय से जो नहीं सुधरते, उन्हें विवेक से समझाओ। इन्सान हैं सभी, विवेक–बल से युक्त हैं। धर्म–धर्मात्माओं की कीमत समझो, किसी की हत्या कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। कषाय के आवेश के काल में विवेक पूर्वक हिंसा–भावों को रोककर सभी की रक्षा करना। आक्रोश को शान्त कर सभी के अंदर करुणा–भाव भर देना। प्राणि–मात्र के प्रति सद्भाव जाग्रत कर देना, कोई किसी के प्रति हिंसा भावों को जन्म न दे, अपनी परम्परा के राग में दूसरे की परम्परा पर प्रहार कर के नरसंहार न करें। विश्वास रखो, मात्र यही धर्म अहिंसा है। धर्म के नाम पर हिंसात्मक कार्य न करें, न अनुमोदना करें। विश्वधरा पर वात्सल्य के साथ शान्ति व आनन्द का वातावरण जीवन्त रहे।

## 181 - The dharma and its followers are protected by the men of conduct

Knowledgeable men take themselves and others on to the right path and protect, with compassion, all from following the wrong path. The most laudable compassion in the world is not to get astray from right conduct. Only the meritorious and worthy man is able to protect his conduct; the evil man with no merit cannot protect self or others from taking the wrong path. The meritorious and worthy man steadfastly follows the right path even in the presence of adverse causes. Evil dispositions, company, thoughts, literature, knowledge and perception cause the downfall of a man. Those who long for their well-being should protect themselves and other worthy men from such evil causes. The man of conduct has a special duty and that is to increase the number of men with character; only then shall he be able to maintain own qualities. How can the man of character protect his qualities while living among evil men? Absolutistic thoughts are not conducive to observing own dharma. Think seriously and with great discrimination: if educated men of renunciation like you cease to exist, who would observe the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*? Think about your own safety too. Do not just ignore men who bring forth trouble for the dharma and the men of dharma; listen to their thoughts and make them aware of the truth. Provide counsel to those who do not mend their ways in disregard to the fear of state punishment. Accept that they too are humans and have the power of discrimination. Understand the value of the dharma and the men of dharma; it is not great to kill someone. When overwhelmed with passions *(kaṣāya)*, get rid of all violent thoughts and protect everyone. Give rest to your uproar and instill compassion in every heart. Let men have goodwill towards all living-beings; no one should think of injuring other living-beings; no one, propelled by attachment for own sect, should think of annihilating other sects. Have faith; this is the true dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. In the name of dharma neither indulge in nor accord approval to deeds that involve injury *(hiṃsā)*. May the atmosphere of mutual affection, peace and happiness prevail on the earth!

## १८२. सम्यक् उपदेशकों का बड़ा उपकार

प्रत्येक नागरिक भारत गणतंत्र-प्रजातंत्र में निवास करे। भारत की पवित्रता को जीवित रखते हुए साधुता का परिचय दे, देश विकास पर विचार करे, स्व-सम्प्रदाय के रूप में देश को न देखे, अपने सम्प्रदाय में भारत की अखण्डता मात्र देखे। जो-जो अपने आपको धर्म गुरु मानते हैं उनका धर्म है कि पवित्र-देश में रहकर यहाँ का भोजन, पानी सेवन करते हुए प्रत्येक भक्त, आराधक को भारत की अखण्डता की शिक्षा दें, ईर्ष्या से रक्षा करायें। देश के किसानों की मेहनत से उदर पूर्ण कर किसानों के ही उदर का घात न करें। सर्व धर्मों का सार अहिंसा परम ब्रह्म है। धर्म का मूल दया है। मानव से पशु-पक्षियों तक के प्राणों की रक्षा की शिक्षा दें, तो विश्व पर धर्म उपदेशकों का बड़ा उपकार होगा। सभी पृथ्वी के सपूत हैं किसी भी धार्मिक स्थल व महोत्सव, जुलूस पर किसी भी प्रकार का उपसर्ग (उपद्रव) न करें, अपितु उनका बहुमान कर मानव जाति के प्रति एकत्व भाव जाग्रत करें। अपनी सोच को विशाल करें, जीवन में अच्छे कार्य करें तो अच्छी मृत्यु नियत है। ऐसा कार्य करें कि किसी जाति, पन्थ, सम्प्रदाय के न होकर आप विश्वधरा के आराध्य हो जायें। प्रत्येक सम्प्रदाय आपका सम्मान कर सके, इस योग्य स्वयं को तैयार करो। किसी देश, राष्ट्र, सम्प्रदाय पर आक्रमण करके आतंकी, नक्सली, डाकू, चोर-लुटेरे में अपना नाम लिखाना क्या महत्त्वपूर्ण है? ऐसा कार्य करो कि आपका नाम भी सन्त, साधु जैसे महान् पुरुषों में आये। विश्व के घर-घर में आपके सम्यक्-सिद्धान्तों की चर्चा-वार्ता हो, उन सिद्धान्तों को स्वीकार कर प्रत्येक मानव अपने आपको धन्य-धन्य स्वीकार करे, अन्य लोगों को भी प्रेरित करे। सम्यक् उपदेशों के अनुसार अपना जीवन बनाओ, न किसी को गोलियों, तलवार, पत्थर से मारो। एक अच्छा मानव बनकर साधक बनें और समाधि-पूर्वक मरण कर आत्मा को अनन्त दुःखों से मुक्त कर परमानन्द के भोक्ता परमात्मा बनें। ऐसा पवित्र विचार करो कि फिर इस दुःखमय संसार में कभी भी आना न हो। स्व के साथ ही पर को प्रेरित करो, अच्छा बनने के लिए, अच्छा कार्य करने के लिए, दानवता के त्याग के लिए, मानवता की रक्षा के लिए, नर-नारियों के प्रति साम्यभाव रखने के लिए।

## 182 - Right preachers bestow great benevolence

Every citizen should live in the democratic and republic India. Keeping alive the piousness of India, he should lead a noble life and think about the development of the country. He should not think India as comprising just his community; he should see whole of India in his community too. Those who consider themselves as guru of the dharma and eat food and drink water of this pious land have the responsibility to preach their disciples about the unity of India, and to protect people from envy. The farmers of the country satiate our hunger; let them not go hungry. The crux of all religions is the supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)*. The root of dharma is kind-heartedness *(dayā)*. The dharma-preachers of the world will do great good if they teach people about saving lives of not only humans but also of animals including birds. All belong to mother-earth; no one should cause disturbance at any religious place or ceremony or procession; instead, these should be accorded due respect in order to strengthen unity. Give expanse to your thinking; if you do good deeds in life, a good death is guaranteed. Your deeds should make you venerable not only in particular caste or sect but in the whole world.

PREVIEW ONLY

Prepare yourself in a manner that all sects are able to respect you. Is it worthwhile to get your name etched in the list of terrorists, dacoits, thieves and abductors by attacking a country, nation or religious group? Let your name be taken among great sages. Let your teachings become part of discussion in every home in the world; let every individual not only accept but propagate your doctrine. Mould your life according to right precepts; do not hurt anyone with bullets, swords or stones. Become a good human being and practise the dharma so as to attain a pious death; this will rid you of infinite worldly miseries and make you a supreme-soul *(paramātmā)* who enjoys infinite-bliss. Think grand so that you are not required to take birth in this world, full of misery, again. Encourage self and others to be good, to do good, to shun demonic tendencies, to protect humanity, and to have equal regard for men and women.

विचार
The Thoughts

## १८३. स्त्री संस्कृति का संवर्धन

वेद-भेद कर स्त्रियों को मात्र स्त्री मानकर मार देना, यह नहीं मानवता, न ऐसा कोई महापुरुष का उपदेश है। स्त्री को मात्र भोग्या मानकर उसके प्रति अशुभ व्यवहार, यह मानवता की हत्या है, संस्कृति पर घात है। क्या वह जीवत्व-शून्य है जो उसके साथ ऐसा व्यवहार? क्रूरता से युक्त लोगों के सिद्धान्त सम्यक् सिद्धान्त नहीं हैं। सम्प्रति पढ़े-लिखे युवाजनों का कर्त्तव्य है कि वे रूढ़ियों के साथ न जीते रहें। नारी को न पैर की जूती मानें, न भोगकर छोड़ने योग्य दौना मानें। अहो पुरुषो! आपकी जन्मदात्री जननी पैर की जूती कैसे हो सकती है? वह आपके कुल-वृद्धि का कारण है। नारी भोगने योग्य झूठा दौना मात्र कैसे है? धर्म, संस्कृति के संवर्धन व संरक्षण में नारी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे समाप्त नहीं किया जा सकता। महापुरुषों को जन्म देने वाली नारी ही थी, जिसे तीर्थंकर, भगवान्, चक्री, नारायण, बलभद्र, नारद, रुद्रादि महापुरुषों को जन्म देने का अवसर प्राप्त है, उसे तुच्छ कहना जननी का अपमान है। मत करो जननी का अपमान, स्त्रियों के साथ किया गया अशुभ व्यवहार संस्कृति के पतन का कारण बनेगा। स्त्री की सीमा है, उस सीमा, मर्यादा में उसका जीवन है, उसमें उसको जीने का पूर्ण अधिकार है। पुरुष और नारी दोनों के संयोग से सम्पूर्ण लोक-व्यवहार की व्यवस्था बन रही है, नर उत्सर्गक है तो नारी संग्रहणक, दोनों के नियोग से मानव जाति जीवित है।

## 183 - Women are responsible for advancement of culture

To kill a woman on the basis of gender discrimination is not humanity; this has not been preached by any great personage. Considering woman as an object of enjoyment and ill-treat her is killing humanity; it is a deadly blow on the culture. Is she not a living-being? Why such ill-treatment? The preaching of cruel people does not comprise right doctrine. Educated generation of today should not accept the outdated and perverse thoughts. Do not consider woman as your slipper or a use-and-throw item. O men? How can you consider your mother your slipper? She has provided you your progeny. How can a woman be a use-and-throw item? You cannot overlook her immense contribution in advancement and protection of the dharma and culture. To call a woman an inferior being is disrespecting the one who has given birth to great personages including Lord Jina *(Tīrthaṃkara)*, gods, *cakrī, nārāyaṇa, balabhadra, nārada* and *rurdra.* Do not

PREVIEW ONLY

dishonour your mother; ill-treatment of women will result in destruction of the culture. Woman has her limitations; she has every right to live an honourable life within her own limitations. The world-system depends on both, the man and the woman. The man is the ejector and the woman the aggregator, and the human race persists on both.

विचार
THE THOUGHTS

## १८४. भगवान् आदिनाथ ने भी शिक्षा दी नारी को

तीर्थंकर ऋषभदेव ने युग के प्रारम्भ में ही नारियों के अधिकार को सुरक्षित रखा था। उन्होंने जैसे पुत्रों को अनेक विद्याओं की शिक्षा प्रदान की थी तो उसी प्रकार अपनी दोनों पुत्रियों को भी शिक्षा प्रदान की। ब्राह्मी को शब्द वर्ण की शिक्षा प्रदान की। संसार से विरक्त होकर जब प्रभु ने जिन दीक्षा को धारण किया और केवलज्ञान को प्राप्त किया तब भगवान् आदिनाथ स्वामी के समवशरण सभा की रचना सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने की। उनकी धर्म सभा का नाम ही समवशरण सभा है– सम्पूर्ण प्राणियों को समान स्थान जहाँ दिया जाता है उस सभा का नाम ही समवशरण है। पशु–पक्षी, मानव, देवादि भेदभाव किए बिना सम्पूर्ण प्राणीगण भगवान् तीर्थंकर देव की धर्म सभा में विराजते हैं। वहाँ स्त्रियाँ भी जाती हैं, नारियों का स्थान भी समवशरण में स्वतंत्र होता है, उसी में आर्या, आर्यिकायें भी होती हैं। तीर्थ की साक्षी में उनकी ही पुत्रियों (ब्राह्मी और सुन्दरी) ने आर्यिकाव्रत को धारण किया था। प्रभु आदिनाथ स्वामी ने स्त्री शिक्षा एवं स्त्री पर्याय योग्य सजातित्व के लिए स्त्री दीक्षा का भी व्याख्यान किया। अर्हत् दर्शन में स्त्रियों को हेय दृष्टि से, उपेक्षा भावना से नहीं देखा गया। उन्हें भी सुयोग्यता के अनुकूल मार्ग पर स्थापित किया गया। जहाँ हेयता दिखती है वहाँ श्रमण–श्रमणियों के चारित्र, संयम, शील पक्ष को लेकर दिखलाई गई। संयमियों को विषम–लिंगयों से मर्यादा में व्यवहार करना चाहिए, जिससे संयम–मार्ग दूषित न हो। यह द्वेष दृष्टि नहीं है, विवेक दृष्टि है, ऐसा सर्वत्र समझना।

## 184 - Lord Ādinātha too imparted education to women

*Tīrthaṃkara* Ṛṣabhadeva protected the rights of the women at the beginning of the present aeon. He imparted many kinds of education to his sons and, at the same time, imparted education to his two daughters. He imparted education of script to Brāhmī. After Lord Ṛṣabhadeva took to asceticism and as he attained omniscience *(kevalajñāna)* Kubera, on instructions from Saudharma Indra, erected a divine-pavilion for the grand-congregation *(samavaśaraṇa)*. As the name implies, in the grand-congregation every living-being present gets equal importance. All – animals including birds, human beings and celestial beings – present themselves in the grand-congregation of Lord Jina *(Tīrthaṃkara)*. Women, including nuns, too are present at a place earmarked for them in the grand-congregation. In the grand-congregation of Lord Ṛṣabhadeva, with the utterly pious place as witness, his two daughters – Brāhmī and Sundarī – took to asceticism. The woman ascetic is called an *Āryikā*. Lord Ṛṣabhadeva had preached not only the necessity of education for women but also the method of according the vow of asceticism appropriate for them. In the doctrine of the Lord *(Arhat)*, the womenfolk is neither damned nor belittled. Women too have been accorded an appropriate place. There are differences between the conduct, restraint and vows of the male and female ascetics. So

PREVIEW ONLY

as to remain unblemished, the observers of the vows should follow restraint while interacting with the opposite gender. This is not to be understood as aversion for the other gender but as a caution for the observance of proper discernment.

विचार
The Thoughts

## १८५. कारण-कार्य मीमांसा

लोक में विविध आयामों पर विचार करना चाहिए जिससे स्व-पर का विवेक वर्धमान हो, अन्य किसी के आश्रित न जीना पड़े। स्वतंत्रता का जीवन आनन्द का जीवन है, परतंत्रता का जीवन कष्ट का जीवन है। परतंत्र चाहे पशु हो, चाहे मानव, चाहे नारकी, सभी दुःखी ही हैं। परतंत्रता सुख नहीं, सुख तो स्वतंत्रता में ही है। यहाँ पर विशेष समझने की बात है, जैसे कि कोई व्यक्ति विशिष्ट धनी हो तो वह कहता है कि हमारा पुण्योदय है, विशिष्ट विद्वान्, चरित्रवान् हो तो वह भी पुण्योदय का परिणाम है। उसी प्रकार से स्वतंत्रता का जीवन पुण्योदय पर ही प्राप्त होता है, परतंत्रता नियम से पापोदय का परिणाम है। स्वयं परोक्ष-प्रमाणभूत नैगम नय में जाओ, तो आप पायेंगे कि वर्तमान की परतंत्रता हमारा कार्य है; भूत में हमने अन्य को परतंत्रित किया था, उसी का फलोदय यह वर्तमान है। बिना कारण के कार्य उत्पत्ति के दर्शन नहीं होते, इस सिद्धान्त का सदा ध्यान रखना चाहिए। जो लोग कार्य की उत्पत्ति को स्वीकारते हैं, परन्तु कारण नहीं मानते हैं अथवा कारण को समझ नहीं पाते अथवा भिन्न पुरुष परमात्मा विशेष को कारण कर्ताभूत बना लेते हैं, उन्हें लोक-व्यवहार समझ में नहीं आ पाया, परमार्थ वे क्या समझ पायेंगे?

जब कृषक धान्य को स्व-खेत में उगाता है तब पुरुषार्थ किसका होता है? कृषक का या अन्य का? वह बीज डालता है कि बिना बीज वपन के गेहूँ, चावल, चना, ज्वार, बाजरा, मक्का, मटर, आम, आदि फल उत्पन्न हो जायेंगे? फिर वही-वही बीज क्यों? पुनः किसी भी बीज से कोई भी धान्य व फल उत्पन्न हो जायेगा। अरे मित्र! बकरे के माध्यम से बकरा ही जन्म लेता है, सिंह जन्म नहीं ले लेगा। सिंह के माध्यम से सिंह ही जन्म लेता है, हाथी नहीं; हाथी से हाथी का ही जन्म होगा मनुष्य का नहीं; मनुष्य से मनुष्य का ही जन्म होगा, हाथी का नहीं। हाथी की उत्पत्ति के लिए मादा हाथी (हथनी) ही चाहिए मनुष्यनी नहीं। मछली से मछली का ही जन्म होता है, मनुष्य का नहीं। वह भी नियत स्थान से अपत्य जन्म लेता है अन्य-अन्य अंग-उपांगों से जन्म नहीं होता। प्रत्येक कार्य के लिए स्वकारण-कार्य की व्याप्ति घटित होना चाहिए, इसमें भगवान् व चमत्कार कार्य नहीं कर पायेंगे, थोड़ा विवेकपूर्वक विचार तो करो।

समझदार पढ़े-लिखे लोगों को तत्त्व का निर्णय सम्यक् करने की समतापूर्वक क्षमता लानी चाहिए। किसने क्या लिखा, क्या कहाँ कहा? यह तो समझना ही चाहिए। जीवन चमत्कारों पर नहीं चलता, जीवन वस्तु के सत्यार्थ वस्तुत्व पर ही चलता है। समझदारों को सर्वप्रथम कारण-कार्य को विशेष रूप से समझना चाहिए। भिन्न कारण से भिन्न कार्य की सिद्धि नहीं होती। जिस कार्य के लिए जो कारण सम्यक् है, वही करना चाहिए। अन्य कारण से अन्य कार्य नहीं होते और बिना कारण के भी कार्य नहीं होते। कभी कोई प्रयास करे स्व विचारों में कि कारण के बिना कार्य की सिद्धि हो तो ऐसा कभी न हुआ, न होगा। जब कारण-कार्य मीमांसा सम्यक् है तो फिर अन्य को कर्ता बनाकर उपस्थित करना तो

PREVIEW ONLY

स्वयं की कमजोरी है, स्वकीय की भूल है, साथ ही अज्ञानता की प्रचण्डता है। स्वयं एक बार शान्त चित्त से बैठकर एकान्त में जाकर ही विचार कर लो, जब वस्तु का परिणमन निमित्त-उपादानभूत स्वाधीन दृष्टिगोचर हो रहा है, फिर भी हम अपनी दृष्टि को बंद किये बैठे हैं। अन्य कृत अपने सुख व दु:ख स्वीकार कर रहे हैं। स्वकीय स्वाधीनता पर किंचित् भी लक्ष्य नहीं है। जगत् कर्तावादियों के प्रमाण में आत्म-स्वाधीनता को पूर्ण भुला चुका है।

## 185 - Reflection on the cause and effect relationship

To attain the power of discrimination between the self and the others and to live independently, we should reflect on various aspects of objects. Independence bestows happiness; dependence bestows misery. Whether for animals or denizens of hell, being dependent is miserable. Happiness lies only in independence. If someone is rich, we say that it is due to the fruition of his past meritorious karmas; if someone is particularly wise or observes good conduct, again we says that all this is due to the fruition of his past meritorious karmas. In the same way, independence in life is obtained due to the past meritorious karmas, and dependence, as a rule, due to the past evil karmas. Viewed from the indirect *(parokṣa)* figurative *(naigama)* standpoint *(naya)*, our dependence in the present is the result *(kārya)* of our past deed – we must have enslaved someone in the past and that act has come to fruition in the present. Remember always, the effect *(kārya)* does not get accomplished without the availability of the cause *(kāraṇa)*. Those who accept the effect *(kārya)* but either fail to see or understand the cause *(kāraṇa)*, or see an entity like the supreme-soul *(paramātmā)* as the doer *(kartā),* fail to appreciate even the worldly process; how can they appreciate the spiritual process?

When a farmer grows the food grain in his field, who is the doer; the farmer or someone else? Does he sow the seeds or does he get wheat, rice, gram, sorghum, millet, corn, peas and mango without sowing the seeds? Again, why does he sow the particular seeds for the desired crop? O friend! A goat will have a goat as its offspring, not a lion. The lion will give birth to a lion not an elephant, the elephant to an elephant not a human, and the human to a human not an elephant. Only a female elephant, not a woman, can give birth to an elephant. A fish, not a woman, will give birth to a fish. The offspring takes birth from a fixed part of the body, not any other part. Think with discrimination: for every effect *(kārya)* there should be a corresponding infallible cause *(kāraṇa)*; no supreme-soul *(paramātmā)* is going to come to perform some magic. Thoughtful and educated men should develop the ability to take right decisions based on the reality. Understand what has been written and said. Life does not rest on miracles; it rests on the real nature of the objects *(vastutva)*.

Intelligent men should particularly understand the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* relationship. A cause *(kāraṇa)* does not produce an effect *(kārya)* that is altogether different from their relationship. Use an appropriate cause *(kāraṇa)* to get the desired effect *(kārya)*. Inappropriate cause *(kāraṇa)* does not produce the desired effect *(kārya),* and without cause *(kāraṇa)* there is no effect *(kārya)*. This rule has never been contravened in the past and will not get contravened in the future. When the relationship between the cause *(kāraṇa)* and the effect *(kārya)* is sound, it is your weakness to attribute the accomplishment of work to someone else. It is a mistake and reflects grave

PREVIEW ONLY

ignorance on your part. Think in solitude and peacefully; when the transformation in an object is clearly visible to be dependent on the internal substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* and the external instrumental-cause *(nimitta-kāraṇa)*, we are still keeping our eyes shut. We are accepting others as the doers *(kartā)* of our happiness and misery. We have no idea of our own independence. Putting faith in the philosophy of an external doer *(kartā)* of the world, we have dislodged wholly our own independence.

विचार
The Thoughts

## १८६. आस्था, भक्ति की भाषा भिन्न

आस्था के विषय को आस्था रूप देखें और वस्तु व्यवस्था को वस्तु व्यवस्था रूप देखें। जैसे किसी पुरुष विशेष ने कोई अच्छा कार्य किया और उसी समय कोई सम्माननीय व्यक्ति पधार गया। उन्होंने पृच्छना की– 'आपने इतना अच्छा काम कर लिया स्व-पुरुषार्थ से।' तब कार्य करने वाला आदर-पूर्वक कहता है– 'यह जो कुछ भी कार्य दिख रहा है वह सब आपने ही तो पूर्ण किया है, हम तुच्छ प्राणी क्या कर सकते हैं?' 'आप जैसे महापुरुषों ने इसे पूर्ण किया है', यह सत्य की भाषा नहीं है, यह तो आस्था, भक्ति की भाषा है। इसमें श्रद्धा का उद्घाटन तो होता है, परन्तु कार्य की सत्यता पर आच्छादन होता है, इसे भी समझो। भक्ति एवं बहुमान की भाषा लोक-व्यवहार में मर्यादा के लिए है, सम्मान के लिए है।

इस बात को वह भी समझता है जो कह रहा है कि कार्य प्रभु कृपा से हुआ है। उसे बोध है कि हमने पुरुषार्थ किया है तथा जिसको कर्ता बना रहे हैं वह भी जानता है कि कार्य तो क्रिया करने वाले ने ही किया है, मात्र हमारा बहुमान कर रहा है। विनयवान् पुरुष है, अहंकार भाव नहीं आए; इसलिए अन्य पुरुष को श्रेय दे रहा है। यथार्थ में श्रेय उसी को जाता है जिसने कर्म किया, जिससे कार्य पूर्णता को प्राप्त हुआ है, जिसे क्रिया का बोध है। जिसने क्रिया की है वह यथार्थ में कर्म का कर्ता है, अन्य कोई कर्तापन को प्राप्त नहीं होता, यह अटल सिद्धान्त है। यदि भिन्न कर्ता उत्पन्न हो गया जो चाक्षुष भी नहीं है तो कारण-कार्य व्यवस्था भंग हो जायेगी।

## 186 - The language of faith and devotion is different

The nature of an object in the language of devotion may be different from its actual nature. A dignitary arrives at the place of a man who has just done some good work and compliments him, "By your own effort you have done so well." The man responds, "Whatever has been done is due to you only, sir; what can we lowly men do? Great men like you make it happen." Now, this is not true; it is the language of devotion. This language reveals the man's devotion but hinders the truth. The language of devotion is used in worldly mannerism to show reverence.

Even the person who says that the work has been performed by God understands this fact. The person who has done the work knows exactly who has done the work, and the person whom he is portraying as the doer of the work too knows that he has not done the work. The utterance of the actual doer of the work is just a mark of respect for him. Further, out of humility he is using this language. Actually, the doer of the work is the man who has put effort and performed the activity. The performer of the activity is the

PREVIEW ONLY

real doer *(kartā)* and no one else is the doer; this is an incontrovertible doctrine. If you make a different doer *(kartā)* who is not even seen, the system of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* relationship will collapse.

विचार
THE THOUGHTS

## १८७. अंतरंग, बहिरंग कारण से कर्म-बन्ध

बाह्य कारण व अंतरंग कारण के भेद से दो प्रकार के कारण समझना चाहिए। अन्तरंग कारण उपादान कारण है, बहिरंग कारण निमित्त कारण है। जो कारण स्वयं ही कार्य रूप परिणत होते हैं वही उपादान कारण हैं। बहिरंग कारण बाह्य निमित्त हैं जो कार्य रूप तो परिणत नहीं होता, परन्तु कार्य रूप परिणत होने का कारण अवश्य बनता है, बिना उसके भी कार्य असंभव है। कारण-कार्य मीमांसा पर जिसका विचार प्रशस्त है वह व्यक्ति कभी भी किसी जीव को अपने सुख-दु:ख का कर्ता नहीं बनायेगा, न किसी को दोष देगा, स्वयं के कर्म विपाक पर विचार करेगा। जगति के प्रत्येक जीव को कर्म सिद्धान्त का बोध होना चाहिए। यह विश्वास होना चाहिए कि हमारे सुख-दु:ख में किसी का कोई हाथ नहीं है, अपितु हमारा ही कर्म विपाक है। जो पूर्व में कर्म बाँधा था, वही तो उदय में आया है। अन्य कोई नहीं अन्य का कर्ता, हर्ता, रक्षक। अणु-अणु स्वाधीन है। ऐसा कर्म न करें जो कर्म बन्ध का नोकर्म बने। बिना नोकर्म के द्रव्य-कर्म बन्ध नहीं होता और द्रव्य-कर्म, नोकर्म का बन्धने का अन्तरंग उपादान तो भाव-कर्म ही है। जीव स्वभाव कर्मों को सम्भाल ले तो जड़ कर्म बन्ध कभी नहीं हो सकता। कर्म बलात् किसी भी जीव के लिए बन्ध को प्राप्त नहीं होते, जीव के राग-द्वेष परिणाम, मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के कारण आस्रव बन्ध होता है। पाँचों प्रत्ययों से जीव आत्म-रक्षा कर ले तो कर्म-बन्ध कभी नहीं होगा, वह पूर्ण मुक्त हो जायेगा। उसके लिए दृढ़ संकल्प शक्ति की आवश्यकता है। मोक्ष-तत्त्व के प्रति दृढ़ आस्था की अनिवार्यता है, बिना मोक्ष-तत्त्व की दृढ़ आस्था के जीव कर्म-बन्ध मुक्त होने का विचार ही नहीं कर सकता। संसार के दु:खों से भीरुता तथा मोक्ष सुख की आस्था जीव को बन्ध प्रत्ययों से सम्यक् पुरुषार्थपूर्वक बचा सकती है, अन्य कोई मोक्ष पुरुषार्थ के लिए उपाय नहीं है।

## 187 - Bondage of the karmas is due to internal and external causes

The causes *(kāraṇa)* are of two kinds: external and internal. Internal cause is the substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* and external cause is the instrumental-cause *(nimitta-kāraṇa).* The substantive-cause is the one that gets transformed into the effect *(kārya)*. The instrumental-cause does not get transformed into the effect *(kārya)* but is an aid to its performance; without the instrumental-cause the effect *(kārya)* does not get to consummation. The man with sound understanding of the system of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* relationship will not make anyone else the doer *(kartā)* of his happiness and misery; he will not blame anyone else but reflect on the fruition of his own karmas. Every man should understand the doctrine of the karmas. He should believe firmly that no outside person is responsible for his happiness and misery and that it is all due to the fruition of his own karmas. Whatever karmas he had bound in the past have now come to fruition. No one else is the doer or the abductor or the saviour. Each atom is independent. Don't engage in any activity that results in bondage of the karmas and the

PREVIEW ONLY

quasi-karmas *(nokarma)*. Without the quasi-karmas *(nokarma)*, there is no bondage of the material-karmas *(dravya karma)*; however, the substantive-cause *(upādāna kāraṇa)* of the above two kinds of bondage is the psychic-karmas *(bhāva karma)*, If the man takes care of his natural tendencies – the psychic-karmas *(bhāva karma)* – no bondage of the inanimate karmas can take place. Karmas do not, by themselves, come to get bound with the soul; only when the soul engenders dispositions of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*, and when it is exposed to wrong-belief *(mithyātva)*, non-abstinence *(avrata)*, negligence *(pramāda)*, passions *(kaṣāya)* and activities *(yoga)* the bondage of the karmas takes place. If the soul protects itself from the above mentioned five causes of bondage of the karmas, it can become fully liberated. This requires great determination. It also requires great faith on the reality of liberation *(mokṣa);* without this faith, the soul will never think of getting rid of the karmas. The fear of worldly-suffering and the faith on the reality of liberation *(mokṣa)* can prompt the man to put right effort on the aforesaid five causes of bondage; no other means can lead the man to the state of liberation.

विचार
**The Thoughts**

## १८८. कारण-कार्य में निर्वाण व्यवस्था

क्षणिक इन्द्रियों के सुखों से ममत्व हटाना पड़ेगा तब मोक्ष मार्ग पर सम्यक् रूप से चलने का विचार जीव कर सकेगा। उभय भावों में झूलने वाला मोक्ष मार्ग का भूतार्थ पुरुषार्थ नहीं कर पायेगा, पग-पग पर वह स्व-सम्यक् मार्ग से पतित होता रहेगा। अभिसन्धि की नियता चाहिए मोक्ष पथिक के लिए। स्वचारित्र में दृढ़ता के बिना व्यक्ति आत्म विकास नहीं कर सकता। चारित्र की निर्मलता कारण है, समाधि कार्य है। रत्नत्रयधारी की वही समाधि जब कारण बनती है, तब निर्वाण कार्यभूत फलित होता है। कारण-कार्य मीमांसा में भिन्न कर्ता निमित्त तक ही सीमित है, भिन्न पुरुष व परमात्मा उपादान कर्ता कारण नहीं बनता। स्व-उपादान की योग्यता ही विशिष्ट है, इस सत्यार्थ तत्त्व पर सम्पूर्ण विज्ञ पुरुषों को बार-बार विचार करना चाहिए और पर की पराधीनता से सदा-सदा के लिए आत्मरक्षा करनी चाहिए। स्वात्मदेव की शक्ति को सम्यक्-रूप से समझना चाहिए तथा तदानुकूल धारणा एवं आचरण करना चाहिए। पर का पराधीन आलम्बन शीघ्र ही बुद्धिपूर्वक छोड़ देना चाहिए तथा कल्पित बातों से स्व-विश्वास को पृथक् कर लेना चाहिए। सम्पूर्ण लोक कार्य-कारण दृष्टि पर आलम्बित है, बिना कारण के कार्य की सिद्धि किसी भी क्षेत्र में, काल में नहीं होती।

कारण-कार्य मीमांसा में कार्य एवं कारण दोनों पर गम्भीर विचार करने की आवश्यकता है। बिना कारण के कार्य नहीं होता यह बात तो आपने समझ ली। अन्तरंग, बहिरंग कारण भी विचार कर लिए, कार्य उपादान में ही होता है। अन्तरंग-बहिरंग कारणों, निमित्तों, साधनों के नियोग से कार्य होता दिख रहा है, परन्तु कार्य का मूल कर्ता कौन है, जो कारणों के माध्यम से कार्य उत्पन्न करा रहा है, इस बात पर भी तो विचार करना चाहिए। लोक में तो कर्ता ईश्वर, परमात्मा को स्वीकार किया है, परन्तु सिद्धान्त व्याकरण से कर्ता कौन हो सकता है, इन विषयों पर पुनः-पुनः विचार करने की अति आवश्यकता है।

PREVIEW ONLY

## 188 - Liberation in the scheme of cause and effect

Only the man who gets rid of attraction towards transient sensual-pleasures will be able to tread, in the right manner, the path to liberation. The efforts of the man who remains engaged in both – worldly and spiritual – dispositions will not be able to truthfully tread the path to liberation; he will get astray every now and then. The man treading the path to liberation should have strength of determination. No self-development is possible for the man who lacks determination to adopt right conduct. Pristine conduct is the cause *(kāraṇa)* and supreme-meditation *(samādhi)* is the effect *(kārya)*. When supreme-meditation *(samādhi)* of the man possessing the three-jewels *(ratnatraya)* becomes the cause *(kāraṇa)*, the attainment of liberation *(niravāṇa, mokṣa)* is the effect *(kārya)*. In the scheme of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)*, the external doer can only be an instrumental-doer *(nimitta-kartā)*; a different man or God can never be a substantive-cause or doer *(upādāna-kartā)*. Own substantive-cause is supreme; this should be understood very clearly by all intellectuals and they should get rid of dependence on others for all times. Understand the power of own soul and mould your thoughts and conduct accordingly. Do not put faith on imaginary suggestions. Whole world operates under the scheme of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya);* without availability of the cause, no work gets consummated at any place or time.

Reflect deeply on both, the cause *(kāraṇa)* and the effect *(kārya)*. You have already understood that the work or effect *(kārya)* does not get consummated without the availability of the cause *(kāraṇa)*. You also know now the meaning of the internal substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* and the external instrumental-cause *(nimitta-kāraṇa),* and that the effect *(kārya)* takes place only in the substance *(upādāna)*. It appears that the work gets done by the internal as well as the external causes but think about the true cause of the effect *(kārya)*. The world makes God *(paramātmā, īśvara)* as the doer *(kartā)* of things but think again and again, taking help from the doctrine, who can be the real doer *(kartā)* of things.

विचार
THE THOUGHTS

## १८९. परमात्मा पुनः जन्म नहीं लेता

सर्वप्रथम यह समझो कि परमात्मा सर्व कर्म मुक्त है, वह पुनः कर्म युक्त नहीं होगा। जो बीज जल जाता है वह कभी पुनः अंकुरित नहीं होता। अंकुर जो दिखते हैं, अन्य बीज के अंकुर हैं। दग्ध बीज नहीं उगता, उसी प्रकार परमात्मा अशरीरी सिद्ध भगवान् पुनः शरीर युक्त होकर पुनः संसार में आकर कर्मों से लिप्त नहीं होते। स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाला कौन समझदार पुरुष मलिन वस्त्रों को धारण करेगा? अर्थात् कोई भी नहीं करेगा। पुनः-पुनः परमात्मा शरीरों को धारण नहीं करता, वह जन्म-जरा-मृत्यु से शून्य है, अनन्त गुणों से अशून्य है।

सर्वव्यापी होने पर भी सर्व जगत् कर्ता नहीं हैं। सर्वव्यापी का अर्थ समझो; जब भगवान् केवली समुद्घात करते हैं तब उनके आत्म-प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं इसलिए वे सर्वव्यापी हैं, परन्तु सर्वकर्ता तो किसी भी प्रकार से नहीं होते। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र, स्वाधीन है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यभूत परिणमन नहीं करता। अणु-अणु स्वाधीन है। अणु-अणुओं का संघात जब होता है, तब स्कन्ध की उत्पत्ति होती है।

PREVIEW ONLY

## 189 - God *(paramātmā)* does not take birth once again

Understand first that the supreme-soul or God *(paramātmā)* is rid of all karmas and does not get mired with the karmas once again. A burnt seed never gets sprouted. The sprouts that you see belong to other seeds. As the burnt seed does not sprout, in the same way, the bodyless, supreme-soul or God *(paramātmā,* the *Siddha)* does not get mired with the karmas once again and takes birth in the world. Will any intelligent man wearing clean clothes adorn dirty clothes? The supreme-soul or God *(paramātmā)* does not adopt worldly bodies again and again; he is rid of births and deaths but is endowed with infinite qualities.

Although the supreme-soul or God *(paramātmā)* is omnipresent, he is not the doer *(kartā)* of the world. Understand the meaning of the word omnipresent. The Omniscient *(kevalī)*, just prior to attaining liberation expands the spatial units of his soul, without wholly discarding his body, to fill up the entire universe and contracts it back to the size of the body; this is called *kevalī samudghāta*. And, because of this God *(paramātmā)* is called omnipresent. Still, in no sense can he be called the doer *(kartā)* of the world. The transformation that takes place in every substance *(dravya)* is wholly independent. One substance can never become another substance. Every atom *(aṇu)* is independent. When different atoms unite, they gives rise to the molecules *(skandha)*.

विचार
THE THOUGHTS

## १९०. वस्तु का अन्य कर्ता नहीं

जितने भी पुद्‌गलमय चाक्षुष व अचाक्षुष द्रव्य सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं वे सब कारण-कार्य परमाणु की व्यवस्था है, अन्य किसी भी कल्पित परभूत परमात्मा की व्यवस्था नहीं है। प्रत्येक क्रिया का कर्ता स्वतन्त्र होता है। कर्ता के बिना कार्य नहीं होता यह सत्य है, परन्तु प्रत्येक कार्य के लिए भिन्न ही कर्ता है, यह भी नियामक नहीं है। निमित्त कर्ता तथा उपादान कर्ता के भेद से कर्ता को समझो। असमानजातीय पर्यायों के परिणमन में व्यवहार नय से घट, पट, रथ, भवन, वाहन के कर्ता भिन्न पुरुष दिखते हैं, वहाँ भी परमात्मा का कर्तापन दृष्टिगोचर नहीं होता। वहाँ पुरुष विशेष की क्रिया दृष्टिगोचर नहीं होती है, इसलिए सामान्य जीव ही कर्ता है। निमित्तभूत परिणाम-परिणामी भाव भी प्रत्येक द्रव्य का द्रव्यत्व पूर्ण स्वतन्त्र ही है। अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति नहीं है, यह तो व्यवहार नय से जीव व पुद्‌गल के संयोग की बात है। परमार्थ से प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वहेतुक है। जो लोक में कर्ता भाव है वह जीव के स्व-विवेक से स्व-कार्यवश, जो पर-पुद्‌गलादि पर कर्तापन है वह उपचार का कर्तापन है जैसे कि धान्य में भोजन बनाने की स्व-योग्यता है, उस योग्यता की उत्पत्ति अन्य भिन्न पुरुषार्थ से हुई क्या? वह जो कर्तापन आ रहा है अथवा है वह बाह्य निमित्त कर्ता है। उपादान कर्ता भोजन का यदि कोई है तो वह भोज्य वस्तु है, अन्य में अन्य का उपादान कर्तापन नहीं आता, उपादान कर्तापन वस्तु का स्व-वस्तुत्व में ही आता है। स्व-वस्तु के अन्दर परिणाम-परिणामी भाव है। अन्य का चतुष्टय अन्य वस्तुभूत नहीं हो सकता। घट मिट्‌टी से ही निर्मित होता है, घट का कर्ता अन्य नहीं। उपादान कर्ता वस्तु का अन्तरंग कर्ता वस्तु ही है, कोई अन्य कर्ता नहीं है। उपादान कारक स्वयं ही द्रव्य है। मिट्‌टी ने, मिट्‌टी को, मिट्‌टी से, मिट्‌टी के लिए, मिट्‌टी में, घट निर्मित किया है।

PREVIEW ONLY

## 190 - There is no external doer *(kartā)* of the object *(vastu)*

All physical substances, seen and unseen, in the whole of the universe fall under the scheme of the atoms *(aṇu)* that become the cause *(kāraṇa)* and the effect *(kārya)*; these substances do not fall under the scheme of any supreme-soul or God *(paramātmā)*. The doer *(kartā)* of every activity is independent. It is true that the activity does not take place with the doer *(kartā)*; however, to attribute every activity to an external doer *(kartā)* is not a rule. Understand the logic of the doer *(kartā)* in terms of the instrumental-doer *(nimitta-kartā)* and the substantive-doer *(upādāna-kartā)*. In transformation of modes *(paryāya)* that comprise different substances – like the pot, board, chariot, building or vehicle – we conventionally see external men as the doers *(kartā)*; there too no supreme-soul or God *(paramātmā)* is to be seen. Ordinary man seems to be the doer *(kartā)*. Although transformation takes place in a substance on the availability of the external causes, the substance-nature *(dravyatva)* of every substance *(dravya)* is absolutely independent. No substance *(dravya)* is produced by any other substance; this is said in regard to the soul-substance *(jīva)* and the physical-matter *(pudgala)* from conventional point-of-view. From the spiritual point-of-view, the transformation in every substance depends on itself. The attribution of the doer *(kartā)* to the man in the world depends on his discretion and need; the attribution of the doer *(kartā)* to the physical-matter *(pudgala)* is conventional – like the grains have inherent attribute of getting converted into food on cooking and this attribute has not been imparted by the effort of any external man. The man is the doer *(kartā)* only as an external instrumental-doer *(nimitta-kartā)*. The internal substantive-doer *(upādāna-kartā)* of the food is the substance of grain. The internal substantive-doer *(upādāna-kartā)* in an object is present in the object itself. The object in itself has the attributes of transformation and transformer. The four-fold attributes – substance *(dravya)*, space *(kṣetra)*, time *(kāla)* and nature or condition *(bhāva)* – of a substance cannot get transformed into those of another substance. The doer *(kartā)* of the pot is clay only, no one else. Thus, the internal substantive-doer *(upādāna-kartā)* is the object itself, no one else. The clay-pot has been made by the clay, of the clay, from the clay, for the clay and in the clay.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## १९१. अनेकान्त-स्याद्वाद पद्धति का विवेचन

अभिन्न षट्कारक व्यवस्था द्रव्य में एकत्व भूत है, उपादान में अभिन्न षट्कारक का प्रयोग होता है। निमित्त दृष्टि से देखने पर भिन्न कारक का प्रयोग होता है, उभय कारक दृष्टि सम्यक् है, व्यवहार एवं निश्चय से वस्तु व्यवस्था समझना चाहिए। एकान्त से वस्तु व्यवस्था ही नहीं होगी, इसलिए स्याद्वाद शासन में अनेकान्त की व्यवस्था ही श्रेष्ठ है वही सम्यक् है। बिना अनेकान्त दृष्टि के वस्तु के यथार्थ तत्त्व का निर्णय नहीं कर पाओगे। लोक में जो भी वस्तु व्यवस्था है वह सब अनेकान्त एवं सापेक्षता के सिद्धान्तों पर ही आलम्बित है। अनेकान्त से रिक्त संसार में कोई भी वस्तु नहीं है। सर्व विश्व की विडम्बना को क्षण मात्र में समाप्त कराने की क्षमता यदि किसी में है, तो वह स्याद्वाद और अनेकान्त में ही है, अन्य एकान्तों में नहीं है। कोई विज्ञ ज्ञाता अनेकान्त-स्याद्वाद पर विचार कर यदि कहे कि यह तो निर्णय-शून्य सिद्धान्त है तो उसका यह विचार पूर्ण असम्यक् है। स्याद्वाद-अनेकान्त

निर्णय-शून्यता की दृष्टि नहीं है, अपितु अनेक निर्णय-हीन तत्त्वों का निर्णय अनेकान्त-स्याद्वाद के माध्यम से होता है। अनेकान्त धर्म इस बात का बोध कराता है कि वस्तु के अन्दर अन्य धर्म भी हैं। वस्तु का मात्र एक ही धर्म नहीं है, और भी धर्म वस्तु में विद्यमान हैं। स्याद्वाद उन धर्मों के नय योग से एवं प्रमाण से युक्त तत्त्व का प्ररूपण करता है जो कि पूर्ण सम्यक् है। ऐसा भी है, ऐसा भी है; इस प्रकार की बात निर्णय शून्य नहीं है, सम्यक् नय एक ही धर्म की दृष्टि से बोलता है, वह एवकार युक्त है। एवकार से युक्त नय अपने विषय की नियता का ज्ञायक है। स्वोपदान में प्रत्येक द्रव्य एक समय में अनन्त धर्म युक्त शक्ति रूप से है। जीव के उपयोग में एक समय में एक ही धर्म आयेगा। साथ-ही एक धर्म (गुण) अन्य धर्म रूप परिणत नहीं होता, स्व-स्वगुण की अपेक्षा ही द्रव्य तद्‌गुण रूप है, अन्य गुण अपेक्षा द्रव्य तद्‌गुणभूत नहीं है। यदि आप सम्बन्ध अपेक्षा भी वस्तु तत्त्व को देखेंगे तो एक व्यक्ति में नाना व्यक्तियों की अपेक्षा से अनेक सम्बन्ध दृष्टिगोचर होते हैं। स्वयं स्वबुद्धि से निर्णय करो कि ये सम्पूर्ण सम्बन्ध एवं धर्म कल्पना मात्र हैं या नय सापेक्ष यथार्थ हैं तथा स्वभाव सापेक्ष सत्य हैं। इसलिए किसी भी वस्तु तत्त्व का उपहास व निषेध करने के पूर्व शान्ति से, स्वतन्त्र प्रज्ञा से पृच्छना करके जीव विचार करे कि स्याद्वाद नय प्रमाण दृष्टि संशयवाद है कि विश्व का सत्यार्थ बोध कराने वाला सत्यार्थवाद है।

जिन्होंने स्याद्वाद-अनेकान्त सिद्धान्त पर बिना सम्यक् विचार किये भोले प्राणियों के मध्य अपने कुविचार प्रवाहित किये हैं उनसे देश की अखण्डता पर कुप्रभाव अवश्य पड़ा, साम्प्रदायिक विद्वेष खड़ा हुआ। समझदार विद्वानों ने, राजनेताओं ने एवं विदेशी विद्वानों ने स्याद्वाद-अनेकान्त की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और कहा कि स्याद्वाद विद्या से अनभिज्ञ विद्वानों ने जो स्याद्वाद-अनेकान्तवाद की आलोचना की है वे उसे समझ ही नहीं पाए हैं।

## 191 - Interpretation of the system of non-absolutism and conditional-predication

Non-distinct *(abhinna*) six-fold factors-of-action – *ṣaṭkāraka* – system is one with the substance; this is employed in the internal-substance *(upādāna).* Distinct *(bhinna*) six-fold factors-of-action system is employed in the external-substance *(nimitta).* The standpoint that considers both, non-distinct and distinct – alternatively, the empirical *(vyavahāra)* and the real or transcendental *(niścaya)* – standpoints is right. Absolutistic *(ekānta)* standpoint fails to establish the true nature of objects. Therefore, the doctrine of conditional-predication *(syādvāda)* that sees the object through the lens of non-absolutism *(anekāntavāda)* is laudable. You will not be able to determine the true nature of the object without accepting its non-absolutistic *(anekānta)* nature. True nature of objects in the world can only be understood using the doctrine of non-absolutism *(anekāntavāda)* and relativity. No object in the world is rid of non-absolutistic *(anekānta)* nature. Only the doctrines of conditional-predication *(syādvāda)* and non-absolutism *(anekāntavāda)* have the capability to solve the riddles of worldly processes; no absolutistic *(ekānta)* doctrine can do this. If any knowledgeable thinker says that the doctrines of conditional-predication and non-absolutism lack definitiveness, he is utterly wrong. These doctrines do not lack definitiveness; in fact these help in solving intractable problems. The doctrine of non-absolutism *(anekāntavāda)* makes one realise that an object does not comprise a single attribute; it has other attributes too. The doctrine

PREVIEW ONLY

of conditional-predication *(syādvāda)* consolidates all standpoints *(naya)* and arrives at the valid-knowledge *(pramāṇa)* in regard to the reality. Statements that postulate that a particular object 'is like this too' and 'is like this too', do not lack definitiveness; the right standpoint *(naya)* mentions just one attribute but with definitiveness. It is definitive in regard to the stated particular respect. In respect of its internal-substance *(upādāna)* an object, at any time, inherently has infinite attributes. At a particular instant, only one attribute of the soul *(jīva)* is manifested. Moreover, one attribute *(guṇa)* does not get transformed into another attribute. In respect of a particular attribute, and not in respect of any other attribute, the object is said to be of that nature. We witness the same in regard to the relations of a man: when viewed from the standpoint of his different relatives, one man has many relationships. Are these relationships imaginary? No, these are relative truths. Therefore, before negating or ridiculing any description of the reality, think peacefully and intellectually. You will find that the doctrine of conditional-predication *(syādvāda),* together with the standpoints *(naya)* and the valid-knowledge *(pramāṇa),* does not promote probableness, instead it brings to the fore the truth about the nature of the world processes.

Those who have promulgated among gullible men their evil thoughts without reflecting seriously on the doctrines of conditional-predication *(syādvāda)* and non-absolutism *(anekāntavāda)* have certainly harmed the unity of the country; they have given rise to enmity between different sects. Besides condemning the unwitting men who have criticized the doctrines of conditional-predication *(syādvāda)* and non-absolutism *(anekāntavāda)* due to their lack of understanding, many learned men in India and abroad and national leaders have praised these doctrines profusely.

विचार
THE THOUGHTS

## १९२. स्याद्वाद-अनेकान्त विद्या का विश्व में प्रयोग

स्याद्वाद-अनेकान्त सापेक्षता का सिद्धान्त जैन धर्म, जैन दर्शन की मौलिक एवं अलौकिक विद्या है। सर्व जगत् के प्राणियों को इसका सम्मान करना चाहिए और स्वीकार करना चाहिए। भाव हिंसा का त्याग, भाव अहिंसा का पालन, इसी विद्या से विश्व बन्धुता स्थापित होगी। अनेकान्त-स्याद्वाद सभी और सबकी बात सुनने एवं समझने को स्थान देता है। अपनी ही एकान्तिक बात को पूर्ण सत्य नहीं स्वीकारना चाहिए, सापेक्षता का ध्यान रखना चाहिए। यह नैतिक कर्त्तव्य, नैतिक धर्म है। अन्य के विचारों को समझे बिना किसी के सत्य-असत्य का निर्णय देना यह तो स्वप्रज्ञा की न्यूनता का ही बोधक है। विशाल हृदय बनाकर सर्व-जग संकर नाशक शंकर भाव को प्राप्त करना चाहिए। सम्पूर्ण विश्व के भौतिक, आध्यात्मिक संकटों के नाश का उपदेश ही तो शंकर है। वीतरागता युक्त आचार्य साधक ही है शंकराचार्य। परम दिगम्बर स्वयम्भू की साधना, स्याद्वाद-विद्या कौशल्य युक्त तत्त्व प्ररूपण में सिंहनाद करने वाला, अभद्रों को भद्रता प्रदान कराने वाला वर्धमान महावीर स्वामी का समन्तभद्र शासन जयवन्त हो। आचार्य समन्तभद्र स्वामी की 'आप्तमीमांसा' ग्रन्थ एवं उस पर आचार्य अकलंक स्वामी द्वारा रचित 'अष्टशती' टीका तथा आचार्य प्रवर विद्यानन्द स्वामी द्वारा रचित 'अष्टसहस्री' टीका जैसे ग्रन्थों को प्रत्येक न्याय विद्या अभ्यासी विद्वान् मनीषी छात्रों एवं सामान्य जनों को अपने स्वाध्याय का विषय बनाना चाहिए। इससे सत्यशासन के प्रति शुभ भावना बनेगी, प्रशस्त

PREVIEW ONLY

विचार उत्पन्न होंगे, अशुभ विचार किसी के प्रति उत्पन्न नहीं होंगे और स्व-पर हितार्थ सम्यक् पुरुषार्थ प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण विश्व में स्याद्वाद-अनेकान्त के सत्यवाद का जयनाद होगा। कुविचारों, मिथ्या भ्रान्तियों का अन्त होगा, सम्पूर्ण देश वात्सल्य की पवित्र गंगोत्री में निमग्न होगा, भारत का बच्चा-बच्चा स्याद्वाद-अनेकान्त से परिचित होगा, भारत देश की पहचान स्याद्वाद-अनेकान्त विद्या सम्पन्न नागरिकों के नाम से होगी। जन-जन के हृदय में सत्यार्थ-बोध प्राप्ति के पावन परिणाम होंगे, देश की अखण्डता सम्प्रदाय-शून्य होगी। देश का परिचय मात्र-मात्र भरतचक्री का भारत होगा।

देश के मार्गदर्शक का निर्णय गुणवत्ता पर हो, सम्प्रदाय तथा जातिता पर न हो। जो सापेक्षता के सिद्धान्त को समझता है वह राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के विकास को राष्ट्र का विकास मानता है, मानना ही चाहिए। भारतीय दर्शनों का गहन, गम्भीर अभ्यास और स्याद्वाद-अनेकान्त के सत्यार्थ को समझना चाहिए और इस विद्या का प्रचार करना चाहिए। भारत देश अपनी अध्यात्म एवं स्याद्वाद-अनेकान्त विद्या के बल पर ही विश्व-गुरुता को प्राप्त होगा, ऐसा नियत समझना चाहिए। स्याद्वाद-अनेकान्त दृष्टि आलाप पद्धति है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जीवन की पद्धति है। समीचीन जीवन इन्हीं पाँच सिद्धान्तों से जिया जा सकता है। श्रेष्ठ साधुता का जीवन अन्यत्र कहीं नहीं दिखता, यह सत्य ध्रुव-सत्य है, पक्ष-विमुक्त समीचीन सत्य है।

### 192 - The world should learn conditional-predication and non-absolutism

The doctrines of conditional-predication *(syādvāda)* and non-absolutism *(anekāntavāda)* are the original and divine learnings in the Jaina philosophy. Every living-being in the world should respect and accept these. Quitting of psychic-injury *(bhāva-hiṃsā)* and adoption of psychic-non-injury *(bhāva-ahiṃsā)* will establish brotherhood in the world. The doctrines of conditional-predication *(syādvāda)* and non-absolutism *(anekāntavāda)* provide the ability to listen to and understand everyone. Do not consider your absolutistic *(ekānta)* statement as wholly true; keep in mind the aspect of relativity. This is a moral responsibility and dharma. To declare the other person's standpoint as true or false without fully grasping it is an indicator of your own ignorance. Be large-hearted, get rid of all confusion and adopt beneficence (Śaṅkara). Beneficence means the preaching that casts away physical- and spiritual-hardships in the world. The preceptor who has conquered all attachment *(rāga)* is Śaṅkarācārya. Hail the reign of Lord Mahāvīra that brings all-round virtuousness! The reign is governed by the preaching of the self-enlightened *(svayambhū)* supreme-ascetic; thoroughly skilled, he expounds vehemently the doctrine of conditional-predication *(syādvāda)* and imparts nobility to even ignoble souls. Every scholar of the science-of-logic *(nyāya)* and even general student should study the sacred scriptures including *Ācārya* Samantabhadra's *Āptamīmāṃsā* and two commentaries on it – *Ācārya* Akalaṅka Svāmī's *Āṣṭaśatī* and *Ācārya* Vidyānanda Svāmī's *Āṣṭasahasrī*. This will engender laudable dispositions towards the reign of truth, virtuous thoughts will replace evil thoughts, right efforts for the well-being of self and others will begin, and promulgation of the doctrines of conditional-predication and non-absolutism will take place in the world. This will put an end to evil and misleading thoughts, and the whole country will bathe in the auspicious (river) Gaṅgotrī. Every child in India will get acquainted with the doctrines of conditional-predication and non-absolutism, and the country will be known as

PREVIEW ONLY

comprising people well-versed in these doctrines. Every citizen of the country will have auspicious longing for knowing the truth and the country will be unified, rid of all divisions due to sects. The country will get known as Bhārata; the country of the king-of-kings Bharata.

The leader of the country should be chosen on the basis of merit, not sect or caste. The leader who understand the principle of relativity (multiplicity) will strive for the development of every individual living in the country. All philosophies prevalent in India should be studied and understood deeply and the doctrines of conditional-predication and non-absolutism should be assimilated and propagated. It is certain that India can become world-guru only on the basis of its spiritual knowledge and the doctrines of conditional-predication and non-absolutism. The doctrines of conditional-predication and non-absolutism are the ways of expression. Non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(asteya, acaurya)*, celibacy *(brahmacarya)*, and non-possession *(aparigraha)* are the ways of living. Virtuous life can be led only on the basis of these five principles. Nowhere else can you witness the life of great nobility; this is the ultimate and unbiased truth.

विचार
THE THOUGHTS

## १९३. प्रत्येक वस्तु का परिणमन स्वतन्त्र

कर्ता क्रिया और कर्म में निहित रहता है। नैसर्गिक क्रिया, प्रायोगिक क्रिया, उभय क्रिया को देखकर कर्ता का निर्णय करना चाहिए। मेघों की ध्वनि, वायु की ध्वनि इनका जगत् में कोई कर्ता दृष्टिगोचर नहीं होता। अकृत्रिम वस्तुएँ, मेरु पर्वत, नन्दीश्वर जिनालय आदि का कोई कर्ता नहीं है। अनादि नित्य पर्यायें हैं तथा स्वयं जीव द्रव्य का एवं अन्य द्रव्यों का कोई भी कर्ता नहीं है, द्रव्यों का कोई भी कर्ता होता ही नहीं है। प्रत्येक द्रव्य का द्रव्यत्व अनादि नित्य ही है, द्रव्य दृष्टि से। जो अनित्यत्व है वह अर्थ पर्याय, व्यंजन पर्याय अपेक्षा से है। उत्पत्ति, व्यय, ध्रौव्य तीनों ही पर्यायें हैं। उत्पत्ति, व्यय गौण दृष्टि से द्रव्य नित्य ही है, सहज परिणमन द्रव्य का स्वभाव है। जो स्वभाविक पदार्थ हैं उनका कर्ता भिन्न पुरुष नहीं दिखने पर उन द्रव्यों को ईश्वर कृत मान लें क्या? नहीं, नहीं, नहीं; बिल्कुल नहीं। परमात्मा पर विश्वास बनाओ, भगवान् अवश्य ही होते हैं। जो कर्म शून्य, ज्ञाता-दृष्टा मात्र हैं; वे जगत् कर्ता नहीं हैं। ईश्वर ईश्वरपने के कर्ता तो हो सकते हैं। परमात्मा द्रव्य नहीं, अवस्था है। द्रव्य तो जीव-द्रव्य ही है और जो जीवत्व भाव है वह अनादि अनन्त है, उस का कर्ता न सामान्य मानव, देव, इन्द्र, चक्री है, न तीर्थंकर भगवान् हैं, न स्वयं ही कोई जीव द्रव्य है। वस्तु वस्तुत्व में त्रैकालिक है, आज-तक न कोई वस्तु उत्पन्न हुई, न नाश को प्राप्त हुई, न कम हुई, न अधिक; मात्र वस्तुओं की अवस्थायें ही परिवर्तित हुईं हैं और क्षेत्रान्तर हुईं हैं, गति-अन्तर हुईं हैं, पदार्थान्तर कोई वस्तु नहीं हुई। प्रत्येक पदार्थ दूसरे पदार्थ रूप कभी नहीं होता, यह त्रैकालिक सिद्धान्त है, इसे समझना चाहिए। एक जीव का दूसरे जीव में भी पूर्ण अभाव है, कोई भी जीव किसी भी अन्य जीव का अंश नहीं है, प्रत्येक जीव स्वतंत्र है। जीव न परमात्मा का अंश है, न पुरुष का, न प्रकृति का। माता-पिता के संयोग से शरीर की रचना हुई है, जीव की नहीं। वह भी रज-वीर्य का संयोग पुद्गलभूत है, यथार्थ में माता-पिता के भावों में काम-भोग की इच्छा की उत्पत्ति हुई है। शुक्र-रज के संयोग से माँ के उदर में जो गर्भ धारण हुआ है वह तो भिन्न जीव स्व-पुरुषार्थ से मनुष्य आयु का बन्ध करके

आया है। स्वकीय स्वतंत्र परिणामों से माता-पिता जीव के शरीर के निमित्त तो हैं, परन्तु चैतन्य आत्मा के निमित्त नहीं हैं। एक गूढ़ रहस्य और है, उस पर गम्भीर विचार करो; माता-पिता के संयोग से जो संतान, अपत्य की प्राप्ति हुई है उसका जो शरीर निर्मित हुआ है उसे लोक में माता-पिता कृत कहा जाता है; वह भी मात्र सम्बन्ध अपेक्षा है, स्वभाव अपेक्षा नहीं है। चैतन्य से न कोई अचैतन्य उत्पन्न होता है, न ही चैतन्य, वह तो पूर्ण स्वतन्त्र है। पुत्र का शरीर पुद्गल पिण्डों का संघात है, उसमें भी माता-पिता की आत्मा का कोई भी अंश नहीं है। सन्तान स्वतन्त्र जीव है, उसका शरीर भी स्वतन्त्र परमाणुओं से निर्मित है। शरीर नाम-कर्म का बन्ध सन्तान-भूत जीव ने स्वतन्त्र ही किया था, उसके उदय से शरीर की प्राप्ति सन्तान को हुई है। माता-पिता के शरीर का भी परिणमन सन्तान का शरीर नहीं है। रज-वीर्य स्वतन्त्र धातु है जो जनक-जननी के शरीर से पृथक् होकर सन्तान का निमित्त बनती है।

निमित्त को निमित्त तक ही स्वीकार करो, उपादान को उपादान स्वीकार करो। ज्ञानी जीवों को प्रत्येक तत्त्व पर गम्भीर रूप से विचार करना चाहिए। साधन के साधन अनेक होते हैं, परन्तु साधकतम करण (साधन) ही प्रबल होता है, जिससे कार्य होना नियत है। विचार यह करना है कि साधन, कारण मात्र को ही नहीं देखना चाहिए, मूल हेतु पर भी विचार करना चाहिए। सिद्धान्त पर विचार करने वाले जीव अल्प हैं; पक्षों, सम्प्रदाओं, परम्पराओं पर विसंवाद करने वाले जीव प्रचुर हैं। प्रत्येक सम्प्रदायी स्वयं को विशेष समझते हैं। स्व-परिणामों को तथा स्व सम्प्रदाय को तो सम्भाल नहीं पा रहे, सत्यार्थ मार्गियों को स्व बनाने की विचारधारा बनाकर व्यर्थ के क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं। मिलने की बात न कर सबसे मिलकर वात्सल्य से रहने की बात करें, यही श्रेष्ठ होगा; मूल में प्रवेश करें। भारत भूमि सत्यार्थ-बोध कराने वाली है जहाँ वस्तु का वस्तुत्व-घोष करता है। पदार्थों की नित्यता-अनित्यता पर विचार करो।

सम्प्रदायों का जन्म होता है, साथ-ही समाप्त भी हो जाता है। जो सनातन मूल वस्तु स्वभाव है, वह नष्ट नहीं होता। सनातन से तात्पर्य कोई धर्म विशेष, सम्प्रदाय विशेष का नाम नहीं समझना, सनातन का तात्पर्य है अनादि काल से चली आ रही वस्तु व्यवस्था। जैन सिद्धान्त स्वतन्त्र सनातन सिद्धान्त है, परन्तु लोकव्याप्त सनातनी नहीं है; सनातन है, जिनका आदि नहीं अन्त नहीं, वे हैं सनातन सिद्धान्त। भेष व वस्त्रों के रंगों से धर्म को मत समझो, धर्म तो वस्तु स्वभाव है, जो कि सानतन है। कोई भी पुरुष, महात्मा, परमात्मा कर्ता-हर्ता-रक्षक नहीं है, वह तो जो है सो है। त्रैकालिक है, तात्कालिक नहीं। तात्कालिक नव-नव सम्प्रदायों का जन्म है, धर्म का नहीं। अपनी-अपनी क्रियाओं का पालन करते हुए भी शान्त भाव से धर्म की खोज करो। जो भजन, कीर्तन, पूजा-पाठ, द्वैत भक्ति-भाव है, वह भी पुण्य क्रिया मात्र धर्म है, परन्तु धर्म नहीं है। धर्म वस्तु-स्वभाव है। जो स्वभाव एवं अधिकरण अपेक्षा धर्म-धर्मों से अभिन्न है, उसे भी समझो। किसी का इतिहास नष्ट करने से आप अनादि सिद्ध नहीं बन पाओगे। अनादि-अनिधन तो सत्यार्थ वस्तु सिद्धान्त है जो कि अटल, अचल, अनुपम है, जिसमें अन्य को कोई स्थान नहीं। वस्तु स्वभाव ही धर्म है, उसे धारण करो, अन्य नहीं, अन्यथा नहीं।

### 193 - Every substance has independent transformation

The doer *(kartā)* comprises activity and karma. Determine the doer on the basis of activities that are are natural, causal and combination of the two. There is no doer visible

PREVIEW ONLY

in the world of activities like the thunder-sound of clouds, and the whistling-sound of wind. There are natural objects like the Meru mountain and the Nandīśvara Jina-temples which have no doers. The modes *(paryāya)* are beginningless and eternal; there is no doer of the substance-of-soul *(jīva dravya)* and other substances *(dravya)*. There is no doer *(kartā)* of the substances *(dravya)*. From the standpoint of substance, the nature of each substance – *dravyatva* – is beginningless and eternal. The transitoriness is from the standpoint of the subtle-mode *(artha-paryāya)* and the gross-mode *(vyaṅjana-paryāya).* Origination *(utpāda),* destruction *(vyaya)* and permanence *(dhrauvya)* – all three are modes. When origination and destruction are put in the background, the substance is permanent, and transformation is its nature. Can we call God as the doer *(kartā)* of natural substances whose creator is not visible? No, no, absolute no. There definitely is a supreme God. He is rid of all karmas and is just the knower and the seer; he is not the doer *(kartā).* He, of course, can be called the doer of his supreme status. The supreme-soul is not a substance; it is a state of substance. The substance is the all-familiar substance-of-soul *(jīva dravya)*; it possesses the nature of the soul from beginningless time and that will remain eternally. There is no doer *(kartā)* of the substance-of-soul *(jīva dravya)* – no human, no deva, no Indra, no king-of-kings, and no Lord *Tīrthaṃkara*. The object *(vastu)*, in terms of its nature *(vastutva)*, continues to exist in the three times. Till date no object *(vastu)* has neither been produced or destroyed, and the number of objects has neither been reduced or enhanced. Only their transformation has taken place; their place has changed and their state has changed. Their substance *(dravya)* has not changed. It is an all-time doctrine that one substance does not get transformed into another substance. One soul *(jīva)* has no existence in any other soul and it is not a part of any other soul; every soul is independent. The soul *(jīva)* is not a part of the supreme-soul *(paramātmā),* or the man or the nature. The parents, together, have created the body and not the soul. Here too, the mixing of the excretions of the parents comprises physical matter; it has taken place due to their desire to have sex. It is a different soul that has entered, by its own karmas to have human-birth, into the mother's womb. The parents are the instrumental *(nimitta)* cause in the formation of the body but not of the soul. There is one more mystery that needs resolution: the body that has been formed by the mixing of the excretions is conventionally said to be created by the parents; that too is so in respect of the relation, not in respect of the nature. An animate substance cannot and does not produce either another inanimate or animate substance. The body of the offspring is a union of physical molecules; it has no trace of parents' souls. The offspring is an independent soul *(jīva)* and its body too is made of independent atoms. The offspring had independently bound itself with the name-karma comprising body-formation karmas due to which the present body has taken shape. The transformation of the body of parents too is not the body of the offspring. The excretions of parents are independent substances that become instrumental *(nimitta)* causes in the formation of the body of the offspring.

Accept the instrumental-doer *(nimitta-kartā)* and the substantive-doer *(upādāna-kartā)* as these are. All intellectuals should think deeply on every substance of the reality. There are many instruments that cause the performance of a work but the most potent is the reason that is essential to its performance. Do not see just the external instruments; think also about the substantive cause. Only a few men think about the doctrine; there are many who are ever ready to create conflicts between sides, sects and conventions. Every

PREVIEW ONLY

sect considers itself to be special. Without trying to systematize own dispositions and sects, they think of bringing those who follow the correct path into their fold and thereby are getting agonized. Without trying to merge others into their fold, it will be better if they strive to live affectionately with all. India is a country that expounds the true nature of objects. Think about the permanence and transitoriness of objects.

Sects have origination and ending. The nature of object is eternal. Here eternal means the beginningless nature of the objects, not any particular religion or sect. The Jaina doctrine is an independent eternal doctrine; it is eternal since it is beginningless and endless. Do not consider dharma in terms of religious adornments and insignia; dharma is the true nature of the object and that is eternal. No man, supreme-sage or supreme-soul *(paramātmā)* is the doer, the abductor or the saviour. The object remains as it is. Its nature is eternal and not temporal. New sects are temporal but not the dharma. Follow your own rituals but simultaneously investigate the dharma with a peaceful mind. The dual devotional activities like singing of hymns, praise of God, and religious rituals are auspicious activities, not the dharma. Dharma is the nature of the object. Understand the thing that is one with the dharma on the basis of its nature and substratum. You cannot become liberated by destroying someone's history. Promulgation of the true nature of the object is beginningless and endless doctrine; it is rock-solid, immovable, and unparalleled. Accept the doctrine of the nature of the object; nothing else.

विचार
THE THOUGHTS

## १९४. क्षमा-भाव ही धर्म

उपशम भाव युक्त परिणाम है क्षमा-भाव। क्रोध-भाव नहीं लाना, समता भाव रखना, जगत् के प्राणि-मात्र के प्रति मैत्री-भाव रखना, किसी पर भी राग-द्वेष पूर्वक क्रोध-कषाय नहीं करना। कषाय से मैत्री-भाव, प्रीति-भाव, वात्सल्य-भाव का क्षय होता है, वह अधर्म है। क्षमा-भाव ही धर्म है। यह धर्म किसी पक्ष पर नहीं स्थिर, यह क्षमा धर्म प्राणि-मात्र के लिए हितप्रद है। क्षमा को खोकर कोई व्यक्ति धर्म करना चाहता है उससे प्रश्न करना- 'भैया! अब आप कौन-सा पवित्र धर्म करना चाहते हैं? धर्म तो पवित्र भावों की विशुद्धि है। उसे आप क्रियाओं के राग में लिप्त होकर छोड़ रहे हैं।' जो-जो धर्म के लिए क्रियायें करता है उन्हें यह भी विचार करना चाहिए, स्वयं शान्ति प्राप्त अभी तक नहीं हुई, तो क्रिया मात्र धर्म से कौन स्वात्म-निधि को प्राप्त कर पाओगे?

## 194 - Forbearance *(kṣamā)* is dharma

The disposition of forbearance *(kṣamā)* has tranquility. It means the absence of anger *(krodha)*, presence of equanimity *(samatā)*, and brotherhood for all living-beings in the world. It entails the absence of anger-passion *(krodha-kaṣāya)* caused by attachment *(rāga)* or aversion *(dveṣa)*. Passions are anti-dharma *(adharma)* as these result in destruction of brotherhood, love and affection. Forbearance is dharma. This dharma is not based on particular sect; it is beneficial for all living-beings. If someone wants to be a man of dharma after losing forbearance, tell him: "Brother, what pious dharma you wish to adopt? Dharma is the purification of dispositions. You are leaving this dharma due to your attachment towards rituals." Anyone involved in rituals for the sake of dharma

PREVIEW ONLY

should also reflect on the fact that if self-peace has not been attained as yet, no treasure for the soul will be attained by getting involved in rituals.

विचार
THE THOUGHTS

## १९५. क्षमा धर्म से आत्म-शान्ति

भावों की कालुष्यता का अभाव करना क्षमा धर्म है, जो कि आत्मस्थ है। अन्य बाह्य आडम्बरों का कोई भी स्थान धर्म में नहीं है। सर्व-क्लेशों से मुक्त जो है, वही उत्तम धर्म है। पर-प्रत्ययों से भिन्न धर्म है। शान्त-भावों से युक्त होकर ऐसे धर्म की खोज आत्मा में करो, अन्यत्र प्रदेशों में धर्म की खोज मत करो। आत्म-प्रदेशों से भिन्न जो धर्म है, वह उपचार धर्म है, सद्भूत व्यवहार नय से धर्म का विचार करो। अशुभ, शुभ, शुद्ध जो भी उपयोग की दशा है, वह आत्मा की ही दशा है। बाह्य निमित्त मात्र निमित्त हैं; उपादान भूमिका तो आत्मा की ही रहती है। क्षमा धर्म आत्मा का स्वभाव धर्म है, क्रोध-कषाय आत्मा का विभाव धर्म है। स्वभाव शान्त, आनन्दभूत है; विभाव आक्रोश, दु:खभूत है। प्रथम धर्म क्षमा, प्राणि-मात्र के प्रति क्षमा भाव रखो। कषाय भाव स्व-पर क्लेश, दु:ख एवं अशान्ति तथा कर्मबन्ध का कारण है। प्रीति का क्षय क्रोध से होता है, इसलिए क्रोध कषाय भाव का त्याग करो।

### 195 - Forbearance *(kṣamā)* brings soul-peace

Getting rid of evil dispositions is forbearance *(kṣamā);* forbearance is an attribute of the soul. The dharma has no place for ostentation. The excellent dharma is free from all tribulations and requires no external props. Search for the dharma in your own soul with a peaceful mind; it does not rest anywhere outside. The dharma that exists outside the soul is the conventional *(upacāra)* dharma; think of the dharma in terms of the intrinsic *(sadbhūta)* empirical *(vyavahāra)* standpoint *(naya)*. Whether inauspicious *(aśubha)*, auspicious *(śubha),* or pure *(śuddha)* cognition *(upayoga)*, all these are the states of the soul. Causes external to the soul are just instrumental *(nimitta)* causes, the substantive *(upādāna)* cause is the soul itself. Forbearance *(kṣamā)* is the natural attribute of the soul; anger-passion *(krodha-kaṣāya)* is unnatural to the soul. Natural attributes of the soul bring peace and bliss; unnatural attributes bring agony and suffering. Forbearance *(kṣamā)* is the foremost dharma; maintain the disposition of forgiveness for all living-beings. Passions *(kaṣāya)* bring agony, misery, anxiety and bondage of the karmas. Love gets obliterated by anger and, therefore, get rid of the anger-passion *(krodha-kaṣāya)*.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## १९६. विनय की महिमा

मान कषाय व्यक्ति के अन्दर ममत्व भाव एवं वात्सल्य भाव का क्षण मात्र में नाश करा देती है। विनयाचार का लोप, श्रेष्ठ-गुरुजनों, वृद्धजनों का भी अपमान करा देना इसका कारण नहीं कार्य है। कारण है जीव की द्वेष बुद्धि, द्वेष बुद्धि से ही क्रोध आता है, द्वेष से ही मान, अहंकार, घमण्ड, अभिमान आता है। अहंकारी का विनाश नियत है। मानी को जब कोई वश नहीं कर पाता तब उसे समय-पूर्व काल आता है, मृत्यु ही मानी का अन्त में मान मर्दन करती है। जगत् के शत्रु बनने का यदि विचार नहीं है, तो मान कषाय को शान्त कर मार्दव धर्म धारण करो। विनय भाव स्व-स्वभाव में

लाओ। विद्या की सिद्धि चाहिए तो विनय की सिद्धि करो, मान का नाश करो। अभिमानी विद्या प्राप्त नहीं कर पाता, साथ ही किसी अन्य को भी अपनी विद्या नहीं दे पाता। विनय विद्या का संचार यंत्र है। ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, एवं उपचार विनय, ये विनय तप के चार भेद हैं। चारों ही विनय अनन्तचतुष्टय और मोक्ष की उपलब्धि के हेतु हैं।

विनय मोक्ष का द्वार है। दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय तथा उपचार विनय; विनय तप के इन भेदों पर विशेष विचार करने की आवश्यकता है। जिनकी दृष्टि पवित्र है, वे सम्यक् मार्ग का विचार कर जीवन का निर्णय लेते हैं। वे किसी भी व्यक्ति के अनुसार न चलकर विवेक, ज्ञान एवं आगम के अनुसार जीवन जीते हैं। साथ में अन्य भव्यों को भी वस्तु के सम्यक् बोध का निर्णय देते हैं, भावुकता में निर्णय नहीं लेते। समीचीन दृष्टि वाला भव्य प्राणी जीवन के प्रतिपल को भूतार्थ मार्ग रूप अनुसरण करता है, विपरीत मार्ग का विसर्जन कर देता है, सदा सत्यार्थ की प्राप्ति का सम्यक् पुरुषार्थ करता है, स्व-पर विचारों को सदा सम्भालता है। विचारों के विकृत करने वाले लोक में बहुत निमित्त हैं, परन्तु ज्ञानी जीव स्वोपादान को सम्भाल कर रखता है, यही विशिष्ट पुरुषार्थ साधु जनों का होता है। वे अपने भावों एवं विचारों को सम्भालकर स्वहित, जगहित, धर्म, राष्ट्र के हितार्थ ही विचार करते हैं और अहितकारी विचारों को स्व से पृथक् करते रहते हैं। स्व-दृष्टि को पवित्र रखना, किसी भी प्रकार की मलिनता नहीं लाना, अज्ञानता से रिक्त दृष्टि को रखना, लोक की मूढ़ताओं से रहित दृष्टि, सत्यार्थ-मार्ग को ही स्वीकार करना, सम्यक्त्व की रक्षा करना, सम्यक्त्व की हानि न हो, ऐसी लोक-रूढ़ि से आत्मरक्षा करना। जो लोक-रूढ़ि सम्यक्त्व की हानि न कराती हो उस लोक-रूढ़ि को स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है, परन्तु सम्यक्त्व विघाति लोक-रूढ़ि मूढ़ता को स्वयं स्वीकार नहीं करना। जो सम्यक्त्वी है उसका विनय करना, सम्यक्त्व के हेतुओं को विनय-पूर्वक स्वीकारना, निर्दोष सम्यक्त्व का पालन करना, करवाना और अनुमोदना करना, दर्शन विनय है।

किसी भिन्न दर्शन के प्रति अशुभ वचनों का भी प्रयोग नहीं करो। सर्वत्र प्रशस्त वचनों का ही प्रयोग करो। देश की अखण्डता का ध्यान प्रतिक्षण रखो, सम्प्रदायों के प्रति सद्भावना बनाकर चलो। सिद्धान्तों में अहिंसा परमब्रह्म का नाद होना चाहिए। वस्तु स्वभाव धर्म पर विचार करना चाहिए। सम्पूर्ण विश्व में जो भी सूत्र सम्प्रदायिकता-शून्य है, पूर्ण वैज्ञानिक है, उस पर कोई भी सम्प्रदाय वाला प्रश्न चिह्न खड़ा नहीं कर सकता। ऐसा क्यों है? क्योंकि वस्तु स्वभाव ऐसा है। जो है, सो है।

## 196 - The glory of reverence *(vinaya)*

Pride-passion *(māna-kaṣāya)* causes instant destruction of love and affection from a man's heart. Absence of reverence *(vinaya)* is the effect, not the cause, of conduct that results in denigrating the gurus and the elderly. The cause is the disposition of aversion *(dveṣa)*; aversion results in anger, pride, self-aggandizement, conceit and vanity. Ruination of the man with self-aggrandizement is certain. When the pride gets out of control, he gets a premature death. Death then seems to be the destroyer of his pride. If you do not wish the world to become your enemy subside your pride-passion *(māna-kaṣāya)* and adopt the virtue of modesty *(mārdava)*. Imbibe reverence in your nature. If you wish to become knowledgeable, embrace reverence and crush pride. The man full of pride can neither obtain knowledge nor can he impart knowledge to others. Reverence is a mode of communication for knowledge. Reverence is an austerity *(tapa)* and it has four

PREVIEW ONLY

subdivisions: reverence to knowledge – *jñāna-vinaya*, faith – *darśana-vinaya*, conduct – *cāritra-vinaya*, and the custom of homage – *upacāra-vinaya.* All four are the means to attain the fourfold-infinitude *(ananta-catuṣṭaya)*: infinite perception *(darśana)*, infinite knowledge *(jñāna)*, infinite bliss *(sukha)* and infinite energy *(vīrya)*.

Reverence *(vinaya)* is an entry-point to liberation *(mokṣa).* It is essential to reflect deeply on the four aforesaid subdivisions of reverence *(vinaya).* Those with auspicious vision first think about the right path and then take decisions about life. They do not follow any particular man; they lead their life according to own discrimination, knowledge, and as per the scripture. Further, they expound for other worthy souls the truth about the nature of the substances; they do not take worked up decisions. The worthy man with right perception treads, every instant of life, the path that is laudable; he makes sincere efforts to get to the truth of things, and keeps his thoughts under control. There are numerous causes in the world that can vitiate thoughts but the knowledgeable man keeps intact his inherent and substantive *(upādāna)* cause; this is the real effort of all noble men. While taking care of their dispositions and thoughts, they think about the well-being of the self, the world, the dharma and the nation. They rid themselves of all negative thoughts. Their efforts aim at maintaining an auspicious and clear vision that is rid of ignorance and worldly follies, accepting only the path that is based on truth, protecting their right-faith *(samyaktva)* and to keep it away from all distortions due to customs that are prevalent in the world. There is no harm in accepting worldly customs that do not have a negative impact on your right-faith *(samyaktva)* but keep yourself aloof from customs that affect your right-faith. To have reverence towards those with right-faith, to accept humbly all occasions that strengthen right-faith, to observe – by doing, getting done and approving – unblemished right-faith is reverence to faith – *darśana-vinaya.*

Do not use inappropriate words for any faith in the world. Always keep in mind the unity of the country and have a sense of goodwill for all sects. The doctrine of supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)* should reverberate everywhere. Reflect on the true nature of the objects. Any philosophy in the world that is rid of the bias towards particular sects and based wholly on logic cannot be questioned by any sect. Why? Since it expounds the true nature of the objects. It is, as it is.

विचार
THE THOUGHTS

## १९७. विनय वन्दना से सुख

विनय करना धर्म है। विनय स्थान समझना चाहिए। स्थान का ज्ञान किये बिना विनय करना मोक्ष–मार्ग नहीं है। सच्चे विनयी परीक्षापूर्वक विनय करते हैं। विनय–योग्य की विनय करना चाहिए, अभक्ष्य–भोजी, अशुभ–कर्मी की विनय करना उचित नहीं है। विचार करो, जो विनय के योग्य है, उसी की विनय करो। सर्वत्र विनय करके अपनी अज्ञानता प्रकट नहीं करना चाहिए। प्रज्ञ–पुरुष अपनी आस्था का समर्पण वहाँ करते हैं जहाँ आस्थेय पूर्ण चारित्रवान् हो। गुण–विहीन की वन्दना नहीं की जाती, चाहे वह साधु भेष में हो, चाहे गृहस्थ हो। जिसका आचार–विचार, भोजन, भावना पवित्र हो, वही विनय का पात्र है।

माँसाहारी, मद्यपायी, तस्कर, जुआरी, स्त्री-लंपटी, वेश्या-व्यसनी, धूम्रपायी, तम्बाकूसेवी, सप्तव्यसनी लोग विनय के पात्र नहीं होते। मिथ्या भावों से युक्त जीव वन्दना के पात्र नहीं हैं। शुद्ध परिणामी जीव की वन्दना ही पुण्य बन्ध का कारण है, अन्य की नहीं। बिना विचार किए किसी की भी विनय करके विनय मिथ्यात्व में नहीं पड़ जाना। यदि उभयलोक में सुख चाहिए तो सम्यक् परीक्षा करके ही विनय वन्दना करो।

## 197 - Adoration of reverence *(vinaya)* brings forth happiness

Reverence *(vinaya)* is dharma. Understand the abode of reverence. Without this understanding, you cannot tread the path to liberation. First scrutinize the worthiness of the recipient of your reverence. Have reverence for the worthy; do not revere men who consume unmerited food, and engage in vicious karmas. It will be your ignorance if you revere all, without discrimination. Knowledgeable men revere only the men with character. The man without character, whether ascetic or householder, is not worthy of reverence. Only the man whose thoughts and conduct, food, and dispositions are pious is worthy of reverence.

Men who consume flesh and liquor, who are smugglers and gamblers, who are excessively lustful, who go to prostitutes, who consume tobacco, and who have the sevenfold addictions are not worthy of reverence. Those with deluded dispositions are not worthy of reverence. Reverence of the man with pure dispositions results in merit. Do not get into wrong-belief *(mithyātva)* through reverence of the unworthy. If you wish for happiness here and hereafter, have reverence only for the worthy.

विचार
THE THOUGHTS

## १९८. चारित्र विनय

रत्नत्रय धर्म का निर्दोष पालन करना चारित्र विनय है अथवा चारित्र-धारियों की विनय करना, उनके जीवन में आये कष्टों, उपसर्गों को दूर करना, स्वकीय चारित्र का निर्मल पालन प्रतिक्षण करना, स्वव्रतों में दोष नहीं लगाना, परकीय दोषों का प्रचार नहीं करना, परकीय दोषों की प्रशंसा भी नहीं करना, प्रत्येक चारित्रवान् की प्रशंसा करना, चारित्र के उपकरणों की भी विनय करना, चारित्र पालन के लिए प्रेरणा देना, असंयम भावों से स्व-पर की रक्षा करना, बुद्धिपूर्वक किसी भी जीव को असंयम की ओर न ले जाना, जाते हुए की रक्षा करना, प्रत्येक भव्य प्राणी का कर्त्तव्य है। गिरते को उठा लेना साधुता की पहचान है। चारित्र से पतित की रक्षा करो, यही चारित्र विनय है। चारित्र विनय का फल निर्मल संयम की उपलब्धि है। चारित्रवान् की विनय का सर्वत्र ध्यान रखना चाहिए। द्रव्य और भाव संयम के अभाव में निर्वाण मार्ग नहीं बनता, निर्वाण मार्ग के अभाव में निर्वाण पद की अनुपलब्धि सदा है। चारित्र के साथ निर्वाण पद की उपलब्धि है, ऐसा सम्यक्-विचार करो; श्रीजिन सर्वज्ञ देव ने ऐसा कहा है।

जीवन के अन्तिम निषेक के काल में भी चारित्र की विनय करते रहना, चाहे चारित्र का पालन नहीं कर पायें फिर भी चरित्रवानों की विनय करते रहना। संस्कार बनाकर चलो, किसी-न-किसी भव में यही चारित्र के संस्कार श्रेष्ठ सच्चे वीतरागी साधु बनाकर भगवान् बना देंगे। संस्कार जीवन के

PREVIEW ONLY

अन्तिम समय में ही नहीं अपितु जीव के संसार-भ्रमण के अन्तिम भव तक कार्यकारी होते हैं, इसलिए श्रेष्ठ संस्कारों के लिए प्रतिक्षण तैयार रहो। जो भव-भव में आत्मा को अशान्ति प्रदान करें ऐसे संस्कारों से सदा आत्मरक्षा करो। पल भर के अशुभ संस्कार जीवन के उत्कर्ष का नाश कर देते हैं। इस बात पर बार-बार विचार करो, विचारों की पवित्रता आचरण को पवित्र रखती है। विचारों को उज्ज्वल बनाकर चलो, निर्मल विचार उज्ज्वल चारित्र की जन्मदात्री है, जननी है।

## 198 - Reverence to conduct – *cāritra-vinaya*

Unblemished observance of the dharma of the three-jewels *(ratnatraya)* is reverence to conduct – *cāritra-vinaya*. Or, every worthy man of conduct has the following duties: to have reverence for the men of conduct, to ward off sufferings and inflictions that befall them, to observe pristine conduct and unblemished vows *(vrata)*, not to publicize the shortcomings of others, not to praise unworthy conduct of others, to adore every man of conduct, to revere instruments that help in observation of conduct, to encourage others to follow conduct, to protect self from dispositions that lead to non-restraint *(asaṃyama)*, and not to incite others to adopt non-restraint. To lift up the falling man is the mark of a noble man. To lift up the one who has abandoned conduct too is reverence to conduct. The fruit of reverence to conduct is attainment of pristine self-restraint. Always have reverence for the men of conduct. The path to liberation cannot be tread in absence of material and psychic self-restraint; liberation is not possible without first treading the path to liberation. Think constantly that without right conduct, liberation cannot be attained; this has been proclaimed by the Omniscient *(sarvajña)* Lord Jina.

Observe reverence to conduct till the last moment of your life; at that stage, you yourself may not be able to observe conduct but, still, you must continue to revere the men of conduct. The values of conduct that you imbibe now will enable you, in a future life, to become a true ascetic without attachment *(rāga)* and to make you a God. Good values help you not only in the present life but till the end of your whirling-round in the cycle of births and deaths. Remain ever-ready to adopt good values. Protect yourself from imbibing values that may result in the loss of your soul-peace in this and future lives. It takes just a second for inauspicious values to obstruct your development. Reflect repeatedly on the fact that noble thoughts make your conduct pristine. Make your thoughts sublime; sublime thoughts will give birth to illustrious conduct.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## १९९. संस्कारों की प्रबलता

जो जीव परमात्म-पद को प्राप्त करेंगे, वे सब संस्कारों के बल से ही होंगे। जिनके स्वयं के संस्कार पवित्र हैं वे अन्य के पवित्र सुसंस्कारों के निमित्त बन सकते हैं। जिनके स्वयं के संस्कार पवित्र नहीं हैं, वे अन्य के सुसंस्कारों के हेतु भी नहीं बन सकते हैं, इस बात को अच्छी तरह समझना चाहिए। पर के लिए हेतु वही बनता है, जो स्वयं में पूर्ण शक्तिमान होता है। शक्तिविहीन पर को शक्तिमान बनाने की बात क्या कर पायेगा? विश्व में गुरुता की आशा है तो अपनी शक्ति को सदा वर्धमान करने की भावना भाओ। शक्ति-क्षीण, उत्साहविहीन के पास बैठना स्वकीय शक्ति का क्षय करना है, पुण्यक्षीण के पास क्या मिलेगा? दुःख, क्लेश और अपयश। पुण्यवान् के साथ निवास करो, गुणवान्,

चारित्रवान्, ज्ञानवान् के साथ रहने से गुण, ज्ञान, चारित्र, यश की प्राप्ति होगी। जिसके पास जो होगा वह वही तो देगा, यह बात जगत् प्रसिद्ध है, इसलिए विवेकवान् वर्धमान पुरुष की संगति एवं विनय करना चाहिए, हीयमान की नहीं। उससे पृथक् रहकर उस पर भी दया, करुणा भाव रखना चाहिए। यदि दुःखी है, विनयविहीन है, धर्मविहीन है, कुमार्ग पोषक है तो उसके प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिए, यह श्रेयस्कर है, ऐसा सम्यक् विचार करना चाहिए।

### 199 - The power of values you imbibe

Only on the strength of the values that the men imbibe will they attain the supreme state of the soul. The men whose values are pristine can become the instrumental cause of imparting good values to others; not the men who themselves have ignoble values. Only the man who is strong in himself can make others strong; no man lacking strength can think of making others strong. If you wish to gain importance in the world think always of strengthening yourself. Sitting in company of those lacking strength and vigour amounts to weakening yourself. What can you get from a man of demerit? Only misery, agony and ignominy! Live in the company of the man of merit – the man with good qualities, conduct and knowledge. You will acquire good qualities, knowledge, conduct and glory. It is well established that a man can impart to others only what he has. Therefore, have the company of and give reverence to the man whose power of discrimination is on the rise, not on the decline. While maintaining distance from the man of demerit, have dispositions of sympathy and compassion for him. If the other man is sorrowful, disrespectful, lacks piety and a promoter of wrong path, it is better to maintain a sense of unconcern for him.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

### २००. विनय की महत्ता

विनय मोक्ष का द्वार है, परन्तु विनय मिथ्यात्व मोक्ष का द्वार नहीं है। सद्गुणी, सद्गुरुओं की विनय मोक्ष का द्वार है। जब-तक देव-धर्म, गुरु, शास्त्र का सम्यक्-परीक्षण न कर लो, तब-तक विनय नहीं करनी चाहिए। आस्था की कीमत है। आस्था अर्घवान् है, अर्थहीन आस्था नहीं है। जहाँ सद्-ज्ञान, दर्शन, चारित्र के दर्शन हैं, वहाँ संकल्पपूर्वक उत्साहयुक्त विनयाचार का पालन करना चाहिए। पर्याय धर्म के बिना परिणामों को नहीं समझा जा सकता है।

यदि संसार-सागर में डूबने की इच्छा नहीं है, तो श्रेष्ठ गुरु के पास जाकर धैर्यपूर्वक जगत् का अधिगम करो। ज्ञान करके निर्णय करने वाला कभी क्लेश भाव को प्राप्त नहीं होता। जो यथार्थ ज्ञान किए बिना जीवन का निर्णय करते हैं, उन्हें जीवन के पल-पल में पश्चाताप की ज्वाला में सुलगना पड़ता है। जिन्हें लोक में हास्य को प्राप्त न होना हो उन तत्त्वज्ञानियों को चाहिए कि वे जीवन के निर्णय सम्यक्-विचार करके ही करें। यही समीचीन उपदेश है।

### 200 - The importance of reverence

Reverence, not deluded reverence, is the door to liberation. Reverence of noble men and laudable gurus is the door to liberation. Do not have reverence for the deva, the

dharma, the guru or the scripture until you have examined them with proper discretion. Faith has value. But faith is valuable only if it is meaningful. Where there is right knowledge, perception and conduct, have thoughtful and energetic reverence. The transformations cannot be understood without understanding the modes *(paryāya)*.

If you do not wish to sink in the worldly-ocean, approach a worthy guru and acquire with patience the knowledge of the world. The man who takes decisions based on knowledge never has to face anxiety. The man who takes decisions based on wrong knowledge gets charred, every instant, in the fire of remorse. The knowledgeable men who do not wish to get ridiculed in the world should take life-decisions only after proper thinking. This only is the right preaching.

विचार
THE THOUGHTS

## २०१. ज्ञान विनय

ज्ञानाभ्यास ही ज्ञान विनय है। ज्ञानाभ्यास की पद्धति का भी ज्ञान हो; अशुद्ध वस्त्र, अशुद्ध स्थान, अशुद्ध मन, अशुद्ध वचन, अशुद्ध काय के साथ अध्ययन न करें, मल-मूत्र के वस्त्रों की शुद्धि करें। स्वाध्याय के काल में नाभि के नीचे हाथ न ले जायें, साथ ही नाक, कान, मुख आदि अशुद्ध मल-स्थानों पर यदि हाथ का स्पर्श हुआ है, तो शुद्ध, प्रासुक जल से हस्त शुद्धि करें, तब ग्रन्थ-पुस्तकादि ज्ञानोपकरण का स्पर्श करें। शास्त्र विनय भी ज्ञान विनय है।

द्रव्य श्रुत की विनय ही भाव श्रुत की उपलब्धि का साधन है। जिस क्षेत्र में अशुद्ध पदार्थ, मांस, चर्म, बाल, रोम, अस्थि, रक्त, शुक्रादि अपवित्र पदार्थ पड़े हों उस क्षेत्र में स्वाध्याय न करें। मल-मूत्र के स्थान, पंचेन्द्रिय मृतक वाला स्थान, वमन किया हो ऐसा स्थान, स्नानगृह, विसंवाद स्थान, वेश्यालय, मदिरालय, अश्रद्धानीजनों के स्थानों पर ज्ञानाराधना वर्जित है। स्वच्छ, पवित्र, शान्त हवा के संचार-युक्त स्थान पर पठन-पाठन श्रेष्ठ है। बाहर के शोर से शून्य स्थान में सतत विनयपूर्वक संकल्प-विकल्प रिक्त होकर अध्ययन करना श्रेयस्कर है।

साथ-ही ज्ञान जिनसे प्राप्त किया है उनकी भी विनय करना चाहिए। विनय के बिना सम्पूर्ण विद्या निष्फल है। विनयपूर्वक किया गया ज्ञानाभ्यास प्रमाद से विस्मृत भी हो जाये तब भी वह श्रुत केवलज्ञान का कारण है, इसलिए प्रतिक्षण सतत ज्ञानाभ्यास करते रहना चाहिए। ज्ञान जीवन में कभी हानिकारक नहीं, सदा कल्याणकारी ही होता है। अज्ञान सर्वत्र कष्टप्रद, अपमानकारी होता है। अज्ञान का नाश कर ज्ञानाराधना सदा-सदा करो, स्व-पर कल्याण मार्गदर्शक ज्ञान ही है। अन्य कोई भी गुण स्व-पर प्रकाशक नहीं है, न होगा, यह ध्रुव सत्य है। अज्ञान की निवृत्ति, हेय-उपादेय तथा उपेक्षा, यह सम्यक्-ज्ञान का फल है। ज्ञान में जो सम्यक् शब्द है, वह विपरीत ज्ञान का निषेधक है। सम्यक्-ज्ञान ही प्रमाण है, अन्य ज्ञान प्रमाण नहीं हैं। तत्त्वज्ञानी को चाहिए कि वह संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन त्रिदोष रहित सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करे, और कुशास्त्रों, कुश्रुति से सदा आत्म-रक्षा करे। सद्-शास्त्रों का बोध करे तथा सुश्रुति का ही श्रवण करे, उसी का कथन करे और उसी का मनन करे, कराये, अनुमोदना भी सम्यग्ज्ञान की ही करे, मिथ्याज्ञान की अनुमोदना भी न करे। यदि आत्महित की भावना हो तो जिन शास्त्रों के पढ़ने से इच्छाएँ, कामनायें, वासनायें बलवती हो जायें, ऐसे काम-शास्त्रादि का भी अध्ययन मुमुक्षु जीवों को नहीं करना चाहिए। जय-पराजय, धन-धरती की वृद्धि-हानि, संरक्षण

PREVIEW ONLY

की बातों से निर्ग्रन्थों, श्रमणों, साधकों, साधु-पुरुषों, भव्यवर मुमुक्षु जीवों को क्या प्रयोजन? राग-द्वेष वृद्धि-कारक साहित्य का पठन-पाठन साधुजनों को स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए। जिनसे संयम, चारित्र, रत्नत्रय धर्म, सदाचार वर्धमान हो, ऐसे ही ग्रन्थों का पठन-पाठन, चिन्तवन करना चाहिए। मिथ्या-भाषण का चिन्तवन, आचरण, श्रवण का पूर्ण त्याग कर देना चाहिए। जो-जो व्याख्यायें रत्नत्रय धर्म की शोषक, घातक हैं, उनका श्रवण पूर्ण रूप से छोड़ देना चाहिए।

वे गोष्ठियाँ भी त्याज्य हैं जिनके माध्यम से सदाचार का ही अभाव हो रहा है। ज्ञानी जनों को सदा विचार करके उन ही गोष्ठियों में उपस्थित होना चाहिए जिनसे सदाचार, सम्यक्त्वाचार वर्धमान होता हो और जीव संयमाचार, स्वरूपाचार के माध्यम से यथाख्यात चारित्र पर आरूढ़ हो सके। यथाख्यात चारित्र वह चारित्र है जिसके माध्यम से जीव परम यथाख्यात चारित्र धारण कर परम निर्वाण अवस्था को प्राप्त करता है तथा जहाँ से पुनः आवागमन नहीं होता। सादि-अनन्त पर्याय की उपलब्धि ही तो निर्वाण है; सदा-सदा के लिए जीव का संसार में जन्म-मरण समाप्त हो जाना निर्वाण दशा है। शिवत्व को प्राप्त जीव संसार में विक्रिया को प्राप्त कभी भी नहीं करेगा, यह ध्रुव सत्य है। मुक्तात्मा संसार अवस्था को कभी भी प्राप्त नहीं होती, अब भगवान् अवतार को प्राप्त नहीं होंगे। जो जीव कर्म बीज का विनाश नहीं कर पाता, वह बार-बार संसार अवस्था को प्राप्त होता है, परन्तु निर्ग्रन्थ अवस्था को प्राप्त साधु-पुरुष अरहन्त होकर सिद्ध दशा प्राप्त कर शुद्ध-सिद्ध-निकल परमात्मा कहलाता है। जो अष्ट-कर्म रहित, अष्ट-गुण युक्त, ज्ञान-शरीरी, पुद्गलपिण्ड शरीर रहित है, वह सिद्ध अशरीरी परमात्मा है। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, पुद्गल का धर्म है, जीव का नहीं है। शरीर पुद्गल है, पुद्गल चैतन्य का धर्म नहीं है, यह परम सत्यार्थ-बोध है। परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय अपेक्षा जीव मात्र चैतन्य स्वभावी है, पुद्गल मूर्त स्वभावी है। मूर्त स्वभाव अमूर्त नहीं होता, अमूर्त स्वभाव मूर्त नहीं होता, परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर प्रत्येक द्रव्य स्व-स्व स्वभाव में रहते हैं। परस्पर में मिले होने पर भी द्रव्य स्व-द्रव्यता का त्याग कभी नहीं करता, यह द्रव्य का त्रैकालिक स्व-धर्म है। लोक में सम्पूर्ण द्रव्य एक साथ विद्यमान हैं, स्व-स्व धर्म के साथ मूर्तामूर्त द्रव्य चाक्षुष-अचाक्षुष द्रव्य ज्ञान के ज्ञेय हैं, प्रमाण के प्रमेय हैं, प्रमाता इन सबको स्व-क्षयोपशम से जानता है। पर-स्व का भेद भी जीव स्व-क्षयोपशम से ही करता है, पर-क्षयोपशम से जीव स्व तत्त्व का निर्णय नहीं कर सकता। जो भी वस्तु-तत्त्व का निर्णय है उसके लिए बाह्य गुरु आदि बाह्य निमित्त मात्र ही हैं, सत्यार्थ-बोध तो वस्तु के वस्तुत्व का स्वकीय प्रज्ञा से, स्वयं के ज्ञान से ही होता है। अन्य तो अन्य ही है, ऐसा समीचीन निर्णय होना अनिवार्य है, अन्यथा अज्ञ प्राणी स्वकीय प्रज्ञा को कोई भी महत्त्व नहीं देंगे, न स्वप्रज्ञा का रहस्य ही समझ पायेंगे। वस्तु स्व-वस्तुत्व में स्थापित रहती है, स्वगुणों के अन्दर। विचार करो; पर्याय अपेक्षा वस्तु के अन्दर अनन्त गुण परिणमन कर रहे हैं, द्रव्यापेक्षा वस्तु शान्त, अविराम, अचल है, फिर भी परिणाम वस्तु का रुक नहीं रहा। वस्तु चाहे चल हो अथवा अचल, वस्तु के परिणमन को रोकने की योग्यता किसी भी पुरुष व परमात्मा में नहीं है, और न वस्तु को स्व-द्रव्य से परद्रव्यभूत परिणमन कराने की किसी की भी योग्यता है। स्व-वस्तुत्व का परिणाम अविराम है, तो स्व-वस्तु का वस्तुत्व स्व में अपरिणामभूत भी अविराम है। इस रहस्य को जो जानता है वही यथार्थ में वस्तु के वस्तुत्व को जानता है। जो इस रहस्य को नहीं जानता वह वस्तु के वस्तुत्व का यथार्थ ज्ञाता नहीं है।

लोक वर्तमान पर्याय मात्र पर विचार कर रहा है, जबकि वस्तु स्व-वस्तुत्व में त्रैकालिक परिणमन कर रही है। स्थल चाहे जल हो, थल हो या नभ हो; काल चाहे प्रातः हो, मध्याह्न हो, चाहे शाम। दिन हो, रात हो, नैरात्रिक हो, चाहे प्रादोषिक काल हो, पक्ष हो, सप्ताह हो, मास हो, ऋतु हो, अयन हो, संवत्सर हो, युग हो, उत्सर्पिणी हो या अवसर्पिणी हो चाहे हुंडावसर्पिणी हो, कितने कल्पकाल निकल जायें, परन्तु वस्तु के वस्तुत्व का परिणाम भाव और अपरिणाम भाव का विनाश नहीं हो सकेगा, स्व में स्व-परिणमन स्वभूत होता ही रहेगा। द्रव्य, पर-द्रव्यभूत परिणमन कभी भी नहीं करता, चाहे असमानजातीय पर्यायों में भी जीवादि द्रव्य क्यों न हो, अपनी सत्ता का विनाश कभी भी कोई भी द्रव्य नहीं करता। यह ध्रुव सत्य है।

ज्ञानी-जीव के ज्ञान में वस्तु कैसी आ रही है, यह ज्ञानी के क्षयोपशम का विषय है, स्व-विचारों का विषय है। वस्तु के वस्तुत्व का नाश कोई भी नहीं कर पायेगा। विज्ञजनों को बोध होना चाहिए कि जो निर्णय है वह वस्तु में नहीं है, वस्तु का भी निर्णय व्यक्ति की स्वकीय दृष्टि में है। इसलिए तत्त्वज्ञानियों को सम्भलकर रहना चाहिए। स्व-प्रज्ञा के भ्रान्त होने पर जगत् भ्रान्त दृष्टिगोचर होगा। प्रज्ञा शान्त, निभ्रान्त है, तो जगत् शान्त, निःभ्रान्त दिखाई देगा, अतः प्रज्ञाशीलों को आगम पर अचल रहना चाहिए।

स्वविचार का समीकरण सिद्धान्तों से बैठना चाहिए। स्वतन्त्र विचारधारा राष्ट्र, समाज, धर्म के विरुद्ध भी खड़ी हो जाती है, उसका जो विपरीत प्रभाव है, वह बहुत ही भयानक होता है। स्व-वंश विघातक हो जाता है। जब भिन्न-भिन्न दो विचारधारायें परस्पर शत्रुता के रूप में स्पर्धा में आमने-सामने होती हैं तब विश्व को युद्ध का रूप देखने को मिलता है, मानवीयता समाप्त हो जाती है और नरसंहार प्रारम्भ हो जाता है, जो कि सर्व हितकारी नहीं है, सर्व-हित तो साम्यभाव में है। आगम सिद्धान्त एक होने पर नाना विचारधाराओं का एकीकरण होने पर सर्वात्म हित पर विचार उत्पन्न होने लगेंगे। एक मत, एक सिद्धान्त, एक आचरण विश्व-विकास का सूत्र है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह भाव, इन पाँचों सिद्धान्तों का एकत्व विश्व-मैत्री का मूल-मंत्र है। सम्पूर्ण विश्व के राष्ट्र इन सिद्धान्तों को स्व-स्व देश के संविधान में स्थापित कर लें और सर्व विश्व के नागरिक उस संविधान के अनुसार स्व-जीवन पद्धति को स्वीकार कर लें तो सम्पूर्ण विश्व में आनन्द की लहरें आ जायेंगी, दंड-संहिता में सुधार आ जायेगा, व्यर्थ के युद्ध समाप्त हो जायेंगे, व्यर्थ में नरसंहार नहीं होगा।

युद्ध ही मात्र समस्या का हल नहीं है। शान्ति से सर्व-राष्ट्रों के नेताओं को बैठकर हल निकालना चाहिए। किसी भी देश के प्रति आतंक उत्पन्न करना मानवीय धर्म नहीं है। सर्व-राष्ट्रों के नागरिकों एवं नेताओं को मैत्री भाव के साथ निवास करना परम कर्त्तव्य है। आतंक को वर्धमान क्यों करते हो? वर्धमान करना ही है तो इनका करो- भारत भूमि जैसे तीर्थंकरों, भगवन्तों, साधु, श्रमणों, विद्वानों, सज्जनों एवं दयालुओं को उत्पन्न करो जिससे समाज, संस्कृति, देश, राष्ट्र, विश्व आनन्द को प्राप्त हो। मति का प्रयोग सम्यक् करना, यह भी विशिष्ट योग ही है। कुछ पुण्यहीन लोग हैं जो अच्छा विचार करने का विचार भी करें तो विचार ही समाप्त हो जाते हैं और वे ही अशुभ कुविचारों पर विचार करें तो विचार बढ़ते ही जाते हैं, विचार समाप्त ही नहीं होते। खोटे कृत्यों के लिए विचार आगे-आगे दौड़ते हैं, श्रेष्ठ कार्य के लिए बुद्धि काम ही नहीं करती, यही व्यक्ति के स्व-स्व क्षयोपशम की लीला है। जिनके विचार विवेकपूर्ण श्रेष्ठ कार्य करने के हैं, चारित्र की निर्मलता के हैं, वे लोग जगति पर

PREVIEW ONLY

साधु–महात्मा के रूप में पूज्यता को प्राप्त हो रहे हैं, और जो कुविचारों से युक्त हैं, कुकृत्यों में संलग्न हैं वे बिचारे तस्कर, आतंकी, नक्सली, सप्त–व्यसनी संज्ञा को प्राप्त होते हैं। लोक में लोग ऐसे लोगों के नाम–श्रवण व स्मरण मात्र से काँप जाते हैं; पूज्यता तो छोड़ो, ऐसे लोगों का नाम भी लेना पसन्द नहीं करते। यह स्वविचारों की महिमा है।

श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ आचार व्यक्ति को बनाते हैं भगवान्। कुविचार, कदाचार व्यक्ति को बना देते हैं अघवान्। विचारों पर नियंत्रण करना साधुता का कार्य है, विचारों की निर्मलता निर्ग्रन्थता की जननी है। विचार–शून्य निर्विकल्प ध्यानी, विचार शक्ति का पूर्ण अभाव, ज्ञान में ही ज्ञान की लीनता, ऐसे ज्ञानी जीव के लिए रहस्यमय चमत्कार हो जाता है; वह जीव परमात्मा, अरहंत, भगवान् बन जाता है। विचार–शून्य, मन–शून्य, असहाय ज्ञान, कैवल्य ज्ञान; ज्ञान विनय का मिल गया उसे फल महान्, बन गया वह केवली भगवान्।

## 201 - Reverence to knowledge – *jñāna-vinaya*

Pursuit of knowledge is reverence to knowledge – *jñāna-vinaya.* Know the proper way to gain knowledge: while studying sacred texts, do not wear unclean clothes, do not use a filthy place, get rid of impious mind, speech and body; purify clothes if these have been used during excretion. Do not take your hands below the navel. Wash your hands with pure water if these have touched unclean body parts like the nose, ears and mouth. Touch sacred texts, the instruments of imparting knowledge, only with clean hands. Reverence to sacred texts too is reverence to knowledge.

Reverence to physical-scripture *(dravya śruta)* is the means to attain psychic-scripture *(bhāva śruta)*. Do not study at a place where impious objects like flesh, leather, hair, vellus hair, bone, blood and semen are to be found. Adoration of knowledge at the following places is forbidden: a lavatory, where dead body of a five-sensed being or filth of vomit is present, a bathroom, a hotbed of conflict, a brothel, a pub, and where faithless people live. It is best to choose for study a place that is clean, pious, and with soft breeze. It is good to study with reverence, rid of all sense-of-mine *(saṃkalpa)* and self-consciousness *(vikalpa),* at a tranquil place.

Have reverence for all who have imparted you knowledge. Without reverence, all learning is fruitless. If due to negligence you tend to forget what you had studied during your pursuit of knowledge, done with reverence, still it is the cause of the attainment of omniscience *(kevalajñāna)*; continue, therefore, your pursuit of knowledge incessantly. Knowledge, without fail, is beneficial. Ignorance always is the cause of misery and dishonour. Destroy ignorance and adore knowledge; knowledge is the beacon that illumines the path to well-being of self and others. No other attribute is the illuminator of self and others; this is an inviolable truth. Destruction-of-ignorance *(ajñāna-nivṛtti)*, rejection *(heya)*, acceptance *(upādeya)* and equanimity *(upekṣā)* are fruits of right-knowledge *(samyagjñāna)*. The word 'right' associated with knowledge excludes wrong-knowledge. Only right-knowledge *(samyagjñāna)* is valid-knowledge *(pramāṇa)*. The seeker of the knowledge of the reality should strive to attain right-knowledge that is rid of the three imperfections of doubt *(saṃśaya)*, indefiniteness *(vimoha* or *anadhyavasāya)*, and perversity *(viparyaya* or *vibhrama)*. Further, he should refrain from studying or listening to perverted texts. He should acquire knowledge only

PREVIEW ONLY

from laudable scriptures; he should listen to these, utter words from these, reflect on these and grant approval only to the right-knowledge *(samyagjñāna),* never to the false-knowledge. Those treading the path to self-advancement and liberation should refrain from studying texts that arouse and strengthen desires, cravings and lust. What interest would worthy sky-clad *(nirgrantha)* ascetics and practitioners of nobility have in talks pertaining to winning and losing, wealth and land, and gain and loss? Such noble men should never, even in a dream, study literature that promotes attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*. They should study and reflect only on those sacred texts that help in enhancing self-restraint, conduct, dharma of the three-jewels *(ratnatraya)*, and right behaviour. Never reflect on or listen to false preaching and wrong conduct. All description that is contrary and harmful to dharma of the three-jewels *(ratnatraya)* should never be heard.

Refrain from being a part of assemblies that harm the observance of good conduct. Knowledgeable men should present themselves only in those assemblies which promote right conduct and facilitate the growth of conduct to the level of perfect-conduct *(yathākhyāta-cāritra)*. The stage next to adoption of perfect-conduct is supreme perfect-conduct and that is the state of liberation *(nirvāṇa)* from where there is no coming back in the world. The state of liberation *(nirvāṇa)* has a beginning but no end; in this state the cycle of births and deaths in the world ends. The soul that has reached the state of ineffable happiness will never ever take birth in the world; this is the supreme truth. The soul that has attained the status of God will not appear again in the world. The soul that has not been able to destroy the seed of the karmas gets worldly rebirths, but the soul that has adopted the sky-clad *(nirgrantha)* asceticism, attained the status of the Omniscient Lord *(Arahanta)* and thereafter attained the state of liberation *(nirvāṇa)* is called the pure, *Siddha,* absolute and supreme-soul *(paramātmā)*. The *Siddha* supreme-soul is without the material *(pudgala)* body, rid of the eight karmas, endowed with the eight supreme qualities, and has knowledge as its body. The attributes of touch *(sparśa)*, taste *(rasa)*, odour *(gandha)* and colour *(varṇa)* belong to the material *(pudgala)* objects, not to the soul. The body is material and consciousness *(caitanya)* is not its attribute; this is the truth. From the standpoint that adopts the supreme-nature of the substance – *paramabhāva-grāhaka-dravyārthika-naya* – the soul is just of the nature of consciousness *(caitanya),* and the matter or material *(pudgala)* is physical *(mūrta)* in nature. The physical *(mūrta)* nature can never become non-physical *(amūrta)* and non-physical *(amūrta)* nature can never become physical *(mūrta).* From the standpoint of the supreme-nature of the substance, every substance maintains its own nature. It may get mixed with other substances but does not leave own nature of substantiveness *(dravyatā)*; this is the dharma of every substance and is maintained in the three times. All substances, together, are present in the universe, with their own respective nature – physical *(mūrta)* and non-physical *(amūrta),* visible *(cākṣuṣa)* and non-visible *(acākṣuṣa)* – and are objects-of-knowledge *(jñeya)*. These are also objects *(prameya)* of valid-knowledge *(pramāṇa);* the knower *(pramātā)* knows these according to own destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)* of knowledge-obscuring *(jñānāvaraṇīya)* karmas. The soul *(jīva)* makes distinction between self and others too according to own destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)*, not of others. Help from others, like the guru, is just the external instrumental *(nimitta)* cause for deciding the nature of the

reality; the true nature of the objects – *vastutva* – is known only by own intellect and knowledge. The above statement should make the ignorant souls understand the importance and secret of own intellect. All objects remain established in their own objectness *(vastutva)* and own attributes. Think; in regard to the mode *(paryāya)* transformations of attributes are taking place incessantly in the object, but in regard to the substance *(dravya)* the object is still and non-transformable. Whether the object is stationary or moving, no man or even the supreme-soul *(paramātmā)* has the power to stop its transformation and to change its own-nature to that of any other substance. Only the one who understands this secret knows the true nature of the objects – *vastutva*.

The world thinks about the present mode *(paryāya)* although the object is getting transformed in own objectness *(vastutva)* in the three times. Whether morning or noon or evening or night or week or fortnight or month or *ṛtu* or *ayana* or *saṃvatsara* or aeon, or *utsarpiṇī* or *avasarpiṇī* or *huṇḍāsarpiṇī* or many *kalpakāla* may elapse but the objectness *(vastutva)* of the object and its non-transformable nature will not change. It will continue its transformation in own-nature. A substance never gets transformed into another substance; even in objects that exist as mixed-modes of different substances – like the human – no substance gets rid of its existence. This is the truth.

How an object is known by a knowledgeable man is the subject of his destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)* and of his thoughts. No one can destroy the objectness *(vastutva)* of an object. Intelligent people should understand that their decision about the nature of an object rests in their own perception and not in the object. They should be careful about this fact. If own intellect is vitiated, the world would appear vitiated. If own intellect is tranquil and without-perversion, the world would appear tranquil and without-perversion. Have complete and unwavering faith on the scripture.

Your thoughts should be in tune with the doctrine. Self-directed thoughts can be in contravention of the interest of the nation, society and dharma, and can be dangerous. Such thoughts can destroy own progeny. When two opposing self-directed thoughts face each other, enmity germinates, resulting in a war; humanity becomes a casualty and the process of massacre begins. It is not in the interest of anyone; the interest of all lies only in equanimity *(sāmyabhāva)*. If different thoughts are in tune with the doctrine, these will be directed towards the well-being of all. One opinion, one doctrine, and one action will then ensure world development. The root mantra of world-brotherhood is the amalgamation of the fivefold principles of non-injury *(ahiṃsā)*, truthfulness *(satya)*, non-stealing *(asteya, acaurya)*, celibacy *(brahmacarya)*, and non-possession *(aparigraha)*. If all nations incorporate these principles in their constitution and all citizens of the world translate these into their lifestyle, the whole world will experience the waves of happiness. Penal codes will become better, futile wars and massacre will end.

War is not the only solution to problems; world-leaders should come forward for peaceful negotiations. Terrorism against any country is not humanity and should not be encouraged. All citizens and leaders of the world must live with bonds of brotherhood. Never encourage terrorism. Instead, encourage evolution, like India had witnessed, of the men of supreme virtues like the *Tīrthaṃkara*, ascetics, scholars, and those with nobility and compassion so as to engender happiness in the whole world. Ingenuity of the mind is a special yoga. There are some men of demerit who find themselves at a loss

PREVIEW ONLY

while thinking of auspicious things but the inauspicious thoughts never seem to end. Thoughts of evil actions seem to be thriving but their intellect fails when thinking about virtuous actions. This is due to individual destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)*! The men of discrimination who think of doing virtuous work and have good conduct get venerated as ascetics and great souls in the world, and those with evil thoughts and deeds are known as smugglers, terrorists, insurgents and slaves of sevenfold addictions. Leave alone veneration, people shiver while thinking about them. This illustrates the grandness of own thoughts.

Laudable thoughts and conduct transform the man into a god. Evil thoughts and conduct make the man lowly. To keep control over your thoughts is nobility; pristine thoughts give birth to sky-clad *(nirgrantha)* asceticism. When the meditating soul becomes rid of all thoughts and inquisitiveness, and gets totally engrossed in own-knowledge, miracle happens; such a soul gets rid of the psychic-mind and becomes a supreme-soul *(paramātmā)* or an Omniscient Lord *(Arhanta)*. Such an Omniscient *(kevalī)* Lord is rid of all thoughts and the psychic-mind, has self-dependent knowledge called omniscience; such a worthy soul has attained the ultimate fruit of reverence to knowledge–*jñāna-vinaya.*



## २०२. उपचार विनय

विनयशीलता, विवेकशीलता, लज्जाशीलता, सरलता तथा सहन-शीलता श्रेष्ठ महापुरुषों के सहज लक्षण हैं। इन गुणों से विभूषित पुरुष पृथ्वी पर देवता है। सर्व गुणों में श्रेष्ठ विनय गुण, सर्व गुणों की सुन्दरता को वर्धमान करता है। सर्वश्रेष्ठ गुणों को हीन बनाता है अहंकार, मान-अभिमान, घमण्ड। श्रेष्ठ समय से, उत्तम कार्य से, महापुरुषों के सम्मेलन से, सद्-गुरुओं एवं सद्-गुणों से भी दूर करा देता है अहंकार। पूज्य पुरुषों, पंच-परमेष्ठियों की भी अवहेलना कराने में कमी नहीं करता अहंकार। गुणवानों, धनवानों, विद्वानों, सुधी-संयमीजनों से पृथक् करा देता है व्यक्ति का तुच्छ अहंकार। प्रेम-वात्सल्य, प्रीति का क्षय करा देता है मान। मायाचारी, छल-कपट का सलाहकार है दुष्ट अहंकार। सद्-गुणियों, महापुरुषों के चरणों में झुका देती है विनयशीलता। सर्वगुणों में प्रधान गुण सद्-गुणियों की विनय, गुणहीनों के प्रति माध्यस्थता का भाव, न राग, न द्वेष, सामान्य स्थिति का जीवन है विनयशीलता।

उपचार विनय सद्-गुणों में एवं पूज्यों के प्रति आत्मानुराग की प्रकट स्थिति का बोध कराता है। लोक व्यवहार में भी जीव सामान्य को इस बात का बोध हो जाये कि धर्मात्माओं के साथ किस प्रकार का सम्यक् व्यवहार हो जिससे उदण्डता न खड़ी हो, विनयाचार का बोध सभी व्यक्तियों को हो जाये। लोक, समाज, धर्म की मर्यादा भंग न हो, साथ ही अनव्यवस्था भी न हो, वस्तु धर्म, लोक धर्म, व्यवहार धर्म का सम्यक् संचालन होता रहे, इसलिए विनयाचार को स्वीकार किया गया है। इतना ही नहीं, उपचार विनय स्व-पर आत्म विशुद्धि का भी प्रबल कारण है। विनय करने वाले का मान विगलित होता है, विनय प्राप्त का कालुष्य क्षीण होता है और जो दुर्भाव होता है वह समाप्त होता है। अहंकारी को भी विनय झुका देती है। पद के अनुकूल विनय करो। वन्दना करना, चरण स्पर्श करना

PREVIEW ONLY

यदि विनयाचार है, तो आशीर्वाद भी विनयाचार है। लघु चरण वन्दना करके विनय करता है, तो गुरु आशीर्वाद देकर विनयाचार का पालन करते हैं। ज्येष्ठ व श्रेष्ठजन प्रसन्न चित्त से देख भी लें तो कनिष्ठ की विनय है, उसका सम्मान है। किसी को भेंट देकर विनयाचार प्रकट किया जाता है तो किसी से भेंट लेकर भी विनयाचार प्रकट किया जाता है। किसी से शब्द सुमन से कार्य लिया जाता है, किसी की अष्ट-द्रव्यों से पाद-पूजा की जाती है, किसी की पाद-पूजा कराई जाती है, कहीं मौन रहकर ही विनयाचार का पालन होता है, तो कहीं मुखरित होकर विनयाचार होता है। ज्येष्ठ गुरुजन अन्य से बात कर रहे हों तो वहाँ मौन रखना, उनके मध्य बात नहीं करना, मौन विनयाचार है, उपचार विनय।

उपचार विनय भी मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत है। लोक में विशिष्ट मंगलभूत है। गुरुजनों से बात करना है तो सर्वप्रथम प्रणाम, नमस्कार, नमोऽस्तु निवेदन करो, तदोपरान्त हाथ जोड़कर विनय से अपनी बात रखना चाहिए। कोई सामग्री की याचना भी करना है, तो प्रणाम-पूर्वक याचना करनी चाहिए। कोई वस्तु प्रदान भी करना हो तब भी विनयपूर्वक नमस्कार करके ही वस्तु प्रदान करें, पुनः प्रणाम करें। दम्भ न दिखायें, गुरुजनों के साथ चलना पड़े तो पीछे चलें, कदाचित् पार्श्व में भी चलना पड़ गया तो बाईं ओर चलें। गुरुजनों के नीचे बैठें; नीचे विश्राम करें, ज्येष्ठ गुरुओं के सिर न सोयें, न बैठें। चरणों में ही अपना स्थान स्थापित करें, आगे-आगे न चलें, न बोलें। स्व-योग्यता, स्व-पद का ध्यान रखते हुए बात रखें। अपनी प्रत्येक बात गुरु से विनय, भक्ति एवं उनकी गरिमा का ध्यान रखते हुए करें। स्व-ज्ञान का विवेक-बुद्धि से पालन करें, आवश्यकता नहीं है कि सम्पूर्ण ज्ञान गुरु के सामने ही प्रकट करें। विनय भी विनय के साथ करें, भक्ति भी विनय के साथ करें। गुरुजनों को शारीरिक, वाचनिक, मानसिक कोई भी कष्ट न हो। गुरुजनों के सामने बालक-बुद्धि की चेष्टा न करें, विज्ञता युक्त ही चेष्टायें करें। कोठे में धान्य बहुत होता है, पर छोटे मुख से निकाला जाता है। निर्ग्रन्थ मुनिराजों के कमण्डलु का मुख बड़ा होता है परन्तु पानी निकालने की टोंटी छोटी ही होती है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति का पुरुषार्थ विराट् होना चाहिए; व्यय अल्प होना चाहिए। व्यर्थ की भाषण वृत्ति और अहंकारी आसनों पर न बैठें, न अहंकारी आसन लगायें। अन्य पुरुषों के सामने गुरुजनों से मौन रखने वालों की जगत् प्रशंसा करता है। जो ख्याति लाभ के राग में मान कषाय के वश होकर मर्यादा-शून्य वचनालाप व अन्य कोई भी प्रवृत्ति करते हैं, वे सब क्रियायें शिष्य के नाश का ही कारण बनेगीं, उन्नति का नहीं। उपचार विनय का प्रतिक्षण ध्यान रखना अनिवार्य है। स्व-कल्याण एवं स्व-सम्मान की भावना है, तो मार्दव, आर्जव धर्म का ध्यान रखते हुए अपने ज्येष्ठों, गुरुजनों के मध्य सम्यक् व्यवहार करना चाहिए, अतिरेक में आकर ज्येष्ठ गुरुओं का अविनय न हो जाये। पुण्य जनों की अविनय स्व पुण्य क्षय का कारण है, प्रत्येक क्रिया हमारी ऐसी हो जिसमें गुरुजनों की विनय दृष्टिगोचर हो।

अविनय का स्वप्न भी न आये, स्वप्न में भी पंच-परम गुरु की विनय ही दिखे। नम्रता का व्यवहार व्यक्ति को स्वतः ही महान् बना देता है, इसमें कोई शंका न करना। सम्यक्-विचार करो; जो-जो भूतल पर महानता को भूत में प्राप्त हुए, वर्तमान में हो रहे हैं, भावी काल में भी महान् होंगे, वे सब विनय गुण से युक्त ही थे। गुणवान् वही है जो विनयवान् है, विनयवान् ही बन पाता है गुणवान्। गुरुजनों को अपना जीवन सौंप दो और आनन्द का जीवन जिओ। जिसके सिर पर गुरु का आशीष है उसे व्यर्थ की चिंता की कोई भी आवश्यकता नहीं रह जाती, सहज कार्य की सिद्धि प्रारम्भ हो जाती

PREVIEW ONLY

है। कदाचित् कार्य सिद्धि न भी हो तब भी गुरु साथ देंगे। ढाढ़स देने वाला पीछे है, तो जीवन के कष्ट भी कष्ट रूप दृष्टिगोचर नहीं होते, यह बात आगम एवं अनुभव-सिद्ध है। विज्ञजनों को उपचार विनय का भी अच्छे से पालन करने का विचार करना चाहिए तथा तदनुसार प्रवृत्ति भी करना चाहिए जिससे जीवन महान् बनेगा। यदि व्यक्ति विनयशील है तो भगवान् बनेगा। विनयहीन सच्चा इन्सान नहीं, तो वह भगवान् क्या बनेगा? वह तो माध्यस्थता का पात्र है। विनयहीन अविनयी से माध्यस्थ भाव ही सुखप्रद है, अन्यथा स्वकीय उपहास ही प्राप्त होगा।

अविनयी का तो लोक में कोई सम्मान है नहीं। अविनयपूर्ण भाषणों एवं प्रवृत्तियों से विनयशीलों की गुणवत्ता पर कलंक का तिलक क्यों लगवाना चाहते हो? उससे आत्म विशुद्धि का भी विनाश होता है। अविनयी, अहंकारी जीवों के पास जाने से स्वयं में हीन भाव का उद्भव हो जायेगा जो कि महा कष्टदायक होता है, इसलिए ज्ञानी जनों को उस प्रदेश में पैर ही नहीं रखना चाहिए जहाँ पर लोग गुणों, गुणीजनों को कुछ भी नहीं समझते हैं, मात्र स्व-मद में आकण्ठ डूबे हैं। उन बिचारे दीनों को विनय गुण के आनन्द का भान नहीं है, वे कषाय पर्वत के भार से पूरित हैं। उनके तत्त्व निर्णय में विनय भाव का अभाव है। विनयगुण विवेकयुक्त भव्यवर जीवों के अन्दर ही प्रकट होता है। विनयगुण युक्त तो होता है ज्ञानी जीव, परन्तु विनय मिथ्यात्व में प्रवेश नहीं लेता, विनयी योग्य-अयोग्य का विवेक रखता है। वन्दनीय-अवन्दनीय का भेद-ज्ञान करके वन्दना की प्रवृत्ति करनी चाहिए। सम्यक्त्व रत्न की रक्षा करना जगति पर महादुर्लभ है, सम्यक् आस्था, आस्था का समर्पण सर्वत्र नहीं होना चाहिए। तत्त्वज्ञानी विनयगुण सम्पन्न होता है, परन्तु विनय मिथ्यात्व का सेवन नहीं करता है, यह विशेषता है।

विचारशील, विवेकशील विनय पर भी विचार करता है। विनय तो कर्त्तव्य है, पर योग्य की, अयोग्य की नहीं। जो विनय लाभप्रद हो, आत्म हितार्थ हो, पूज्य पुराण पुरुषों से स्वीकृत हो, आगम में जिनके लिए विनय की आज्ञा हो, उन्हीं की विनय करना चाहिए। अन्य किसी भी व्यक्ति, वस्तु व परमात्मा की विनय मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण मात्र परमार्थभूत देव-शास्त्र-गुरु की विनय ही है, अन्य नहीं, अन्यथा नहीं। यही परम सत्य है। लोक में उपचार विनय पर विचार करना होगा, लोकाचार और लोकोत्तराचार पर विशेष विचारशीलों को पुनः-पुनः ध्यान रखना चाहिए। एक बार सत्यार्थ परमात्मा की वन्दना नहीं हुई तो अधिक विकल्प नहीं है, परन्तु व्यर्थ कल्पनाओं के परमात्माओं की वन्दना कर निज की वंचना तो नहीं करना चाहिए। विचार करके ही किसी को भगवान् के नाम से स्वीकार करना चाहिए। समय ऐसा चल रहा है कि प्रत्येक नगर-गली में एक-एक घोषित स्वयं के स्वयम्भू तैयार हैं, पर घोषित स्वयम्भूओं में परमात्मा गुण कहाँ? गुण-युक्त परमात्मा स्वयं को स्वयम्भू कहते ही कहाँ हैं? गुणहीन मूर्ख तो गुणवान् के लिए सदा मौन रहते हैं।

स्वयम्भूओं को मानने वालों का धर्म है कि वे विचार करें कि आगम-प्रमाण प्राप्त किए बिना, गुरु-उपदेश के बिना, किसी व्यक्ति को स्वयम्भू, ईश्वर, परमात्मा स्वीकार किया कैसे? रागी, द्वेषी, मानी, क्रोधी, दम्भी पर का हित अहित करने की भावना से युक्त परमात्मा स्वयम्भू नहीं हो सकता है, इसलिए विनय करने से पूर्व आराध्य का सम्यक् बोध अवश्य ही करना चाहिए। बिना ज्ञान के किसी भी व्यक्ति को भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसलिए आराध्य की भी अच्छी तरह से परीक्षा कर लेनी चाहिए। अज्ञों को श्रद्धेय बनाने पर जीवन भर अज्ञान, अविद्या की ही उपासना करनी पड़ेगी; परिणाम-स्वरूप दुर्गति का स्वामी बनना नियत है, इसलिए कुशलता के साथ जिओ।

जब तक भगवत्ता के गुण प्रकट नहीं, तब-तक कोई सामान्य व्यक्ति भगवान् नहीं। जो वीतरागता, हितोपदेशता से पूर्ण है, सर्वज्ञ, केवली, अरहन्त, देवत्व को प्राप्त है वही जीव परमात्मा कहलाने योग्य है। अन्य सामान्य जीव पाप-पंक में लिप्त परमात्मा संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकता, यह नियत जानो। जो तद्गुण परमात्मा हैं, वे ही हमारे विनय भाव के पात्र हैं, नाम-निक्षेप वाले परमात्मा विनय, पूजा, अर्ह, इज्या अर्चना, वन्दना, नमस्कार, प्रणाम करने योग्य नहीं है, ऐसा सर्वत्र विचार करो।

श्रुतोपलब्धि की विराट्ता सम्यक् रूप से विनयाचार एवं समीचीन श्रुताभ्यास गुरूपदेश से ही सम्भव है। श्रुताराधना में किंचित् भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। प्रमादी के श्रुतोपलब्धि कहाँ? जहाँ पर प्रमाद का अभाव है वहाँ ही श्रुतोपलब्धि है। संसार में श्रुताराधना सा कोई सुख नहीं है और अज्ञान से बड़ा कोई दु:ख नहीं है। ज्ञानी ज्ञान-बल से परमानन्द का आनन्द लेता है, पर में सद्भाव व अभाव का कोई दु:ख उसका कुछ भी नहीं कर पाता, प्रतिक्षण अपूर्व आनन्द रस का पान करता है। श्रुतज्ञ भव्य जीव दु:ख, संताप, क्लेश का अनुभव किंचित् मात्र भी नहीं करता। वह क्लेश उत्पत्ति एवं उपशमन के प्रबल हेतुओं को अच्छी तरह से जानना है, इसलिए आनन्द में लीन रहता है। वह परभावों में निजभाव का विचार ही नहीं लाता।

## 202 - Reverence to custom of homage – *upacāra-vinaya*

Reverence, discrimination, humility, simplicity and tolerance are the natural attributes of great men. The man endowed with these attributes is a deva on the earth. The best among all qualities, i.e., reverence, enhances the standard of all other qualities. Pride, self-aggrandizement and conceit degrade all other qualities. Pride keeps a man away from right time, right work, worthy people, gurus and laudable qualities. Due to pride a man disregards venerable men and even the five Supreme-beings *(Parameṣṭhi)*. Mean pride keeps a man away from the men of qualities, wealth, wisdom and conduct. Pride destroys love and affection. Evil pride is an advisor to deceit and cheating. The man of reverence, on the other hand, bows down in front of the feet of noble and great men. Reverence is a major quality that endows a man the quality of respecting noble men, and to remain indifferent – with no attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)* – towards ignoble men.

Reverence to custom of homage – *upacāra-vinaya* – manifests through adoration of laudable qualities and noble men. In worldly custom too, general men should know how to conduct themselves in midst of the men of dharma so as to maintain order. Reverence to custom of homage is observed so as not to disturb the dignity of the world, society and dharma, while accepting orderly scheme of the dharma of objects, world and mutual behaviour. Not only this, reverence to custom of homage bestows soul-purity to self and others. The pride of the man observing reverence gets dissolved and the turbidity that may be present in the recipient gets washed off. Reverence has the power to subdue even a man of vain. Observe reverence according to the recipient's position. If adoration and touching the feet is reverence, to give blessings too is reverence. When the disciple observes reverence through adoration of the feet of the guru, the guru observes reverence through his blessings. Just the happy glance of the elderly and noble men is their reverence for the disciples or laymen. Reverence is observed through giving of gift as well as through acceptance of gift. For some, reverence is done through ornate speech,

PREVIEW ONLY

for some it is done through worship of their feet using eight auspicious objects, for some it is done by getting their feet worshipped, for some it is done by remaining silent, for some it is done by eloquent speech. When elderly guru is talking to someone, to remain silent is reverence to custom of homage.

Reverence to custom of homage – *upacāra-vinaya* – too is a facilitator in treading the path to liberation. It begets special propitiousness. While saying something to the guru, first salute him with utter respect and then speak with hands folded in reverence. If you wish to request for something, do it after reverential salutation and if you wish to give something, do it after reverential salutation – both, before and afterwards. Never be a snob; walk behind the guru, or if asked to walk along walk to his left. Sit or rest at a level lower than that of the guru; do not sit or rest adjacent to the head of the guru. Station yourself in his lotus feet; don't walk or speak ahead of him. Put forward your views keeping in mind your ability and position. Speak with the guru with reverence and devotion, maintaining always his honour. Use discrimination regarding your own knowledge; it is not necessary to exhibit your depth of knowledge to the guru. Observe reverence as well as devotion with due respect. You should not cause any bodily, phonic or mental hurt to the guru. All your deeds in front of the guru should reflect your intellectual maturity. The silo is filled with large stock of grain but it is taken out from a small exit. The inlet of the water-pot *(kamaṇḍalu)* of sky-clad *(nirgrantha)* ascetics is large but the outlet is small. In the same way, your effort to acquire knowledge should be huge but its dilution should be minimal. Do not get engaged in useless speech; do not use flamboyant seats. The disciples who maintain silence in front of the guru get appreciation everywhere. All unwarranted activities – like undignified speech – of the disciple impelled by his wish to gain glory and actuated by pride-passion *(māna-kaṣāya)* will result in his downfall, not rise. Reverence to custom of homage – *upacāra-vinaya* – needs to be observed incessantly. If you wish to gain respect and glory, adopt right behaviour – observing the dharma of supreme modesty *(mārdava)* and supreme straightforwardness *(ārjava)* – in front of the elderly and the guru. You should not cause any disrespect to the guru out of your sense of self-importance. Disrespect of the men of merit causes destruction of your own merit; all your activities should reflect your reverence for the guru.

Even in a dream you should not disrespect your guru; your dreams should exhibit reverence to the five supreme gurus. Don't have any doubt in the fact that your humility will make you great. The virtue of reverence is responsible for attaining greatness in the three times – the past, the present and the future. The man of reverence is noble; the noble man is with reverence. Surrender your life to the guru and live happily. The man whose head carries the blessings of the guru need not worry unnecessarily; all his works will get accomplished automatically. Even if there is an impediment, the guru stands with you. It has been well-established through the scripture and experience that the pain gets allayed if you have someone behind you to console you. To attain greatness, intelligent men should whole-heartedly observe and follow reverence to custom of homage. The man of reverence will become a god. The man without reverence is not a true man, how can he become a god? Such a man deserves indifference. Adopt indifference towards men without reverence to save yourself from ridicule.

The man without reverence is not respected in the world. Your reputation as a man of

PREVIEW ONLY

reverence should not be blemished with black spots of your undeferential speech and activity. Such indulgence spoils your soul-purity too. You may experience inferiority complex when in the company of men without reverence and full of pride; this is very painful. Intelligent men should not step in a place where men are immersed neck-deep in vanity and do not value virtues and the men of virtues. Such men are not aware of the happiness that reverence brings and are laden with the mountain of passions *(kaṣāya)*. Their understanding of the reality lacks reverence. The quality of reverence manifests only in worthy men. Such men are full of reverence but keep themselves aloof, through discrimination, from deluded reverence. They make distinction between those worthy of reverence and unworthy of reverence. To protect the gem of right-faith *(samyaktva)* is extremely difficult; do not exhibit your faith indiscriminately. The man who knows the reality is full of reverence but is rid of deluded reverence.

The man of humility and discrimination thinks about reverence too. Reverence is a duty; reverence of only the worthy, not of the unworthy. Reverence should be beneficial for the soul; it should be approved by the most-worshipful, ancient preachers, and the scripture. Reverence of any other person, object or god will not result in the attainment of liberation. Attainment of liberation is possible only through reverence of true supreme-soul *(Āpta)*, scripture, and guru; of no one else, in no other way. This is the supreme truth. You must observe worldly reverence to the custom of homage – *upacāra-vinaya;* further, you should also think-through the conduct required in this world and hereafter. Do not worry too much if, due to some exigency, you have not been able to worship the true supreme-soul *(Āpta),* but never deceive yourself by worshipping self-imagined gods. Think well before accepting your god. This is a time when in every street and town you will find men who proclaim themselves to be self-enlightened *(svayambhū)*, although without any attributes of the true supreme-soul *(svayambhū* or *paramātmā).* Real god does not have to declare himself self-enlightened *(svayambhū)*! A foolish man without virtues maintains silence in respect of the men of virtues.

Those who exhibit faith in such so-called self-enlightened *(svayambhū)* men should reflect as to how they have accepted them, without any scriptural evidence or preaching of the guru, as a god or a supreme-soul *(svayambhū* or *paramātmā).* Anyone with attachment and aversion, pride, anger, self-aggrandizement, and inclination to favour or disfavour others cannot be a supreme-soul. Therefore, think about the worthiness of the recipient of your reverence; employ your discriminatory knowledge to test the worthiness of the recipient of your reverence. If the recipient is unworthy, you will end up worshipping ignorance and wrong-knowledge throughout your life, resulting in your getting an evil state-of-existence hereafter. Live cleverly.

No man can be a god or a supreme-soul *(svayambhū* or *paramātmā)* until he attains the attributes of the true God. Only the one who has attained conquest over attachment *(rāga)*, whose discourses benefit all, who is an Omniscient – *sarvajña, kevalī* – is worthy to be called a supreme-soul *(paramātmā)*. No man mired in the dirt of evil can ever be called a supreme-soul. Only those who have the attributes of the supreme-soul are worthy of our reverence; the namesakes are not worthy of our reverence, worship, adoration, and salutation.

Attainment of sound knowledge of the scripture is possible only through right reverence, constant study, and teaching of the guru. Never be negligent in the study of the

PREVIEW ONLY

scripture; sound knowledge of the scripture can only be attained by the man who shuns negligence. No happiness in the world is greater than the study of the scripture and no misery is greater than ignorance. The knowledgeable man incessantly draws supreme happiness out of his knowledge; no misery appertaining to the gain or loss of any external entities can disturb his peace of mind. The worthy knower of the scripture does not experience any kind of suffering, agony or distress. He knows well the causes of their origination and the ways of controlling these and, therefore, maintains uninterrupted happiness. He knows the way to keep all external dispositions away from his soul.

विचार
THE THOUGHTS

## २०३. प्रत्येक द्रव्य स्व-धर्म युक्त है

दुःखी तो वे होते हैं, जो परभावों में आत्म-भाव स्थापित करते हैं। स्व-परान्तर का ज्ञाता दुःखी कभी नहीं होता, इसलिए प्रत्येक जीव को स्व-पर में अन्तर का ज्ञान होना चाहिए। जिनकी दुःख मुक्ति की इच्छा ही नहीं वे ही लोग लोक में स्व-पर के कर्ता बनकर व्यर्थ का क्लेश उठाते हैं और संक्लेश भाव से मरण कर नरकादि दुर्गतियों के पात्र बनते हैं तथा वहाँ की असहनीय पीड़ा को प्राप्त होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं का बोध करे। कषाय भाव उभय लोक में महा-दुःख का कारण है, ऐसा सत्यार्थ है। उस सत्यार्थ पर सम्यक्-विचार करो; व्यर्थ में क्लेश का वेदन मत करो। श्रुत पर भी विशिष्ट विचार करने की आवश्यकता है। जो भी लिखित श्रुत है वह पुद्गल का परिणमन है, भाषा वर्गणा जड़ है, स्वयं में वह स्वानुभव-शून्य है। जिसमें स्वानुभूति है वह चैतन्य है, जो कि सम्पूर्ण वर्ग-वर्गणाओं से भिन्न है।

जड़-धर्मी नहीं है आत्मा, वह तो चैतन्य धर्मी है। सत्-चिद्-आनन्द भूत जो द्रव्य है वही तो आत्म-द्रव्य है, जो कि शब्द से, इन्द्रियों से अर्थ बोधक है। सर्व द्रव्यों का ज्ञाता द्रव्य आत्मा ही है। अन्य जड़ द्रव्यों में ज्ञाता-दृष्टा भाव का पूर्ण अभाव है। चैतन्य आत्मा नहीं भिन्न द्रव्यों का मिश्रभाव, आत्मा का आत्मीय चैतन्य है - ज्ञान-दर्शन स्व स्वभाव। पर-संयोगों से जीव नहीं है ज्ञाता-दृष्टा, ज्ञान-दर्शन आत्मा का आत्म-भाव है, अन्य भाव आत्मा का भाव नहीं है, जड़त्व-भाव का आत्मा में अभाव है। आत्म द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों में है अचैतन्यत्व भाव, जड़त्व भाव।

जड़ द्रव्यों में स्व-पर के संवेदन भाव का अभाव है, विचार-विमर्श शक्ति मात्र चैतन्य वस्तु में ही है, अन्य अचैतन्य वस्तुओं में विचार व विमर्श करने की शक्ति नहीं है। जीव द्रव्य की यही है एक असाधारण शक्ति, इसलिए जीव द्रव्य सर्व द्रव्यों का उपयोग, उपभोग कर लेता है। ज्ञात-अज्ञात भाव, प्रेरित-अप्रेरित भाव से सर्व द्रव्य जड़त्व, शून्यत्व भाव में हैं। जीव चैतन्य-अचैतन्य स्वरूप है; ज्ञान-दर्शन अपेक्षा चैतन्य; प्रमेयत्वादि भाव से अचैतन्यत्व गुण युक्त भी है, फिर भी पुद्गलादि द्रव्यवत् जड़त्व भूत नहीं है।

आत्म-द्रव्य ज्ञान-दर्शन, सुख, वीर्य गुण युक्त है। जीव में अचैतन्य द्रव्यों जैसा जड़ धर्म नहीं है। अचैतन्य द्रव्य दो भागों में विभक्त है, एक पुद्गलभूत रूपी जड़ जो कि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुण युक्त है वही मूर्तिक कहलाता है। दूसरे जड़ द्रव्य वे हैं, जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुण रहित हैं, अमूर्तिक हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये जड़ हैं, अचैतन्य अवश्य हैं, परन्तु पुद्गल नहीं हैं। इनकी

सत्ता है, परन्तु चाक्षुष नहीं हैं अचाक्षुष ही हैं और त्रैकालिक अचाक्षुष ही रहेंगे। अपने गुण धर्म का नाश नहीं करेंगे, त्रैकालिक अमूर्त गुण युक्त ही रहेंगे। जीव द्रव्य भी स्वकीय जीवत्व का त्याग नहीं करेगा, यह ध्रुव सत्य है। कोई भी द्रव्य गुणान्तर, द्रव्यान्तर पररूप नहीं होता।

स्व-स्व धर्म का अभाव किसी भी द्रव्य का नहीं होता, प्रत्येक द्रव्य स्व-धर्म युक्त त्रैकाली रहता है। जगत् के अज्ञ प्राणियों के द्वारा जो असत्य दूषित मार्ग खड़ा किया जाता है उस पर प्रज्ञ पुरुषों को सदा सम्यक् विचार करना चाहिए। कुछ लोग जन सामान्य को भ्रम में डालकर धन संचय कर रहे हैं। वे जड़ द्रव्यों से चैतन्य की उत्पत्ति, चैतन्य से जड़ की उत्पत्ति का प्रपंच रच रहे हैं, नियत अंगों से बाह्य अंगों से मनुष्यों का जन्म करा रहे हैं, भिन्न जाति के जीवों से भिन्न जाति के जीवों की उत्पत्ति करा रहे हैं, मनुष्यों से पशुओं के आकार की सन्तान दिखा रहे हैं, अर्द्धशरीर मनुष्य का अर्द्ध तिर्यंच का (यह क्रिया कुभोग भूमि में तो होती है, परन्तु मनुष्यों में कर्म भूमि जीवों में नहीं होती) दिखा रहे हैं। व्यर्थ की कल्पनाओं पर विश्वास न करें, स्व-सत्यार्थ पर अचल रहें। स्व-सिद्धान्तों पर अचल जन ही धर्म सिद्धान्तों की रक्षा कर पायेंगे, स्व-जीवन के सुखों को त्याग कर ही धर्म रक्षा हो सकती है। जिसके जीवन का निर्णय है स्व-तन, धन-धरती सुरक्षित रहे, शेष से क्या प्रयोजन, ऐसा विचार करने वाला क्या अन्य धर्म व धर्मात्माओं के हित में सम्यक् विचार कर पायेगा? ऐसा कभी भी संभव नहीं है। वर्तमान जीवन का सुख मात्र जीवन तक ही रहता है। ज्ञानी-जन ऐसा जीवन जीते हैं जिससे मृत्यु के बाद भी धर्म का उद्योतन करने वाला यश जीवन, चारित्र जीवन सदा जीवित रहे, उसका क्षय कभी न हो। सम्राट् चक्री भरत जैसा कुशल संचालक देश में हुआ जिसके नाम पर आज भी भरत क्षेत्र भारत देश के नाम से विख्यात है। तीर्थंकर आदिनाथ का पवित्र जीवन के गुणों का यशोगान वेद, पुराण, आगम, ग्रन्थ, शास्त्र सभी कर रहे हैं। वह जीवन मृत तुल्य है जिसका अपयश दिगान्त में व्याप्त हो, क्षण-क्षण आत्म ग्लानि में जा रहा हो, सामान्य से सामान्य व्यक्ति उपहास कर रहा हो। जब जिन्हें आप समझाते थे वे ही आपको समझाने आ जायें तब विचार करना होगा कि हमारा स्तर कितना गिर चुका है, ऐसा दिन क्यों आया? पल-भर विचार करो, आत्मा के अन्दर कितनी पीड़ा होगी? चित्त विचार नहीं कर पा रहा, प्राण भी नहीं निकल रहे, हृदयघात भी नहीं हो रहा, लेकिन अपयश के प्राण क्यों टिके हैं? यश के साथ प्राण भी क्यों नहीं निकल गये? सामान्य जीवों के हृदयघात भी हो रहे, पर मुझ पापी, अपयशी का अपघात, हृदयघात भी नहीं हो रहा। लगता है आयु कर्म भी उन्हें पूर्ण दण्ड देना चाहता है जिन्होंने तीव्र अशुभ कर्म किये हैं।

जो व्यक्ति लोक-विरुद्ध, धर्म-विरुद्ध, राष्ट्र-विरुद्ध, समाज-विरुद्ध, स्वात्म-विरुद्ध कार्य कर लेते हैं, चाहे ज्ञात भाव से, चाहे अज्ञात भाव से, उनका जब अशुभ कृत्य लोक में व्याप्त हो जाता है, रहस्य जगत् के सामने आता है अथवा स्वयं ही मार्दव-आर्जव, सरल भाव से विचार करता है तब जो आत्म-पीड़ा, आत्म-निन्दा, आत्म-गर्हा, आत्मालोचना होती है वह शब्दों में ख्यापित नहीं की जा सकती है। संताप की पीड़ा संतापित जीव जानता है, या फिर सर्वज्ञ देव। मित्र! अशुभ कृतक चाहे किसी पद पर हो, पर पीड़ा तीव्र होती है।

अहो कर्म की विचित्रता! उस पर मृत्यु भी करुणा नहीं करती कि शीघ्र ही वर्तमान में संताप की पीड़ा से मुक्त करा दे, इस पर्याय का वियोग करा के उसके अशुभ कृत्य से उत्पन्न संताप की पीड़ा का अन्त हो जाए। विचारों की शृंखला बहुत लम्बी होती है। संताप की पीड़ा में क्षण-क्षण में नवीन-नवीन

PREVIEW ONLY

विचार आते हैं, कभी स्व-निन्दा के तो कभी पर-निन्दा के, कभी आत्म-हत्या के, तो कभी पर-हत्या के। सत्य, दया, करुणा, अहिंसा के विचार वहाँ जन्म ही नहीं लेते। सज्जन है तो हृदय में प्रतिक्षण स्व-निन्दा की तीव्रता से जी रहा है, जीने के भाव को समाप्त कर चुका है, मृत्यु की इच्छा करता है, परन्तु शक्ति की क्षीणता में आत्मघात भी नहीं कर पाता है। ऐसे व्यक्ति के बारे में अधिक विचार नहीं करना चाहिए। वह तो बिचारा स्व-परिणामों से दुःखी है, उसे दुःख देने की आवश्यकता नहीं है। पुनः-पुनः किसी के अपराधों की वार्ता भी अपराधी का घात है। वह भूलना चाहता है, सुनाने वाले उसे स्मृति उत्पन्न करा कर दुःख दे रहे हैं। अपराधी किसी को मुख दिखाने के योग्य नहीं है फिर भी सबके सामने जी रहा है, आश्चर्य का विशेष विषय है। संतापित को प्रताड़ित करना मृतक पर प्रहार के तुल्य है, इसलिए ज्ञानी-जनों का कर्त्तव्य है, मत मारो मरे को, स्वयं क्लेश से क्लान्त है, क्षण-क्षण में जिसे स्वकृत पाप-परिणाम कष्ट दे ही रहे, फिर उस प्राणी को बार-बार उसके कृत्यों का स्मरण करा कर मानसिक पीड़ा मत दो। क्या मालूम किस दिन बदल जाये। सबके दिन एक से नहीं होते, सब दिन भी एक से नहीं होते।

प्रत्येक जीव के सुख-दुःख संसार में कर्म सापेक्ष हैं। कर्म निरपेक्ष अनन्त-सुख परमात्मा के पास ही है, अन्य सामान्य जीवों के पास नहीं होता। सामान्य जीव चाहे तो उसको प्राप्त कर सकता है। उसके लिए प्रकट परमात्मा जैसा धर्म पुरुषार्थ निष्काम भाव से करना होगा। प्रत्येक मलिन वस्त्र में स्वच्छता निहित है, जल एवं सोडा के प्रयोग से वस्त्रगत मलिनता वस्त्र से भिन्न हो जाती है, वस्त्र पूर्ण स्वच्छता युक्त देखा जाता है। उसी प्रकार से प्रत्येक भव्य जीव परमात्मा है। परमात्म-तत्त्व की सम्यक् उपलब्धि के लिए भेद-विज्ञान, आत्म-ध्यान नीर की आवश्यकता है। जब कर्म मल आत्म-द्रव्य से पूर्ण पृथक् हो जायेगा, तब आत्म-द्रव्य पूर्ण स्वच्छता को प्राप्त कर लेगा, आत्मा शुद्ध निकल परमात्मा पद को प्राप्त कर लेगा।

## 203 - Every substance has its own attributes

Unhappy are the men who establish a sense of ownership with externalities. The man who knows the difference between the self and the others is never unhappy; therefore, acquire this knowledge. The men who do not wish to get rid of their suffering, imagine themselves to be the doers of the self and others and thereby continue to experience suffering. They die with dispositions of anxiety and, therefore, attain evil states of existence – like the infernal-being – and suffer excruciating pain appertaining to that state. Every man should know himself. It is an established truth that passions *(kaṣāya)* are the cause of great suffering, here and hereafter. Think about it and do not experience avoidable suffering. Think specially regarding the scripture. The written scripture is the transformation of the matter *(pudgala)* and the spoken words are again particles of inanimate matter, rid of sensitivity. That which has sensitivity has the attribute of consciousness *(caitanya)*, and it is different from all matter and matter particles.

The soul *(ātmā)* is not inanimate; it has the attribute of consciousness *(caitanya)*. The substance of soul is happiness-all-round and is understood through words and senses. The soul only is the store of knowledge of all substances. All other substances lack completely the attributes of the knower and the seer. The conscious soul is not a mix of other substances; its inherent nature is consciousness *(caitanya)*, marked by knowledge

*(jñāna)* and perception *(darśana)*. The attributes of knowledge and perception in the soul are not due to any other substance; the soul is not inanimate in nature. Except the soul, other five substances *(dravya)* are non-conscious and inanimate.

Inanimate objects are rid of sensitivity of the self and others. The power of thinking lies only in conscious soul, not in any other substance. This is the specific quality of the substance of soul and due to this special quality it is able to use and enjoy other substances. From the points-of-view of known-unknown and directed-undirected all substances exist unconcernedly. The soul has attributes of consciousness *(caitanyatva)* and lifelessness *(acaitanyatva)* from different standpoints – it has consciousness in respect of its attributes of knowledge *(jñāna)* and perception *(darśana)*, and lifelessness in respect of its attribute of power-of-being-known *(prameyatva)*. Still, it is not inanimate like the substance of matter *(pudgala)*.

The substance of soul *(ātmā)* has the qualities of knowledge *(jñāna),* perception *(darśana)*, happiness *(sukha)*, and strength *(vīrya)*. It is not inanimate. Inanimate substances are of two kinds: one, the substance of matter *(pudgala)* that has the attributes of touch *(sparśa)*, taste *(rasa)*, odour *(gandha)* and colour *(varṇa)* and is with-form *(mūrtika)*; two, other inanimate objects that are rid of attributes of touch, taste, odour and colour and are without-form *(amūrtika).* The substances of the medium-of-motion *(dharma)*, the medium-of-rest *(adharma),* the space *(ākāśa)* and the time *(kāla)*, though inanimate, are not like the substance of matter *(pudgala).* These have existence *(sattā)* but are not visible and will remain so forever. These will never get rid of their own quality and shall maintain their attribute of without-form *(amūrtika).* The substance of soul, too, will never get rid of its attribute of consciousness; this is an eternal truth. No substance ever gets transformed, in terms of attributes or substance, into any other substance.

Self-attributes of all substances remain intact in the three times. Knowledgeable men should think seriously about the misleading path that has been promulgated in the world by uninformed men. Some people are accumulating wealth by misleading others. They preach origination of consciousness out of inanimate objects; origination of inanimate objects out of consciousness; birth of humans out of unnatural body-organs; birth of a particular species from an altogether different species, like the birth of an animal from humans; birth of half-human and half-animal (this may happen only in regions of perverse enjoyment – *kubhogabhūmi*). Do not put your faith on useless and imaginary preaching; remain steadfast with the truth. Only the men who remain steadfast with the true doctrine will be able to protect the dharma. The dharma can be saved only through renunciation of own enjoyment. Will the man whose only aim is to protect own body, wealth and land, without concern for others, be able to think about the well-being of other dharma and men of dharma? The happiness acquired in this life remains till this life only. Knowledgeable men lead a life that bestows glory and conduct even after death. In India was born the able administrator and the king-of-kings Bharata; our country is known as 'Bhārata' after his name. Praise of the pious life of *Tīrthaṃkara* Ādinātha can be found in many ancient texts including the *Vedās, purāṇa, āgama, grantha* and *śāstra*. There is no life in the man who gets disgrace from all directions, spends every instant of life in remorse, and ridiculed by all. When even those whom you used to counsel come forward to counsel you, think about your extreme downfall. Imagine the misery of your soul at that time. You start questioning as to why you are not getting death, may be

PREVIEW ONLY

through a heart-attack; and why your extreme disgrace is not dying? What use it is to live with disgrace? Many people are dying every day due to heart-attack, why not I, the evil and disgraceful man? It seems the age-karma too punishes those who had engaged in grave inauspicious karmas.

The men who act, knowingly or unknowingly, against the world, dharma, nation, society, or own-soul, and when the secret of their evil act becomes known to the world or when they think on their own with humility and simplicity, the kind of suffering, disgrace, self-censure and self-criticism they have to face is known either to themselves, or to the Omniscient Lord. Whatever may be the status of the man, evil acts cause grave suffering.

The karmas have amazing ways! Even death does not show mercy towards an evil man as the end of the present life may bring him some relief from the agony caused by his evil act. The chain of the thoughts is very long. When under agony, new thoughts appear each moment; sometimes one thinks of self-censure and sometimes of censuring others, sometimes one thinks of suicide and sometimes of killing others. The thoughts of truth, kind-heartedness, compassion and non-injury remain absent. If the man is reflective, he may be experiencing utter remorse, may be wishing death, but due to lack of strength may not be able to commit suicide. Do not think too much about such a man; he himself is experiencing great misery. Repeated mention of the evil acts of a man is a cause of injury *(hiṃsā)*. The man is not able to face anyone but is still alive. To cause further agony to a man who is already suffering is akin to attacking a dead body. Do not remind him repeatedly of his evil acts. You don't know when he may change himself. The days of all are not alike, and all days are not alike.

Happiness and misery of a soul are related to its karmas. Only the supreme-soul *(paramātmā)*, and no one else, possesses the karma-independent infinite happiness. Ordinary souls too can reach that stage. That will require effort on their part, without any longing, as resorted to by the 'with-body' supreme-soul *(paramātmā)*. A dirty cloth has cleanness inherent in it; with the use of water and washing soda the dirt is removed and the cloth gets absolutely clean. In the same way, every worthy soul potentially is a supreme-soul *(paramātmā)*. To attain the status of supreme-soul you will require cleaning-water in form of discriminatory-knowledge and meditation. When the dirt of the karmas gets completely washed off from the soul, it becomes utterly pristine and attains the state of the 'body-less' supreme-soul (the *Siddha*).

विचार
THE THOUGHTS

## २०४. विचारों की विशालता - सम्यक्-समाधान के लिए

विचारों की विशालता विश्व एकता को स्थापित करने में समर्थ है, विचारों की संकुचितता विश्व एकता को खण्डित करने में समर्थवान् है। जब व्यक्ति के विचारों में एकता स्थापित होती है, तब अखण्डता का विस्तार होता है। जब व्यक्ति के विचारों में भिन्नता खड़ी हो जाती है, तब अखण्डता भी समाप्त हो जाती है। खण्ड-खण्ड में बँटा व्यक्ति लौकिक एवं पारमार्थिक विकास का विनाश कर लेता है। संसार का कोई भी प्राणी खण्ड-खण्ड में शान्ति, आनन्द की श्वास नहीं ले सकता। शान्त भाव से विचार करके लोक व्यवस्था के बारे में विचार करें तो व्यक्ति की प्रत्येक समस्या का समाधान

सहज हो जाता है। अनेकान्त दृष्टि से वस्तु व्यवस्था देखना चाहिए, एकान्त की आँख से कभी भी सत्यार्थ का निर्णय नहीं हो सकता। जब-तक निर्णय नहीं, तब-तक समस्या का कोई समाधान भी नहीं है। समाधान के बिना शान्ति का मार्ग भी प्रशस्त नहीं होता। जगति पर समाधान अवश्य ही निकालना चाहिए। जो समाधान नहीं निकालता, वह स्व-पर को शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। समस्या खड़ी करना कठिन नहीं है, कठिन तो समस्या का सम्यक्-समाधान है। जिसे सपक्ष, विपक्ष दोनों ही स्वीकार करे, वही सम्यक्-समाधान है। एक पक्षीय समाधान नहीं है सम्यक्-समाधान।

## 204 - Broad thinking for right solutions

World peace can only be established through broad thinking; narrow thinking results in dividing the world. The man with narrow thinking causes destruction of worldly and spiritual development. Such a man cannot breathe with peace and happiness. If you reflect peacefully on the world system, you can easily find solutions to all problems. All systems in the world should be seen in light of non-absolutism *(anekāntavāda)*; absolutistic *(ekānta)* view does not lead to right decision. When the decision is not right, the solution to the problem cannot be arrived at. Without solution to the world problems, world peace cannot be attained. Solutions to problems have to be found. Without finding solutions to problems, one cannot bestow peace to self and others. It is not difficult to create a problem, to find the right solution is the challenge. Right solution is accepted by all sides, those for and against. One-sided solution is not the right solution.

विचार
The Thoughts

## २०५. अनेकान्तवाद-स्याद्वाद से सम्यक्-समाधान

अनेकान्तवाद-स्याद्वाद विद्या एक ऐसी विद्या है जो विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान करने में समर्थ है। विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र यदि पक्ष, धर्म, पन्थ, सम्प्रदाय के राग-द्वेष से मुक्त होकर विश्व-बंधुता की विद्या-सम्पन्न अनेकान्तवाद-स्याद्वाद की शिक्षा को स्व-स्व राष्ट्र के विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में स्थान दें, तो सम्पूर्ण विश्व का महान् हित हो जाएगा। व्यक्तियों में उभय पक्ष का विचार करने की शक्ति प्रकट होगी, एक पक्षीय दृष्टि से ही विचार नहीं करके उभय-पक्षीय विचार की दृष्टि की उपलब्धि होगी। जब व्यक्ति उभय पक्षों पर अनेकान्त दृष्टि से देखेगा तब व्यर्थ के विसंवाद को कोई स्थान ही नहीं मिलेगा। परस्पर मैत्री भाव स्थापित होगा, विचार करने की शक्ति प्रकट होगी। धैर्य, शौर्य का भी उद्घाटन होगा, उन्माद, उतावलेपन पर भी नियंत्रण होगा। अपने विचारों के साथ-ही अन्य के विचार श्रवण की क्षमता वृद्धिमान होगी। जहाँ विसंवाद होने वाला था, वहाँ मात्र संवाद रहेगा।

सम्पूर्ण जन समुदाय की बात सुनना चाहिए, फिर सम्पूर्ण बातों की समीक्षा करके निर्णय निकालना चाहिए। इस बात के लिए गम्भीरता अनेकान्त दृष्टि से ही आयेगी और कथन स्याद्वाद से ही होगा। लोक में अन्य कोई उपाय नहीं है जो नाना पक्षों को सुनकर सम्यक्-समाधान कर सके। लोक में सम्प्रति कितने ही विकल्प चलें, अन्त में निर्णय अनेकान्त सापेक्षता के सिद्धान्त पर ही होता है। शासन किसी का भी हो, शासक कोई भी हो, परन्तु समाधान जिन शासन से ही होता है। अन्त में माध्यस्थता का आलम्बन लेना ही पड़ता है। विशिष्टता प्राप्त करने के लिए शुद्ध अनेकान्तवाद-स्याद्वाद का

PREVIEW ONLY

अधिगम अध्ययन प्रारम्भ करा ही देना चाहिए। एक ही समय में प्रत्येक वस्तु अस्ति शक्ति के साथ नास्ति शक्ति सम्पन्न है। बिना अस्ति के नास्ति नहीं, बिना नास्ति के अस्ति भी नहीं है। अस्ति की नियता तो नास्ति शक्ति ही कराती है, यह गूढ़ तत्त्व समझने के लिए अनेकान्त-स्याद्वाद का आश्रय लेना ही पड़ेगा। श्रमणों एवं श्रावकों, विद्वानों, श्रेष्ठीगणों, सामान्य प्रजा-जनों का कर्त्तव्य है, स्व-स्व शक्ति का प्रयोग कर शासकों से जगत् हितार्थ अनेकान्तवाद-स्याद्वाद विद्या के अध्यापन हेतु शिक्षक तैयार करें और सम्पूर्ण छात्रों को इसका अध्ययन कराया जाये। शिक्षा पद्धति में अनेकान्त-स्याद्वाद स्थापित किया जाये जिससे छात्रों का बौद्धिक विकास हो, परस्पर में मैत्री भाव का उदय हो। एकान्त पक्षीय बुद्धि विश्व विनाशक है। ऐसी विनाशक बुद्धि का अभाव हो, सार्वभौम बुद्धि का प्रकाश हो, अहिंसा परम ब्रह्म का जीवन हो, घर-घर में मैत्री भाव हो, शत्रुता का विनाश हो, प्राणि-मात्र पर दया भाव हो।

## 205 - The doctrines of non-absolutism and conditional-predication for right solutions

The doctrines of non-absolutism *(anekāntavāda)* and conditional-predication *(syādvāda)* offer solutions to all problems of the world. If all nations of the world, giving up their attachment for particular side, sect or dharma, give place to the doctrines of non-absolutism and conditional-predication – which promote world-brotherhood – in the curricula of their colleges and universities, the world stands to gain immensely. Men will get the ability to think from all sides shunning absolutistic view. This ability will end all useless disputes. Mutual brotherhood will be promoted and the ability to think-through will get strengthened. Qualities of patience and valour will get promoted; insanity and restiveness will get controlled. The ability to listen to others will be enhanced. Disputes will get converted into discussions.

One mist listen to all and the decision should be taken after considering all points-of view. This ability will manifest through adoption of the doctrine of non-absolutism and the expression will be through the doctrine of conditional-predication. There is no other way in the world that can offer right solution in midst of multiple points-of view. There may be many standpoints but ultimately the right decision is arrived at by relying on the doctrine of relative non-absolutism *(anekāntavāda)*. Whosoever is the ruler, only the reign of Lord Jina offers the right solution. In the end, one must depend on mediation. In order to attain excellence, start forthwith the study of the doctrines of non-absolutism and conditional-predication. At any given time, a single object has both attributes, affirmation *(asti)* and negation *(nāsti)*. Without affirmation there is no negation and without negation there is no affirmation. The presence of affirmation itself signifies the presence of negation and to understand this profound concept one must take refuge in the doctrines of non-absolutism and conditional-predication. It is the duty of the ascetics, householders, scholars, men-of-repute and general citizens to prepare teachers with the ability to teach the doctrines of non-absolutism and conditional-predication so that the whole student community is able to learn these. These doctrines should be a part of the education system so as to develop intellectual level of the students and to promote mutual brotherhood. The intellect with absolutist *(ekānta)* view is world-destructive. May such destructive intellect be eliminated, holistic intellect be promoted, all lead the

PREVIEW ONLY

life of supreme and spiritual non-injury *(ahiṃsā),* brotherhood prevail in every home, enmity be wiped out, and there be compassion toward all living-beings!

विचार
THE THOUGHTS

## २०६. स्वयं के विचारों में समीचीनता एवं असमीचीनता का निर्णय करें

प्रत्येक साधु पुरुष का परम कर्त्तव्य है कि वह देश में एवं स्व-हृदय में मैत्री-भाव स्थापित का सम्यक् विचार करे। राष्ट्र सर्व-समाज, सर्व-सम्प्रदायों के प्रति मैत्री भाव स्थापित करके ही चल पाएगा। एक सम्प्रदाय के पक्ष से राष्ट्रहित सम्भव नहीं है। राष्ट्र भक्ति जिसके हृदय में है वह पक्षों का विकास नहीं चाहता, वह सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास चाहता है। प्राणिमात्र पर करुणा दृष्टि के साथ जीवन धारा बनायें, क्रूरता का भाव जिनके अन्दर रहा है, वे राष्ट्र नेता अन्त को प्राप्त हुए हैं। कारुण्य भाव के साथ जिन्होंने राज्य किये हैं उनके राज्य दीर्घ समय तक जीवित रहे और राजाओं के मरण के बाद भी उनका यश जीवित रहा है। जिन्होंने वक्रता के साथ क्रूर भाव से देश पर राज्य किये, वे मध्य में ही मरण को प्राप्त हुए, साथ में अपने यश को भी साथ ही ले गए। क्रूर शासकों के मरण के साथ उनके यश की भी मृत्यु हो जाती है, अपयश अवश्य ही जीवित रहता है। क्रूरता कभी भी आनन्ददायिनी नहीं हुई। पर को कष्ट में डालकर स्वयं प्रसन्न होना यह तो तीव्र अज्ञान-प्रद प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति में जो आनन्दित होते दिख रहे हैं, वे संवेदन-शून्य जड़-बुद्धि हैं, उनके अन्दर आर्द्रता का अभाव है, कारुण्य-शून्य शुष्क जन हैं।

संवेदन-शून्य लोगों में जीव-द्रव्य के प्रति कोई संवेदना नहीं है। धर्म-संस्कृति संवेदनशील लोगों के पास ही सुरक्षित रह सकती है। जो स्व के सुख-दुःख जैसा दूसरे के सुख-दुःख पर भी सम्यक्-विचार करने की क्षमता रखते हैं, स्व-दुःख को दूर करने जैसी भावना रखते हैं वैसा ही अन्य के दुःख-सुख पर जिनका विचार सम्यक् है, ऐसा जीव ही अधिकार के योग्य है। अयोग्यों के विचार भी अयोग्य ही होते हैं।

अपने जीवन के विचारों को लोक में मुख से बाहर निकालने के पूर्व पूर्ण विचार करना चाहिए। जब-तक स्व भावों के अन्दर विचार हैं, तब-तक स्व परिणामों में कितने ही विचार परिवर्तित किये जा सकते हैं, परन्तु विचार लोक के मध्य आते ही नियता को प्राप्त हो जाते हैं, अब पुनः-पुनः परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। लोक विषय बात को पकड़ने वाला है, इसलिए प्रेक्षावान् लोग सर्वप्रथम स्वयं के विचारों की परीक्षा करते हैं। स्वज्ञान में स्वयं के विचार सर्वजन हिताय हैं या नहीं, मैत्रीवर्धक हैं या मैत्री भाव नाशक हैं, गुणीजनों में प्रमुदित भाव प्रकट कराने वाले हैं या असन्तोष भाव प्रकट कराने वाले हैं? इन विचारों पर समीचीन विचार अवश्य ही करना चाहिए। स्वयं के विचारों में समीचीनता एवं असमीचीनता का निर्णय करना प्रज्ञ पुरुष का धर्म है, ऐसा चिन्तवन करना चाहिए। यदि हमारे विचारों में कालुष्य भाव आ रहा है तो मौनपूर्वक समय निकालना चाहिए।

स्व-वचनों के माध्यम से अन्य किसी का हृदयघात न हो जाये। वाचनिक हिंसा से आत्मरक्षा करना चाहिए तथा वाचनिक अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। पर के परिणामों की विशुद्धि की रक्षा के भाव हर एक धर्मात्मा जीव को प्रतिक्षण रखना चाहिए। जैसे तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ पुरुष परकीय द्रव्य-प्राणों की रक्षा करता है, उसी प्रकार से भाव-प्राणों की रक्षा करता है। द्रव्य-भाव प्राणों का

PREVIEW ONLY

सम्यक् रक्षक परमानन्द को प्राप्त होता है। अकालुष्य भाव का आनन्द आलौकिक आत्मानन्द है, कालुष्य भाव का क्लेश महाकष्ट-प्रद है।

सम्पूर्ण जनमेदिनी शान्ति, आनन्द की आकाँक्षी है। भय, विस्मय, अहंकार, ममकार के भावों को साधु-पुरुष साधु नहीं समझते, असाधु जन ही अहंकार, ममकार में रस लेते हैं। जो शून्यता में सुख है वह अन्य में नहीं है। लोकरंजन में उन्मत्त व्यक्ति शून्य स्वभाव पर विचार नहीं कर पायेगा। वे बिचारे प्राणी क्या विचार कर पायेंगे एकत्व-विभक्त की अनुभूति का, जो विषयों के पंक में डूबे हैं? पंक में फंसा गज स्वतन्त्रता का आनन्द नहीं ले पाता, उसी प्रकार से विषय-कषाय के कर्दम में लिप्त पुरुष परभावों से पूर्ण शून्य एकत्व-विभक्त चिद्-पिण्ड ज्ञानघन भगवान्-आत्मा का आनन्द नहीं ले पाता है; जबकि आत्मा पूर्ण ज्ञानघन शुद्ध-पिण्ड है। एकत्व एकत्व-मात्र है स्वभाव में, पर-उपचारों से पूर्ण भिन्न है।

जब-जब व्यक्ति पूर्ण भिन्नत्व, पृथक्त्व पर विचार नहीं करेगा, तब-तक अपने जीवन में आध्यात्मिक जीवन का रस नहीं ले सकता। विषयों के विष से मुक्त नहीं हो पायेगा। विषय-विष सेवन काल में मधुर दिखते हैं परन्तु तृप्तिकारक नहीं हैं, अन्त में कठिनता से छूटते हैं, वह भी केवल पुरुषार्थी के। किसी-किसी के अन्तिम श्वास तक छूटते भी नहीं हैं। ऐसे कोटि-कोटि भव जीव ने नष्ट किये हैं परन्तु आत्मशान्ति को प्राप्त नहीं कर पाया। आत्मशान्ति परभावों से पूर्ण भिन्न होकर विरक्त भाव से विषय परिग्रह का पूर्ण त्याग करने पर मिल पायेगी, अन्य कोई मार्ग नहीं है; न भूत में था, न वर्तमान में है, न भावी काल में ही होगा। यह ध्रुव सत्य है, इसमें कोई भी अन्य विकल्प नहीं है।

श्रेष्ठ वस्तु की उत्पत्ति, संरक्षण, संवर्धन पर एवं उत्कृष्ट पात्र पर विचार करना चाहिए। बिना विचार करके जो व्यक्ति अपना निर्णय घोषित करता है वह पश्चाताप को तो प्राप्त होता ही है, साथ में लोक के उपहास को भी प्राप्त होता है, इसलिए तत्त्वज्ञानी विज्ञ पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे सर्वप्रथम कार्य के लाभ-हानि, उत्पत्ति पर विचार करें। बिना विचार किए किसी कार्य को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। हानि से आत्मरक्षा चाहते हैं तो जगति पर बड़े-बड़े लोग प्रेक्षा-विहीन कार्य का निर्णय कर सर्व नाश को प्राप्त हुए हैं, वे चाहे लौकिक कार्य हों चाहे परमार्थभूत कार्य हों। जो स्व-प्रज्ञा विचार में असमर्थ हैं, उन्हें अन्य विशिष्ट साधु पुरुषों से विचार कराना चाहिए जो तद्-विद्या के कुशल ज्ञाता हों एवं प्रज्ञा सम्पन्न हों। प्रज्ञा शून्य जनों से कभी भी स्व-पर विषय पर विचार नहीं लेना चाहिए।

जो ज्ञान-वृद्ध हों, अनुभव-वृद्ध हों, इन्द्रियजयी, व्यसन मुक्त, यशवान् एवं बलवान् हों, धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग के कुशल ज्ञाता हों तथा मोक्ष पुरुषार्थ के लिए समीचीन श्रद्धा के साथ जिनका लक्ष्य हो, अबाधित जीवन हो, साथ-ही सर्वमान्य हों, ऐसे व्यक्ति ही विचार देने योग्य हैं। उनके विचारों को आस्थापूर्वक श्रवण करना चाहिए। विचारशील के विचारों का उपहास न करें, चाहे आप उनके अनुरूप चल पायें या न चल पायें, ज्ञानी-जनों के ज्ञान का सम्मान अवश्य करें। अपनी धुन में ही संलग्न न रहें, न सर्वथा सर्व कार्यों में अपने को श्रेष्ठ ज्ञाता ही समझें।

सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी किसी-न-किसी विषय का ज्ञाता हो सकता है, वह व्यक्ति प्रसिद्ध हो अथवा न हो। कीर्ति, प्रसिद्धि, यश:कीर्ति नामकर्म के उदय पर हैं, औदयिक भाव हैं।

ज्ञानी पुरुष सर्वत्र गुणवानों का सत्कार करते हैं। पुष्पों से न सही, आस्था की आँख से भी सम्मान होता है। वात्सल्य भाव से, प्रीतिपूर्वक दो मधुर शब्दों से, शब्द-सुमनों से सम्मान कर देना चाहिए,

उसमें लोभ नहीं करना चाहिए। उदार भाव से समय पर कार्य किया जाये, तो वह कार्य श्रेष्ठ हो जाता है, इसमें कोई शंका नहीं है। जो व्यक्ति शब्द-सुमन का प्रयोग करना नहीं जानता, बाह्य सुमन पुष्पों का प्रयोग कितना ही करे, वह अपने जीवन में उत्तीर्णता प्राप्त नहीं कर पाता है और किसी को अपना नहीं बना पाता है। जगति पर वह न स्वयं किसी का बन पाता है, सर्वथा पर होकर ही अपमानित जीवन जीता है। यदि अन्य को अनन्य बनाना है, तो मधुर भाषण, प्रिय भाषण, श्रुति सुखद वचनों का विचार कर प्रयोग करो; मधुर वाणी से जगत् प्रभावित हो जाता है।

## 206 - Decide whether your thoughts are laudable or not

It is the sacred duty of every noble man to establish, in the nation and in his own mind, the disposition of brotherhood. The nation can function smoothly only when there is brotherhood between all societies and all sects. It is not possible to run a nation through bias towards a particular sect. The man dedicated to the nation would want the progress of the whole nation, not of particular sections of society. Let the well-being of all living-beings be the basis of your thoughts; the reigns of all cruel leaders have ended soon. The rulers with compassion have lived long and their glory continued even after their death. The rulers who had adopted slyness and cruelty were eliminated, along with their glory. Their dishonour, however, lived long. Cruelty has never been able to bestow happiness. It is the height of ignorance if someone tries to draw happiness out of putting others to suffering. The men who resort to such behaviour are insensitive and dim-witted; they are dry men, lacking all moistness of compassion.

Insensitive men have no feelings for the soul-substance. The dharma and culture can remain safe only in the hands of sensitive people. Only the men who consider others' happiness and misery as their own and who think of mitigating others' sufferings like they do in their own case are worthy of governance. Unworthy men are beset with unworthy thoughts.

Think seriously before you make your thoughts public. So long as your thoughts are within you, you can change your orientation, but once these come out in public it is not possible to do so. Therefore, knowledgeable men test the veracity of their thoughts before making these public. Think inevitably about aspects like: do your thoughts give rise to the well-being of all, do these advance mutual brotherhood, and do these bring a sense of delight in noble men? It is the dharma of the intelligent man to take decisions only after reflecting on the laudability or otherwise of his thoughts. If your thoughts are getting mired with evil dispositions, pass your time in silence.

Your thoughts should not cause heartache to anyone. Protect yourself from injury by speech of others and follow the dharma of not injuring others by your speech. Every man of dharma should incessantly make effort not to soil the purity of the thoughts of others. The worthy man who knows the reality of substances takes care not to cause injury to the material-life-principles *(dravya-prāṇa)* as well as the psychic-life-principles *(bhāva-prāṇa)* of others. Such a man experiences divine, supreme-happiness. The happiness appertaining to the pristine dispositions is divine; evil dispositions cause great suffering.

All men on earth desire for peace and happiness. Noble men do not approve of the dispositions of fear, surprise, self-consciousness *(ahaṃkāra)* and sense-of-mine *(mamakāra)*; these are of interest only to the wicked men. The happiness that is in emptiness is not present elsewhere. The man engrossed in worldly pleasures will not be

PREVIEW ONLY

able to think about emptiness. How can the pitiable men, drowned in the mud of sensual-pleasures, think about the experience of the unified-self *(ekatva-vibhakta)*? As the elephant entangled in mud cannot experience the delight of independence, in the same way the person embroiled in mud of sensual-pleasures *(viṣaya)* and passions *(kaṣāya)* cannot experience happiness appertaining to the unified, impregnable supreme-soul that is just a mass of pure knowledge, devoid of all external dispositions. In its nature the soul is just one, different from all encumbrances.

So long as the man does not think about the wholly differentiated, unified-self, he cannot taste the spiritual life. He will not be able to get rid of the poison of sensual-pleasures. At the time of involvement the sensual-pleasures may seem charming but these fail to provide any lasting delight; these are difficult to get rid of and that too only by a knowledgeable man. For some men, sensual-pleasures operate till the end of life. An individual soul has wasted millions and millions of lives chasing these, without getting any peace. Soul-peace can only be obtained on getting rid of all external dispositions, leaving behind all inclination for sensual-pleasures; there is no other way – it never was, it is not, and it never will be. This is an inviolable fact; no ifs and buts.

Think about the origination, steadiness, growth and worthy recipient of your laudable output. Those who make their decisions public without proper thinking have not only to repent later but become subjects of ridicule. It is the duty of knowledgeable men to first think about the gain and loss arising out of their decision and only then they should proceed ahead. Many influential men have caused their destruction by resorting to thoughtless deeds, whether in worldly or spiritual fields. Those who lack such wisdom should take help from laudable and noble men who have sound knowledge of the subject matter. Do not take help from ignorant men.

Only the men who have sound knowledge and experience, have controlled their senses, are rid of addictions, are glorious and powerful, have good knowledge of the threefold pursuits of the dharma, wealth and family, aim for the attainment of liberation with right faith, lead a life without impediments, and are accepted by all, are worthy to provide you right counsel. Listen to their thoughts with faith. Respect them and do not ridicule their thoughts even if you are not able to act accordingly. Do not be self-centred and do not consider yourself as the most worthy and knowledgeable man in all fields.

Even the most ordinary-looking man can be an expert in a particular field; he may or may not be well-known. Fame, prominence, renown and glory depend on the fruition of the name-karmas *(nāma-karma)*.

Knowledgeable men always welcome and revere the men of virtues. Reverence is done not necessarily by flowers but also through the eyes of faith. Don't be conservative in showing reverence; do it with affectionate disposition and by a couple of sweet words that act like flowers. If done liberally and at an appropriate time, this gesture yields great results. The man who, though apt in use of external flowers, but does not know how to use sweet words that act like flowers does not succeed in life and is unable to win over hearts. He remains aloof and lives a life of disgrace. If you wish to win over hearts, use only words that are sweet, loving and pleasant to the ears. The world gets impressed by sweet words.



PREVIEW ONLY

## २०७. विचारधारा को मोह-शून्य करो

द्रव्य तो द्रव्यत्व भूत है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये पर्यायें व्यवस्था हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त सत् है। जो सत् है वही द्रव्य का लक्षण है। गुण, पर्याय सम्पन्न द्रव्य होता है; यह जिनागम का त्रैकाली सूत्र है, इसमें कोई भी शंका का स्थान नहीं है। उत्पाद, व्यय को गौण कर मात्र ध्रौव्यता को देखें तो द्रव्य एकमात्र द्रव्य ही दिखता है। स्व सत्ता का नाश नहीं करता तथा पर सत्ता को ग्रहण भी द्रव्य नहीं करता। साथ ही सत् का नाश नहीं होता तथा असत् का उत्पाद भी द्रव्य दृष्टि से नहीं होता। पर्याय दृष्टि से सत् का नाश भी होता है तथा असत् का उत्पाद भी होता है, यह त्रैकालिक वस्तु का वस्तुत्वभूत धर्म है, इस स्वभावभूत धर्म को नाश करने की शक्ति परमात्मा के अन्दर भी नहीं है। अपितु यह समझो कि परमात्मा ने ही अपने अनन्त-ज्ञान केवलज्ञान से वस्तु धर्म ऐसा ही जाना है। जो है सो है, अन्य रूप नहीं है, अन्यथा रूप भी नहीं है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानकर तत्त्व श्रद्धान करो। स्व-आस्था को दृढ़ कर, कर्म सिद्धान्त को समझकर, स्वात्मा को चारित्र गुण से विभूषित कर मोक्षमार्ग प्रशस्त करो। व्यर्थ के विचारों से प्रभावित होकर स्वात्मा की वंचना नहीं कर लेना। मानव देह की प्राप्ति दुर्लभ है, इसे सामान्य न समझकर विनोद में नष्ट मत कर लेना, नर देह को विपरीत आस्था, विपरीत ज्ञान, विपरीत आचारण में लगाकर मानव पर्याय का अपमान नहीं करना, वरना यह नर देह का अपमान है। जिन जीवों ने मात्र पापों में जीवन नष्ट कर दिया वे अभागे हैं। धन्य वे पुरुषोत्तम जो नर देह को प्राप्त कर सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त कर, स्व-पर कल्याण कर, अन्त में परम निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं। वही मार्ग चुनना चाहिए जो स्व-पर कल्याण का कारण है, अकल्याणकारी मार्ग का त्याग करना ही श्रेयो मार्ग है।

प्रत्येक कार्य की उत्तीर्णता-अनुत्तीर्णता व्यक्ति के विचारों पर आलम्बित है। उत्साहित पुरुषार्थी विचार उत्तीर्णता प्रदान कराते हैं, सम्यक् दैव एवं पुरुषार्थ के साथ। उत्साह-हीन, पुरुषार्थ-शून्य विचार वाले के हाथ में सदा अनुत्तीर्णता ही आयेगी, ऐसे व्यक्ति का दैव (भाग्य) भी रूठ जाता है, वो भी साथ नहीं देता। भाग्य भी सम्यक्, यथार्थ, समीचीन, अनुकूल पुरुषार्थ से निर्मित होता है। विकासाकांक्षी का कर्त्तव्य है वो स्व-विचारों को पठन-पाठन, लेखन एवं श्रेष्ठ चिन्तवन में लगाकर रखे। जीवन में प्रमाद, उत्साह-हीनता को अपने विकास का सदा-सदा शत्रु मानें, मित्र कभी न मानें, विकास उसके चरणों में निवास करेगा।

सुख के लिए जिओ, मोह के लिए नहीं। मोह-युक्त व्यक्ति इन्द्रिय-सुख का वेदन भी शान्ति से नहीं कर पाता। सुखी होने का मार्ग खोजना चाहिए, दुःखी होने के मार्ग से विवेकपूर्वक आत्मरक्षा करनी चाहिए। जिन्हें इन्द्रिय सुख भोग का ही विवेक विचार नहीं है वे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन कैसे कर पायेंगे? विषय की गूढ़ता समझो, जिस इन्द्रिय के सुख में जिस क्षण जीव रहता है उस क्षण अन्य इन्द्रियों के मोह विकल्प से अपने को दूर कर लेता है। एक इन्द्रिय सुख में अन्य इन्द्रियों के सुख पर भी यदि विचार कर रहा है तो वह तद् इन्द्रिय विषय के सुख का वेदन नहीं कर पायेगा, मात्र क्लेश-ही-क्लेश पायेगा। विवक्षा-अविवक्षा पर विचार करना चाहिए, तभी जीव सुखानुभूति प्राप्त कर पायेगा, अन्यथा नहीं। गूढ़ रहस्यमयी विषय को समझने की चेष्टा करो, प्रज्ञा का सम्यक् प्रयोग करो, अन्यथा विपरीत मार्ग पर गमन हो जायेगा और निज आत्मा का अकल्याण भी हो जायेगा। इन्द्रिय सुख भोग निर्मोही-जीव के नहीं होता, ऐसा सिद्धान्त वचन है। भोगों में निर्मोह कैसा, निर्मोह में भोग कैसा?

ऐसा प्रश्न हो सकता है, परन्तु हमें मोह की विवक्षा समझना चाहिए। परिपूर्ण निर्मोही तो आत्म सुख का ही वेदन करता है, अन्य विषय भोगों का वेदन नहीं करता, मात्र-मात्र स्व शुद्धात्मा का ही वेदक है, किसी भी इन्द्रिय विषयक भोगों का वेदक नहीं है। भव्यवर अशुभ भावों से सदा आत्म रक्षा करता है और निज भावों में रमण करता है। भाव दशा सम्भालने पर भव दशा स्वत: ही सम्भल जाती है। तप-साधक, आत्माराधक तप कर घोर कष्टों को निमंत्रण देता है, तपस्या के काल में कायक्लेश को प्राप्त होता है, फिर भी अंत:करण में खेद भाव को प्राप्त नहीं होता। कष्ट भोगने पर बन्ध को प्राप्त नहीं होता, कारण एक ही है निर्मोह भाव। मोह में कष्ट है, निर्मोह में आनन्द है, इसलिए मोह हटाओ, कष्ट मिटाओ; और मोह बढ़ाओ, कष्ट बढ़ाओ।

सुख, क्लेश व्यक्ति की स्वकीय विचारधारा में है। स्व विचारों को मोह दुर्गन्ध से सुरक्षित कर लो, आत्मा दु:खों से मुक्त हो जायेगी। मोह ग्रसित, संग्रह वृत्ति, सभी को अपना बनाने की बुद्धि जहाँ होगी वहाँ तो कष्टों के बादल छायेंगे-ही-छायेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या? अहो जीवों! सुख-दु:ख स्व के हाथ में है। अपनी विचारधारा को मोह-शून्य करो, आत्मा आनन्दपूर्ण हो जायेगी।

## 207 - Make your thoughts delusion-free

The substance *(dravya)* has its own nature or substantiveness. Origination *(utpāda)*, destruction *(vyaya)* and permanence *(dhrauvya)* are its modes *(paryāya)*. Existence *(sat)* is the mark of the substance. That the substance is endowed with qualities *(guṇa)* and modes *(paryāya)* is the eternal doctrine expounded in the scripture; there is no scope for any doubt in this. When substance *(dravya)* is seen only from the standpoint of permanence *(dhrauvyatā)*, putting qualities *(guṇa)* and modes *(paryāya)* in the background, we see just the substance. Substance never is without existence *(sat)*; also, it does not adopt existence. From the standpoint of substance, there is no destruction of existence *(sat)* and no origination of non-existence *(asat)*. From the standpoint of modes, there is destruction of existence *(sat)* and origination of non-existence *(asat)*. This is the eternal doctrine outlining the nature of the objects; no one, not even the supreme-soul *(paramātmā)*, has the power to violate this nature of the objects. In fact, the supreme-soul *(paramātmā)* has expounded this as the nature of the objects through his infinite-knowledge *(kevalajñāna)*. 'It is, as it is'; not of any other nature, nothing else. Know the true nature of the objects and have faith on it. Strengthen your faith, understand the doctrine of the karmas, adorn your soul with laudable conduct and tread the path to liberation. Do not deceive own soul by accepting useless thoughts. To attain human birth is extremely difficult; do not take it as normal and waste it. Do not disregard your human birth and the man's body by adopting wrong faith, wrong knowledge and wrong conduct. Unfortunate are the men who waste their lives in evil activities. Hail the great men who after adopting the trio of right faith, knowledge and conduct engage in well-being of self and others and ultimately attain the supreme state of liberation *(nirvāṇa)*. Select the path that results in the well-being of self and others and shun the path that leads to devastation.

The success or failure of every task depends on the man's thoughts. The men of vigour entertain high thoughts with right fate *(daiva)* and own-deed *(puruṣārtha)*. The man without vigour and own-deed is bound to fail; his fate, too, does not patronize him. Fate, in fact, is the outcome of right, true, laudable and worthy own-deed. The man who

desires self-development should keep his thoughts engaged in good reading, writing and reflecting. Consider negligence and dejection as enemies of development; if you do this, growth will kiss your feet.

Live for happiness, not for delusion *(moha)*. The man with delusion cannot enjoy uninterruptedly even sensual-pleasures. Scout the path to happiness; protect yourself from the path that leads to misery. How can men who do not have proper discernment in enjoying sensual-pleasures experience the sense-independent happiness? Reflect on the seriousness of the subject; the moment the man enjoys the pleasure of a particular sense, he keeps at bay the pleasures of other senses. While experiencing the pleasure of one sense, if the man shifts his thought to another sense-pleasure, he will lose the pleasure of the sense he was engaged in and get agonized. Only when the man thinks about what is desirable and what is not will he be able to experience happiness. Use your intellect and try to understand this profound concept, otherwise you will choose the wrong path that will harm your soul. It has been proclaimed in the doctrine that the non-deluded man does not get involved in sense-pleasures. Where is non-delusion in midst of sense-pleasure and where is sense-pleasure in midst of non-delusion? Understand the true import of delusion. The wholly non-deluded man experiences only the happiness appertaining to own pristine-soul; he does not experience any kind of sense-pleasures. He protects himself from all inauspicious dispositions and concentrates on own-soul. As you take care of your dispositions, your future state-of-existence is automatically taken care of. The man practising austerities and soul-purity welcomes severe afflictions and grave bodily torments but still does not let his soul get distressed. What is the reason? The answer is his non-delusion. There is suffering in delusion and happiness in non-delusion. Get rid of your delusion to get rid of suffering; enhance your delusion to enhance your suffering!

Happiness and misery lie in man's thoughts. Protect your thoughts from the stink of delusion to free your soul from misery. Where there is delusion – inclination to collect possessions, and to make everybody your own – the dark clouds of misery are bound to loom. There should be no doubt in this. O souls! Happiness and misery lie in your own hands. Make your thoughts delusion-free and your soul will experience happiness.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## २०८. विचारों की भद्रता के साथ निर्मल आचरण आवश्यक

महापुरुषों की अर्चना के साथ महापुरुष कैसे बना जाता है, इस बात पर भी विचार करना चाहिए। मात्र पूज्यों की पूजा पर ही लक्ष्य रहेगा तो देश, राष्ट्र, विश्व व स्वयं का हित नहीं हो पायेगा। हित के स्थान पर हिंसा भाव एवं शत्रु भाव का जन्म होगा, पूज्य के राग में सम्प्रदाय की दीवाल मात्र खड़ी रह जायेगी, अखण्ड भारत के भारतीय भाव की हत्या हो जायेगी, मानव धर्म का लोप हो जायेगा, अखण्ड भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे, विदेशियों का साम्राज्य छा जायेगा। मैत्री भाव का विनाश, शत्रु भाव का विकास पग-पग पर दिखाई देगा, मानवता नगर, डगर-डगर बिलखेगी, कोई किसी का सहयोग नहीं कर पायेगा, स्वार्थ पूर्ण जीवन धारा बन जायेगी, धर्म, सम्प्रदाय के नाम पर वात्सल्य विलीन हो जायेगा। धर्म मानवता के प्राण न जा पायें उसके पूर्व ही एक नियत सम्यक् विचार कर लेना चाहिए,

सामाजिक धार्मिक व्यवस्था के साथ एकता व समरसता पूर्वक मानवता की प्रीति अखण्ड कैसे रहे? परस्पर के नाशक न बनें, परस्पर के उपकारक बनें। नीमच जिले के रत्नगढ़ (मध्य प्रदेश) में जो उदाहरण है वह जीवित रहे; वहाँ पर एक ही मन्दिर परिसर में जैन मन्दिर है जिसमें दिगम्बर एवं श्वेताम्बर बिम्ब एक साथ हैं, इतना ही नहीं, साथ-ही विष्णु मन्दिर भी है। तीनों परम्परा के भक्तगण स्व-स्व परम्परा का अनुकरण करते हैं, परन्तु विसंवाद नहीं करते। मानव जाति पर प्रथम विचार होना चाहिए, तदोपरान्त अन्य उपजातियों पर, स्व-स्व उपजाति का ध्यान रखने पर मानव जाति पर एकत्व स्थापित करके साथ-ही प्राणिमात्र पर करुणा बनाकर चलना, तभी विचारों में भद्रता का जन्म होगा।

विचारों की भद्रता ही मानवता की सही पहचान है। विचार, विचार तक ही नहीं निर्मल आचरण की ओर भी गमन करें। विश्व वसुन्धरा को अहिंसा परम ब्रह्म का उपासक बनायें, धर्म के नाम पर हिंसा, क्रूरता का उद्भव न हो, समरसता से ही श्रेष्ठता का परिचय हो। मानव, मानव के प्रति आस्थावान् बना रहे। शस्त्र ही क्या अपितु रक्त आँख भी किसी पर कोई न उठाये, सभी मानव धर्म निभायें; यही मंगल उपदेश, मंगल भावों के साथ विश्व भी मंगलमय हो, अमंगल भाव का सदा-सदा के लिए अभाव हो, अभाव हो, अभाव हो। मैत्री भाव का सदा-सदा के लिए सद्भाव हो सद्भाव हो, सद्भाव हो।

प्रत्येक क्षेत्र में असमर्थ लोग मार्ग को दूषित करते हैं, स्व पुष्टीकरण के लिए नवीन-नवीन मार्ग खोजते हैं, तो अपयश प्राप्त करते हैं, पाते कुछ नहीं है। जो असमर्थ है परन्तु पुण्यवान् है व प्रभाववान् है वह दूषित मार्ग को अदूषित घोषित कर उसे राज-मार्ग बतलाकर जगति की वन्दना कर स्व-पर का अनुपकार कर दुर्गति का पात्र बनता है। इसलिए प्रभाववान् की चर्या, क्रिया, आचरण, भोजन, पेय पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। प्रभावशील की आचरण पद्धति दूषित हुई तो एक साथ ही कोटि-कोटि सामान्य जन प्रभावित होकर सत्यार्थ-बोध को छोड़ असत्यार्थ ज्ञान को सत्यार्थ मानकर वैसा आचरण प्रारम्भ कर अनादि-अनन्त सम्यक् मार्ग का त्याग कर उन्मार्ग को स्वीकार कर लेंगे।

लौकिक प्रभाव के साथ आध्यात्मिक भाव पर भी विचार करना चाहिए। जो बाह्य प्रभाव को देखकर ही किसी व्यक्ति से प्रभावित होते हैं उन्हें वर्तमान एवं भविष्य में पश्चाताप तो करना ही पड़ेगा और परलोक भी नियम से बिगड़ेगा। लौकिक प्रभावना पूर्व पुण्योदय से है, वर्तमान जीवन कैसा जी रहा है उसे अवश्य ही देखना चाहिए। ऐसा स्थान चुनो जिसे परिवर्तित न करना पड़े। जो लोग पार्टियों अथवा संघटनों को बदलते रहते हैं, राजनीति में उन्हें लोग अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। यदि कदाचित् आप ऐसे स्थान पर फँस गये जहाँ जाना उचित नहीं था, वहाँ पर के प्रभाव को छोड़कर स्वयं ही इतने प्रभाववान् बन जाओ जिससे दूषित स्थान भी भूषित हो जाये और दूषित लोग साधु पुरुष हो जायें।

परमार्थ दृष्टि से विचार किया जाये, तो यों समझना किसी व्यक्ति को वैराग्य हो गया, वह गृह त्याग कर किसी साधु समूह में प्रवेश ले रहा है, उसे भी सर्वप्रथम वहाँ की चर्या, क्रिया, पन्थ, सम्प्रदाय, परम्पराओं के बारे में पूर्ण ज्ञान कर लेना चाहिए। बिना परीक्षा, प्रेक्षा के किसी भी साधु समुदाय में प्रवेश नहीं लेना चाहिए। धर्म, संघ, समाज, परिवार, राष्ट्र की हँसी से आत्मरक्षा करना चाहिए। निर्दोष संयम का पालन करते हुए सत्यार्थ मार्ग का पोषण करना ही श्रेष्ठ है। असत्यार्थ की पुष्टि में जीवन, बुद्धि एवं समय का नाश नहीं करना चाहिए। यदि मार्ग पूर्ण अनुचित है, तो फिर उसे

PREVIEW ONLY

छोड़ देना चाहिए।

जीवन के गूढ़ रहस्यों पर विचार करो। रहस्यमय जीवन जीने वाले रहस्यवादी सिद्धान्तों का अनुभवन रहस्यमयी ही है। लौकिक जीवन जगत् के चाक्षुष है, रहस्यमय जीवन लौकिक जनों के लिए पूर्ण अचाक्षुष है। वह जीने वाला ही जानता है अथवा सर्वज्ञ परमात्मा जानता है, अन्य बिचारे छद्मस्थ क्या समझें? उन्हें तो स्वयं जीवन के गूढ़ रहस्यों का कोई भी ज्ञान नहीं है।

## 208 - Pristine conduct is essential along with laudable thoughts

Along with adoration of great personages, think about the ways to attain greatness. Just their adoration will not bring about the well-being of the country, nation, world and self. Instead of causing well-being, this will generate dispositions of injury *(hiṃsā)* and enmity, walls will get erected between sects, the pride of being the citizen of a united India will vanish, humaneness will become a casualty, India will get divided into many parts, and foreign powers will rule India. Erosion of brotherhood and growth of enmity will be seen at every step, humanity will wail in every town and dwelling, no man will support another man, all will become utterly selfish, and mutual affection will get sacrificed in the name of dharma and sect. Think before all this takes place as to how you can maintain unity and mutual affection among all in midst of various customs and dharma. Don't become mutual destroyers, become mutual benefactors. Learn from this illustration: in a place called Ratangarh in Neemach district of Madhya Pradesh, there is a single Jaina temple in which there are idols of both *Digambara* and *Śvetāmbara* sects; not only this, there is a temple of Lord Viṣnu in the same campus. Devotees of all three sects follow their own rituals without any conflict. Think first about humanity, then about individual castes. Take care of your caste but not at the expense of humanity; have compassion towards all living-beings and your thoughts will become laudable.

Laudable thoughts are the marks of humaneness. But the thoughts must be translated into pristine conduct. The whole world should adore the supreme, spiritual dharma of non-injury *(ahiṃsā)*; there should be no cruelty or injury *(hiṃsā)* in the name of dharma; and the disposition of equanimity should become the mark of human excellence. There should be trust among all men. Forget about the use of weapons, no man should see another man with eyes turned red in anger. May all follow the dharma of humanity; this is the auspicious preaching. May propitious dispositions make the world a propitious place, may all evil dispositions come to an end for all time to come, and may there be mutual brotherhood among all.

In every field, incapable men vitiate the path; in their quest for getting acceptance they invent new ways of leading life but are ultimately rejected and dishonoured. But when the incapable man who advocates the wrong path as the right path is with merit *(puṇya)* and also influential, he causes great harm to mankind. Due to his deeds he attains evil state of existence hereafter. Pay special attention to the lifestyle, activity, conduct, and eating habits of such a man. If the conduct of the man is vitiated, he will misguide millions of men to the wrong path and they will likely adopt the unworthy path.

Along with the worldly influence, think about the spiritual disposition of the man you are getting impressed with. Those who get moved by the external influence of a man will have to not only repent in the present and the future but are destined to get an evil

PREVIEW ONLY

state of existence hereafter. Worldly influence of the man is due to the fruition of his past meritorious karmas; see also his present lifestyle. Affiliate yourself with a place that you will not have to change later. Those who keep on changing their affiliation are not trustworthy. If, by mistake, you get affiliated to an unworthy place make yourself influential enough to make the place worthy and the people associated with it noble.

See the same from the spiritual angle. Suppose a man with a sense of world-renunciation wants to join a congregation of ascetics. He should first obtain complete information about the ways, activities, observances, sect-affiliation, conventions and rituals of the congregation. To save the dharma, congregation, society, family, and nation from ridicule, do not enter any congregation of ascetics without first examining it thoroughly. Follow unblemished self-restraint and reinforce the true path. Do not waste your life, intellect and time by according approval to the wrong path. If the path is totally unworthy, leave it.

Reflect on the deep secrets of life. The experiences of those who live life based on the secretive doctrine too are secretive. The worldly life is visible; the secretive life is totally invisible to the worldly men. The secretive life is known only by the man leading such a life or by the omniscient supreme-soul *(paramātmā)*; others, still engaged in worldly affairs, will not understand its deep secrets.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## २०९. अध्यात्म का स्वरूप योगीगम्य

एक रहस्यवादी मानव भावात्मक स्वरूप में प्रवेश कर आन्तरिक अनुभूतियों का पूर्ण आनन्द लेता है। लोक की दृष्टि में सामान्य रूप से दिखेगा, परन्तु अध्यात्म का स्वरूप तो अनुपम है, जो कि योगीगम्य ही है, शब्दों का विषय नहीं है। स्वभाव वैद्य-वैद्यक भाव है। परभावों के ग्रहण-त्याग का विकल्प जहाँ पर नहीं है, एकमात्र चैतन्य स्वरूप की लीनता ही अविशेष है। मान-अपमान का कोई भाव परमयोगी को स्पर्श ही नहीं कर पाता, आन्तरिक युद्ध स्व-स्वभाव के साथ सदा चलता रहता है।

## 209 - Only the supreme-ascetics experience the spiritual nature

The spiritual man, after entering deep inside own self, experiences real happiness appertaining to spiritualism. He will look ordinary from outside but the nature of spiritualism is unique and is known only by the supreme-ascetic *(yogī)*; it is beyond description in words. The nature of the self becomes both, the object-of-knowledge *(vaidya)* and the knower *(vaidyaka)*. No inquisitiveness *(vikalpa)* remains in respect of any externality and the only engagement is with own conscious-self. The dispositions of honour and dishonour are not able to even touch such a supreme-ascetic; his only battle is with the nature of the self.

विचार
THE THOUGHTS

## २१०. स्वभाव भाव, ज्ञायक भाव

परभावों में निज भाव यदि प्रवेश भी करना चाहें, तो शीघ्र भेदविज्ञान के माध्यम से उन्हें आत्मप्रदेशों से पृथक् कर दिया जाता है, और जीव स्व-स्वभाव में स्थिर होकर स्वदेह, स्व-वचन एवं

स्व–मन को भी स्व से भिन्न ही वेदता है। राग–द्वेष भावों को भी अशुद्ध निश्चय नय से आत्मा का विभाव भाव देखता है, परन्तु स्वभाव नहीं मानता। स्वभाव–भाव तो एकमात्र ज्ञायक भाव ही है, चैतन्य द्रव्य अपने चैतन्य भाव का कभी भी त्याग नहीं करता। कर्म सापेक्षता में आत्मा अशुद्ध है, कर्म निरपेक्षता से देखें तो त्रैकालिक स्व–स्वभाव में एकत्वभूत है। चैतन्य द्रव्य में पर का प्रवेश नहीं, पर–द्रव्य में चैतन्य का प्रवेश नहीं। स्व–स्व स्वभाव का परित्याग कोई भी द्रव्य किसी भी काल में नहीं करता, यह त्रैकालिक ध्रुव सिद्धान्त है, इसमें कोई भी संशय नहीं है।

### 210 - The soul's own-nature is the disposition of knowledge

In case any external dispositions enter the space-points of the soul, these are put away from the self using the science of discrimination. The self is stationed in the self and it considers even own body, speech and mind as external entities. It considers, from the impure-transcendental-standpoint *(aśuddha niścaya naya)*, the dispositions of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)* as nature of the soul but still these are not its true nature. The only true nature of the soul is its disposition of knowledge. The conscious substance never ever gets rid of its nature of consciousness. In relation to the karmas the soul is impure, but when seen independent of all karmas, it is one with its eternal own-nature. No external substance can enter into the animate substance and the animate substance cannot enter into any external substance. No substance ever sheds its own nature. This is the timeless doctrine; entertain no doubt about it.

विचार
The Thoughts

### २११. शुद्ध–अशुद्ध द्रव्य का ज्ञान

परद्रव्य का निमित्तभूत प्रभाव अवश्य होता है। अशुद्ध उपादान के साथ जब उपादान पूर्ण शुद्ध होता है, तब फिर शुद्ध उपादान जीव द्रव्य पर अन्य निमित्तों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। चैतन्य उपादान एक बार पूर्ण शुद्ध होने के उपरान्त पुनः अशुद्धता को प्राप्त नहीं होता। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य एवं कालद्रव्य चार द्रव्य सर्वथा शुद्ध ही रहते हैं। एक पुद्‌गल द्रव्य है जो अशुद्ध से शुद्ध भी हो जाता है और शुद्ध से पुनः अशुद्धता को प्राप्त कर लेता है। जीव द्रव्य एक बार कर्म शून्य होकर जब शुद्ध हो जाता है फिर कभी भी अशुद्धता को प्राप्त नहीं होता, चाहे धर्म की हानि हो, चाहे असुरों की वृद्धि हो, चाहे अधम–नीच–मिथ्या अभिमानी मिथ्यादृष्टि जीवों की वृद्धि हो, परन्तु एक बार शुद्धता (परमात्म–पद) को प्राप्त जीव संसार में भ्रमण करने नहीं आता, दग्ध बीजवत्। जैसे जला हुआ बीज अंकुरित नहीं होता, वैसे ही कर्म बीज के जल जाने पर, नष्ट हो जाने पर, परमात्मा पुनः–पुनः अवतार को प्राप्त नहीं होता। भिन्न आत्माएँ ही परमात्मा जैसा सम्यक्–पुरुषार्थ करके तीर्थंकर, अरहन्त अवस्था को प्राप्त कर विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

### 211 - The knowledge of the pure and impure substance *(dravya)*

One substance *(dravya)* may be the instrumental *(nimitta)* cause of transformation in another substance. However when the substance-of-soul *(jīva dravya)* attains absolute purity, no external instrumental-cause can affect it. Once the conscious soul-substance attains its state of purity, it does not get to impurity yet again. The substances of the

PREVIEW ONLY

medium-of-motion *(dharma)*, the medium-of-rest *(adharma)*, the space *(ākāśa)* and the time *(kāla)* maintain always their state of purity. Only the substance of matter *(pudgala)* attains the state of purity from impurity and, again, from the state of impurity to purity. Once the soul-substance becomes rid of all karmas and attains absolute purity, it does not become impure again. Even if the world gets bereft of the dharma, the number of demons increases, and the number of evil, lowly and deluded men also increases, the soul that has become pure does not come back to the world. As a burnt seed never gets sprouted, in the same manner, when the seeds of karmas have been burnt, the pure soul-substance does not take birth in the world again. Different souls put effort – same as put by the earlier supreme-souls *(paramātmā)* – and attain the status of the *Tīrthaṃkara* or the *Arhanta* who then promulgate the true path that leads to the well-being of the world.

विचार
THE THOUGHTS

## २१२. ईश्वर पुनः नहीं आता

जब-जब संसार में मृत्युलोक अर्थात् मध्यलोक में धर्म की हानि होने लगती है, आचरण का विघात होने लगता है, कु-दृष्टियों, मिथ्यादृष्टियों की वृद्धि होने लगती है, धर्म-धर्मात्माओं के प्रति ग्लानि-भाव आने लगता है, तब-तब मध्यलोक के ढ़ाई द्वीप में अरहन्त परमात्मा बनने वाले महापुरुष का जन्म होता है। वही महापुरुष जगत् को वस्तु के वस्तुत्व का सत्यार्थ-बोध प्रदान करते हैं। ऐसे अनन्तानन्त जीव ईश्वर, परमात्मा बन चुके हैं, और आगामी काल में भी बनेंगे। एक ही जीव भगवान् नहीं होता, एक ही ईश्वर नहीं है। जो-जो रत्नत्रय धर्म को धारण कर सम्यक्-पुरुषार्थ करते हैं, वे सब भगवान् बनते हैं, निर्वाणश्री को प्राप्त होते हैं। ऐसा परमात्मा के प्रति सम्यक्-विचार करो, विपरीत अज्ञतापूर्ण विचार परमात्मा के प्रति मत करो।

## 212 - God does not come back to the world again

When the world, i.e., the human-region *(manuṣyaloka* or *nṛloka)* that comprises two and a half continents of the middle-world *(madhyaloka)*, undergoes the loss of the dharma, increase in the number of men with perverted or wrong-belief *(mithyādṛṣṭi)*, and detestation for the men of dharma, at that time, a great man that is destined to become an *Arhanta* or the supreme-soul *(paramātmā)* takes birth. That great man preaches to the world the true nature of the objects – *vastutva*. Infinite-times-infinite such men have already become supreme-souls and will continue to become so in the future. A single soul has not become God; there is no single God. All souls that adopt the dharma of the three-jewels *(ratnatraya)* and exert in the right manner become God as these attain liberation *(nirvāṇa)*. Think justly about God in this manner; don't think ignorantly.

विचार
THE THOUGHTS

## २१३. प्रज्ञ-पुरुष के ज्ञान का प्रयोग

प्रज्ञ-पुरुष धर्म-जाति के साथ गुणवत्ता का भी ध्यान रखता है। जो व्यक्ति आपके धर्म का नहीं है, साथ-ही आपकी जाति का भी नहीं है परन्तु देश हित, देश विकास, और प्राणिमात्र का हितचिन्तक,

PREVIEW ONLY

विशिष्ट ज्ञान-प्रज्ञा-प्रतिभा सम्पन्न, तटस्थ, ऐसा प्रज्ञ-पुरुष है, तो देश हित के लिये उसका लाभ लेना चाहिए। उसकी प्रज्ञा से देश में विशिष्ट शक्ति का संचार करना चाहिए। जल किसी कूप का हो, मीठा-मधुर-सुपाच्य है, तो उससे पिपासा शान्त करना चाहिए। अग्नि किसी भी स्थान पर प्राप्त होती हो तो जैसे भोजन के लिए प्रयोग करते हैं उसी प्रकार क्षयोपशम प्रज्ञा-विशिष्ट की प्रज्ञा से ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। धर्म-जाति का विकल्प न करके विद्या प्राप्ति का विचार करना चाहिए एवं स्वकीय धर्म और जाति की मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। सत्यार्थ-बोध पूर्वक वस्तु के वस्तुत्व पर सम्यक्-विचार सदा-सदा करते रहना चाहिए।

### 213 - Make use of the knowledge of the man of wisdom

An intelligent man not only sees in the other person his dharma and caste but also the qualities. If the other man, not belonging to your dharma or caste, but is thoughtful about the progress of the country and well-being of all living-beings, has special knowledge and intellect, and is unbiased, make use of him for the benefit of the country. Use his wisdom to bring forth new energy in the country. Water from any well, so long as it is sweet, soothing and easy-to-digest, can be used to quench thirst. Fire from any source can be used to cook food. In the same way, accept knowledge from any man who has high level of destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)* that results in special wisdom. Observe the customs of your own dharma and caste but here think about the acquisition of knowledge. Think constantly about the true nature of the objects – *vastutva*.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

### २१४. निरामिष भोजन मानव धर्म

यदि धर्म, जाति में करुणा, जीव दया, शील, संयम, चारित्र पर समीचीन दृष्टि नहीं है, क्रूरतायुक्त प्रवृत्ति जिस स्थान पर हो, तो वहाँ पर सत्यार्थ विचार कर दया, अहिंसा, करुणा, सदाचार युक्त स्थान को आत्म हित के लिये स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो सके, तो वहाँ पर भी अहिंसा आदि गुणों का पालन स्वयं करना चाहिए तथा भव्य जीवों से भी कराना चाहिए।

धर्म तो दया ही है। पशु एवं नरसंहार कोई धर्म नहीं होता, प्राणि-मात्र की रक्षा करो तथा शुद्ध शाकाहार, मांस-मदिरा शून्य भोजन करो। विश्व मैत्री का भाव रखो, यही यथार्थ मानव धर्म है। क्रूरता, निशाचरवृत्ति मानव धर्म नहीं है। मानव धर्म तो स्व-पर की रक्षा करना है। वही मानव है, जो मानवीयता से युक्त है, जिसके अन्दर करुणा पूर्ण पूरित है, जो पशु एवं पक्षियों के प्रति करुणा रखता है, निःस्वार्थ भाव से भोजन-पानी देता है। जो उन्हें ही पाल कर, पका कर खा जाये यह मानवता नहीं है। मछली, मुर्गे, बकरे, अण्डे; ये नहीं मानव का भोजन। मानव का भोजन निरामिष भोजन। मानव धर्म मनुष्य जाति मात्र की रक्षा नहीं, अपितु प्राणि-मात्र की रक्षा करना है। अहो मानव! स्व-मानवीयता की रक्षा कर मांस पिण्ड का त्याग कर, शुद्ध आहार, शुद्ध विहार, शुद्ध विचार मानव धर्म की रक्षा के तीन दिव्य रत्न हैं, उन्हें सुरक्षित रखो।

### 214 - To eat only the vegetarian food is the human dharma

If at a particular place, the dharma or caste is rid of compassion, kindness, chastity,

self-restraint and conduct, and the inhabitants are cruel, there too find a place where you can follow your virtues of kindness, non-injury *(ahiṃsā)* and compassion for own well-being. Encourage other worthy souls to follow these virtues.

Kindness is the dharma. Killing of animals and men is not dharma. Protect all living-beings and have food that is pure vegetarian, rid of flesh and wine. Maintain the disposition of world-brotherhood; this is the true dharma. Tendencies of cruelty and of night-wandering animals are not dharma. The dharma consists in protection of self and others. He only is a man who has humaneness, is full of compassion even for animals including birds, and offers selflessly food to others. The man who instead cooks these animals for food has no humaneness. Fish, chicken, goat and egg are not food for men. Food for a man should be vegetarian. The dharma of the man is to protect all living-beings, not just humans. O man! Protect your humaneness by shunning the consumption of flesh; accept the three divine gems – pure food, pure walk and pure thought – for protecting your human dharma.

विचार
THE THOUGHTS

## २१५. पर-उपहार तथा पर के द्वारा प्रशंसा से आत्मरक्षा करो

आत्मविकास एवं देश-विकास पर विचार करो। दोनों का विकास चाहिए तो उपहार और आत्मप्रशंसा से आत्मरक्षा करना सीख लो। जहाँ पर के उपहार स्वीकार किये, पर से प्रशंसा का मृषा श्रवण किया, वहाँ आप कठोरता का व्यवहार नहीं कर पायेंगे। उपहारों ने आपको दबा लिया, भेंटों से भेंट क्या हुई, तुम्हारी स्वयं से भेंट समाप्त हो गई। जो आपका प्रशंसक है वह भी आपको दबा रहा है। इसका बोध आपको समय पर हो जायेगा, यदि समझदार हुए तो। नासमझ बने रहे तो सर्वस्व नाश के बाद समझ जाओगे। प्रशंसा, उपहार, इच्छा, वासना की पूर्ति जिससे होती है वह सम्राट् को भी नीचा दिखा देता है, सामान्य की तो बात ही क्या? बड़े-बड़े राजघराने इच्छाओं की पूर्ति में नष्ट हो गये। लोक के मुख से नाम ही समाप्त हो गया। अनीति, अन्याय, अत्याचार, आचरणहीनता, विषय-लोलुपता, वासनाओं की तीव्रता, अहंकार-प्रियता, लोभ की तीव्रता एवं लोकप्रियता राज्य को समाप्त कराने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिन्हें राज्य एवं राजनीति तथा सुयश के प्रति प्रीति है, उन्हें उपरोक्त हेतुओं से स्व-पर की रक्षा करना चाहिए। शुभाचरण ही चन्दन, अगर-तगर, कर्पूर, केशर, गुलाब, कनेर, मालती, चम्पा-चमेली, रात-रानी की सुगन्ध के सादृश्य सुवासित होता है।

## 215 - Protect yourself from accepting gifts and praise from others

Think about development of the self and the country. If you aim for this, protect yourself from accepting gifts and praise from others. Whenever you accept gifts and listen to false praise from others, you will not be able to take tough decisions. Acceptance of gifts subdues you; you tend to forget yourself. The man praising you also suppresses you. You should understand this at an early stage, or else you will lose everything. The tendencies to abet praise, gifts, desires and lust cause the downfall of even a king; what to talk of a common man! Many great empires have vanished in chase of desires. The following things play a significant role in bringing the downfall of an empire: evil policies, injustice, tyranny, bad conduct, desire for sensual-pleasures, lustfulness,

PREVIEW ONLY

pridefulness, excessive greed and desire to be popular. Those who love their country and wish to earn glory should protect themselves and others from the aforesaid causes. Only good conduct spreads its fragrance like that of the sandalwood, aromatic herb, camphor, saffron, rose, oleander, jasmine, and night-blooming flower.

विचार
THE THOUGHTS

## २१६. इच्छायें भिखारी बनाती हैं

सम्पूर्ण विश्व सदाचारी के पास भ्रमर-मुधकर, मधुमक्खियों की भाँति भ्रमण करता है। सर्वत्र सुयश-ही-सुयश प्रवाहमान होता है। साधु पुरुषवत् जीवन जीना सीखो। स्व को पर से अत्यन्त भिन्न स्वीकारो, इच्छाओं को भी कर्म सापेक्ष समझकर उनकी भी उपेक्षा कर दो, वर्तमान पर्याय-जन्यता समझ कर। वर्तमान की इन इच्छाओं की पुष्टि नियम से पर-भावों के आश्रय से होने वाली है, पर-भावों की प्राप्ति के लिए भिखारी बनना ही पड़ेगा, इसमें कोई भी शंका नहीं है। वर्तमान पर्याय का आनन्द लोगे तो जीव भावी पर्याय में कष्ट पायेगा, फिर वर्तमान पर्याय व इच्छायें क्या वहाँ साथ देंगी?

## 216 - Desires make you a beggar

The whole world hovers, like the black bee or the honeybee, round the man of conduct. His glory spreads everywhere. Learn to live the life of a noble man. Accept yourself as utterly distinct from all others, and accept desires as related to the fruition of the karmas in this mode *(paryāya)* and ignore these. You will have to, as a rule, depend on others in order to satiate your desires and, thus, become a beggar; there is no doubt in this. If you wish to enjoy pleasures in the present mode of your life you will have to undergo suffering in the next mode; the present mode and its desires will not come to your rescue.

विचार
THE THOUGHTS

## २१७. परिणामों का परिणाम

PREVIEW ONLY

कष्ट के काल में एक समय पूर्व का स्व-परिणाम भी पीड़ाकाल में साथ नहीं देगा, अन्य की क्या बात करें? इस परम सत्य को सहर्ष स्वीकार करो। जो क्षण प्रसन्नता का था, वह क्षण जाते ही खिन्नता के काल में प्रसन्नता का काल कार्यकारी नहीं होता। अन्य कोई भिन्न व्यक्ति को देखकर विचार करें कि यह मुझे देखकर हँस रहा है जबकि मैं दु:खी हूँ, ऐसा विचार करना विवेकहीनता का परिचय है। क्या अन्य के कर्म को अपने जैसा उदय में ला पाओगे? जिसे असाता का उदय है, खिन्नता, शोक नोकषाय का उदय है, वह रोए। दु:खी होते हुए परिणामों को सम्भालने का पुरुषार्थ नहीं कर पा रहा है, इसलिए बिचारा रो रहा है। किसी के हास्य नोकषाय, सातावेदनीय का उदय है, इसलिए वह प्रसन्न है, सुखानुभूति ले रहा है। उसने तो रोते हुए को देखा तक नहीं, फिर भी रोने वाला अपने पर लेता है, तो वह दोष रोने वाले का ही है। अन्य का पुरुषार्थ अन्य को फलित नहीं होता है। जो व्यवहार में होते हुए दिखता है, उसे भी अच्छी विधि से समझना चाहिए। कैसे? वर्तमान में किसी व्यक्ति ने बहुत पुरुषार्थ कर धन अर्जित किया, परन्तु वह भोग नहीं कर पाया, अर्जित द्रव्य का उपयोग अन्य पुण्यात्मा पुरुष ने किया, तब कथन होता है कि किसी ने पुरुषार्थ किया, किसी ने भोगा। परन्तु ऐसा एकान्त नहीं है, इस

पर कर्म-सिद्धान्त लगाना चाहिए। कर्म-सिद्धान्त पवित्र, वैज्ञानिक, वस्तु-निष्ठ सिद्धान्त है जो कि यथार्थता का बोध कराता है। अज्ञानता अन्ध-रुढ़ि को समाप्त कर देता है। भोले-भाले प्राणियों के अन्दर जो विपरीत भावनायें भरी हुई हैं, वे क्षणमात्र में विलीन हो जाती हैं तथा अज्ञानमय आचरण भी समाप्त होने लगता है। इस पावन सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लिया तो जगत् अहिंसा, धर्म-निष्ठ हो जाएगा।

### 217 - Result of your disposition

At the time of sorrow, your own earlier disposition will not come to your rescue. Accept this supreme truth. An earlier instant of glee becomes futile in the present instant of sorrow. Do not exhibit lack of discrimination if you find another man laughing at the time of your sorrow. His fruition of the karmas is different from yours. The man with fruition of the karmas of unpleasant-feeling *(asātā)*, dejection and quasi-passions *(nokaṣāya)* of sorrow *(śoka)* is crying as he is not able to control his dispositions. The other man with fruition of the karmas of quasi-passions *(nokaṣāya)* of laughter *(hāsya)* and pleasant-feeling *(sātā)* is feeling happy. This other person may not have even seen the person crying. Deeds of each individual result in own fruition of the karmas. What you see in worldly matters may not be wholly true. You may see that a person makes great effort and earns a lot of money but is unable to enjoy it; some other man enjoys it. In such a case it is said that a man makes effort and someone else enjoys it. But this is not wholly true. Employ the doctrine of the karmas. This doctrine is pious, scientific and based on the reality. It illumines the truth and destroys blind-faith. The delusion that engulfs men is wiped out in no time. The man also gets rid of his ignorant conduct. Once people understand this pious doctrine, the world will be full of the virtues of non-injury *(ahiṃsā)* and dharma.

विचार
THE THOUGHTS

### २१८. आपके कार्यों का कर्ता परमात्मा?

कर्म कोई करे, फल किसी के हाथ? क्रिया अन्य करे, क्रिया का कर्ता अन्य कोई? मैं कुछ नहीं करता, कराने वाला ही करा रहा है; मैं तो मात्र क्रिया का ही कर्ता हूँ, क्रिया जो हो रही है उसका मैं उपादान करता नहीं हूँ। यहाँ अपनी स्वतन्त्रता का पूर्ण अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

शुभ अथवा अशुभ कोई कर्म है, वह शक्तिकृत मानने से दुष्कर्मों की वृद्धि स्वतः हो जाती है। जो-जो जीव व सम्प्रदाय कर्म-सिद्धान्त को नहीं मानते और न ही जानते हैं, उनके अनुसार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, अब्रह्म सेवन, वेश्यावृत्ति, परस्त्री सेवन, मांस-मदिरा सेवन, धूम्रपान, चरस, भांग, गाजा, मद्य-मांस-मधु, मक्खन इत्यादि जो भी वे भक्षण करें, अशुभ कर्म करें, सब परमात्मा-कारित है, स्वकृत कुछ भी नहीं, फिर अशुभ कर्मों को कोई दण्ड की आवश्यकता ही नहीं रहती।

### 218 - Is God the doer of your deeds?

Are the results of your deeds in the hands of someone else? Is someone else responsible for your deeds? "I do not do anything, someone else is the doer; I am just the performer not the substantive-cause *(upādāna kāraṇa)*." This statement makes you

totally dependent.

When you believe that someone else, not you, is the real doer of your auspicious and inauspicious deeds, you promote evil tendencies. The men or sects who do not believe in the doctrine of the karmas make God as the doer of all evil deeds including injury *(hiṃsā)*, lying, stealing, non-observance of vows, promiscuity, prostitution, intercourse with the wife of another, eating unmerited food, smoking, and consumption of drugs, flesh, wine, honey and butter. If you are not the doer of such deeds, you need not be punished!

विचार
THE THOUGHTS

## २१९. भगवान् को कर्ता मत बनाओ

यह सब भगवान् कर रहा है; जो जिस भाषा में भगवान् का नाम ले रहे हैं वे सब स्व-कर्तापन से दूर हो गये। सम्पूर्ण गुण-दोष भगवान् के ऊपर स्थापित कर दिया। यदि आप ऐसा विचार करें कि दण्ड भी परमात्मा दे रहा है, जो भी शासन व्यवस्था है वह भी परमात्मा के द्वारा संचालित है, तो यहाँ पर प्रश्न यह खड़ा हो जाएगा कि परमात्मा ऐसा कराता ही क्यों है जिससे फिर दण्ड देना पड़े, नरकादि गतियों में कष्ट देना पड़े? पुनः, जब सम्पूर्ण विश्व-रचना परमात्मामय है, परमात्मा का ही अंश है फिर आश्चर्य है कि परमात्मा अपने ही अंश को कष्ट प्रदान कर रहा है, अपने ही अंश से अशुभ कर्म करा रहा है। परमात्मा की बाललीला पर परमात्मा को ही हँसी आयेगी। जगति के विद्वानों से कहना है- अपनी आस्था, श्रद्धा, भक्ति की भाषा पर विचार करें कि हमारी अज्ञानता विश्व-प्रभु परमात्मा की घोर अविनय का कारण तो नहीं बन रही?

परमात्मा ज्ञाता-दृष्टा है, वह ज्ञापकांग है, अन्य किसी का कारकांग नहीं है। अणु-अणु स्वाधीन है। कर्ता स्वतन्त्र ही होता है, कर्ता परतन्त्र नहीं है। जैसा जीव कर्म करता है, वैसा ही स्व-कर्म का फल भोगता है। स्वयं ही कर्ता, स्वयं ही भोक्ता, सर्वत्र लोक में दृष्टिगोचर हो रहा है। लोक में अन्य, अन्य के परस्पर में सहकारी अवश्य होते हैं, परन्तु स्व के पुण्य-पाप का कर्ता स्वयं ही होता है। जो वर्तमान में अभक्ष्य भक्षण कर रहे हैं, मूक पशु-पक्षियों को तल-तल के उनके टुकड़े खा रहे हैं और बोलते हैं कि इनकी रचना इसीलिए हुई है, उन नराधमों को नरकों में उन्हीं के शरीर के टुकडे-टुकड़े करके उन्हीं के मुख में डाले जायेंगे। तब वे चीखेंगे, चिल्लायेंगे; फिर उनसे पूछो कि यह रचना किसके द्वारा हुई है?

PREVIEW ONLY

## 219 - Do not make God the doer

Those who say that everything is created by God absolve themselves from the responsibility of their deeds, good or bad. If you believe that God awards punishment for evil deeds and all administration of the world is in his hands, the question arises as to why God gets done things that force him to punish people and subject them to the suffering of the hells. Further, if the world has been created by God and everything in the world is a part of God, is it not surprising that he is subjecting his own part to suffering and getting inauspicious things done through it? God himself will laugh at this childish behaviour on his part! Let intelligent men reflect on their beliefs, faith and devotion and check whether their ignorance is causing great dishonour to God.

The fact is that God or the supreme-soul *(paramātmā)* is the knower-seer *(jñātā-dṛṣṭā)*; he is the knower not the doer. The doer is an independent entity. The soul or living-being *(jīva)* enjoys the fruits of its karmas. It is clearly visible in the world that the soul itself is the doer and the enjoyer. Others are just the instrumental-causes of someone else's activities but the self is the doer of the merit and demerit. Those who are consuming unmerited food and eating pieces of mute animals after frying them and say that these have been created for this purpose only, such evil men are destined to get the same treatment in the hells. There, when they yell, ask them, who has created them?

विचार
THE THOUGHTS

## २२०. मत तलो पशु-पक्षियों को

वर्तमान में जो पशु-पक्षी, जल-जन्तु टुकड़े-टुकड़े कर तले जा रहे हैं उनकी पीड़ा एक क्षण देख लो, बोध हो जाएगा कि कृत कर्म का फल क्या होता है। पेट भरने एवं रसना के लोलुपियों ने धर्म के नाम पर प्राणियों का घात करने का उपदेश दे दिया; इन अल्पबुद्धियों को भी कर्म-फल छोड़ेगा नहीं। नरकों में इन्हें कोई ईश्वर, देवता, परमात्मा बचाने नहीं जायेंगे। स्वयं ही एकाकी कष्टों की वेदना को सागरों पर्यन्त सहन करना पड़ेगी। श्रेष्ठ कार्य करने वालों को स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है। स्वर्ग के सुख स्वर्ग जैसे ही होते हैं, मध्यलोक में ऐसा कोई सुख नहीं है जिसकी उपमा स्वर्ग सुख से दी जा सके। स्वर्ग के सुख भी जीव स्वयं एकाकी ही भोगेगा, जिसने पुण्यकर्म किये हैं। यहाँ पर ऐसा नहीं है कि जैसे घर में एक व्यक्ति धर्मात्मा है तो उसके नियोग से सभी स्वर्ग चले जायेंगे। यह भ्रम समाप्त करो, जो भोजन करता है उसी का पेट भरता है, अन्य का नहीं। उसी प्रकार जो जीव दया, अहिंसा, करुणा धर्म का पालन करेगा, वही श्रेष्ठ स्वर्ग व मोक्षपद को प्राप्त करेगा। अन्य, अन्य के शुभाशुभ कर्मों के फल का भोक्ता नहीं है। जैसे कर्ता नहीं है, वैसे ही फल का भोक्ता भी नहीं है। जो अवधारणा बन रही है कि पिता का कमाया पुत्र भोग रहा है, इस पर विचार कर लो। एक कमा रहा है एक कमा कर आया है। एक ने पूर्व में दूसरे का खाया था, सो वर्तमान में चाहे पिता बनकर चुकाये, चाहे पुत्र व बैल बनकर, परन्तु चुकाना तो पड़ता है; जब तक जीव संसार में कर्ममुक्त होकर परमात्मा नहीं बन जाता। सिद्ध परमात्मा बनते ही जीव सर्व दुःख मुक्त हो जाता है, फिर कभी-भी संसार में दुःखी होने नहीं आता, कृतकृत्य हो जाता है, जो कुछ करना था, वह सब कुछ कर चुका। परमात्मा सिद्ध भगवान् एकमात्र ज्ञायक में लीन रहते हैं। सम्पूर्ण लोकालोक काष्ठ-पाषाणवत् दृष्टिगोचर होता है, विश्व की कोई भी वस्तु उन्हें न दुःखी कर पाती है, न सुखी। सुख-दुःख का वेदन कर्माधीन मोही प्राणी के ही है। जिनके कर्मपिण्ड समाप्त हो जाते हैं, उनकी सर्व विश्व-विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, इसलिए राग हटाओ, कष्ट मिटाओ। करनी का फल तो सबको मिलता ही है, यह मोही प्राणी के लिए पूर्ण सत्य है।

## 220 - Do not put animals into the frying pan

Watch the pain of the animals that are being cut into pieces and put into the frying pan; you will realize the truth about the fruits of the karmas. The men desirous of filling their belly and accustomed to intemperance have preached killing of animals; the fruits of the karmas will follow these ignorant preachers. No god or deva or supreme-soul

*(paramātmā)* will come to save them in their hell-life. They alone will have to endure extreme suffering for astronomically long period of time. Those engaged here in virtuous deeds get life in the heavens. The happiness appertaining to the heavens is unparalleled; there is no place in the middle-world *(madhyaloka)* that has the same level of happiness as in the heavens. Alone shall the virtuous man enjoy the happiness of the heavens. The nobility or virtuousness of one man in a family will not take his kin to the heavens. Get rid of the misconception. The belly of the man who eats gets filled; not of others. In the same way, only the man who observes the dharma of kind-heartedness, non-injury *(ahiṃsā)*, and compassion will be able to go to the heavens and attain the state of liberation. No man enjoys either auspicious or inauspicious fruits of someone else's karmas. As one is not the doer of the karmas of other, similarly one is not the enjoyer of the fruits of the karmas of other. Think about the general perception that 'father earns and the son enjoys'. One (father) is earning in the present, and the other (son) had earned (merit) in the past. One had eaten the food of the other in the past; now he has to square it up as a father, a son, or a bull. The process goes on till the soul is rid of all karmas and becomes a supreme-soul *(paramātmā)*. In the state of liberation – the *Siddha* – the soul is rid of all suffering and has never to come back in the world. It has attained what all there was to attain. The supreme-soul *(paramātmā)* remains in itself, in its attribute of knowledge. The whole of universe *(loka)* and non-universe *(aloka)* appear like wood or stone; no object is able to provide either happiness or misery to it. The experience of happiness and misery appertain to the karma-dependent deluded man only. The end of the karmas entails the end of all worldly-suffering; therefore, 'get rid of attachment *(rāga)* to get rid of suffering'. Everyone has to bear the fruits of the deeds.

विचार
THE THOUGHTS

## २२१. प्रशस्त विचार अर्थात् साधु प्रवृत्ति

विचारों को प्रशस्त रखना, अप्रशस्त विचारों को नहीं लाना, यह तो उत्तम साधु पुरुषों का कार्य है। पुरुषार्थ उन्हें करना चाहिए जिनके प्रशस्त विचार उत्पन्न होते ही नहीं और अप्रशस्त विचार निकलते ही नहीं, ऐसे लोगों को सदा सावधानी की आवश्यकता है। ये लोग स्व-पर के घोर शत्रु हैं, ऐसे लोग कभी-भी पर-हत्या कर सकते हैं, स्वात्म हत्या भी कर सकते हैं। धर्म, समाज, राष्ट्र, विश्व को क्षति इन लोगों के हाथ से होना सम्भव है। इन लोगों के अंत:करण में ज्वालामुखी फूटती है या फिर भूचाल आता है और वे पूर्वापर के विवेक से शून्य होकर विचार करते हैं। तदनुसार प्रवृत्ति करने लगते हैं, जो बहुत घातक है। ऐसे लोग किसी को सुख नहीं दे सकते और न ही किसी से सुख ले सकते हैं; कारण, इनका सोच भी विचित्र है, वे शुष्क-तुच्छ स्वभावी हैं। स्व-इन्द्रिय पुष्टि के लिए सत्य-मार्ग को जानते हुए भी वे समय पर सार्थभूत सम्यक्, सत्य उपदेश नहीं दे पायेंगे। कारण, स्व-इन्द्रिय कषाय पोषण की नीति से वे पूर्ण जीवन जी रहे हैं। आत्म इन्द्रिय, कषाय पोषण व्यक्ति को न सत्य में जीने देता है, न सत्य बोलने ही देता है। बड़े लोगों के साथ यह बहुत होता है, छोटों से भी ज्यादा। स्वयं विचार करो, सहज-स्वभाव पर लक्ष्य करो; क्या ऐसा नहीं है? यदि आप किसी पक्ष के साधु भेष में भी हो तब भी इस विषय पर विचार करो, आत्म इन्द्रिय व कषाय दोनों से आत्मरक्षा करोगे तभी आप सत्यार्थ साधु बन पाओगे।

PREVIEW ONLY

भेष तो चुन लिया, भावों से परिचय ही नहीं। परीक्षा-कक्ष में प्रवेश ले लिया, स्वयं परीक्षा-विषय का ही बोध नहीं है तो परीक्षा में उत्तीर्णता कैसे मिल पायेगी? दम्भी, भूचाल स्वभाव सामान्य को प्रभावित कर सकता है। विद्वान् पुरुष दम्भी, दबंगी, कषायी, विषयी लोगों के प्रति तटस्थ भाव का प्रयोग करते हैं, उन लोगों से स्वात्मा को पूर्ण अप्रभावित रखते हैं। वे स्वकार्य में लीन रहते हैं, परकार्य से माध्यस्थ भाव बनाकर जीते हैं। राष्ट्र धर्म पर चलने वाले व्यक्तियों को भी विचार करना होगा, राज्यशासन न छूटे यह लक्ष्य है कि सम्यक् रूपेण राज्यशासन न छूटे? जो नीति विपक्ष के लिए प्रयोग की जाती है वह क्या स्वपक्ष के साथ भी है? पर-पक्ष के, विपक्ष के सभी अपराधी दण्ड को प्राप्त होते हैं। अपराधी को समीचीन दण्ड तो मिलना चाहिए, पर विपक्ष स्वपक्ष के साथ एकत्व दृष्टि होना चाहिए। स्वपक्ष आने वाले सभी काण्डी स्वच्छ हों, परपक्ष के अस्वच्छ हों, यह नीति समीचीन नेता की नहीं होती। मृदुता स्वपक्ष में है तो विपक्ष के साथ भी रखनी चाहिए और देश को अपराधमुक्त, अपराधशून्य करना है तो स्वपक्ष व विपक्ष दोनों के प्रति अपराध पर बराबर दण्ड नीति का व्यवहार हो, अन्यथा भविष्य आपका भी अन्धकार में है। राज्य ही नहीं, आगामी भव पर भी ध्यान रखना अनिवार्य है।

## 221 - Laudable thoughts belong to noble men

To have laudable thoughts and to shun evil thoughts is the prerogative of noble men. Those in whom laudable thoughts refuse to enter and evil thoughts refuse to get out need to put effort and maintain caution. Such men are grave enemies of the self and others; they can kill others or themselves any time. The dharma, society, country and world is likely to be harmed by them. Such men carry in their hearts an active volcano or earthquake and they act indiscriminately without thinking of the result on the past and future. This is very dangerous. Such men cannot bestow happiness to others, and cannot draw happiness out of others; they have strange thinking that is dry and lowly. Even if they know the truth, in order to satisfy their own sensual inclinations and justify their passions *(kaṣāya)*, they will not be able to deliver right and truthful discourse. Own sensual inclinations and passions *(kaṣāya)* do not allow them to speak the truth. This happens more with men who enjoy high status. Think yourself; is this not true? If you are an ascetic belonging to any sect, you can be true to your profession only if you are able to protect yourself from sensual inclinations and passions.

You have chosen your sect, unaware of the requisite dispositions! You have entered the examination hall, unaware of the subject of examination! How will you succeed? A conceited and fierce-natured man can impress ordinary men. However, wise men maintain indifference towards the men who are conceited, suppressive, passionate and senses-driven; they remain unimpressed with such men. They are engrossed in their own work and are indifferent towards all externalities. The men in charge of the affairs of a nation should think whether they are for just ruling or for ruling justly. They should think whether their policies are same for the own party and for the opposition. There should be no bias in the rule of law for the members of the own party and for those belonging to the opposition; there should be no distinction in the quantum of punishment for a crime done by a member of the own party and by a member of the party in opposition. It is not correct to assume that all belonging to your party are clean and those of other parties are dirty. Have affection for the members of own party as well as for those in opposition. This will

PREVIEW ONLY

enable you to make the nation crime-free, otherwise your future is bleak. Besides thinking of the nation, think also about your own life hereafter.

विचार
THE THOUGHTS

## २२२. चार्वाक मति, नहीं सम्यक्-मति

वर्तमान राज्य का मात्र इन्द्रिय सुख पर लक्ष्य है, प्रत्यक्ष मात्र को प्रमाण देखता है, परोक्ष प्रमाण पर लक्ष्य नहीं, तो यह लोकायत मतार्थी है, चार्वाक मति है, जो मात्र वर्तमान के जीवन को ही मानता है। स्वर्ग-नरक, पशु-पर्याय, मनुष्य-पर्याय पुनः-पुनः जीव प्राप्त करता है, इसलिए अशुभ कर्म, अशुभ विचार, अशुभ आचरण से सदा ही आत्मरक्षा करनी चाहिए, ऐसी सम्यक्-विचारणा को चार्वाक मति नहीं मानता। परन्तु नहीं मानने से वस्तु व्यवस्था, कर्म सिद्धान्त तथा चार गतियों का अभाव नहीं हो सकता। अशुभ कृत्य का परिणाम अशुभ गतियों का परिभ्रमण नहीं रुक जायेगा। जो व्यक्ति अज्ञानता से विष को विष नहीं मानता, तो अज्ञ के द्वारा विष खाने पर क्या उसकी मृत्यु नहीं होगी? अरे भाई! नियम से होगी, उसी प्रकार से राज्यलक्ष्मी, विषय-सुख के भोगों में आसक्त चार्वाक मति को क्या दुर्गति नहीं होगी? अवश्य होगी।

अशुभ कर्म कोई भी करे; महाराज, साधु, असाधु, राजनेता, अभिनेता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, धनिक, दरिद्री, अज्ञानी, शिक्षक, पण्डित, कथावाचक या अन्य की आराधना करने वाले, कुल परम्परा में चली आयी हिंसावृत्ति, धर्म के नाम पर हिंसाकर्म, मदिरापान, स्त्रीभोग, मांस-भक्षण, जातिगत हिंसक परम्परायें, सभी नियम से अशुभ बन्ध, पाप बन्ध को प्राप्त होंगे, नियम से दुर्गति में जायेंगे। उन्हें इष्ट के इष्ट ही नहीं, महा-इष्ट क्यों न हों, प्रत्यक्ष को ही प्रमाण कहने वाले हों अथवा हिंसाकर्म, बलिकर्म को धर्म कहते हों, कोई भी अशुभ कर्म के बन्ध से नहीं बचा सकेंगे।

## 222 - The *Cārvāka* way of thinking is not right

If the state aims solely on the sensual pleasures and if it sees just the direct and not the indirect, then it belongs to the school of thought called *Cārvāka* or *Lokāyata*. The *Cārvāka* way of thinking refuses to accept that the single soul gets different modes as a denizen of the heavens or hells, as an animal and as a human-being and should therefore protect itself from all inauspicious karmas, thoughts and conduct. But their not accepting this cannot change the truth about the nature of the objects, the doctrine of the karmas and the four states-of-existence. It cannot halt the wandering of the soul in evil states-of-existence if engaged in inauspicious karmas. Will a man who refuses to accept poison as a cause of death escape death if he consumes poison? O brother! The *Cārvāka* way of thinking that advocates state power and involvement in sensual-pleasures is bound to get you to an evil states-of-existence.

Everyone – a king, an ascetic, a normal being, a political leader, an actor, a *kṣatriya*, a *vaiśya*, a *śūdra*, a wealthy man, a poor man, an ignorant man, a teacher, a scholar, a story-teller – engaged in inauspicious activities like injury *(hiṃsā)*, consumption of flesh and liquor, promiscuity, and caste-based conventions that result in injury *(hiṃsā)* will, as a rule, be bound by inauspicious and evil karmas and attain an evil state-of-existence hereafter. No one, howsoever dear, will be able to save those who call only that which is

PREVIEW ONLY

seen directly as valid-knowledge *(pramāṇa)* and are involved in activities of injury *(hiṃsā)* including sacrificial-killing, from the bondage of inauspicious karmas.

विचार
THE THOUGHTS

## २२३. प्राणी-रक्षा ही धर्म-रक्षा

प्रज्ञ-पुरुष पर-प्राणों की रक्षा करते हैं। समाज, धर्म, राष्ट्र एवं जीवों पर करुणा भाव का विकास ही दया धर्म की रक्षा है। प्राणी के रक्षण से ही धर्म का रक्षण है। इस विचार में स्वजीवन का रक्षण भी उपरोक्त बिन्दुओं में समाविष्ट है। हम स्वयं भी राष्ट्र, धर्म, समाज के अंग है। आत्मरक्षा भी धर्म-रक्षा ही है, यह बात स्व-विवेकपूर्वक विचार करने लायक है। भावुकता में ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए, जिससे स्वप्राणों के वियोग की सम्भावना हो। कार्यक्षमता, विचारशीलता, राष्ट्र विकास के लिए अभिनव सूत्र देने के लिए क्षयोपशम की जिनमें क्षमता है, ऐसी योग्यताओं से पूर्ण जीवन जिनका है, उन्हें स्वजीवन को व्यर्थ में नष्ट नहीं होने देना चाहिए। स्वघातक भी क्या पापी नहीं है? अवश्य ही है। प्रत्येक विवेकी पुरुष को आत्मरक्षा करनी चाहिए, ऐसा विचार कभी नहीं लाओ कि जीवन जी लिया है, अब जीने से क्या? जीने की इच्छा, मरने की इच्छा, दोनों ही नहीं होनी चाहिए। स्व-जीवन रक्षा करते हुए धर्म, देश, समाज की रक्षा करनी चाहिए। प्रत्येक क्षण शत्रुओं से, शत्रु सम मित्रों से, हिंसक पशु-पक्षियों से, क्रूर मानवों से, अग्नि, विद्युत, जल, विष, नदी, पर्वत, यान, वाहन, मार्ग, परिवार, जाति, बन्धु की पुत्र-पुत्रियों, माता, बहिन, भाई, भाई-बन्धुओं से भी अपनी आत्मरक्षा करो।

### 223 - Protecting living-beings is protecting the dharma

Knowledgeable men protect the lives of others. To cultivate the disposition of compassion for the society, religion, nation and living-beings is the dharma of kind-heartedness. Dharma can be protected only by protecting living-beings. Protecting your own life is included here. We too are a part of society, religion and nation. That protecting self too is protecting dharma is to be understood well. Out of emotions, do not take any step that may cause loss of your life. The men whose destruction-cum-subsidence *(kṣayopaśama)* of the karmas provides them with the ability to perform, think and help in nation-development should not let their lives be taken away unnecessarily. Is the man committing suicide not an evil man? No man of discrimination should ever think that he has lived enough and that he does not wish to live anymore. Both, the desire to live and to die, are unmerited. Protect the dharma, country and society while protecting your own life. Protect yourself, at all times, from enemies, enemies in guise of friends, cruel animals and men, fire, electric current, water, poison, rivers, mountains, crafts, vehicles, roads, and kinsfolk.

विचार
THE THOUGHTS

## २२४. जीवन के साथ मृत्यु पर भी लक्ष्य

कषाय एवं वासना कोई भी सम्बन्ध नहीं देखती। अन्य की क्या बात करें, ईर्ष्या तो गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को भी नष्ट कर देती है। गम्भीर विषय पर विचार करना चाहिए, जो कि सम्प्रति सभी वर्ग के जीवन में अनिवार्य है। जीवन जीने के लिए अनेक व्यवस्थायें बनानी पड़ती हैं, अनेक बिन्दुओं पर

PREVIEW ONLY

लक्ष्य रखा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह अच्छा जीवन जिये, तदोपयोगी सामग्री का भी संग्रह करता है। मृत्यु से बचने के लिए उपक्रम करता है। आयुकर्म की पूर्णता के लिए, अकाल मृत्यु से बचने के लिए भी प्रतिक्षण जाग्रत रहना चाहिए। जो बाह्य निमित्त हैं, असामाजिक तत्त्व हैं तथा अन्तरंग निमित्त हैं, उन सभी से बचना चाहिए।

## 224 - Aim at life as well as death

Passions *(kaṣāya)* and lust fail to respect any relations. What to talk of others, jealousy ruins relationship between the guru and the disciple. Think about the subject that is presently important for all. To live smoothly, many arrangements are to be made and many things are to be aimed at. Every man wants to live a good life and accumulates objects necessary for it. He makes efforts to save himself from death. It is worthwhile to protect life till the life-karma allows; one should be careful not to get an untimely death. Protect yourself from all external causes, anti-social elements and internal causes.

विचार
The Thoughts

## २२५. तीव्र रागी सम्बन्धी भी मृत्यु का कारण बन जाते हैं

जानबूझ कर मृत्यु के मुख में हाथ नहीं डालना चाहिए, अपनी हत्या नहीं करा देनी चाहिए। वासना, भूमि, स्वर्णादि वस्तु तीव्र राग के कारण हैं, इनका राग परस्पर में प्राण–हरण का कारण बन जाता है। इतिहास साक्षी है, सम्प्रतिकाल में भी इस प्रकार की घटनायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। सम्पत्ति के कारण पिता ने पुत्र की हत्या कर दी, पुत्र ने पिता की हत्या कर दी। धन–धरती, स्त्री के कारण भाई ने भाई की, भतीजे ने चाचा की हत्या की है, माँ ने पुत्र–पुत्रियों की, पुत्र–पुत्रियों ने मिलकर माँ को मौत के घाट उतार दिया, राजाओं ने युद्ध भूमि में अन्य राजाओं को मार डाला। बाह्य–पदार्थों में भी ज्ञाता के ज्ञान को प्रभावित करने की शक्ति है। ज्ञान अनन्त ज्ञेयों को जानने की सामर्थ्य रखता है तो ज्ञेय भी ज्ञान को स्व–आकार देने की शक्ति रखते हैं।

## 225 - Relatives with excessive attachment *(rāga)*, too, can kill you

Do not knowingly surrender yourself to the clutches of death. Lust, land, and objects like gold are causes of grave attachment *(rāga)*; this attachment can lead to killing of the other person. This fact is corroborated by history; even today such killings are taking place. For the sake of wealth, father has killed son and son has killed father. For the sake of wealth, land and woman, brother has killed brother, nephew has killed uncle, mother has killed son and daughter, son and daughter together have killed mother, and king has killed other kings in the battlefield. External substances, too, have the power to influence knowledge *(jñāna)*. Knowledge has the ability to know infinite objects-of-knowledge *(jñeya)* and the objects-of-knowledge have the power to mould knowledge into their own shape.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## २२६. निमित्त-उपादानवत् प्रवृत्ति

पर-पदार्थों में एक-अनेक धर्म हैं, प्रत्येक द्रव्य एक-अनेक स्वभावी है। जिस जीव में करुणा भाव है वहाँ क्रूर-भाव भी है। जहाँ ब्रह्मभाव है, वहाँ अब्रह्मभाव की भी शक्ति है। जहाँ वात्सल्य भाव है, वहाँ अवात्सल्य भाव भी है। कह नहीं सकते किस जीव के अन्दर से कौन से भाव की शक्ति कब उद्घाटित हो जाये! परस्पर में इन शक्तियों का अन्यापोह, इतरेतराभाव है। एक भाव में दूसरे भाव का तो अभाव है, परन्तु दोनों भावों का अभाव नहीं है। जैसा निमित्त प्राप्त होता है, उपादान की प्रवृत्ति भी तदानुकूल होने लगती है।

## 226 - Inclinations are influenced by instrumental and substantive causes

External objects have one and many attributes; in fact, every substance *(dravya)* has one and many attributes. A living-being has both, compassion and cruelty. It has lust but inherent power of celibacy too. Along with affection it has repugnance. It is difficult to predict which attribute gets manifested at what time in a particular living-being. Although opposing attributes are inherently present, still these exhibit reciprocal non-existence (*anyāpoha* or *itaretarābhāva*). Depending on availability of the instrumental-cause *(nimitta kāraṇa)*, the substantive-cause *(upādāna kāraṇa)* gets influenced.

विचार
THE THOUGHTS

## २२७. क्रूरता प्राण-घातक

विषय की सूक्ष्मता से व्यक्ति सामान्यतः इन रहस्यों को समझ नहीं पाता और जीवन में धोखे का जीवन जी लेता है। असमय में मृत्यु की गोद में स्वयं सो जाता है व स्व-परिवार के सदस्यों की हत्या के लिए कृत-कारित-अनुमोदना से निमित्त बन जाता है। जहाँ कभी कोई विचार ही नहीं कर सकता, वैसा कार्य व्यक्ति स्व-इच्छा की पुष्टि के लिए कर देता है। क्या आपको ज्ञात नहीं है- पुत्र ने राज्य प्राप्ति की लिप्सा से अपने पिता को आगरा के किले में बंद रखा, नगर के दरवाजे के छींके पर पुत्र ने पिता को नहीं टांगा? अहो! वरिष्ठ शिष्यों ने स्वकीय गुरु, आचार्य परमेष्ठी के पतन के लिए अशुभ-से-अशुभ पत्राचार नहीं किये? इतिहास के पृष्ठ खोलो, ऐसे क्रूर शिष्य भी हुए हैं जिन्होंने मुट्ठी प्रहार से गुरु के प्राणों का भी वियोग किया है। विचार करो, कब किस जीव का औदयिक भाव प्रबल हो जाये और वह धर्म, यश, जीवन का घात करा दे।

## 227 - Cruelty causes death

Due to the subtlety of the subject, generally a man fails to appreciate the mystery behind the aforesaid statement and gets deceived. He either gets an untimely death by the act of others, or becomes the cause of death of his kin – by doing *(kṛta)*, getting done *(kārita)* or approving *(anumodanā)*. He gets engaged in the most unthinkable act for the sake of his whim. Are you not aware of these facts: son had kept his father imprisoned in the fort of Agra; and son had hung in a cage his father at the entry-gate of the town? Had a disciple not engaged in the most deplorable correspondence to disgrace his guru and *Ācārya*? Open the pages of history; you will learn about the disciple who had killed his

PREVIEW ONLY

guru with blows of his fist. Think; it cannot be predicted when the disposition due to the fruition of the karmas – *audayika bhāva* – gets into full force and the man gets engaged in activity that ruins his dharma, honour and life.

विचार
THE THOUGHTS

## २२८. कषाय की तीव्रता में सर्वनाश

कषाय एवं वासना की तीव्रता व्यक्ति को विवेक ज्ञान शून्य कर देती है। ऐसा मद चढ़ता है कि वह उन्मत्त हो जाता है, स्वपुष्टीकरण के लिए सम्पूर्ण पवित्र सम्बन्धों का नाश करने को तत्पर हो जाता है। व्यक्ति का अशुभ कृत्य हो जाने के बाद जब उद्वेग शान्त होता है, तब-तक सर्वनाश हो चुका होता है। एकमात्र आँखों में आँसू और हृदय में संक्लेशता, इष्ट वियोग एवं अनिष्ट संयोग के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता। लंका जैसा नगर होलिका दहन जैसा नगर हो जाता है। ईन्धन, लकड़ियाँ आदि जल जाती हैं एकमात्र अर्द्ध-दग्ध ईन्धन या फिर राख का ढ़ेर अवशेष रहता है; विशाल-विशाल लकड़ी की टाल राख में परिवर्तित हो जाती है।

## 228 - Intense passions result in total destruction

Intense passions *(kaṣāya)* and strong lust rid a man of discriminative knowledge. He behaves as if inebriated; to satisfy himself, he becomes ready to sacrifice all pious relationships. After he had acted heinously, and by the time his fury ended, everything had been lost. Nothing remains except tears in the eyes, agony in the heart, loss of agreeable objects, and gain of disagreeable objects. A splendid town like Laṅkā got burnt to ashes, as Holikā is burnt to ashes in a festive bonfire. Everything, including fuel and wood, gets burnt completely; only the half-burnt articles or heaps of ash remain. Large heaps of wood get converted into ash.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## २२९. रत्नत्रय धर्म के पालने से ही आत्म सिद्धि

वासना की ज्वाला में महा-महा पुण्यवान् पुरुष दीन-हीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। एक रावण मात्र का उदाहरण नहीं, करोड़ों व्यक्ति रावण जैसे नष्ट हो गये, हो रहे हैं, भावी-काल में भी होंगे। यदि स्वयं की वासना पर नियंत्रण नहीं है, साधना पर लक्ष्य नहीं है, तो यशःकीर्ति नामकर्म की प्रकृति के बल से माया भाव एवं पुण्योदय भाव से मोक्ष की कल्पना भी मत करना। मोक्ष तत्त्व की सिद्धि तो पुण्य-पाप कर्म के क्षय से प्राप्त होती है। व्रतों के बल से पुण्यबन्ध होता है और व्रतों के नाश करने से पापकर्म का बन्ध होता है। जब जीव पुण्य-पाप दोनों ही कर्म प्रकृतियों को रत्नत्रय धर्म के पालने एवं निर्दोष आत्म-साधना में लीन रहने में लगा देता है, तब आत्म सिद्धि को प्राप्त करता है। निर्वाणश्री की उपलब्धि का अन्य कोई उपाय लोक में नहीं है।

## 229 - Self-realization only through the dharma of the three-jewels

The fire of lust makes even a man of great merit pitiable and destroys him. Rāvaṇa is not the only example; millions of men have been destroyed, are getting destroyed and

will be destroyed. If you do not control your lust and do not observe austerities, never imagine that through your name-karma of glory and renown, and through deceit or past merit you can attain liberation. Liberation is attained on destruction of all karmas, both of merit and demerit. Observance of vows causes the bondage of the karmas of merit, and their non-observance causes the bondage of the karmas of demerit. When the man, leaving behind all karma classes of merit and demerit, engages himself in observance of the dharma of the three-jewels *(ratnatraya)* and in pristine concentration on the self, he attains self-realization. There is no other way in the world to attain the bliss of liberation.

विचार
THE THOUGHTS

## २३०. 'देखो, जानो, जाने दो'

स्व-पर कल्याणकारी महान् सूत्रों को जीवन में धारण करना सीखो। उपरोक्त सूत्र 'देखो, जानो, जाने दो' के अभाव में शत्रु भी उत्पन्न होंगे और मित्र भी समाप्त हो जायेंगे, स्वयं के लोग ही वध एवं बदनाम कर देंगे। महापुरुषों ने भी इस अमृतभूत सूत्र 'देखो, जानो, जाने दो' का आचरण कर स्व-पर के जीवन की रक्षा कर, स्व-पर का कल्याण किया है।

इस महान् सूत्र का सूत्रपात एक दिन अन्तःकरण में हुआ। जीवन को आनन्दमय कैसे जिया जा सकता है उसके लिए एक समासभूत सूत्र क्या हो सकता है? वागीश्वरी के नियोग से सूत्र उद्घाटित हुआ। अहो ज्ञानी! 'देखो, जानो, जाने दो' यह अमोघ सूत्र है। विश्व के नागरिकों को स्वकीय-स्वकीय भाषा में इस सिद्धान्त सूत्र को समझना चाहिए। धर्मनीति, राजनीति दोनों ही नीतियों में यह कर्णधार है। कुछ सूत्र कालवाची होते हैं, कुछ सूत्र कार्यवाची होते हैं, कुछ सूत्र स्थितिवाची होते हैं, कुछ सूत्र परिस्थिति देखकर बनते हैं, कुछ सूत्र त्रैकालिक कालजयी होते हैं। उनमें से यह सूत्र त्रैकालिक कालजयी है। त्रैकालिक वस्तु के वस्तुत्व का सत्यार्थ-बोध कराने वाला है।

देखो- कोई व्यक्ति हो या वस्तु, सर्वप्रथम उसे देखना ही चाहिए। बिना देखे आप कैसे निर्णय कर पाओगे और कैसे जान पाओगे? देखने के लिए छद्मस्थ के पास चक्षु, अचक्षु, अवधि तीन दर्शन हैं। जो वस्तु जिस दर्शन से दिखे उस दर्शन से देखने का सम्यक् पुरुषार्थ करो। केवली भगवान् केवलदर्शन से देखते हैं, विशेषता यह है कि छद्मस्थ दर्शन-पूर्वक जान पाता है। सर्वप्रथम दर्शन होता है फिर ज्ञान होता है। केवली भगवान् को दर्शन एवं ज्ञान युगपत् होता है बिना इच्छा के, परन्तु सामान्य जीवों का ईहापूर्वक ही ज्ञान होता है। बिना दर्शन के छद्मस्थों के ज्ञान की अनुत्पत्ति है, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम सामान्य सत्ता का ही अवलोकन होता है, चित्-प्रतिभास। विशेष-विशेष जो ज्ञान होता है वह अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणाभूत होता है। ऐसा जिनागम वचन है।

## 230 - 'Look, know and let go'

Learn to adopt in life great mantras that bring propitiousness to self and others. Without adoption of the mantra 'look, know and let go', enemies will appear, friends will disappear and your own people will kill and dishonour you. Great men had adopted this nectar-like mantra to save and make propitious the life of self and others.

One particular day, this great mantra came to mind. What could be a succinct mantra to live a happy life? With the help of the scripture, this mantra came to light. O

PREVIEW ONLY

knowledgeable man! 'Look, know and let go' is an infallible mantra. People of the entire world should understand it in their respective languages. This mantra is a helmsman to steer the ship of the dharma and the politics. Some mantras are applicable at a particular time, some for a particular work, some at a particular place, some in a particular situation but some have universality and are timeless. This mantra is universal and timeless. This mantra illumines the truth about the nature of the objects – *vastutva*.

Look– you have to first look at the person or the object. How can you proceed further without looking? For ordinary worldly souls, there are three kinds of perception: ocular-perception *(cakṣu darśana)*, non-ocular-perception *(acakṣu darśana)* and clairvoyant-perception *(avadhi darśana)*. Make effort to look at any object with the right perception. The Omniscient *(keavlī)* Lord knows all objects simultaneously through omniscience; ordinary worldly men know after first using their perception. For them, knowledge follows perception. For the Omniscient Lord both infinite-knowledge and perception appear simultaneously and without any longing. For others, knowledge appears after inquisitiveness *(īhā)*. In worldly men, knowledge cannot manifest without perception and, therefore, they first perceive objects through their perception. Their attainment of specific knowledge is in stages: impression *(avagraha)*, inquisitiveness *(īhā),* comprehension *(avāya),* and retention *(dhāraṇā)*. This is the Word of Lord Jina.

विचार
The Thoughts

## २३१. मानवता की रक्षा मानवता से

प्रथमतः यह समझो कि जीवन सुरक्षित कैसे रहे। मानव जाति ही मानव जाति से सुरक्षित नहीं रहेगी, तो फिर अन्य का क्या होगा? सृष्टि की सर्व-व्यवस्था ही भंग हो जायेगी। मानव के अन्दर मानवीयता सुरक्षित रहे इसके लिए अध्यात्म-ज्ञान की अनिवार्यता है। बिना अध्यात्म-ज्ञान के मानव की मानवता सुरक्षित नहीं रह सकती, इसमें कोई भी शंका खड़ी न करे। आत्मज्ञान के अभाव में क्रूरता, निर्दयता, शाठ्य भाव का जन्म होता है जिसका परिणाम मैत्री भाव का अभाव है, परस्पर की प्रीति समाप्त होना है। अध्यात्म-ज्ञान शत्रुता का नाश करता है और सर्व विश्व में मैत्री भाव को स्थापित कराता है।

## 231 - Human protection through humaneness

Understand first the ways to protect life. If humans are not safe from humans, what will happen to the other living-beings? The world-order will collapse. In order to protect humaneness in humans, spiritual knowledge is necessary. Without spiritual knowledge humaneness cannot survive in humans; do not have any doubt regarding this. The traits of cruelty, mercilessness, and perfidy arise in the absence of the spiritual knowledge; the result is the loss of mutual brotherhood and affection. Spiritual knowledge destroys mutual enmity and establishes brotherhood in the whole world.

विचार
The Thoughts

PREVIEW ONLY

## २३२. महापुरुषों की महा-महिमा

आत्मज्ञानी व्यक्ति के सामने क्रूर-से-क्रूर प्राणी शान्त हो जाते हैं। जातिगत वैरभाव भी छोड़ देते हैं। देखो, तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर स्वामी पर्यन्त का इतिहास सर्व जगत् को विदित है। जहाँ-जहाँ भगवान् का विहार होता था वहाँ-वहाँ सुभिक्ष हो जाता था। गाय एवं सिंह मैत्री भाव से सरिता के एक ही घाट पर पानी पीते थे। उनके समवशरण में (धर्म-सभा में) तीन गति के जीव अपने-अपने कोठे में बैठकर दिव्यवाणी, श्रीजिनदेशना का श्रवण करते थे। महापुरुषों की यही महिमा है; बिना अस्त्र-शस्त्र उठाये सर्वलोक को अपना बना लेना। उपसर्ग कर्ता भी चरणों में आकर सम्यक्त्व निधि को प्राप्त कर लेता है। घर-घर में आत्म-विद्या उद्घोषित हो, ऐसा पवित्र भाव रखो। अपने कषायिक वासनापूर्ण विचारों के कारण किसी भी नर, तिर्यंच का विघात मत करो तथा भावों से देव एवं नारकियों की भी हत्या मत करो। स्व-परिणामों को सम्भालो। इस अध्यात्म सूत्र का ध्यान करो- 'देखो, जानो, जाने दो'। यहाँ पर एक प्रश्न खड़ा हो सकता है। 'देखो, जानो, जाने दो' इस सूत्र से क्या अपराध वृत्ति नहीं बढ़ जायेगी? अन्तरंग अपराध वृत्ति नहीं बढ़ जायेगी? अपराध दो प्रकार के हैं- अन्तरंग अपराध तथा बहिरंग अपराध। जो हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह संचय बाहर लोक में दिखाई दे रहे हैं, वे बाह्य अपराध हैं। अन्य के बाह्य अपराध दिखते हैं। किसी के भी अन्तरंग अपराध तो आप नहीं देख सकते, क्योंकि आप परमात्मा नहीं है। स्वयं के ही भावों का अनुभवन जीव कर पाता है। बहिरंग अपराध कभी-कभी वैसे नहीं होते हैं जैसे दिखते हैं। जैसे चिकित्सक शल्य क्रिया कर रहा था, परन्तु शल्य-क्रिया करते समय मरीज की मृत्यु हो गई। दिखने में घात हुआ पर अभिप्राय भिन्न होने से वैद्यराज को राजकीय दण्ड नहीं मिलेगा। एक व्यक्ति किसी को मारने के उद्देश्य से अस्त्र का प्रयोग करता है, परन्तु सामने वाले के प्रबल पुण्योदय से उसके प्राण बच गये। भले ही घात्य का घात नहीं हुआ, फिर भी मारने वाला अपराधी ही है, इस बात का भी बोध होना चाहिए।

स्वकीय अन्तरंग अपराध कषाय भाव से आत्मरक्षा करो। इसलिए 'देखो, जानो, जाने दो' सूत्र अपराध नहीं बढ़ाता, अपितु आत्म अपराधों का उपशमन कराता है। प्रत्येक प्राणी के आत्म अपराध यदि उपशमित हो जायें, तो फिर कोई बाह्य अपराधक हो ही नहीं सकता। अन्तरंग का कषायिक भाव ही तो अपराध कराता है। जो भी शारीरिक अपराध होते हैं वे सब भूत व वर्तमान के अन्तरंग कालुष्य भावों के कारण होते हैं। कालुष्य भावों को सम्भालना प्रत्येक जीव का कर्त्तव्य है। 'देखो, जानो, जाने दो' सूत्र पर पुनः नवीन विचार करो।

## 232 - The ebullient glory of great men

Even the most cruel living-beings get to quiescence in front of the man with soul-knowledge. They even leave their species-based animosity. See the well-known history of the lives of the *Tīrthaṃkara* from Lord Ṛṣabhadeva to Lord Mahāvīra. All places where Lords used to arrive used to turn into places with abundance of food. The cow and the lion used to drink water from the same wharf of the river. In their divine-pavilion for the grand congregation *(samavaśaraṇa)*, living-beings of the three states-of-existence *(gati)* listen to the divine voice or discourse, while being seated in their respective halls. This is the glory of great men; without the use of any weapons they make the whole world

PREVIEW ONLY

their own. Even those who bring about calamity bow down in the Lord's Feet and attain the treasure of right-faith *(samyaktva)*. May there be promulgation of spiritual learning in every home; maintain this pious thinking. Do not kill any man or animal due to your thoughts tinged with passions *(kaṣāya)* and lust; do not kill any celestial- or infernal-being in your thoughts. Control your dispositions. Remember always this mantra: 'look, know and let go'. Someone may raise a question: will this mantra not lead to increase in transgressions? Will instances of internal transgressions not increase? Transgressions are of two kinds: internal and external. The transgressions that are visible from the outside – injury *(hiṃsā)*, falsehood *(asatya)*, stealing *(steya* or *caurya)*, unchastity *(kuśīla)* and attachment-to-possessions *(parigraha)* – are external transgressions. You cannot see anyone's internal transgressions as you are not a supreme-soul *(paramātmā)*. One can experience only one's own dispositions. At times. external transgressions are not the same as these appear to be. Take the case of a doctor performing a life-saving surgery but the patient dies. The doctor is not guilty of a transgression as his intention was pious. Take another case of a man who uses a weapon to kill a man but due to past merit the victim escapes death. The man who wanted to kill another man is still guilty of transgression.

Save yourself from your internal passions *(kaṣāya)*. It is for this reason that the mantra, 'look, know and let go' does not lead to increase in transgressions; it, in fact, leads to subsidence of transgressions. If transgressions of every living-being get to quiescence, no one will be there to commit external transgressions. Only the dispositions of internal passions *(kaṣāya)* lead to transgressions. All bodily transgressions are due to internal evil dispositions. One must control one's evil dispositions. Think again on the mantra, 'look, know and let go'.

विचार
THE THOUGHTS

## २३३. ध्रुव सत्य परमात्मा पद

देश, राष्ट्र, समाज, धर्म एवं स्व–पर के प्राणों की रक्षा करने के भाव हैं, तो प्रत्येक सूत्र को अनेक श्रेणियों से देखना चाहिए। सर्व जगत् पूर्ण शुद्ध नहीं जी रहा है, यह ध्रुव सत्य है, पर जी रहा है। जीते–जीते शुद्ध अवस्था होते–होते एक क्षण परमशुद्ध में प्रवेश कोई विरला साधु पुरुष ही करता है, तब वह कर्मशून्य कृतकृत्य परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है।

## 233 - The supreme-soul *(paramātmā)* is the eternal truth

If you think of the protection of the country, nation, society, dharma and the lives of all living-beings, see every aphorism *(sūtra)* from different perspectives. It is an eternal truth that the whole world is not living in its absolutely pure state; it continues to live though. While living in the world, only a rare worthy man is able to experience, just for a moment, the state of supreme purity – the ultimate pure state. And then he gets rid of all karmas, and his soul attains the status of the supreme-soul *(paramātmā),* the state in which it has attained what all there was to attain.

विचार
THE THOUGHTS

PREVIEW ONLY

## २३४. वासना तथा विभूति की लोलुपता - प्राण-घात के कारण

सामान्य जीव की दशा तो विचित्र है। संविधान का पालन कराने के लिए शासन-प्रशासन होता है, परन्तु उसमें भी ऐसे व्यक्ति प्रवेश कर जाते हैं, जो संविधान शून्य जीवन जीते हैं। कुछ शासक अपने शासन काल में स्वच्छन्दी जीवन जीते हैं, प्रजातंत्र में दूसरे शासक को जेल भेज देते हैं। जब उनका शासन आता है, तब उन्हें वे जेल भेज देते हैं, परन्तु शुद्ध कार्य करने का विचार नहीं कर पाते। बिचारे अनादि कर्मों से पीड़ित होते हैं। अन्य पक्ष, अन्य पक्ष को जेल में डालकर स्वयं को शुद्ध नहीं कर पायेंगे। शुद्ध तो शुद्ध कर्मों से ही हो पायेंगे। परमात्मा व तीर्थों के भ्रमण भी अशुभ का नाश नहीं कर पायेंगे। जब-तक शुद्ध जीवन नहीं जिओगे, तब-तक शुद्धि नहीं हो पायेगी। पद का उद्रेक, हार-जीत का विकल्प व्यक्ति के परिणामों को रौद्र बना देता है। स्व-पद के राग में भाई भी भाई की हत्या कर देता है, पिता पुत्र की, माँ बेटी की, बेटा माता-पिता की भी हत्या कर देता है अथवा करवा देता है। वासना, विभूति की लोलुपता किसी के भी प्राण ले सकती है। कामवासना व्यक्ति को अंधा बना देती है। वासना का काल जब निकल जाता है तब मात्र रोना अवशेष रह जाता है और दुर्गति का वरण हो जाता है। इस रहस्यमयी सूत्र को समझो- 'देखो, जानो, जाने दो'।

जिनागम में एक धार्मिक शब्द है 'रहोभ्याख्यान'। रहोभ्याख्यान सत्य अणुव्रत का एक अतिचार है। अत: किसी भी स्त्री-पुरुष की एकान्त की क्रिया को देख लेने पर भी लोक में ख्यापित मत करो। अशुभ सम्बन्ध भी क्यों न हो, स्वयं की उससे धीरे से दूरी बना लो, आत्मरक्षा करो। आगम युक्ति पूर्वक उसके चारित्र की रक्षा हो सके तो अवश्य करें परन्तु लोक में प्रचार न होने पाए। उसके चारित्र के साथ यश स्वाभिमान की भी रक्षा हो जाए अन्यथा उभय हत्या की सम्भावना है। अपराधी स्वयं की आत्महत्या कर सकता है, अपराधी सशक्त हुआ तो आपकी भी हत्या कर सकता है। कुछ विषय जानकर भी अज्ञानी बने रहो, कोई प्रतिक्रिया मत करो।

## 234 - Lust and obsession for glory – causes of murderous tendencies

Ordinary men have strange tendencies. The administration is supposed to protect the constitution but there are men in administration who flout it blatantly. Some administrators, misusing their power, get their adversarial administrators imprisoned. The trend is reversed when, in a democracy, the opposition comes to power. No one thinks of doing good to the people. These men will not be able to purify themselves through such deeds. From beginningless time, they are bound with the karmas that cause them suffering. Subjecting one another to imprisonment will not bring them soul-purity. Soul-purity will come only through the pure karmas. Neither the supreme-soul *(paramātmā)*, nor any pilgrimage will be able to destroy your inauspicious karmas. Soul-purity will come only by leading a life of purity. Obsession for status and concern for win and defeat make a man cruel. For the sake of status, brother kills (or gets killed) the brother, father kills the son, mother kills the daughter, and son kills the parents. Lust and obsession for glory are the causes of murderous tendencies. Lust makes a man blind. As the time of lust passes, there remains nothing except crying; an evil state-of-existence awaits to embrace him. Understand the depth of the mantra, 'look, know and let go'.

The word *'rahobhyākhyāna'*, used in the scripture, means to divulge to others what has been done by a couple, in secret. It is a transgression of the minor-vow *(aṇuvrata)* of

PREVIEW ONLY

truthfulness *(satya)*. Do not reveal the act of the couple, even if promiscuous, to others. Distance yourself from such an act and protect yourself. If you can save the couple through righteous means, do it certainly; but without publicizing it. Let the conduct and honour of those involved be protected from ridicule; otherwise, there is a possibility of two-way killing. The victim may kill himself or, if powerful enough, kill you. Even if you know about some secrets, it may be worthwhile to pretend ignorance.

विचार
THE THOUGHTS

## २३५. कामुकता में सम्यक् निर्णय नहीं

स्वयं का जीवन सुरक्षित रखना है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की स्थिति को जानकर ही जीवन में कोई निर्णय करो। ज्ञानी समझो, 'देखो, जानो, जाने दो'। औदयिक भाव पर लक्ष्य रखो। तीव्र कर्मोदय पर जीव का विवेक ज्ञान भी कार्य नहीं करता, बुद्धि शून्य हो जाती है। सद्गुरु की सम्यक् बात भी कटुक लगने लगती है, श्रेष्ठ-जनों का मुख-दर्शन भी पसन्द नहीं आता है। जिसे देखना चाहता है वही मुख सामने आता है, उन्मत्त चेष्टा करने लगता है। लोग उसे पागल समझते हैं जबकि वह पागल नहीं है, पर की याद में पागलपन आ रहा है। एक के राग में जगत् उसे शून्य दिखता है। जो उसके मार्ग में खड़ा है वह उससे अपने मार्ग को शून्य करना चाहता है। कामुक, उन्मत्त के परिजनों को चाहिए कि कामी काम की तीव्रता में आपका सर्वस्व नाश कर सकता है, इसलिए सम्भलकर जिओ, सम्भालकर जिओ।

## 235 - Eroticism does not lead to right decision

To protect your life, keep in mind the substance *(dravya)*, place *(kṣetra)*, time *(kāla)* and disposition *(bhāva)* while taking a decision. O wise man, understand this: 'look, know and let go'. Always keep in mind your disposition due to the fruition of the karmas – *audayika bhāva*. At the time of grave fruition of the karmas, the discriminative knowledge of the man fails and his intellect abandons him. Even the right advice of the guru appears brutal, and the man does not wish to see the faces of noble men. He just wants to see only the face of the one he has been thinking about; he appears to be mentally deranged. People mistake his condition for insanity but actually he is not insane. The world comes to naught for him due to his attachment for one individual. He would want to remove anyone who comes in his way. Family members of such a person should be aware that, propelled by his eroticism, he can destroy anyone and, therefore, be careful.

विचार
THE THOUGHTS

## २३६. स्वतन्त्र परिणमन वस्तुधर्म

वस्तु का वस्तुत्व स्व-परिणमनभूत है, क्रिया करना वस्तु का धर्म है। स्वभाव स्वरूप प्रत्येक द्रव्य स्व-परिणाम में परिवर्तन कर रहा है, ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है जो मात्र कूटस्थ नित्य हो। नित्यपना ध्रुव पर्याय है जो कि उत्पाद-व्यय सापेक्षी है, बिना उत्पाद-व्यय के ध्रौव्य अवस्था नहीं है। जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवस्था से युक्त है, वही तो द्रव्य है। द्रव्य, पदार्थ, वस्तु, तत्त्व सभी पदार्थभूत ही

PREVIEW ONLY

हैं। कर्मवाच्य, भाववाच्य, क्रियावाच्य, अर्थ क्रिया-कारकत्व की अपेक्षा वस्तु व्यवस्था की कथन पद्धति में भेद दृष्टिगोचर होता है। क्रिया-कारक, वाच्य-वाचक, अभिधेय-अभिधान, व्याख्यान-व्याख्ये इत्यादि का व्याख्याता व्याख्यान करता है। सत् द्रव्य का लक्षण, लक्षण-लक्ष्य से पृथक् नहीं होता है। संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में भेद दृष्टिगोचर होता है, परन्तु अधिकरण की अपेक्षा तो किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। एक ही वस्तु में उत्पाद, व्यय ध्रौव्य है। भिन्न वस्तु में व्यय हो, भिन्न वस्तु में ध्रौव्य हो ऐसा क्षणिकवादी जैसा सिद्धान्त नहीं है तथा उत्पाद का स्वामी अन्य, व्यय का स्वामी भिन्न, ध्रौव्य का स्वामी भिन्न, ऐसा भी नहीं है। एक ही द्रव्य स्व-योग्यता युक्त त्रयात्मक है।

जगत् कर्ता, हर्ता, रक्षक की कल्पना से शून्य है। कोई भिन्न पुरुष परमात्मा या ईश्वर कर्ता, हर्ता, रक्षक नहीं है। वस्तु का परिणमन स्व-वस्तुत्व का नाश किए बिना त्रयात्मक परिणमन प्रतिक्षण चल रहा है। परभाव रूप कोई भी पदार्थ नहीं होता, इसलिए अपरिणामी है। स्व-स्वभाव में प्रतिक्षण परिणमन चल रहा है, इसलिए परिणामी भी वस्तु है। एक ही समय में परिणामी-अपरिणामी स्वभावी वस्तु है, इस व्यवस्था का कभी भी अभाव नहीं होगा, त्रैकालिक व्यवस्था है। षड्-द्रव्य सनातन हैं उनका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव भी सनातन है। सारा जगत् अनादि से प्रवाहिमान है। भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत - ये सात क्षेत्र; षड् कुलाचल वर्षधर पर्वत - हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि, शिखरी; गंगा, सिंधु आदि नदियाँ; क्षीरसागर आदि समुद्र; अयोध्या, सम्मेदशिखर आदि तीर्थभूमियाँ; ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक - ये तीनों लोक; शाश्वत, सनातन, अनादि-अनन्त, अनिमित्तिक संज्ञा को प्राप्त हैं। लोकालोक अकृत्रिम हैं, किसी भी पर पुरुष व परमात्मा द्वारा कृत, रक्षित, संहार रूप नहीं हैं। सम्पूर्ण पदार्थ लोकाकाश में अवस्थित हैं। आकाश स्व-प्रतिष्ठित है। व्यवहार से छह द्रव्य लोकाकाश में ही हैं। परमार्थ से सम्पूर्ण द्रव्य भी स्व-प्रतिष्ठित हैं। अलोकाकाश मात्र शुद्ध आकाश है। वहाँ पर अन्य द्रव्यों का अवस्थान नहीं है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये छह द्रव्य लोकाकाश में विद्यमान हैं। छह द्रव्य स्वतन्त्र हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपादान कर्ता नहीं है तथा कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्य के निमित्त से भी उत्पन्न नहीं हुआ, गति आदि क्रिया में उदासीन निमित्त है, न कि कर्ता। जीव एवं पुद्गल क्रियावती शक्ति से युक्त हैं, शेष द्रव्य निष्क्रिय हैं न कि स्व-अर्थ-क्रिया कारक भाव से, परिणाम-परिणामी भाव से, षड्-अगुरुलघु भाव से। परिणमन तो प्रत्येक द्रव्य का सदा से चला आ रहा है और भावी काल में भी ऐसा ही चलता रहेगा; यह अटल है, इसे कोई भी विश्व की शक्ति चलायमान नहीं कर सकती। सहज वस्तु व्यवस्था में कौन हस्तक्षेप कर सकता है? प्रतिभा सम्पन्न बुद्धिजीवी जनों को विवेकपूर्वक तत्त्व चिन्तवन करना चाहिए। अज्ञानता पूर्वक नास्तिक्य भाव को जन्म देना बुद्धिजीवीपना नहीं है, सत्यार्थ-बोध वस्तु का होना चाहिए। हम कोई धर्म नहीं मानते हैं, क्योंकि बुद्धिजीवी हैं। अरे भाई! वस्तु के वस्तुत्व को नहीं जानना, पाँच इन्द्रियों के भोगों में श्वान जैसे संलग्न रहना, भौतिक वस्तुओं के दास बनकर भोग-भोजन में उन्मत्त चित्त होना, प्रत्येक का विरोध मात्र करना, हेय-उपादेय पर विचार किये बिना देश, धर्म, राष्ट्र हित पर अविचारशील तुष्टीकरण की पुष्टि, सुरा-सुन्दरी सेवन संस्कृति में जीना, बुद्धिजीवीपना नहीं है, बुद्धि का विपर्यास है। एक स्थान पर कचड़े घर जैसे प्रज्ञा को डाल देना है। प्रज्ञावान् तटस्थ भाव से वस्तु व्यवस्था का बोध, शोध करता है।

सम्यक्-वस्तु व्यवस्था पर प्रश्न मात्र करना, सत्य को श्रवण करने की योग्यता ही उत्पन्न नहीं कर पाना, प्रज्ञावन्त जनों के मध्य उपहास के पात्र बनना है। पढ़े-लिखे मनुष्य का अर्थ जो जैसा समझा दे उसे ही स्वीकार कर लें, ऐसा है क्या? या फिर आजीविका के लिए पढ़ना-लिखना, अर्थ उपार्जन, भोग भोगकर मर जाना, पढ़े-लिखेपन की परिभाषा है क्या? किसी अज्ञ-व्यक्ति की रूढ़ियों में जीना या फिर किसी अन्वेषक की बात को तोते जैसे रटते रहना, अहो आश्चर्य! सेवफल पृथ्वी पर ही गिरा अमुक सिद्धान्त है। वर्तमान अन्वेषक जब नहीं जन्मे थे, तब क्या सेवफल आकाश में जाता था? ठीक है, किसी ने कोई वस्तु की बात की उसे जानकर स्वबुद्धि का भी तो प्रयोग करना सीखो या मात्र 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' पर ही जीते रहोगे या अज्ञानियों के कहने पर प्रत्येक स्थान पर विरोधी बनकर ही खड़े रहोगे? सत्यद्रष्टा, सत्यनिष्ठ जीवन जीना सीखो।

अज्ञान वृत्ति को भी शीघ्र स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। प्रज्ञा एवं सत्यार्थ बोध युक्त आगम ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिए। किस सम्प्रदाय में जन्म हो यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, जन्म लेकर सत्यार्थ जीवन जीना महत्त्वपूर्ण है। जगत् के मध्य रहकर सत्यार्थ बोध प्राप्त करना पुरुषार्थशील का धर्म है।

शान्त भाव से जीना, स्व-पर जीवन का अध्ययन करना और मध्यस्थ हो जाना, यह मानव जीवन की विशेष उपलब्धि है। क्लेश, संताप, दु:ख, पीड़ा, आक्रन्दन, परिदेवन से स्व-चित्त को पूर्ण सुरक्षित रखना। जैसे कृषक धान्य को कीड़ों से सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार साधु पुरुष अपने चित्त को पूर्ण सुरक्षित रखता है, कुभावों के कीड़ों से।

प्रज्ञ-पुरुष स्व-निर्णय स्व-पर के विवेक, वचन, चिन्तवन एवं समीचीन श्रुत के आलम्बन से लेता है। शीघ्र सहसा किसी भी बात का निर्णय नहीं लेता। ज्ञानीजन ऐसा निर्णय नहीं लेते हैं, जिसके उपरान्त पश्चाताप हो, प्रत्येक निर्णय का स्व में आनन्द हो और लोक में प्रंशसनीय हो। आपके निर्णय पर जगति प्रसन्नता का अनुभव करे। बाल, वृद्ध, युवा, सभी वर्ग के लोग एवं सर्व वर्ण के लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करें।

साधुवृन्द एवं विद्वान् भी गद्गद् हो जायें, माता-पिता आपके निर्णय से स्व को धन्य-धन्य मानें, गुरुजन आशीर्वाद देने के लिए आतुर हो जायें, मित्रगण व सन्तान प्रतिपल साथ देने खड़े रहें, ऐसा निर्णय करना सीखो। जिस कार्य से स्व-पर का कल्याण हो ऐसा कार्य करो एवं ऐसा कोई निर्णय मत लो जिससे सम्पूर्ण सृष्टि शर्मिन्दा हो, सर्वत्र उपहास हो, स्वबन्धु भी न पहचानें, सर्व मित्र-मण्डल शुत्र बन जाये। आपके जीवन-निर्णय पर जनक-जननी अश्रुपात करें, अपने भाग्य तथा काम-पुरुषार्थ पर रुदन करें, सहोदर तथा सन्तान नाम लेना भी पसन्द न करें, पग-पग पर निन्दा, अवहेलना के शब्द सुनाई पडें। जिस निर्णय से धर्म, संस्कृति तथा देश, राष्ट्र, विश्व का अकल्याण हो जाये और स्वयं की दुर्गति हो जाये, ऐसा कार्य तथा ऐसे कार्य का निर्णय न स्वयं लें और न अन्य के ऐसे कार्य तथा निर्णय की अनुमोदना ही करें।

## 236 - Every object has independent transformation

The true nature of the objects – *vastutva* – is to undergo transformation; activity is inherent to it. Every object is undergoing transformation in itself; there is no object that is eternally unchanging. The mode *(paryāya)* that is marked by permanence *(dhrauvya)* is relative to origination *(utpāda)* and destruction *(vyaya)*; there is no permanence without

origination and destruction. The substance *(dravya)*, the objects *(padārtha, vastu)* and the reality *(tattva)* all are aspects of the object. Depending on the predominance in speech given to the karma or the disposition or the activity differences are seen between these. The speaker takes into account aspects including the activity and the actor, the object-of-speech and the speech, the term and the terminology and the lecture and the lecturer. Existence *(sat)* is the mark of the substance *(dravya)*, the mark is not distinct from the substance. From the points-of-view of the name *(saṃjñā)*, the mark *(lakṣaṇa)* and the purpose *(prayojana)* these appear to be distinct, but there is no distinction in regard to the substratum *(adhikaraṇa)*. A single object has origination, destruction and permanence. This view does not advocate momentariness which sees destruction and permanence in different substances. Also, the view does not accept that origination, destruction and permanence take place in different objects. A single substance has the ability to have all three aspects together.

The world does not function on the basis of an imaginary doer, abductor and saviour. No other man or god is the doer, abductor and saviour. All objects, without destruction of their objectness *(vastutva)*, undergo every instant three-fold transformation. Since the object does not become of the nature of other object, it is without transformation. It undergoes transformation in own nature. Thus the object is with transformation as well as without transformation. This is an eternal system that exists in the three times. The six substances *(dravya)* are eternal and their nature of origination *(utpāda)*, destruction *(vyaya)* and permanence *(dhrauvya)* too is eternal. The whole world functions this way since beginningless time. Six regions – Bharata, Haimavata, Hari, Videha. Ramyaka, Hairaṇyavata and Airāvata; six mountain chains – Himavān, Mahāhimavān, Niṣadha, Nīla, Rukmi and Śikharī; rivers including Gaṅgā and Sindhu; oceans including Kṣīrasāgara; places of pilgrimage including Ayodhyā and Sammedaśikhara; three universe – upper-world *(ūrdhvaloka)*, middle-world *(madhyaloka)* and lower-world *(adholoka)* are all eternal, perpetual and without a beginning. The universe and non-universe – *lokāloka* – are not man-made and are not created or protected or destroyed by any other man or supreme-soul *(paramātmā)*. All substances are stationed in the universe-space *(lokākāśa)*. The space *(ākāśa)* is self-stationed. From the empirical point-of-view, the six substances are in the universe-space. From the transcendental point-of-view, all substances are self-stationed. The non-universe-space *(alokākāśa)* is just the pure space *(ākāśa)*, having no other substance. The six substances – the soul *(jīva)*, the matter *(pudgala)*, the medium-of-motion *(dharma)*, the medium-of-rest *(adharma)*, the space *(ākāśa)* and the time *(kāla)* – are stationed in the universe-space *(lokākāśa)*. The six substances are independent. No substance is the substantive *(upādāna)* cause of any other substance, no substance has originated due to the instrumental *(nimitta)* cause of any other substance; these may be uninvolved causes of movement and activity of other substances. The soul and the matter are with the strength of activeness; other substances are inactive, not from the point-of-view of their own inherent transformation or six-fold *agurulaghu* transformation. Transformation in all substances is eternal and shall continue forever. No one can violate this truth. The men of intelligence should reflect on these aspects and understand the nature of the reality. Adherence only to negation due to ignorance is not intellectualness; know the truth of the objects. "We do not accept any dharma since we are intellectuals." O brother! Not

PREVIEW ONLY

accepting the nature of the objects or *vastutva*, to remain engaged, like a dog, in the pleasures of the five senses, being materialistic and becoming slaves of the objects of enjoyment, opposing everyone, trying to please everyone without thinking about what is worth accepting and rejecting for the well-being of the nation, dharma and country, living life just in the culture of wine and woman, is not intellectualness but its opposite. It is like throwing your intelligence in a dustbin. The intelligent man tries to investigate and know the nature of the objects.

Questioning the right nature of objects and not being able to listen to the truth makes you a subject of ridicule among the men of intelligence. An educated man does not accept whatever is told to him. Or, can an educated man be defined as the one who studies for livelihood. earns money, and then dies after enjoying life? Or as the one who lives by just following the old traditions or be able to recall, like a parrot, what others have said? Amazing! It is a philosophical doctrine that the apple falls on the earth. Was the apple going upwards in the sky before the invention of this doctrine? Learning from others is good but use your own intelligence too. Don't live entirely either by accepting what has been said by others or by opposing others. Learn to see the truth and live a truthful life.

Do not readily accept ignorant tendencies. Study texts that deal with the knowledge of truth and the scriptures. It is not important which sect you were born in; to live life based on truth is important. While living in the world, to pursue true knowledge is the dharma of every man.

To live peacefully and after studying the life of self and others to adopt indifference are attainments of human life. Keep your mind absolutely safe from dispositions that result in torment, agony, suffering, pain, moaning, and lamentation. Just as the farmer keeps his harvest safe from insects, the man of nobility keeps his mind safe from the insects of evil dispositions.

An intelligent man takes decisions on the bases of the discrimination between the self and others, listening to knowledgeable men, reflection, and study of the scriptures. He does not take decisions hurriedly. Knowledgeable men do not take decisions which may result in self-reproach afterwards; their decisions bring them internal happiness. People in the world too experience delight and all – the young, the old, the youth, and the people from all sects and complexion – praise their decisions.

Learn to take decisions which bring delight to the ascetics and the scholars, which make your parents feel blessed and make them impatient to shower their blessings on you, and which make your friends and offspring stand with you all the time. Take a decision which brings well-being to self and others; do not take any decision that puts mankind to shame, which brings you derision from all, and which not only distances away your friends but makes them your enemies. No decision taken by you should make your parents cry in regret of their effort in giving you birth, make your siblings and offspring reluctant to utter your name, and cause you to hear the words of your derision and avoidance at every step. Do not engage yourself or grant approval to others in decisions or activities that cause harm to the dharma, culture, country, nation or world, and which bring to you an evil state-of-existence.



PREVIEW ONLY

## २३७. वस्तु व्यवस्था

वस्तु व्यवस्था पूर्ण व्यवस्थित है। जीव संकल्प-विकल्पों से स्वात्म रक्षा स्वयं करे, अन्य पदार्थों पर हर्ष-विषाद करने की आवश्यकता नहीं है। तत्त्व-ज्ञान, सत्यार्थ बोध से अनभिज्ञ जब-तब हर्ष-विषाद, अहंभाव, हीनभाव से आत्मा को पीड़ित करते रहते हैं। नाना-प्रकार से स्वात्मा को कष्ट देते रहते हैं, जबकि उन्हें बोध होना चाहिए कि वस्तु व्यवस्था त्रिकाल स्वयं में पूर्ण व्यवस्थित है। संसार मोक्ष की विधि पूर्ण विधि-युक्त है। परिवर्तन वस्तु की विशिष्ट अवस्था है। विश्व व्यवस्था परिवर्तन पर स्थित है, बिना परिवर्तन के किसी भी देश, राष्ट्र, विश्व की व्यवस्था बन नहीं सकती। व्यवहार-परमार्थ उभयावस्था भी परिवर्तन पर अवस्थित है। वस्तु परिवर्तन न करे तो व्यक्ति का जीवन शून्य हो जायेगा।

परिवर्तन के अभाव में जीर्णता, नवीनता शब्द ही कोश से समाप्त हो जायेंगे। जन्म-मरण, वृद्ध, बाल, युवा अवस्थायें शून्य हो जायेंगी। भोजन-पाचन, भोजन उत्पन्न, पानी पीना, लघु-शंका होना, मल-विसर्जन, नवीन-नवीन आविष्कार, वस्त्र-आभूषण, तंत्र-मंत्र, भाषा विज्ञान, जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान, संचार-पद्धति, सृजन-विसर्जन सभी का स्त्रोत वस्तु परिणमन पर आधारित है। बिना परिवर्तन के वस्तु नित्य, कूटस्थ, जड़त्वभूत हो जायेगी। लोकालोक की व्यवस्था का अभाव हो जायेगा। धर्म-कर्म, धर्मात्मा-परमात्मा, माता-पिता, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, सर्व-तंत्रों का विच्छेद नियत हो जायेगा। यदि वस्तु व्यवस्था को सम्यक् रूप से जानना चाहते हो, यथा-तथा देखना चाहते हो, तो परिवर्तन स्वीकार करो। पर्याय दृष्टि से प्रत्येक वस्तु उत्पादमान् है, व्ययवान् है, द्रव्यार्थिक दृष्टि से सत्स्वभावी, अपरिणामी, नित्य है। परन्तु सर्वथा न नित्य है न ही क्षणिक, नाशवन्त, अनित्य है। वह नित्यानित्य है, ऐसा वस्तु का धर्म है। जो यह जानता है, वही वस्तु व्यवस्था का सच्चा ज्ञानी पुरुष है। अन्य एक पक्ष को मानने वाला वस्तु व्यवस्था से पूर्ण अपरिचित, अज्ञ, मिथ्या, अविद्या के अभ्यास से दूषित चित्त वाला है। वह बिचारा अल्पधी स्व-पर का शत्रु है, न तो स्वयं को सत्य के पास ले जा सका, न अन्य भोले प्राणियों को ही सत्य के दर्शन होने देता है। ऐसा जीव घोर पाप के गर्त में पतित होता है। स्व-गुणों की वृद्धि करना चाहिए, पर-गुणों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। निन्दक तथा बन्धक को समान पाप के भागी जानना चाहिए।

स्वानुभव से निर्णय लेना चाहिए, पर के शब्दों को सुनकर शीघ्र निर्णय नहीं लेना चाहिए। वस्तु के सत्यार्थ तक प्रवेश करके ही स्व-निर्णय को व्यक्त करना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है।

अनुभव-बोध बोधक को महान् शान्ति देता है। यदि विवेकशील व्यक्ति जीव-सिद्धान्त शास्त्रों का अभ्यास शान्त भावों से बैठकर विवेकपूर्वक स्वकृत पर विचार करे तो उसके स्वकृत कर्म-बन्ध, फलोदय का अनुभव स्वज्ञान में आना प्रारम्भ हो जायेगा। फिर वह जीवन के किसी भी क्षण में यह नहीं कह पायेगा कि अहो! अहो!! अहो!!! मेरे ऊपर ईश्वर, परमात्मा प्रसन्न है अथवा मेरे ऊपर परमात्मा नाराज है। वह स्वमुख से ही कहेगा कि अपने कर्मों का कर्ता मैं ही हूँ और उनके शुभाशुभ फल का भोक्ता भी मैं ही हूँ। पर को स्व का सुख-दुःख का कर्तापन थोपना मेरा अज्ञानतापूर्ण भाव है। अहो! इस अज्ञानता में मैंने कितने भव धारण किये!

अज्ञानभाव जीवन का महादुःख है। ज्ञानी चतुर पुरुष प्रत्येक कार्य का निर्णय स्व-विवेक से लेता है, पूर्वापर का ध्यान रखता है, स्व-पुरुषार्थ एवं भाग्य को देखता है, पर के अनुसार स्व-जीवन नहीं

PREVIEW ONLY

जीता है, भिन्न पुरुष व परमात्मा के बल का प्रयोग नहीं करता है। ऐसा विचार कभी नहीं करता है कि जो होगा सो देखेंगे। वह इस अज्ञानमयी भावना में नहीं जीता है कि ईश्वर की इच्छा से कार्य होगा। वह मानता है कि यदि कार्य विपरीत हो गया तो उसका भार स्वयं ही झेलना पड़ेगा। किसी के प्राण को कोई भी ईश्वर समाप्त करने नहीं आया, अपितु तनाव में आकर अनेकों अज्ञजनों ने फाँसी लगा ली। क्या वह फाँसी भी ईश्वर की इच्छा से हुई? प्राण लेने की इच्छा ईश्वर में है; इतना क्रूर व हिंसक तो ईश्वर नहीं हो सकता। वह कैसा ईश्वर जो किसी के परिवार को क्षण मात्र में समाप्त कर दे?

महामारी कोरोना के काल में विश्व में हाहाकार मच गया था। प्रत्येक प्राणी प्रार्थना कर रहा था कि हे ईश्वर! रक्षा करो। लाखों-लाखों मनुष्यों की जानें चली गयीं, पत्नियाँ पति-विहीन हो गईं, पुत्र माता-पिता विहीन हो गए, बेटियाँ सूने घर में कुँआरी बैठी रहीं। क्या यह सब ईश्वर की क्रिया चल रही थी? क्या ईश्वर लोक को त्राहिमान्-त्राहिमान् कर रहा था? जरा प्रज्ञा से विचार करो; जो स्वयं रचना करे वह ही स्वकीय रचितों के प्राण लेगा? क्या लोक में ईश्वर की इतनी उपासना व्यर्थ ही गई? जब रचने वाला ही नहीं सुन रहा तो फिर अन्य कौन सुनेगा? इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि परमात्मा दया-शून्य है या फिर स्वीकार करो कि प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वाधीन है। ईश्वर मात्र ज्ञाता-दृष्टा ही है, वह किसी के सुख व दु:ख का कर्ता-हर्ता नहीं है। भोले प्राणी परमार्थ तत्त्व से अनभिज्ञ हैं। वे बिचारे इस बात का विचार ही नहीं कर पाते कि वस्तु व्यवस्था स्वतन्त्र है। बड़े-बड़े ग्रन्थों में लिखित बातें पूर्ण सत्य हों इसका प्रमाण ही लिया, परन्तु स्व प्रज्ञा से भी तो विचार किया जा सकता है। स्वकीय सन्तान को सामान्य प्राणी कष्ट नहीं देना चाहता फिर जगत् कर्ता अपने ही कृत जीवों की हिंसा को उतारू हो जाये, अहो! वह कैसा परमात्मा? किंचित भी दया, करुणा नहीं उसके अन्त:करण में; पहले रचना करे फिर उसके उपरान्त नाश। मित्र! मेरे भोले मित्रों! एक क्षण को सम्यक् विचार करो कि समीचीन सत्य क्या है।

## 237 - The system of objects

The system of objects is fully organized. The man should protect his soul from all sense-of-mine *(saṃkalpa)* and self-consciousness *(vikalpa);* there is no need to be either happy or sad due to other objects. The men without the knowledge of the reality and truth every now and then hurt their souls by indulging in joy and sorrow, conceit and wretchedness. They should realize that in the three times the system of objects is fully organized. Attainment to liberation from worldly existence is wholly logical. Change is a special attribute of all objects. Worldly system rests on change; without accepting change, the system of the country, nation and world cannot be established. The dual system of empirical and spiritual points-of-view too depends on change. If change is not accepted, life shall come to naught.

Without accepting change, words like old and new will vanish from the dictionary. There will be no birth, death, and transformation from young to old. Origination of activities including eating and drinking, farming, excretion, inventing, adorning, tantra and mantra, use of languages, sciences of physics and communication, and collection and disposal of matter, rests on change. Without change the object will become eternally permanent and inanimate. All systems in the world will come to naught. The dharma and

PREVIEW ONLY

karma, the noble man and the supreme-soul *(paramātmā)*, the mother and father, the father and son, the guru and disciple, the king and subject – all these will vanish. If you wish to gain right knowledge of the system of objects – to know it as it really is – accept change. From the standpoint of the mode *(paryāya)*, the object has origination and destruction; from the standpoint of the substance *(dravya)*, the object has the nature of existence, and it has the attributes of non-transformation and permanence. No object can be called absolutely permanent or absolutely transient and destructible. All objects have both, permanence and transience. The one who knows this has the true knowledge of the system of objects. The mind of the man who accepts the absolutistic view of the system of objects is mired with unawareness, ignorance, wrong-belief and false-knowledge. That unfortunate and ignorant man is an enemy of self and others; neither he himself has been able to reach the truth nor can he take other unaccomplished men near it. Such a man falls into the deep pit of evil. Increase your qualities but do not engage in calumny. Those who engage in calumny and those who confine others earn the same level of demerit.

Take decisions on the basis of your own experience; do not take hasty decisions based on what others say. Knowledgeable men should express their decisions only after ascertaining the truth.

Learning from self-experience provides great peace to the mind of an observing man. If a man of discernment reflects, after studying the scriptures on the doctrine of the soul, on his own deeds, he will start experiencing the bondage and fruition of the karmas. After that, he will never be able to say, “God is happy with me;” or “God is unhappy with me.” He will just say that he is the doer of his karmas and that he is the enjoyer of the auspicious and inauspicious fruits of the karmas. It is his ignorance if he attributes the responsibility of his happiness and misery to others. He will realize that he has been whirling round in the cycle of worldly-existence due to his ignorance.

Ignorance is great misery in life. The intelligent and clever man takes decision based on discernment, taking into account its effect on the past and future, and his own deeds and fate; he does not lead a life based on others and does not rests his life on the strength of others – men or the supreme-soul *(paramātmā)*. He does not entertain the thought that he will see when something happens. He does not also entertain the ignorant view that the work shall get done by the will of god. He accepts that he himself shall be responsible for any adverse outcome of his deeds. No god has ever come down to take lives of men; many ignorant men though hanged themselves due to unbearable stress. Did god wish that they should hang themselves? God can never be so cruel and violent that he would wish to take lives. How can he be called a god who annihilates the whole family in one stroke?

The coronavirus pandemic had caused great upheaval in the whole world. Everyone pleaded with god for protection. Hundreds of thousands of men and women lost their lives. Women were widowed, children were orphaned, and girls were confined to their homes, unmarried. Was all this the activity of god? Did god cause this upheaval in the world? Think, using your intellect; will the creator would ever take life of his own creations? Did all worship of god go waste? When the creator was not listening, who else would listen? All this points to the mercilessness of god, or else accept that all objects undergo own transformation. God is just the knower and seer and not the doer or abductor of anyone’s happiness and misery. General men are ignorant of the facts of the

PREVIEW ONLY

reality. They are not able to realize that the system of objects is independent. They just accepted, without using their own intellect, what they found written in well-known texts. Even a normal man would not want to inflict pain on his offspring, how can the creator of world think of eliminating his own creations? A god who first creates and then kills can have no mercy or compassion! My ignorant friends! Think for a moment about the facts of the reality.

विचार
THE THOUGHTS

## २३८. भाषा वाचक है, सिद्धान्त वाच्य है

संस्कृत आदि भाषाओं के ज्ञाताओं ने ग्रन्थ लिखे हैं। क्या सभी अज्ञानी ही थे? मित्र समझो, भाषाओं का ज्ञान तो जाति, वंश, क्षेत्र, देश की प्रत्यय-शक्ति से भी हो जाता है तथा सीखने से भी हो जाता है। इसका तात्पर्य है- भाषा-ज्ञान सिद्धान्तों की अज्ञान निवृत्ति करा देगा, ऐसा नियम नहीं है। सिद्धान्त ज्ञान सिद्धान्त है, भाषा भाषा है। सिद्धान्तों को सुरक्षित रखना भाषा का कार्य है, बिना किसी भाषा में निबंधित किए सिद्धान्तों की रक्षा असंभव है, साथ-ही सिद्धान्तों का निर्यात-आयात भी भाषा और लिपि के द्वारा ही होता है। इसलिए विभिन्न भाषाओं और विभिन्न लिपिओं का ज्ञान होना चाहिए।

यदि भाषाओं एवं लिपियों के जानने की प्रज्ञा अधिक नहीं है तो फिर किसी एक भाषा के माध्यम से भी आप सद्-सिद्धान्तों की बात करें और तत्त्व-पिपासु आपके सिद्धान्तों की समीचीनता को जानकर स्वकीय भाषा एवं लिपि में परिवर्तन कर लेंगे। उसके लिए बहुत विचारने की आवश्यकता है, परन्तु यह सत्य है। भाषा वाचक है, सिद्धान्त वाच्य है; वाच्य विशुद्ध होना अनिवार्य है।

अनेकों भाषाविद् हुए, परन्तु सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं था, इसलिए उनकी लिखित, सम्पादित, कृतियाँ, पोथियाँ ग्रन्थागारों के भार ही बनकर रह गईं, भव्य जीवों के कल्याण मार्ग को तो प्रशस्त नहीं कर सकीं। अहिंसा धर्म, जीव-रक्षा की जगह जीव-बलि, बलिदान जैसे अशुभ भाषा-सिद्धान्तों के प्रयोग ने भोले जीवों को हिंसक बना दिया। सहस्रों वर्ष व्यतीत हुए परन्तु अज्ञानी लोग पोथियों को प्रमाण मानकर जीव-वध में संलग्न हैं। कोटि-कोटि जीव अज्ञानियों द्वारा प्ररूपित, अज्ञानमय सिद्धान्तों को मानकर आज-तक प्रतिवर्ष क्या प्रतिदिन मूक-पशुओं पर अत्याचार कर रहे हैं। पशु-पक्षी मात्र ही नहीं, अपितु बलि-वरदान के लोलुपी नर-अधम सुशीलजनों का भी क्रूरतापूर्वक घात कर देते हैं, अग्नि में झोंक देते हैं। नर हत्या, नर बलि कर अज्ञ सुख की खोज करते हैं।

## 238 - Language is a medium and doctrine a subject of speech

Scriptures have been composed in languages including Sanskrit. Were they ignorant or uninformed? Friends, understand. Knowledge of a particular language originates from caste, progeny, region and country and also through learning. The knowledge of a language will not necessarily rid you of your ignorance of the principles of the subject. The principles of the subject constitute the doctrine and the language is a medium of expression. Through the language we keep the doctrine safe for future. In addition, the export and import of the doctrine is done through the language and script. This requires the knowledge of different languages and scripts.

If you do not have the intellectual ability to know many languages and scripts, still

PREVIEW ONLY

with the help of one language you can talk of the laudable doctrine. After understanding the value of your doctrine, the men athirst for knowledge will translate your work into their own language and script. This will require great thinking on your part, but it happens. Language is a medium and doctrine a subject of speech; it is though necessary that the doctrine be unblemished.

There have been many linguists without the knowledge of the doctrine. The works and volumes written and edited by them have just added to the weight of books in libraries, without contributing to the welfare of the worthy souls. Instead of propagating the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* and protection of living-beings, they propagated inauspicious concepts like animal-sacrifice and thereby made simple-minded men cruel. Thousands of years have since lapsed but still, taking their teaching as authentic, ignorant men are engaged in inauspicious activity of animal-sacrifice. To date millions and millions of men, putting their faith on false teachings by unlearned preachers, are engaged in atrocity towards mute animals. Exceptionally cruel and ignoble men, desirous of greater boon, not only sacrifice and put into fire animals but also humans. They are soliciting happiness through human-sacrifice and human killing!

विचार
THE THOUGHTS

## २३९. पशु-वध घोर पाप बंध का कारण

हिंसा, क्रूरता कार्य-सिद्धि का हेतु कभी नहीं हो सकती। धर्मान्धों ने भोले लोगों को धर्म के नाम पर भ्रान्त करके रखा है। इन्द्रिय-भोग लोलुपी, क्रूर धर्म-नायकों ने धर्म के नाम पर मन-गढ़न्त, झूठे सिद्धान्त गढ़ दिए कि अमुक कार्य की सिद्धि के लिए अमुक जीव का घात करो। अरे! विचार करो; क्या पर-पीड़ा कभी स्व को सुख दे सकती है? कभी नहीं। बीज के अनुसार वृक्ष होता है। दीन-हीन जीवों की हिंसा न निःश्रेयस सुख देगा और न ही अभ्युदय सुख। हिंसा कर्म से स्वर्ग एवं मोक्ष सम्पत्ति तथा राज-सुख कदापि नहीं मिलता, अपितु नरक, पशु-गति की तीव्र वेदना की ही प्राप्ति होती है।

अज्ञानता से जिनकी मति पीड़ित थी तथा जिनका संसार-भ्रमण का अभी अन्त नहीं है, ऐसे अल्पधी जनों ने जगति के भोले प्राणियों के चित्त भ्रान्त कर हिंसक यज्ञों में तथा देवता, धर्म के नाम पर जीव हिंसा में धर्म की मान्यता को जन्म देकर, अज्ञानता का प्रचार कर सम्पूर्ण लोक को ठग लिया। जितना घातक लोक में कर्तावाद हुआ, उसकी तो सीमा ही दिखाई नहीं देती। सर्वाधिक दर्शन व सम्प्रदाय कर्तावाद से दूषित हैं। पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी भी कर्तावाद के पिशाच से पीड़ित हैं। जिन्हें सुख-दुःख का कर्ता मानते हैं, उन्हें प्रसन्न रखने के लिए निरीह, मूक प्राणियों के प्राणों का क्रूरता के साथ घात करते हैं, खून बहाकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं। तद्-तद् सम्प्रदायों के धर्मगुरु भी सत्यार्थ बोध नहीं देते हैं जबकि उन्हें इस बात का बोध होना चाहिए कि पर की पीड़ा स्व के आत्म सुख का कारण नहीं है। बलि, बलिदान धर्म कार्य नहीं, क्रूर कर्म हैं। सद्-बोध प्रकट हो जाये तो प्रत्येक वर्ष करोड़ों-करोड़ों जीवों के प्राणों की रक्षा हो जाए। अहो आश्चर्य! जिस सृष्टि पर आप जन्मे, उसी सृष्टि पर मूक पशु-पक्षी भी, आपको भी जीने का अधिकार है तो अन्य जीवों को जीने देने का भी कर्त्तव्य है। दुःख की पीड़ा की आवाजें विश्व को शान्ति नहीं देंगी, विश्व शान्ति, करुणा की, दया-अहिंसा की ध्वनि से ही संभव है। विश्व के, राष्ट्रों के राष्ट्रपतियों! क्या कभी आपकी बुद्धि में भगवान् महावीर

स्वामी की दिव्यध्वनि सुनाई देगी?

धर्म के नाम पर तथा भोजन के नाम पर जानवरों के साथ अशुभ व्यवहार समाप्त करो। पेट भरना ही पूर्णत: नहीं है, जीवों के प्राणों की भी चिन्ता करो। क्या आप ही मात्र जीव हैं? अन्य जीवों के भी प्राण हैं। करोड़ों यज्ञों के करने से जो फल यजमान को प्राप्त नहीं होता, वह फल एक प्राणी के प्राणों की रक्षा से प्राप्त होता है। दु:खी, भूखे, प्यासे जानवरों को शुद्ध पानी एवं भोजन देने से धर्म का पालन होता है। प्रकृति के जीव प्रसन्न होने से प्रकृति व पर्यावरण भी प्रशस्त होता है। पशु-पक्षियों को मारने से पाप लगता ही है, उनकी रक्षा करनी ही चाहिए। साथ ही गृहस्थों को व्यर्थ में पृथ्वी का खनन, पानी का व्यय, वनस्पति का छेदन, वायु का विडोलन, अग्नि का ज्वलन भी नहीं करना चाहिए। गृहस्थों को उक्त स्थावरों की भी रक्षा का भाव रखना चाहिए, उनके अन्दर भी जीव है। जो वस्तु मानवता का उपकार कर रही है, मानव का भी तो कर्त्तव्य है कि वह भी उनके साथ सद्-व्यवहार करे।

जंगलों एवं जंगली जीवों की रक्षा प्रकृति के विकास के लिए अनिवार्य है। प्रकृति के साथ सम्यक्-प्रवृत्ति यदि मानव करता है, तो प्रकृति मानव के वरदान के रूप में उपस्थित होती है। यह विवेक बोध होना चाहिए कि सम्पूर्ण मानव जीवन का आलम्बन प्रकृति है। वनस्पति हो, खनिज हो, पर्वत हो, वन-उपवन, नदी, तालाब, नहरें, सरितायें, सागर, भूमि, वायु, अग्नि, जल, मेघ सभी मानव का उपकार कर रहे हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल - ये छह द्रव्य जीव का उपकार करते हैं, तो क्या मानव का धर्म नहीं है कि सभी के साथ सद्भावना रखे एवं उनकी रक्षा करे?

परमात्मा को किसी अन्य के द्वारा खुश कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् हर्ष-विषाद भाव से शून्य हो चुके; उनके लिए किसी भी जीव का वध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् तो स्वकीय परमानन्द में लीन हैं, उन पर किसी के द्वारा की गई पूजा, स्तुति अथवा निन्दा का कोई असर नहीं पड़ता। यदि स्वकीय भाव विशुद्धि की भावना है तो आप स्वयं ही भगवान् की भक्ति करो। क्षुधादि दोषों से रहित भगवान् को अमृत भोजन की आवश्यकता नहीं है, फिर वो परमात्मा सड़े-गले, दुर्गन्ध-युक्त, रक्त, पीव, मल पूरित मांस की इच्छा कैसे कर सकता है?

जहाँ पर इच्छा का ही अभाव है, वहाँ पशु-बलि का भाव कहाँ? जो सामान्य देव होते हैं उनका भोजन अमृत है, वे भी मांस-मदिरा का सेवन नहीं करते। जो भी कोई पुरुष देवता व भगवान् के नाम पर मांस-मदिरा व बलिदान की बात करते हैं, वे क्रूर जन स्व की रसना इन्द्रिय की लोलुपता के पीछे भोली जनता व समाज को ठगते हैं। वे अज्ञ स्वयं जीव हिंसा से एवं मदिरा पान जैसे अशुभ कृत से नरक जायेंगे तथा साथ ही जन सामान्य को भी छल से ले जायेंगे। जिन्हें आत्म-सुख, शान्ति की भावना है, उन्हें खोटी बुद्धि से दूषित चित्त वालों की बातों में आकर कभी भी जीव हिंसा नहीं करनी चाहिए, न प्रेरणा देना चाहिए, न ऐसे लोगों की संगति ही करनी चाहिए। ऐसे लोगों की संगति दुर्गति का कारण है।

जीव जैसा कर्म करता है तदनुसार उसे फल की प्राप्ति होती है। अन्य कोई भिन्न पुरुष व परमात्मा जीव को सुख व दु:ख नहीं देता, इस बात का निर्णय तो हो ही गया। नाना प्रकार की अनादि-अविद्या व मिथ्यात्व के कारण जीव स्व के सुख-दु:ख का कर्ता भिन्न ईश्वर अथवा अन्य पुरुष को बनाये हुए है। स्वकीय कार्य-कारण भाव को जाने बिना अन्धविश्वास में जीव जी रहा है और संसार में व्यर्थ के दु:खों को प्राप्त कर रहा है। उपादान-उपादेय भाव को समझे बिना ही भोले प्राणी लौकिक मूढ़जनों

PREVIEW ONLY

की विवेक–विज्ञान शून्य बातों को स्वीकार कर अपनी प्रज्ञा–दीनता को प्रकट करते हैं।

## 239 - Killing animals causes bondage of grave evil karmas

Injury *(hiṃsā)* and cruelty can never result in the accomplishment of work. The dharma-blinded men have misguided simple men. Lustful and cruel dharma-leaders have propagated self-invented and false principles; for example, they taught that to accomplish a certain task you have to sacrifice a particular living-being. Think; can causing suffering to others ever provide you happiness? The seed determines what tree you are going to get. Killing destitute living-beings can never provide you with either spiritual upliftment or worldly prosperity. Karmas involving injury *(hiṃsā)* do not ever bestow happiness appertaining to the heavens or the wealth of liberation; such karmas, however, do result in suffering appertaining to life as an infernal-being or as an animal.

Dim-witted and ignorant men, with prolonged worldly existence, had deceived the simple-minded men by making them believe that engaging in sacrificial-killing of living-beings constitutes dharma. The school of thought that advocated a supreme doer of worldly affairs has harmed the world unendingly. Most philosophies and sects have fallen into the trap of the fault that accepts a supreme doer. Even educated and intellectual men have been gripped by this demon. To please the so called supreme doer, people kill with utmost cruelty, and with great delight, the hapless and mute living-beings. The dharma-gurus of the respective sects, too, fail to educate their disciples that causing suffering to others cannot result in happiness to the self. Sacrificial-killing of others or self are not acts of dharma, but cruel activities. If this truth is understood, the lives of millions and millions of living-beings will be saved. Amazing! Mute animals too have taken birth on this earth, your birth-place. If you have the right to live here, it is your duty to let others too live here. Screams of suffering will not provide world peace; world peace is possible when you hear the soothing sound of compassion, kind-heartedness and non-injury *(ahiṃsā)*. O heads of world nations! Will you ever be able to listen to the divine voice of Lord Mahāvīra?

End cruelty towards animals in the name of dharma or food. To fill your tummy is not the be all and end all; think also about the life of others. Others too have life. Millions of sacrifices cannot provide you the fruit that can be got by saving the life of just one living-being. Real dharma consists in providing pure water and food to pitiable, famished and thirsty animals. Where all living-beings live happily, the nature and the environment become welcoming. It is evil to kill animals including birds; instead, protect them. The householders should desist from worthless activities including digging of earth, wasting the water, plucking the plants, blowing the air, and burning the fire. Although these are one-sensed living-beings called *sthāvara*, the householders should think of protecting these too. The objects that bring favour to mankind should be treated well by all men.

Protection of the forests and the wild animals is essential to development of the environment. When the man acts wisely towards the nature, the nature too presents itself as a blessing for him. The basis of all human life is the nature. Plants, minerals, mountains, forests and groves, rivers, lakes, canals, rivulets, oceans, earth, air, fire, water and clouds – all are favouring mankind. When the six substances *(dravya)* – the soul *(jīva)*, the matter *(pudgala)*, the medium-of-motion *(dharma)*, the medium-of-rest *(adharma)*, the space *(ākāśa)* and the time *(kāla)* – favour the man, should the man not

maintain goodwill towards these and protect these?

The supreme-soul *(paramātmā)* does not need anyone to make him happy. The supreme-soul is rid of the feelings of happiness and misery; do not kill any living-being trying to make him happy. The Supreme Lord is stationed in own ineffable happiness and is indifferent to the worship, praise or calumny of others. For the sake of the purity of your own soul, you may engage in adoration of the Supreme Lord. Since such a God is rid of all imperfections like hunger, he does not require even the nectar, why would he want the food of flesh that is rotten, foul-smelling, and full of blood, puss and excreta?

Where all desires have been vanquished, there cannot be the desire of animal-sacrifice. Even ordinary devas live on nectar, they do not consume flesh or wine. The cruel men who advocate in the name of god the consumption of flesh and wine and animal-sacrifice deceive gullible men and society for the sake of their own craving for tasty food. They themselves, due to their evil acts of animal killing and consumption of liquor, will go to the hells; they deceive ordinary men too to fall into their trap. The men looking for soul-happiness and peace should not believe such evil men and never indulge in killing living-beings; they should not incite others to do it and stay away from the company of such men. The company of such men will result in an evil state-of-existence hereafter.

The man gets fruits as per his karmas. It has been established that no external god or supreme-soul *(paramātmā)* provides the man the happiness or misery. Due to their beginningless ignorance and delusion, men have been led to believe that some external god or supreme-soul makes them happy or miserable. Not knowing the cause and effect equation of their own acts, men continue to live under superstitious beliefs and thereby get avoidable miseries in the world. Without knowing what is worth accepting and discarding, naive men put faith on unreasonable and unscientific talks of the preachers of the dharma and thus exhibit their own lack of the intellect.

विचार
THE THOUGHTS

## २४०. स्वाधीन कारण-कार्य व्यवस्था

सर्वप्रथम जीव को वस्तु की कारण-कार्य स्वाधीनता का ज्ञान होना चाहिए। श्रद्धा विवेक की कसौटी पर कसी होनी चाहिए। विवेक-विहीन आस्था बहुत ही बड़ी घातक होती है; लोक में अन्ध-श्रद्धा, अन्धविश्वास, अन्ध-रुढ़ि, अन्धानुकरण में जीने वाले जीवों की संख्या बहुत अधिक है। जो स्व विवेक-विज्ञान शून्य हैं, पर-बुद्धि की दासता को प्राप्त हैं, वे स्व-बुद्धि बुद्धिमानों के दास बनकर जीते हैं। ज्ञानी जन स्व-बुद्धि से निर्णय लेते हैं, स्व-कर्म व्यवस्था पर विश्वास रखते हैं, स्वकीय शुभाशुभ कर्मोदय एवं बन्ध दशा पर सदा विचार करते हैं। कार्य-कारण व्यवस्था तो उनके ह्रदय में सदा विराजमान रहती है।

भिन्न वस्तु का भिन्न उपादान नहीं होता, उपादान स्व-द्रव्य का स्व-द्रव्य में रहता है। भिन्न-द्रव्य, भिन्न-द्रव्य में बहिरंग निमित्त तो हो सकता है, परन्तु अन्तरंग निमित्त तो अन्तरंग का उपादान ही होगा। कारण एवं साधन अनेक हो सकते हैं, वस्तु कार्य उपादान में ही होता है। यदि योग्य उपादान नहीं है तो बाह्य साधन कुछ नहीं कर सकते। बाह्य साधनों के बिना भी कार्य पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, वे

PREVIEW ONLY

निमित्त अवश्य ही होते हैं, परन्तु कार्य का साधकतम करण उपादान ही है, इस बात को बहुत ही विवेक-पूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए। जो जैसा वस्तु धर्म है उसे उसी प्रकार सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए। सम्यक् बोध मोक्ष-मार्ग में अनिवार्य अंग है। वस्तु तत्त्व का निर्णय किंचित् भी विपरीत नहीं होना चाहिए, यथा तत्त्व होना चाहिए।

जिसका स्वयं का ज्ञान सम्यक्-निर्णय रूप होगा वही अन्य को समीचीन रूप से समझा सकता है। जिस व्यक्ति की तत्त्वज्ञान में स्वयं की भ्रान्ति है वह अन्य के भ्रान्त ज्ञान को कैसे ठीक कर पायेगा? वस्तु स्वभाव के बोध हेतु सभी जीवों को जिनागम का तलस्पर्शी अधिगम करना होगा। स्वाध्याय के बिना तत्त्व निर्णय असंभव है। स्वाध्याय स्वयं करना चाहिए, गुरु से पूछना चाहिए। जिस जीव का पाँचों ही प्रकार का स्वाध्याय है - वाचना, पृच्छना, आम्नाय, अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेश - वही प्रज्ञावान् श्रेष्ठ कुशल तत्त्वज्ञानी हो सकता है। श्रेष्ठ वक्ता होने के लिए भी पाँचों ही प्रकार के स्वाध्याय का आश्रय लेना पड़ेगा। ज्ञाता बने बिना कोई भी वक्ता नहीं बन सकता है। यदि उपदेश देने की रुचि है तो सम्यक्-तत्त्व प्ररूपित आचार्य-आर्ष प्रणीत धर्म ग्रन्थों के अध्ययन की भी रुचि होनी चाहिए। कुशल वक्ता के लिए श्रेष्ठ अनेकान्त-स्याद्वाद विद्या कौशल्य से युक्त जनों के धर्मोपदेश भी श्रवण करना अनिवार्य है। श्रवण बिना व्याख्यान कला प्रकट नहीं हो सकती। निर्भीकता सभाओं में उपस्थित होने पर ही प्रकट होती है। सभा-भीरु क्या प्रवचनकार हो पायेगा?

कारण-कार्य मीमांसा करने के लिए न्याय, नय, प्रमाण, निक्षेप, अध्यात्म एवं सिद्धान्त शास्त्रों का परायण करना चाहिए। कर्म दो प्रकार के होते हैं - प्राकृत, कृत्रिम। दूसरी भाषा में नैसर्गिक, प्रायोगिक। लोक में दोनों ही प्रकार के कार्य दृष्टिगोचर हैं। बिना कारण के कार्य नहीं होता, यह बात अनेकान्त दृष्टि से सत्य है, एकान्त नहीं है।

सहज कार्य में बाह्य कारण नहीं दिखते, बाह्य कारण तभी कारण बनते हैं जब कार्य होने की योग्यता वस्तु के उपादान में है। कार्य का होना ही कारण का लिंग है, यह भी अच्छी तरह से समझना चाहिए। वस्तु में कार्य रूप उत्तर परिणाम का स्वरूप लाभ होना कार्य की उत्पत्ति है, स्वयं कारण-कार्य उत्पन्न करने वाला द्रव्य का स्वरूप उपादान है, उसे स्वयं कारण कहते हैं और उसका अस्तित्व स्वयं कारण सत्ता है। यदि स्वयं द्रव्य स्वरूप उपादान की सत्ता से कार्य की उत्पत्ति विरुद्ध होवे तब क्षणिक अर्थ में अर्थ क्रिया के सम्भव होने का अनुमान हो सके। जैसे क्षणिक अर्थ में क्रिया की उत्पत्ति सम्भव नहीं है- द्रव्य की सत्ता में कार्य उत्पत्ति है तथा पर्याय दृष्टि से विनाश है।

अभाव में सद्भाव स्याद्वादी देखता है परन्तु सर्वांश वस्तु का नाश मानने वाले के कोई वस्तु व्यवस्था घटित नहीं होती। साथ ही वस्तु को सर्वथा नित्य एकान्त मानने की दृष्टि जिनके पास है वहाँ भी परिणाम-परिणामी भाव का अभाव है। कार्य-कारण व्यवस्था उनके यहाँ पर भी घटित नहीं होती। स्व-कार्य जिसमें है वह उपादान है, वही कार्य-कारण है, अन्य बाह्य साधन अनेक हैं। कारण साधकतम एक ही है, जो कि पूर्ण स्वाधीन है, जड़-चैतन्य का कारण स्व-चैतन्य ही है। जड़ वस्तुओं का उपादान जड़ वस्तु ही है, अन्य, अन्य का उपादान कारण नहीं हो सकता। उपादान कारण बने बिना निमित्त कारण का जगत् में कोई अस्तित्व नहीं। उपादान कारण जब सशक्त होता है, तब निमित्त कारण सहकारी नियम से होते हैं। योग्य कार्य के लिए योग्य कारण कुछ सहज प्राप्त हो जाते हैं, तो कुछ बुद्धिपूर्वक प्रकट किए जाते हैं। विश्व के सम्पूर्ण चेतन-अचेतन द्रव्य नाना भेदरूप हैं; स्वकीय सत्ता में

PREVIEW ONLY

सत्-रूप हैं, परकीय सत्ता में असत् रूप हैं, परन्तु सभी चेतन-अचेतन द्रव्य जगत् में एक सत्-रूप ही नहीं हैं। हम परमब्रह्म ब्रह्माद्वैतवादी जैसे नहीं हैं। यदि हम सत् एक रूप देखते हैं तो शुद्ध संग्रह नय में देखते हैं। महासत्ता से सम्पूर्ण द्रव्यों की सत्ता एक रूप है, परन्तु अवान्तर सत्ता से तो भेद रूप ही वस्तु है। प्रत्येक द्रव्य स्व-स्व उपादान से पृथक्भूत है, द्रव्य सामान्य से जीव व पुद्गलादि जड़-चैतन्य द्रव्यों में एकत्व है। एक-सा निरपेक्ष नहीं है, इसमें भिन्नत्व की सापेक्षता निहित है। जीवत्व, जीवत्व में एक-सा चैतनत्व जब हम देखते हैं तब हमें सभी जीव एक रूप दिखते हैं, यह एकता स्वजातीय जीव-जाति की अपेक्षा से है, न कि सभी जीव एकत्व रूप हैं। प्रत्येक जीव द्रव्य का अस्तित्व स्वतन्त्र है, कोई भी जीव स्व-चतुष्टय से पर-सत् नहीं है, स्व-चतुष्टय से सत् ही है और पर-चतुष्टय से असत् है। स्व-पर चतुष्टय से वस्तु सत्-असत् है, अवस्तु किसी भी अपेक्षा से नहीं है। अवस्तु में कोई विकल्प भी नहीं है। एक साथ अनेक विरुद्ध धर्मों को लिए हुए वस्तु है जिसे अनेकान्त प्रमाण के द्वारा ही जाना जा सकता है, अन्य कोई उपाय वस्तु को जानने का नहीं है और किसी के पास भी नहीं है। सम्पूर्ण भेद-प्रभेदों का बोध एकमात्र जीव द्रव्य के पास है, अचेतन द्रव्य ज्ञेय मात्र हैं, ज्ञाता नहीं। ज्ञाता मात्र जीव द्रव्य है। वस्तु भेदाभेदात्मक है, परन्तु जड़ वस्तु स्वयं के व पर के भेदाभेदात्मक स्वरूप को वेदने वाली नहीं है। जानने की योग्यता जीव द्रव्य में है, जीवों में भी सभी जीव सम्पूर्ण वस्तुत्व को नहीं जानते। त्रस-स्थावर के भेद से जीवों के भेद, संसारी-मुक्त के भेद से भी दो भेद, पंचेन्द्रिय के संज्ञी-असंज्ञी के भेद से भी दो भेद। इन जीवों में जो स्थावर जीव हैं वे कर्म-फलचेतना के भोगने वाले हैं। त्रस जीव कर्म एवं कर्म-फलचेतना के भोक्ता हैं। ज्ञान-स्वभावी, प्राणों से शून्य परमात्मा ज्ञान-चेतना के भोक्ता हैं। सामान्य दृष्टि से देखें तो वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय ही चाहिए। असंज्ञी जीवों को हिताहित का विवेक विज्ञान ही नहीं होता। इन जीवों में एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक नियम से असंज्ञी ही होते हैं। पंचेन्द्रियों में संज्ञी एवं असंज्ञी दोनों ही प्रकार के जीव होते हैं, यह योग्यता जीवों के स्वयं के शुभाशुभ भावों के अनुसार होती है, अन्य किसी भी नर-कृत जीवों के भेद नहीं हैं। जीव स्व की योग्यता स्वयं ही प्राप्त करता है। होनहार, भवितव्यता, नियोग, विधि, ब्रह्म, ईश्वर, कृतान्त, दैव, भाग्य, भगवान्, विरंच या अन्य कोई भिन्न कर्ताभूत कल्पना की स्थिति नहीं है।

विधि आदि की जो भी व्याख्या है वह सब जीव के स्व-कृत कर्मोदय के नाम ही हैं। ऐसा ही भाग्य है, ऐसी ही विधान की इच्छा है, इत्यादि जो कथन हैं, वे स्व-कृत कर्मोदय के लिए ही हैं। कर्मोदय भी कोई भिन्न ईश्वर के द्वारा प्रदत्त नहीं है और न ही कर्मों के द्वारा कर्मोदय है। कर्मबन्ध की योग्यता कर्मों में ही है, पर जीव के राग-द्वेषादि रूप भाव न हों तो कर्मबन्ध ही नहीं होगा, उदय किसका? जब कार्माण-वर्गणा स्वतन्त्रता में होती हैं तब किंचित् भी फल, अनुभाग को नहीं देती हैं। विपाक तो तब आता है जब जीव भावकर्म, नोकर्म का आश्रय लेता है। बिना नोकर्म, भावकर्म के द्रव्य कर्म वर्गणायें द्रव्य कर्म रूप बन्ध को प्राप्त नहीं होतीं। संसारी जीवों के राग-द्वेष रूप परिणाम करने की स्व-योग्यता है।

चार प्रकार की कषायों में दो कषाय राग रूप हैं तथा दो कषाय द्वेष रूप हैं। क्रोध और मान द्वेष रूप हैं, माया और लोभ राग रूप हैं। इनके माध्यम से जीव कर्मबन्ध को प्राप्त होता है। कर्मबन्ध कार्य है तो राग-द्वेष कारण है। योग से प्रकृति तथा प्रदेश बन्ध होता है, कषाय से स्थिति तथा अनुभाग बन्ध

होता है। अनुभाग बन्ध, स्थिति बन्ध, प्रकृति बन्ध, प्रदेश बन्ध – यदि ये कार्य हैं, तो कषाय और योग कारण हैं। अन्य बाह्य पदार्थ इन कर्मों के बन्ध में नोकर्म बनते हैं। वस्तु के स्वभाव को विकृत करने में नोकर्म भी कारण बनते हैं, पर ये तभी कारण होंगे जब उपादान में तदनुकूल योग्यता रहेगी। जो भी संसार–भ्रमण एवं संसार–नाश का हेतु है, वह स्व कारण–कार्य व्यवस्था है। स्पष्ट है, अन्य किसी भी परमात्मा का कोई हाथ नहीं है, इसलिए अपने सुख व दुःख में ईश्वर को दोष देना ठीक नहीं है।

यदि हम ईश्वर पर कर्तापन का आरोपण करते हैं तो अनवस्था दोष खड़ा हो जाता है। ईश्वर ने संसार में सृष्टि का निर्माण किया तो सृष्टि पर कुछ था ही नहीं; तब वे सब सामग्री कहाँ से लाये, अवस्तु को उत्पन्न कैसे किया? यदि पूर्व से ही वे सब वस्तुयें थीं तो फिर ईश्वर ने क्या किया? वह तो पराधीन ही कहलायेगा। ऐसे लोग भी परमात्मा ने क्यों बनाये जो उन्हें मानते ही नहीं? ईश्वर ने सभी जीव एक से क्यों नहीं बनाये? यदि आप कहें कि जीवों को कर्मों के अनुसार बनाया है तो कर्मानुसार परिणमन हुआ। साथ–ही ऐसे कर्म ईश्वर कराता ही क्यों है, जिससे उसे जीवों में भेद करना पड़े? स्वर्ग, नरक, पशु, मनुष्य – उसे इन चार गतियों को क्यों बनाना पड़ा? जब सब कुछ ईश्वर के हाथ में है तो उसे व्यर्थ के काम करने की क्या आवश्यकता पड़ गई?

यदि ईश्वर ने स्वयं मानव की रचना की है, तो उन मानवों से हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म सेवन, परिग्रह का संचय कराते ही नहीं, जिससे कि उन्हें पुनः नरक की व्यवस्था करनी पड़ती। क्या परमात्मा को पूर्वापर का ज्ञान नहीं था, जो कि बार–बार संसार में आकर माँ के गर्भ की पीड़ा सहन करनी पड़ती है? ईश्वर से तात्पर्य है- जो वस्तु व्यवस्था को स्वाधीन व्यवस्थित नहीं मानते हैं, वे सभी पर को किसी भी नाम से कर्ता मानें, उन सभी के साथ ये प्रश्न खड़े ही रहेंगे। परमात्मा की सत्ता शुद्धात्मा की सत्ता मानना चाहिए; परन्तु परमात्मा राग–द्वेष के कार्य करता है, यह कथन तो परमात्मा की अवहेलना है, इस बात को विश्व मानता है। सभी परमात्माओं को जगत् के प्राणि–मात्र नहीं मानते, जिन्हें जो इष्ट है, जिनका जिनके प्रति अनुराग है, वे उन्हें ही मानते हैं। कहीं तो ऐसा भी है कि जो वास्तव में एक सामान्य मनुष्य थे अथवा राजा व राजकुमार सामान्य सज्जन पुरुष थे, करुणाशील अथवा क्रूर थे, अथवा राजनेता थे, उनके मानने वालों ने उन्हें ही परमात्मा घोषित कर दिया। घोषित भगवान् जगति पर अधिक हैं। जिन्होंने उग्र–उग्र तपस्या कर कर्मों का क्षय कर, परम वीतराग दशा को प्राप्त किया है, वे सर्वज्ञ, स्वदर्शी, हितोपदेशी, निर्दोष परमत्मा इन सबसे भिन्न हैं। प्रत्येक बुद्धिजीवी इस विषय पर चिन्तवन करे और वस्तु स्वतन्त्रता का निर्णय करे। परमेश्वर से अपनी आस्था न हटाए, अपितु परमात्मा के सत्यार्थ–स्वरूप को जाने और उसकी आराधना की विधि भी समझे। प्राणि–मात्र की जिनके द्वारा उत्पत्ति हुई हो, ऐसा मानने वालों के द्वारा उन्हीं परमात्मा के सामने मूक–प्राणियों के गले निकाल देना, बलि के नाम पर बेचारों की हत्या कर देना, इससे बड़ी क्रूरता, अज्ञानता, विवेकहीनता क्या हो सकती है?

यह मात्र भ्रम ही है कि आपका सच्चा आराध्य आपकी क्रूरता से प्रसन्नता को प्राप्त होता होगा। क्रूरता से वह ईश्वर कभी प्रसन्न नहीं होता है। 'अहिंसा परमधर्म है', ऐसा आगमों, पुराणों में लिखा है, फिर जीव–वध धर्म कैसे हो सकता है? और जगत् हितोपदेशी हिंसा का उपदेश कैसे दे सकता है? इसलिए स्व–पर करुणा भाव से इस बात को लिख रहा हूँ, व्यर्थ की हिंसा करके आप जैसे बुद्धिजीवी नरकादि दुर्गति के भाजन न हो जायें।

PREVIEW ONLY

प्रत्येक वस्तु में कारण-कार्य व्यवस्था स्वाधीन है, वस्तु दृष्टि से जानने एवं विचार करने की आवश्यकता है। अज्ञानता एवं पराधीनता में जीना अज्ञानियों का ही कार्य है, विवेकशीलों का नहीं। विवेकीजन प्रत्येक कार्य, क्रिया एवं विचार-आचार को समझ कर ही स्वीकार करते हैं। किसी के अन्दर यह बात भी आ सकती है कि संसार में इतने अधिक लोग इस बात को मानते हैं, तो क्या वह सत्य नहीं होगी? अरे मित्र! भीड़ सत्य की पहचान नहीं है, सत्य तो सत्य ही है। कितने ऐसे जीव हैं जिन्होंने साधु, महात्मा की मुद्रायें धारण कर लीं, परमात्मा के नाम से घोषित हो गये, तब भी वे सत्यतापूर्वक, सदाचारी बनकर नहीं जी पाये। तो क्या वे सभी अज्ञानी थे? हाँ, यह बात पूर्ण सत्य है।

जो हिंसा, झूठ, चोरी, अबह्म सेवन, परिग्रह का संचय, मांस, मदिरा, मधु आदि पदार्थों के सेवन में धर्म मानते हैं; गाय, बकरी, मछली, मुर्गा आदि पशु-पक्षियों को अपना भोजन कहते हैं; वे सभी अज्ञानी ही हैं। उन्हें इस लोक, परलोक का समीचीन ज्ञान नहीं है। पर के प्राणों का घात कर स्वयं की रसना के लोलुपी क्या सत्यार्थ के ज्ञाता होंगे? तामसिक भोजियों को सदाचार, शील, संयम के दर्शन नहीं होते हैं। जो गाय, भैंस, बकरी आदि मधुर दुग्ध देते हैं जिससे शिशु से समाधि तक की रक्षा होती है, ऐसे मधुर दुग्ध को न देखकर क्रूर हृदयी उन मूक प्राणियों का खून पीता है, मांस खाता है, वह अपने हृदय की क्रूरता, दयाहीनता का परिचय देता है।

अहो! कैसा समय? प्रकृति मिष्ठ-फल, रस, धान्य, दुग्ध, मेवा, शाक सब दे रही है, फिर भी नराधम रंचमात्र दया भाव नहीं लाते। जीवित जीवों को जला रहे हैं, गर्म तेल में तल रहे हैं। अहो! अहो!! अहो!!! देश के व विश्व के धर्माचार्यों! क्या धर्म-ग्रन्थों में और हृदय में करुणा का पूर्ण अभाव है? जो जिस सम्प्रदाय, धर्म-ग्रन्थों को स्वीकारते हैं उन्हें प्रतिबोध दो, जीव पर दया करना सीखो। परमात्मा के नाम पर, देवी-देवताओं के नाम पर, मूक पशुओं की हत्या मत करो, मत करो, मत करो। दया ही धर्म है, दया ही धर्म है, दया ही धर्म है। हिंसा कर्म कभी धर्म नहीं हुआ, नहीं हुआ, नहीं हुआ।

एक-एक जीव रक्षा एक-एक तीर्थ रक्षा है, धर्म रक्षा है। आत्म-शान्ति की रक्षा है, आत्मस्थ होने की शैली है। अशुभ भाव, अशुभ भोजन कभी भी प्रशस्त परिणाम नहीं होने देंगे। पाँच पापों में से कोई पाप व्यक्ति से हो जाये, उससे जो स्वयं की अन्तरंग दशा होती है वह अत्यन्त दयनीय होती है और यदि कृत पाप लोक में प्रचारित हो जाये फिर तो संसार की कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं दिखती है, प्रतिक्षण पश्चाताप की ज्वाला में वह जलता है। एक-एक समय सदियों सा लगता है। कभी-कभी व्यक्ति स्व के कृत्यों पर संतापित होकर आत्महत्या जैसे अशुभ कर्म को कर बैठते हैं। आत्म साधना, आत्म-शान्ति हेतु सदा पापों से विरक्त रहना होगा, इसलिए हिंसा कर्म पर किंचित् भी विश्वास नहीं करना।

PREVIEW ONLY

## 240 - The independent system of the cause and effect

First, the man should know about the independence of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* in every object. Faith should be tested on the logic of discrimination. Indiscriminate faith is extremely dangerous; the number of men who live on blind faith, superstitions, rituals and imitation is very large. The men who are rid of discriminatory power live as slaves of the intelligence of the others. Knowledgeable men take decisions according to their own intellect; they put their faith on the system of own karmas, and think always about their auspicious and inauspicious acts and consequent bondage of the

karmas. The system of cause and effect is constantly in their minds.

The substantive-cause *(upādāna kāraṇa)* of any object rests in itself, and in no other object. Another object can be external instrumental-cause *(nimitta kāraṇa);* the internal or the substantive cause is the object itself. External causes and means can be several, but the effect takes place in the substance – *upādāna* – itself. If the substance does not possess the inherent capability, no outside causes can help perform the task. It is true that the external instrumental-causes too are essential to performance of the work; however the final cause is the inherent capability of the substance. Understand this fact with great discernment. Accept the nature of an object as it is. Right knowledge is a necessary limb of the path to liberation. Your decision about the nature of the objects should be as per the reality, not otherwise.

Only the man whose own decisions are based on right knowledge will be in a position to grant right knowledge to others. How can the man whose own knowledge of the reality is mired with doubts grant definitive knowledge to others? To attain right knowledge about the nature of the reality it is essential to study deeply the scriptures based on the teachings of Lord Jina. It is not possible to determine the truth of the reality without study. First study *(svādhyāya)* on your own and then ask the guru. Only the intelligent man apt in all the five limbs of study *(svādhyāya)* – teaching *(vācanā)*, questioning *(pṛcchanā)*, reflection *(anuprekṣā)*, recitation *(āmnāya)*, and preaching *(dharmopadeśa)* – can have excellent knowledge of the reality. These five limbs of study are necessary to become an excellent speaker too. Without sound knowledge, you cannot become a good speaker. If you are inclined to becoming a good speaker, you must have interest in the study of the authentic scriptures composed by ancient *Ācāryas*. It is also essential to listen to the discourses by excellent preachers apt in the doctrines of non-absolutism *(anekāntavāda)* and conditional-predication *(syādvāda)*. Without first becoming a listener, you cannot master the art of speaking. Fearlessness gets manifested by attending meetings; those who shun meetings cannot become fearless speakers.

To understand deeply the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* relationship, study the subjects of science-of-logic *(nyāya)*, standpoint *(naya)*, valid-knowledge *(pramāṇa)* and installation *(nikṣepa)*, besides scriptures on the doctrine. Effects *(kārya)* are of two kinds, natural *(prākṛta* or *naisargika)* and created *(kṛtrima* or *prāyogika)*. Both kinds of effects are seen in the world. The statement that no work gets performed without a cause is true from the non-absolutistic point-of-view, not from the absolutistic point-of-view.

Ordinarily the external causes seem to be dormant; these become the causes of activity when the substance itself has the capability – *upādāna* – for the effect to take place. Understand that the effect is the mark of the cause. To get a subsequent stage of the object is the effect. When the object itself is the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)*, it is its own, natural capability – *svarūpa upādāna*. The internal cause exists in the substance. If the effect were to be opposite to the own, natural capability of the object, then one could postulate the effect taking place in the sense of momentariness *(kṣaṇika)*, i.e., the complete loss of the existence of the object. As it is not possible for the complete loss of the existence of the object, we must conclude that while the object exists as a substance *(dravya)*, its destruction is from the point-of-view of the mode *(paryāya)*.

The man apt in the doctrine of conditional-predication *(syādvāda)* sees presence *(sadbhāva)* in absence *(abhāva)*; however, this scheme of the object does not fit in the

PREVIEW ONLY

system of those who see total destruction of an object. Again, in the system of those who consider the object as totally indestructible, this scheme does not fit. The scheme of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* does not fit in both cases. The own, inherent capability – *upādāna* – of the substance are both, the cause *(kāraṇa)* and the effect *(kārya);* external causes may be many. The internal and all-important cause is one and it is absolutely independent. The difference between the animate and the inanimate objects is their own, inherent nature. An object is inanimate due solely to its own internal cause, not due to any external cause. Other object can never be the substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* for activity in an object. Without the internal substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* the external instrumental-cause *(nimitta-kāraṇa)* has no value. When the substantive-cause is powerful, the instrumental-causes are operative. For the effect *(kārya)* to take place, some instrumental-causes are available naturally and some are made available through effort. Every animate or inanimate object in the world has many attributes. All substances are not absolutely of the nature of existence. In own nature, they have existence; in other nature, they have non-existence. We do not subscribe to the supreme non-dualist *(advaita)* view. We see all substances as one only from the generic *(saṃgraha)* standpoint *(naya).* From the standpoint of supreme-existence *(mahāsattā)*, all substances are one, of the nature of existence; from the standpoint of individual-existence *(avāntara sattā)*, they are many. On the basis of their own, inherent capability – *upādāna* – all substances are different. Seen as a substance, the animate soul *(jīva)* and the inanimate matter *(pudgala)* are one. But this statement is not absolutistic; inherent in it is the viewpoint that sees these substances as different. When seen from the standpoint of consciousness, all souls *(jīva)* are one; it does not mean absolutely that all souls are one. Every soul *(jīva)* has independent existence; every soul has existence *(sat)* in own four-fold nature – *sva-catuṣṭaya.* It has non-existence *(asat)* in other four-fold nature – *para-catuṣṭaya*. Taken together, the soul-substance has both, existence *(sat)* and non-existence *(asat);* in no sense it is a non-object *(avastu)*. There can be no discussion on a non-object. The manifold and seemingly opposite attributes of an object can only be understood through the valid-knowledge *(pramāṇa)* based on the doctrine of non-absolutism *(anekāntavāda)*, and in no other way. The ability to know the divisions and sub-divisions of objects lies only with the substance *(dravya)* of soul *(jīva)*; remaining substances are just the objects-of-knowledge *(jñeya)*, not the knowers *(jñātā)*. The object is of the nature of being distinguishable and non-distinguishable but the inanimate object cannot experience this nature of either the self or the other objects. Even among the souls, all do not have the capability to know the complete nature of the objects – *vastutva*. The souls are distinguished in terms of those with two or more senses, called *trasa*, and those with one sense, called *sthāvara*. The souls are also distinguished in terms of transmigrating and liberated. The five-sensed beings are distinguished in terms of those with mind and those without mind. The one-sensed souls enjoy only the fruit-of-the-karma-consciousness *(karmaphala-cetanā)*. The souls with two or more senses enjoy the karmas as well as the fruit-of-the-karma-consciousness. The supreme-soul *(paramātmā)* – of the nature of knowledge and rid of the worldly life-principles – enjoys knowledge-consciousness *(jñāna-cetanā)*. The souls without mind do not have the discriminative power to know what is beneficial or otherwise. Among all souls, those from one to four senses are, as a rule, without mind. The five-sensed beings can be with

PREVIEW ONLY

or without mind; this capability depends on the fruition of the auspicious and inauspicious karmas. There is no other man-made distinction between the souls. The soul acquires its capabilities on its own. Expressions like incidental, certainty, fate, Brahma and many names of god, used for the imaginary creator of the soul do not fit into the scheme of things.

In reality, the phrases 'due to fate', and 'the will of god' are substitutes for the expression 'the fruition of own past-karmas'. The fruition of the past karmas is not done either by a different god or by the karmas themselves. The capability to get transformed into karmas lies in the matter but for the karmas to get bound with the soul rests on the soul's dispositions of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa).* Without the dispositions of attachment and aversion the karmas cannot be bound with the soul and then the question of their fruition does not arise. The minute matter-particles *(vargaṇā)* fit to turn into karmas, when not bound with the soul, do not provide any fruit or experience. Their fruition takes place when the soul gets involved in psychic-karmas *(bhāva-karma)* or quasi-karmas *(nokarma)*. Without psychic-karmas or quasi-karmas the minute matter-particles fit to turn into karmas do not get bound, in the form of material karmas *(dravya-karma),* with the soul. It is an independent capability of the worldly souls to engage in dispositions of attachment and aversion.

Out of the four kinds of passions *(kaṣāya)*, two flow out of attachment *(rāga)* and two out of aversion *(dveṣa)*. Anger *(krodha)* and pride *(māna)* flow out of aversion; deceit *(māyā)* and greed *(lobha)* flow out of attachment. Through these passions, the soul gets bound with the karmas. Bondage of the soul is the effect *(kārya)*, and attachment and aversion are the causes *(kāraṇa)*. Activity *(yoga)* is responsible for bondage of the karmas of the two types, species *(prakṛti)* and space-points *(pradeśa)*; passions *(kaṣāya)* are responsible for bondage of the two types, duration *(sthiti)* and fruition *(anubhāga)*. The four types of bondage are the effect *(kārya)*, and activity and passions are the causes *(kāraṇa)*. External objects that aid bondage are the quasi-karmas *(nokarma).* The quasi-karmas can affect the nature of the substance when it (the soul) – *upādāna* – has the requisite inclination. All causes of worldly transmigration and its stoppage rest on the system of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)*. Clearly there is no hand of any supreme-soul *(paramātmā)* in it; do not, therefore, attribute your happiness or misery to god.

The hypothesis that god is the creator of the world is mired with the fault of making a never-ending assumption – *anavasthā*. At the start of the creation, there must have been nothing; how did god create something out of nothing? If everything was present beforehand, what did god do? And, in that case he cannot be called the creator. Why did he create people who had no faith in him? Why did he not make all living-beings similar? If you say that god crafted the living-beings as per their karmas then you have accepted that karmas decide our constitution. Why does god prompt the living-beings to engage in the karmas that result in differences in their constitution? What was the necessity for him to create the four states-of-existence, the heaven, the hell, the animal and the human? When everything was in his hands, why did he engage himself in these useless activities?

If god himself had crafted the humans, why did he prompt them to engage in evil acts of injury *(hiṃsā)*, falsehood *(asatya)*, stealing *(steya* or *caurya)*, unchastity *(abrahma* or *kuśīla)* and attachment-to-possessions *(parigraha)* and then engage in creation of the hell as their abode? Is god without the knowledge of the past and future for he has to take

PREVIEW ONLY

birth repeatedly and suffer pain in the womb of his mother? All those who do not accept that the transformation of each substance is independent and believe in an external creator – whom they call god – will have to answer these questions. Put your faith in the existence of god but of the nature of the pure soul. He does not engage himself in activities mired with attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*. All men in the world do not put faith on a single god; they accept different kinds of gods according to their likes and preferences. Some people have declared godhood to human beings of the past whom they venerated; may be a king, a prince, a noble man, a compassionate man, a cruel man, or a political leader. There are many such declared gods on the earth. The real god who has burnt all his karmas through observance of severe austerities and attained the state of total non-attachment *(vītarāga)*, who is all-knowing and all-seeing, and whose teachings benefit all, is different from all such declared gods. All intellectuals should reflect on this and target their thinking on the independence of the nature of all objects. They should not become atheists; instead understand the real nature of god and the way of his adoration. If you believe that god has created everything, what can be more cruel and senseless than to kill, in front of him, mute animals in the name of sacrifice with a view to please him?

It is mere ignorance to believe that god will be pleased with your cruel acts. Cruelty can never please god. It has been proclaimed in the scriptures and sacred texts that non-injury *(ahiṃsā)* is the supreme dharma; how can killing of living-beings be called dharma? How can god who preaches well-being of all advocate injury *(hiṃsā)*? With compassion for self and others, I am writing this; through indulgence in useless injury *(hiṃsā)*, an intellectual like you should not get an evil state-of-existence, like life in the hells, hereafter.

There is independence of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)* scheme in every object; this needs to be understood well and reflected upon. Only men who lack knowledge and discrimination live a life of ignorance and dependence. Knowledgeable men accept each work, activity and thought after due consideration. Some people may say that since so many people accept a particular thing, is it not bound to be true? O friend! Crowd does not determine the truth; truth remains truth. There have been many men who adorned the marks of the ascetics, became known as gods, but still did not accept the truth and right conduct. Were they all ignorant? Yes, they were.

Men who see dharma in injury *(hiṃsā)*, falsehood, stealing, unchastity, attachment-to-possessions, in consumption of food including flesh, wine and honey, and those who say that animals like the cow, goat, fish and chicken are their food, are all ignorant. They lack right knowledge about this world and life hereafter. Will the men who satisfy their craving for tasty food by killing others be able to know the truth? The men who consume unholy food do not meet with nobility, chastity and self-restraint. The man who drinks blood and eats flesh of mute animals, including the cow, buffalo and goat that provide sweet milk to infants and to old men nearing death, cannot but be cruel and heartless.

What a time this is! The nature is providing us with sweet fruits, juices, grains, milk, dry-fruits and vegetables; still lowly men refuse to be kind-hearted. They are burning live animals and frying them. O dharma-preachers of the country and the world! Have the sacred texts and your hearts got completely rid of compassion? Whichever sect you belong to and whichever scriptures you put your faith on, teach people to show kind-heartedness towards all living-beings. Do not, do not, do not kill mute animals in the

PREVIEW ONLY

name of supreme-soul *(paramātmā)* or devis and devas. Kind-heartedness is the dharma, it has always been the dharma. Injury *(hiṃsā)* has never been the dharma; it has never been the dharma, it has never been the dharma.

Saving the life of a single living-being is like saving a place of pilgrimage and saving the dharma. It is saving your own peace of mind and the means to delve into own soul. Inauspicious thoughts and unholy food do not allow auspicious dispositions enter you. When a man gets involved in any of the five causes of demerit, his internal state becomes pitiable; if his act becomes public, nothing in the world is able to make him happy. He burns, every moment, in the fire of remorse. Every moment appears extremely long, like hundred years. Sometimes, due to the unbearable internal agony, he even commits the inauspicious act of suicide. For peace and happiness of own soul, maintain distance from all evil karmas; never put your faith on any activity involving injury *(hiṃsā)*.

विचार
THE THOUGHTS

## २४१. सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति प्राणि-मात्र के प्रति करुणा भाव से ही

पर को कष्ट देकर स्वयं को सुख प्राप्त हो, ऐसी स्वार्थी भावना, न्याय-नीति संगत नहीं है; कूटनीति हो सकती है, धर्मनीति या सुनीति तो नहीं है। सुनीति तो यह है कि स्वयं भी सुख से रहो और जगति के प्राणि-मात्र को सुख से जीने दो। 'जिओ और जीने दो' की नीति ही सम्यक् सुनीति है। ऐसी सुनीति की व्याख्या जिस धर्म में है वही यथार्थ में धर्म है। क्रूरता, दयाहीनता की शिक्षा जहाँ पर है, वह धर्म, धर्म-संज्ञा को ही प्राप्त नहीं है। इस सत्यार्थ वाक्य, करुणा वाक्य में किसी की अवहेलना व निन्दा नहीं है, एक सच्चे भारतीय की अन्तरंग भावना है। भारत भूमि तीर्थ भूमि, आध्यात्म भूमि, ऋषि, मुनियों, महापुरुषों, तीर्थंकरों की पवित्र भूमि है। आर्य-धर्म पालक आर्यों की भूमि है। क्रूरता, हिंसात्मक कार्यों में धर्म-संज्ञा देने वालों की भूमि नहीं है। इतिहास साक्षी है कि भारत भूमि दया, करुणा, अनुकम्पा, अहिंसा, वात्सल्य भाव, पानी भी छानकर पीने वालों की भूमि है, दिवस-भोजिओं की भूमि है, अध्यात्म, सदाचार, सत्यार्थ-बोध प्रदान करने वालों की भूमि है। सत्य का निर्णय स्वतः हो जायेगा कि भारत भूमि हिंसकों की भूमि नहीं है। यहाँ पर हिंसात्मक वृत्तियों का सदा से वृत्यों द्वारा विरोध हुआ। ये वृत्य श्रमण ही थे जो कि वात-रसायन, क्षमणक, क्षपण, श्रमण, श्रामण्य संज्ञा को प्राप्त थे। सदा दिगम्बर रहा करते थे, कर-पात्री, खड़े होकर आहार करते थे, न पर पदार्थों में ममत्व रखते थे, न ममत्व वृद्धि के पदार्थ ही अपने पास रखते थे। सदा पग-विहारी, अनियत-विहारी, अनियतवासी, दुर्लभ आत्मसाधना के साधक, सर्व प्रपंचों से उदास, ज्ञान-ध्यान में लीन रहने वाले, ऐसे श्रमण मुनिराज आज भी होते हैं। तृण-तुष मात्र भी शरीर पर धारण नहीं करते, सदा सहज नग्न निर्विकार जीवन जीते हैं। विषय-कषायजयी दया, दम, त्याग, समाधि में विश्वास रखने वाले यतियों के श्रीचरणों से पावन भूमि, ऐसा भरतवर्ष (भारत देश) है। अहिंसा परमब्रह्म के उपासकों के देश में हिंसा कर्म को अज्ञ प्राणी धर्म मानते हैं, यह मात्र कलियुग (पंचम काल) का प्रभाव है। जिनकी हिंसा कर्म में धर्म की कल्पना रही है, परन्तु विश्वास रखना, हिंसा कर्म कभी धर्म नहीं हो सकता। यदि हिंसा कर्म ही धर्म संज्ञा को प्राप्त हो गया तो अधर्म क्या होगा?

PREVIEW ONLY

बेअपराध जीवों को धर्म एवं देवता के नाम पर मारना किसी क्रूरता से कम नहीं है। जिस भी देवता, भगवान् के नाम से जीव हत्या हो रही है, सत्य यह है कि वह कोई देवता है ही नहीं। यदि वह देवता होता तो दया युक्त होता; कभी–न–कभी अपने अज्ञानी हत्यारे भक्तों से एक बार अवश्य कहता, 'मेरे शिष्यों, भक्तों; संसार का प्राणि–मात्र सुख से जीना चाहता है, सभी के प्रति करुणा, अनुकम्पा, दया भाव लाओ। प्रत्येक जीव आत्म हित चाहता है, सुख–शान्ति से जीना चाहता है, किसी की भी हिंसा मत करो।' हिंसा धर्म नहीं, अहिंसा ही परम धर्म है।

वह देवता कहता, 'सुख सम्पत्ति प्राणी वध से नहीं मिलेगी, प्राणि–मात्र के प्रति करुणा भाव रखने से मिलेगी। इसलिए क्रूर कत्ल कर्म का त्याग करो। व्यर्थ में मेरे नाम से जीवों का घात मत करो, आपके इस हिंसा कृत्य से न हम प्रसन्न होंगे, न हमारे द्वारा अन्य कोई प्रशंसा का पात्र बन पायेगा। हमने न आपकी रचना की और न ही उन प्राणियों की रचना की है जो कि आपकी क्रूरता के शिकार बनेंगे।'

प्रत्येक जीव स्व कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त करते हैं, अन्य कोई भी किसी के सुख–दु:ख का कर्ता नहीं है। स्व–परिणामों की धारा जीव के भावास्रव हैं। कर्मों का आना द्रव्यास्रव है, द्रव्य कर्मों के आने के पूर्व जो परिणाम जीव के हैं, वह भाव पुण्य–पाप आस्रव है। पुण्य रूप शुभ परिणाम जीव करता है। दान, पूजा, उपवास, शील, संयम धारण–पालन के भाव पुण्य भावास्रव है, पाप के हेतुभूत अशुभ भाव पाप भावास्रव है। दोनों प्रकार के भावास्रव के निमित से द्रव्य पुण्य, द्रव्य पाप आस्रव होता है, जिस के कारण आत्म प्रदेश, कर्म प्रदेश संश्लेष सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं। यह जो सम्बन्ध है वही बन्ध है। जैसा कर्म बन्ध जीव करता है, वैसा ही कर्म विपाक होता है अर्थात् कर्मों का उदय भी जीव के बन्धानुसार ही होता है। बन्ध भाव जैसा होगा, उदय के काल में फलदान तदानुसार ही होगा। यहाँ पर विशिष्ट बात पर ध्यान देना चाहिए कि कर्म बन्ध, उदय की प्रक्रिया में आपको कहीं भी ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होगा कि जीव के बन्ध उदय में कोई भिन्न पुरुष का हाथ है, परमात्मा आदि भी कहीं दिखाई नहीं देते। जीव का स्वयं का प्रशस्त अथवा अप्रशस्त परिणाम जैसा होता है, वैसा ही सुख–दु:ख रूप फल को वह प्राप्त होता है। बिना स्वोपादान के जगति पर कोई कार्य पवित्र नहीं होता है। भक्ति की भाषा में प्रभु को जीव कर्ता के रूप में भले ही देखे परन्तु प्रभु किसी के भी कर्ता नहीं होते हैं। यह सिद्धान्त त्रैकाली ध्रुव है। व्यवहार में जब प्रभु भक्ति से कार्य पूर्ण होते दिखते हैं, तब जगत् कहता है कि भगवान् ने हमारा कार्य पूर्ण कर दिया। यह तो भक्त की भक्ति की भाषा है। सत्यार्थ तो यह है कि जहाँ यह प्रचार हो चुका है कि अमुक देवालय में जाने पर कार्य सिद्धि होती है उस प्रचार से व्यक्ति का चित्त प्रभावित होता है और आस्था भी प्रचण्ड होने लगती है। उसकी पूजन पद्धति तथा सामग्री भी विशिष्ट हो जाती है, जिससे लोभ कषाय भी कम हुई, साथ–ही कषाय मन्द हुई। काललब्धि के वश भाव विशुद्धि से असाता प्रकृति सातारूप में फल देने लगती है। स्वकीय भाव विशुद्धि से अशुभ फल देने वाली कर्म प्रकृतियाँ शुभ रूप फल देने लगती हैं। निमित्त–नैमित्तिक दृष्टि से भी देखें तथा अन्तरंग हेतु से भी देखें, साथ ही कर्म के साथ नोकर्म पर भी ध्यान दें। कर्म–शून्य सिद्ध परमात्मा किसी को न दु:ख दे रहे, न दु:ख–रूप ही करते हैं। स्वकीय शुभाशुभ कर्मों के वश ही जीव सुख–दु:ख का भोक्ता है, यह बात स्पष्ट है।

PREVIEW ONLY

## 241 - The wealth of happiness can be got only through compassion

The selfish thought that you can get happiness by putting others to misery is not based on logic or sound policy; it can at best be a political strategy. Sound policy consists in living happily and let others live happily. The policy of 'live and let live' is the right and sound policy. The dharma which expounds such a sound policy is the real dharma. The dharma that teaches cruelty and heartlessness cannot be termed a dharma. This sentence, which has come out of compassion, is not meant to denigrate any sect; it is the internal feeling of a true Indian. India is the land of pilgrimage, of spiritual upliftment, and of ascetics, great personages and *Tīrthaṃkara*. It is the land of noblemen following noble dharma. This land does not call cruelty and acts of injury *(hiṃsā)* by the name of dharma. History stands witness to the fact that India is the land where kind-heartedness, compassion, tenderness, non-injury *(ahiṃsā)* and affection are observed; where people drink water that has been filtered through a piece of cotton cloth; where people eat their food before sunset; where the virtues of spiritualism, good-conduct and knowledge of the reality, are imparted. All activities involving any kind of injury *(hiṃsā)* have always been opposed by the men of conduct. These men of conduct were ascetics called by various names including *vāta-rasāyana, kṣamaṇaka, kṣapaṇa, śramaṇa,* and *śrāmaṇya*. They remained sky-clad *(naked, Digambara)*, used to take food in standing position in a cup made of their two hands, did not have attachment towards any external objects, and did not keep with them any objects of attachment. They used to travel only bare-foot, they did not pre-announce and pre-plan their movements, they practised most-difficult self-realization, they were indifferent to all worldly rituals and they remained engrossed in knowledge-concentration. Even today one can find such supreme ascetics. They do not cover their body with even a blade of grass or husk and remain naturally naked, leading a life rid of all imperfections due to lust. The land of India is made auspicious by the holy feet of supreme ascetics who vanquish sensual-inclinations and passions *(kaṣāya)*, and who put their faith on kind-heartedness, self-restraint, non-attachment for possessions and laudable meditation. In a country that adores the dharma of supreme, spiritual non-injury *(ahiṃsā)*, there are ignorant men who mistake injury *(hiṃsā)* for the dharma is only due to the effect of this vicious (fifth) era. Those who mistake injury *(hiṃsā)* for the dharma should know that they are absolutely wrong; if injury *(hiṃsā)* becomes the dharma, what will be viciousness or *adharma*?

To kill innocent living-beings in the name of dharma or devas is extreme cruelty. The truth is that the deva or god in whose name the killings take place cannot be a deva or god. If he were a deva, he would have certainly, at least once, said to his ignorant devotees who kill in his name: "O my disciples and devotees! Every living-being wants to live happily. Have compassion, pity and kind-heartedness towards all. Do not kill anyone." Injury *(hiṃsā)* is not the dharma; non-injury *(ahiṃsā)* is the dharma.

That deva would have said to his devotees, "The wealth of happiness will not flow out from killing living-beings; it will flow out from the disposition of compassion for all. Shun all killings as these are acts of cruelty. Such acts of yours will not please me and I will not praise the man indulging in such acts. I have created neither you nor the living-beings that you kill mercilessly."

Every living-being gets an auspicious or inauspicious fruit according to own karmas;

PREVIEW ONLY

no one else is responsible for the soul's happiness or misery. The influx of dispositions *(bhāva)* in the soul *(jīva)* is called *bhāvāsrava*. Before the material-karmas *(dravya-karma)* get bound with the soul, its dispositions *(bhāva)* determine the nature of the influx, merit *(puṇya)* or demerit *(pāpa)*. The auspicious dispositions that bring in merit include giving of gift, worship, fasting, celibacy and self-restraint. The inauspicious dispositions bring in demerit. Both kinds of dispositional influx – *bhāvāsrava* – then become the instrumental cause of the influx of the material-karmas of either merit or demerit and the space-points of the soul get intricately bound with the material-karmas. This is bondage *(bandha*). The fruition of the karmas is according to the nature of the karmas bound with the soul. Thus, the disposition of the soul at the time of bondage of the karmas determines the fruit it receives at the time of fruition of the karmas. One important thing should be noted here: there is no intervention of any outside agency, including the supreme-soul *(paramātmā)*, in the entire process of the bondage and fruition of the karmas. The laudable or evil dispositions of the soul determine the fruit, in form of happiness or misery. The soul's own disposition determines the virtuousness of the act. A devotee, out of devotion, may see god as his creator but this is not true. This is the eternal truth. Empirically, when certain tasks undertaken by a devotee get accomplished, the world says that god has done this. This is the language of devotion. The fact is that due to the man-made reputation of a particular temple as a place of miracles, the faith of the devotee gets strengthened and he performs his activities there with great purity and devotion. He worships god with choicest of offerings. This results in lessening of his greed-passion too. Due to the purity of his dispositions and with attainment of favourable time, his unpleasant-feeling *(asātā vedanīya)* karmas get transformed into pleasant-feeling *(sātā vedanīya)* karmas. Inauspicious fruits of the karmas turn into auspicious fruits. All this should be understood from the standpoints of the cause and effect, the internal dispositions, and the quasi-karmas *(nokarma)*. God, rid of all karmas, gives neither happiness nor misery to any living-being. The soul enjoys happiness and misery strictly according to its own auspicious and inauspicious karmas.

विचार
**The Thoughts**

## २४२. जीवकृत परिणाम ही कर्मबन्ध के कारण

यदि जीव भाव कर्म न करे तो कर्म वर्गणा बलात् बन्ध को प्राप्त नहीं होती। जीव के भाव कर्म करते ही द्रव्य कर्म बन्ध को प्राप्त हो जाते हैं, द्रव्य कर्म बन्धने के पूर्व भाव कर्म होते हैं। भाव कर्म का निमित्त पाकर द्रव्य कर्म जीव के बन्ध को प्राप्त होते हैं। अन्तरंग में जाकर देखें; जीव का भाव कर्म शान्त हो जाये तो द्रव्य कर्म स्वत: शान्त हो जाएगा। यदि जीव भाव कर्मों पर नियंत्रण नहीं कर सका तो द्रव्य कर्मों पर नियंत्रण नहीं हो सकता। पुरुषार्थ सदा आत्म पुरुष को भाव कर्मों पर ही करना होगा, जब भाव कर्म उपशमित हो जाते हैं तो द्रव्य कर्म स्वत: शक्तिहीन हो जाते हैं। भाव कर्म कोई आत्मा से अत्यन्त भिन्न वस्तु नहीं है, आत्मा का ही परिणाम है। अशुद्ध निश्चय नय से आत्मा ही रागी–द्वेषी है, राग–द्वेष कोई भिन्न पुद्‌गलादि द्रव्य का एकान्तिक धर्म नहीं है, अपितु जीव द्रव्य का विभाव स्वभाव है। स्वशक्ति, विभाव शक्ति उभय जीव एवं पुद्‌गल द्रव्य में विद्यमान रहती है। विभाव शक्ति

के कारण जीव संसार की नर-नरक आदि पर्यायों में भ्रमण करता है, पुद्गल द्रव्य विभाव शक्ति के कारण स्कन्ध अवस्था को प्राप्त होता है। स्व-शक्ति के प्रकट होते ही जीव शुद्ध सिद्ध परमात्मा पर्याय को प्राप्त कर लेता है। पुद्गल द्रव्य स्वभाव शक्ति के प्रकट होने पर परमाणु अवस्था को प्राप्त हो जाता है। विशेषता मात्र दोनों द्रव्यों में यह है कि पुद्गल स्वभाव से विभाव में, विभाव से स्वभाव में बार-बार परिवर्तन करता रहता है, परन्तु जीव द्रव्य एक बार स्वभाव दशा को प्राप्त होने पर विभाव दशा को फिर से प्राप्त नहीं होता है। यह सिद्धान्त का नियम है, जिसे सर्वज्ञ अर्हत् मुनि तीर्थंकर भगवन्तों ने उभय द्रव्यों के प्रति ऐसा ही कथन किया है। शेष चार द्रव्य- धर्म, अधर्म, आकाश और काल, सदा एक धर्मी हैं। वे सदा एक शुद्ध-शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। वे स्वभाव का त्यागकर कभी विभाव स्वभाव का आलम्बन नहीं लेते। चार द्रव्यों में संयोग भाव का पूर्ण अभाव है। जीव तथा पुद्गल इन दो द्रव्यों के संयोग से जीव को संसार भ्रमण तथा इन्द्रिय, शरीर, गतियों के सुख-दुःख का भोग करना पड़ता है।

इन संयोगों के अनेक भेद हैं। जो आत्मा में बन्ध को प्राप्त होती हैं वे कर्म वर्गणा हैं। विरुद्ध स्वभाव से विपरीत कार्य अविरुद्ध स्वभाव धर्म से वस्तु स्व कार्य को प्राप्त होती है। जीव पुद्गल के संयोग से आत्मा विरुद्ध स्वभाव कार्य को प्राप्त होती है। जीव पुद्गल की इसी विभाव शक्ति, विभाव स्वभाव के कारण जीव का संसार में संचरण हो रहा है। संसार के प्रत्येक कार्य में जीव का स्वतन्त्र परिणमन है, ऐसा कोई भी कार्य नहीं जिसमें जीव को एक भिन्न कर्ता की आवश्यकता पड़े, प्रत्येक कार्य में जीव स्वाधीन है, अन्याधीन नहीं है। जीव की स्वाधीनता पूर्णरूपेण घटित है, सर्व व्यवस्था व्यवस्थित है।

कर्मों का कर्ता भाव, कर्मों का भोक्ता भाव जीव के अन्दर ही है। जैसा जीव कर्म करता है, वैसा ही जीव कर्मों के फल का भोक्ता है। साथ-ही अन्तरंग-बहिरंग तप साधन के माध्यम से जीव स्व-पुरुषार्थ से, उन कर्मों से मुक्ति को भी प्राप्त होता है। ऐसा सिद्धान्त स्वीकार करना चाहिए। बन्ध-मोक्ष का कारण अन्य नहीं, जीव स्वयं है। अन्य-अन्य का उपादान कर्ता कभी नहीं होता, पर में निमित्तपने का आरोपण अवश्य आता है। कर्ता तो स्व ही होता है, यह सिद्धान्त त्रैकालिक है। व्यक्ति अपने विचित्र विचारों को उत्पन्न करता है, वस्तु के वस्तुत्व के प्रति विपरीत सोच बना सकता है, परन्तु विपरीत वस्तु व्यवस्था को उत्पन्न नहीं कर सकता है। वस्तु का वस्तुत्व जैसा है वैसा ही रहेगा। वस्तु की संज्ञा बदल देने से वस्तु का वस्तु धर्म नहीं बदलता। गाय के थनों को कोई मुख की संज्ञा दे या मुख को थन की संज्ञा दे, तो क्या दुग्ध मुख से निकलने लगेगा? दुग्ध तो थनों में ही है। जैसे गाय का दुग्ध मुख से नहीं निकलता, उसी प्रकार से विपरीत धारणा व्यक्ति भले ही बना ले, वस्तु का स्वभाव तो जो है सो है, उसे कोई भी परिवर्तित नहीं कर सकता। प्रत्येक विवेकी जीव को कारण-कार्य मीमांसा करते हुए कारणों की भिन्नता के साथ कार्य भिन्नत्व भी देखना चाहिए, ऐसा करने से कार्य-कारण में विसंवाद नहीं दिखेगा।

कारण के सदृश कार्य होता है, विपरीत विधि से वैसाम्य भी होता है। प्रतिक्षण कर्ता को तैयार रहना होगा कि कार्य विपरीत न होने पाये। जब कारण-कार्य पर विचार किया जाता है तब अन्य कोई पृथक् उपादान कर्ता के दर्शन नहीं होते, वस्तु स्वतन्त्रता के ही दर्शन होते हैं।

सीधा सिद्धान्त है कि जीव-कृत परिणाम ही कर्मबन्ध के कारण हैं। कर्म स्व-योग्यता से बन्धे हैं।

जीव के परिणाम भी स्वयोग्यता से होते हैं, फिर भी निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध है। कर्म बन्ध भी संसार में संसारी जीवों के भाव कर्म में कारण हैं। शुद्धात्मा में न द्रव्य बन्ध होता है, न भाव कर्म बन्ध और न ही नोकर्म बन्ध; त्रिविध कर्म–मल शून्य, प्रकट शुद्धात्मा, निकल–परमात्मा है। कर्म–मल कलंक शून्य आत्मा में जगत् का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। सूखी मिट्टी पर कोई आकार नहीं दिये जाते। नाना आकार, नाना रूप निर्माण कार्य – कभी घट, कभी सकोरा, कभी खिलौने – मिट्टी के तभी होते हैं जब मिट्टी आर्द्र (गीली) है। जैसे मिट्टी की आर्द्रता समाप्त होते ही उसकी नाना–रूपता की योग्यता नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा में द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म की आर्द्रता के नष्ट होते ही सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं और चैतन्य आत्मा का संसार में चतुर्गति भ्रमण, आधी–व्याधि, शारीरिक, मानसिक, वाचनिक सुख–दुःख व क्लेश समाप्त हो जाता है। आत्मा सदा के लिए परम निर्बाध सुख को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाती है और उसका संसार का भ्रमण समाप्त हो जाता है।

## 242 - Soul's own dispositions result in the bondage of the karmas

If the soul does not engage itself in the psychic karmas *(bhāva-karma)*, the minute matter-particles fit to turn into karmas – *karma-vargaṇā* – do not get into bondage with it. As the soul enters into the psychic karmas, the material karmas *(dravya-karma)* get into bondage. The psychic karmas are the instrumental cause for the bondage of the material karmas. If the psychic karmas get to quiescence, the material karmas automatically get to quiescence. To control the material karmas, control your psychic karmas. So, the effort has to be on the psychic karmas; with subsidence of the psychic karmas, the material karmas become powerless. Psychic karmas are not objects that are different from the soul, these are its dispositions. From the impure-transcendental-standpoint *(aśuddha niścaya naya)*, the soul itself gets into the dispositions of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*. Attachment and aversion do not belong to other substances like the matter *(pudgala)*; these are the unnatural states of the soul. The soul *(jīva)* and the matter *(pudgala)* possess both, the natural and the unnatural states. Due to its power to possess the unnatural state, the soul *(jīva)* gets various states-of-existence like a human being and a denizen of the hell. Due to its power to possess the unnatural state, the matter *(pudgala)* turns into molecules *(skandha)*. With manifestation of the natural state the soul attains the utterly pure state – *paramātmā*. The matter, when utterly pure, gets into the state of the atom *(paramāṇu)*. The difference between the pure states of the soul and the matter is that while the matter keeps on changing its state from natural to unnatural and vice versa, but once the soul attains its natural state, it never again goes back to its unnatural state. This is the rule promulgated by the doctrine expounded by Lord Jina or the *Tīrthaṃkara.* The remaining four substances – the medium-of-motion *(dharma)*, the medium-of-rest *(adharma)*, the space *(ākāśa)* and the time *(kāla)* – remain eternally in their pure state. These do not ever shed their natural state. These do not intermingle with other substances. Due to the intermingling of the soul and the matter, the soul whirls round in the world, getting the senses and the body, and happiness and misery appertaining to its particular state-of-existence.

There are various kinds of intermingling. The minute matter-particles that turn into karmas – *karma-vargaṇā* – get bound with the soul. When intermingling is with an object of opposite nature, the effect is unnatural; when intermingling is with an object of own

PREVIEW ONLY

nature, the effect is natural. Due to the intermingling of the soul and the matter, the effect on the soul is unnatural. The effect of the intermingling of the soul and the matter is the whirling round of the soul in the world. In every activity of the world, the soul has complete independence of transformation; it does not require any external agency for its transformation. Every activity is as per the nature of the objects.

The soul itself is the doer of the karmas and the enjoyer of the fruits of the karmas. The fruits it enjoys are as per the karmas it does. Still, through its own effort in observing internal and external austerities, the soul can get rid of the previously bound karmas. Accept this doctrine. The soul itself is the cause of the bondage and the liberation. No external object is the substantive-doer *(upādāna-kartā)* of any object; external object can at best be an instrumental-cause *(nimitta-kāraṇa)*. The doer is always the self; this is an eternal doctrine. The man can, in his thoughts, assume the nature of the object – *vastutva* – that is in contrast with the reality, but he cannot change the reality. The nature of the object will remain as it is. Changing the name of the object too does not change its nature. If someone starts calling the udder of the cow as the mouth and its mouth as the udder, will the mouth start giving milk? Although the man may think according to his whims but the nature of each object is as it is; it cannot be changed. Every man of discrimination should reflect deeply on the scheme of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya)*; he should see that the different causes produce different effects. He will then be able to reconcile the apparent anomalies.

The effect *(kārya)* is as per the cause *(kāraṇa);* but with the change of the process, one can get an opposite effect. Therefore the doer has to be cautious every moment that the work proceeds according to his plan. When one reflects on the scheme of the cause *(kāraṇa)* and effect *(kārya),* one does not see any external substantive-doer *(upādāna-kartā);* one only sees the independence of each object.

The doctrine is clear: the soul's own dispositions result in the bondage of the karmas. The karmas have own capability to get into bondage with the soul. Still, there exists the relationship of the instrumental cause and causation – *nimitta-naimittika*. In the worldly soul, the previously bound karmas are causes of its psychic karmas *(bhāva-karma)*. In the pure soul there is no bondage of material karmas or psychic karmas or quasi-karmas *(nokarma)*. Rid of all three classes of karmas, the pure soul is the all-pristine supreme-soul *(paramātmā)*. It is then not affected by any world activities or processes. Dry clay cannot be given shapes. The clay can only be moulded into various shapes – of the pot, the cup or the toy – when it is damp. In the same way, as the soul gets rid of the dampness of the material karmas, psychic karmas and quasi karmas, its whirling round in the world, its mental and bodily ailments and its worldly happiness and misery come to an end. The soul, after attaining its highest state, is marked by uninterrupted happiness for eternity; its worldly transmigration comes to an end.

PREVIEW ONLY

विचार
THE THOUGHTS

## २४३. शुभाशुभ कर्मास्रव

लोक छह द्रव्यों का समूह है। जहाँ पर छह द्रव्य अवकाश प्राप्त करते हैं, वह लोकाकाश है। जहाँ पाँच द्रव्यों का प्रवेश नहीं है, वहाँ पर मात्र शुद्धाकाश है। लोकाकाश तथा अलोकाकाश– यह दो

प्रकार का आकाश है। गति एवं स्थिति में सहकारी धर्म तथा अधर्म द्रव्य हैं, इन दोनों द्रव्यों के कारण ही लोकाकाश तथा अलोकाकाश का विभाग होता है। जहाँ तक धर्म-अधर्म द्रव्य हैं, वहीं तक जीव-पुद्गल का गमन है; जहाँ धर्म-अधर्म द्रव्य का अभाव है, वहाँ शेष द्रव्यों का भी अभाव है। ऐसे लोकाकाश में 23 प्रकार की वर्गणायें भरी हुई हैं, उनमें से पाँच प्रकार की ग्राहीमान हैं शेष अग्राहीमान हैं। जीव का संसार-भ्रमण, संसार का सुख-दु:ख जो भी है, वह सब पाँच वर्गणाओं का ही कार्य है। एक सौ अड़तालीस व आठ-आठ प्रकार के जो कर्म-समूह हैं, जिन्हें कार्माण वर्गणा कहते हैं, वे भी इन्हीं पाँच के प्रभेद हैं। संसार में जीव की जो विडम्बना होती है, इन्हीं कर्म-वर्गणाओं की लीला है, अन्य कोई भिन्न ईश्वरीय शक्ति नहीं है। आप पूर्ण निश्चिन्त होकर जिओ। ईश्वर, परमात्मा से भी भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है, वह तो जगत् के कर्तापन से पूर्ण अकिंचित्कर (शून्य) है। अहो जीव! सुख-दु:ख का कर्ता तेरा शुभाशुभ कर्म है, शुभाशुभ कर्म के बन्ध का कर्ता जीव स्वयं ही है। फलोदय का भोक्ता भी जीव स्वयं ही है। यहाँ पर यह स्पष्ट हो गया है कि अन्य किसी को सम्भालने, मनाने, दोष देने की आवश्यकता शेष नहीं रही। ईश्वर, प्रभु, विभु, परमात्मा स्व में स्वाधीन है, वह न पर से प्रभावित है, न पर को प्रभावित करता है। जो नहीं जानते सत्यार्थ वस्तु के वस्तुत्व को, वे ही सुख-दु:ख का कर्ता-हर्ता परमात्मा को देखते हैं। जो जानते सत्यार्थ वस्तु के वस्तुत्व को, वे मानते हैं कि निज के सुख-दु:ख का कर्ता निजात्मा ही है। अन्य कारण मात्र सहकारी साधन होते हैं, उपादान कारण स्वयं जीव का स्वभाव है। अहो! अज्ञानता में अज्ञ प्राणी अपने सुख-द्;ख का कारण, पर कारणों को मानता रहा। भगवान् सुख दे रहा, भगवान् दु:ख दे रहा; वास्तव में यह भी अज्ञानियों की अज्ञानमयी कल्पना है। ज्ञानी जीव कभी इन अज्ञानमयी व्यर्थ की कल्पनाओं को नहीं करता है, वह स्वयं के बन्ध-मोक्ष का, सुख-दु:ख का निर्णय स्व प्रज्ञा से करता है। सर्वप्रथम यह भी जानना आवश्यक है कि क्या जगत् कर्ता को किसी ने कुछ करते हुए देखा है? प्रत्येक कार्य पुरुष जीव आत्मा स्वयं करते हुए देखे जा रहे हैं, वहाँ अन्य कर्ता की व्यर्थ कल्पना करना अज्ञानता ही है।

प्रत्येक कार्य पुरुष के दैव एवं पुरुषार्थ से हो रहा है। वर्तमान का किया कर्म जो वर्तमान में ही फलित दिखता है वह तो पुरुषार्थ है और वर्तमान में पुरुषार्थ विशिष्ट किए बिना अबुद्धिपूर्वक जो कार्य पूर्ण होते दिखते हैं, वे सब जीव का दैव है। यथार्थ में दैव भी वहीं दिखता है जहाँ पुरुषार्थ होते दिखता है; उससे जो कार्य सिद्ध होता है, वह कार्य पुरुषार्थ-सिद्ध कार्य है।

### 243 - The influx of auspicious and inauspicious karmas

The universe comprises the six substances *(dravya)*. The place where the six substances exist is the universe-space *(lokākāśa)*. The space beyond, where the five substances do not exist, is just the pure space called the non-universe-space *(alokākāśa)*. The division between the universe-space and the non-universe-space is caused by the two substances – the medium-of-motion *(dharma)* and the medium-of-rest *(adharma)* – that assist the state of motion and of rest, respectively. The substances of the soul *(jīva)* and the matter *(pudgala)* exist only till the universe-space where the substances of medium-of-motion and medium-of-rest exist; in the non-universe-space, the other substances do not exist. Minute matter-particles *(pudgala-vargaṇā)* of twenty-three kinds are found in the universe-space. Five of these are adaptable, rest are non-adaptable. The worldly transmigration of the soul and its consequent happiness and misery are due

PREVIEW ONLY

to these five kinds of minute matter-particles. The groups of the karmas of one hundred and forty-eight kinds and of eight kinds – which are called the *kārmāṇa-vargaṇā* – too are subdivisions of these five kinds of minute matter-particles. Whatever the soul undergoes in its worldly existence is the play of these five kinds of minute matter-particles. No external super-power does all this. Live without any apprehensions; there is no need to be fearful of god as he is absolutely unconcerned about the affairs of the world. O soul! Your happiness and misery are caused by your own auspicious and inauspicious karmas and no one else but you are responsible for their bondage. You only have to enjoy the fruits. There is no need to take care of, please or blame any external agency. God or the supreme-soul *(paramātmā)* is stationed in own self; he is not influenced by others and does not influence others. Only those who do not understand the true nature of the objects – *vastutva* – make god as the doer and abductor of their happiness and misery. Those who know the true nature of the objects consider own soul as the doer of their happiness and misery. Others are just the instrumental-causes; the substantive-cause *(upādāna-kāraṇa)* is the soul's own nature. Due to ignorance, the soul has been considering others as the causes of its happiness and misery. That god imparts happiness or misery is the imagination of the ignorant men. The knowledgeable man does not engage himself in such useless imagination and takes decisions about his bondage and liberation, happiness and misery, with own intellect. Has anyone ever seen the creator of the world doing anything? What is seen is the man and the soul getting engaged in various acts; it is sheer ignorance to imagine an unseen doer.

The fruition of every effect *(kārya)* is due to fate *(daiva)* coupled with own-deed *(puruṣārtha)* of the man. The effects that are seen happening due to present acts of the man are attributed to own-deed and the effects that are seen happening unintentionally are attributed to fate. The fact of the matter is that fate is always seen accompanying own-deed; the accomplishment of any work is due to own-deed, past or present.

विचार
THE THOUGHTS

इस प्रकार **आचार्य विशुद्धसागर** विरचित
यह हितकर, मधुर एवं विशद ग्रन्थ **'विचार'** पूर्ण हुआ।

This concludes the beneficial, pleasing and unambiguous sacred text
**'The Thoughts'**, composed by ***Ācārya*** **Viśuddhasāgara**.

* * *

*With great devotion, Victory (Vijay) makes obeisance humble*
*at the Worshipful Feet of Ācārya Viśuddhasāgara*
*whose discourses and compositions illumine the Reality,*
*as preached by the Omniscient Lord and the Ancient Preceptors.*

PREVIEW ONLY

## INDEX OF SCRIPTURAL TERMS

*abhāva* – absence 244
*abheda* – non-distinctiveness 22
*abhinna* – non-distinct 165
*abrahma* – unchastity 103, 246
*acakṣu darśana* – non-ocular-perception 223
*acākṣuṣa* – non-visible 182
*acaurya* – non-stealing 8, 24, 67, 111, 120, 168, 183
*adharma* (1) – anti-dharma, viciousness 171,
*adharma* (2) – medium-of-rest 193, 208, 230, 238, 253, 255
*adhikaraṇa* – the substratum 230
*adholoka* – the lower-world 230
*adhyavasāna* – (psychic) dispositions 2
*advaita* – non-dualist 245
*agurulaghu* – inherent transformation in a substance 230
*ahaṃkāra* – self-consciousness 199
*ahiṃsā* – non-injury 8, 24, 34, 38, 44, 49, 59, 67, 80, 88, 93, 94, 96, 105-107, 109-111, 114, 120, 121, 127, 129, 136, 145, 149, 153, 154, 167, 168, 174, 183, 197, 205, 210, 212, 215, 236, 238, 247, 250
*ahiṃsā paramo dharmaḥ* – non-injury is the supreme dharma 87
*ajñāna* – nescience, ignorance 2
*ajñāna-nivṛtti* – destruction-of-ignorance 181
*aloka* – non-universe 215
*alokākāśa* – the non-universe-space 230, 255
*āmnāya* – recitation 244
*amūrta* – non-physical 182
*amūrtika* – without-form 193
*anadhyavasāya* – indefiniteness 181
*ananta-catuṣṭaya* – fourfold-infinitude 174
*anavasthā* – a never-ending assumption 246
*anekānta* – non-absolutistic 56,165
*anekāntavāda* – non-absolutism 23, 36, 77, 165-167, 195, 196, 244, 245
*anihnavācāra* – not concealing the name of the guru and the sacred text 82-83
*anityatā* – transitoriness 104
*aṇu* – atom 163, 164
*anubhāga* – fruition (of karmas) 246
*anumodanā* – approving 220
*anuprekṣā* – reflection 244
*aṇuvrata* – minor-vows 114, 120, 145, 226
*anyāpoha* – reciprocal non-existence 220
*anyathānupapatti* – infallible-non-coexistence; infallible absence of the means *(sādhana)* without the object-to-be-proved *(sādhya)* 11
*aparigraha* – non-possessiveness, non-attachment, non-possession 8, 24, 67, 111, 120, 168, 183
*apramāṇa* – false-knowledge 10
*Āpta* – the supreme-soul 189
*Arhanta* or *Arhat* or *Arihanta* – Omniscient Lord, Lord Jina 12, 138, 184, 208
*ārjava* – straightforwardness 188
*artha* – understanding the correct meaning 82-83
*artha-paryāya* – subtle-mode 170
*Āryikā* – the woman ascetic 156
*asaṃyama* – non-restraint 14
*asat* – non-existence 202, 245
*asātā* – unpleasant-feeling 212, 251
*asātā vedanīya* – unpleasant-feeling 246
*asatya* – falsehood 71, 103, 120, 225, 246
*āsrava* – karmic influx 2
*asteya* – see, *acaurya*
*asti* – affirmation, existent 36, 74, 196
*aśubha* – inauspicious 172
*aśuddha niścaya naya* – impure-transcendental-standpoint 207
*ātmā* – the soul 192, 193
*ātmajña* – the soul 65
*atyantabhāva* – absolute non-existence 65
*audayika bhāva* – disposition due to the fruition of the karmas 221, 227
*avadhi darśana* – clairvoyant-perception 223
*avagraha* – impression 223
*avāntara sattā* – individual-existence 245
*avastu* – non-object 245
*avāya* – comprehension 223
*avirati* – non-abstinence 2
*avrata* – non-abstinence 161

*bahumānācāra* – reverence for the scripture 82-83
*bhāgya* – luck 23
*bhāva* – disposition, nature or condition 2, 65, 73, 117, 161, 164, 227, 251
*bhāva-ahiṃsā* – psychic-non-injury 167
*bhāva-hiṃsā* – psychic-injury 7, 89, 167
*bhāva-karma* – psychic karmas 64, 140, 246, 253, 254
*bhāva-prāṇa* – psychic-life-principles 199
*bheda* – distinctiveness 22
*bhinna* – distinct 165
*bhūtajña* – the soul 65
*bodhi* – three-jewels 23
*brahmacarya* – celibacy, chastity 8, 24, 67, 111, 114, 120, 125, 168, 183,
*buddhi* – intellect 23

*caitanya* – consciousness 182, 192
*cakṣu darśana* – ocular-perception 223
*cākṣuṣa* – visible 182
*caraṇānuyoga* – one of the four constituents of the scripture 30
*cāritra-vinaya* – reverence to conduct 174, 176
*Cārvāka* – a school of thought 217
*caurya* – see, *steya*

*daiva* – fate 202, 256
*darśana* – perception 174, 193, 223
*darśana-vinaya* – reverence to faith 174
*dayā* – compassion, kind-heartedness 106, 154
*dhāraṇā* – retention 223
*dharma* – medium-of-motion 193, 208, 230, 238, 253, 255
*dharmātmā* – noble man 142
*dharmopadeśa* – preaching 244
*dhrauvya* – permanence 170, 202, 229, 230
*Digambara* (see also, *nirgrantha*) – sky-clad or naked (ascetic) 31, 40, 44, 56, 64, 205, 250
*dravya* – the substance 65, 73, 117, 139, 140, 163, 164, 170, 183, 193, 202, 207, 220, 227, 230, 234, 238, 244, 245, 255
*dravya śruta* – physical-scripture 181
*dravya-karma* – material karmas 64, 102, 140, 253
*dravyānuyoga* – one of the four constituents of the scripture 30
*dravya-prāṇa* – material-life-principles 199
*dravyatva* – substance-nature 164, 170
*dveṣa* – aversion 113, 161, 171, 173, 182, 187, 207, 246, 247, 253

*ekānta* – absolutism, absolutistic 43, 165, 167, 195, 196
*ekāntavāda* – absolutism 36
*ekatva-vibhakta* – the unified-self 200
*evaṃbhūta naya* – specific standpoint 91

*gandha* – odour 182, 193
*gotra* – status 52
*guṇa* – qualities, attributes 139, 166, 202

*hāsya* – laughter 212
*heya* – worhty of rejection 181
*hiṃsā* – injury 19, 34, 38, 44, 59, 71, 89, 90, 94, 103, 106, 120, 153, 167, 194, 205, 213, 217, 218, 225, 238, 246-248, 250

*īhā* – inquisitiveness 223
*indriya* – senses 12
*īśvara* – God 162
*itaretarābhāva* – reciprocal non-existence 220

*jīva* – the soul, living-being 22, 65, 67, 122, 139, 140, 164, 166, 170, 182, 207, 214, 230, 238, 245, 251, 253, 255
*jīvatva* – those having a soul 139
*jñāna* – knowledge 174, 181, 184, 193, 219
*jñāna-cetanā* – knowledge-consciousness 245
*jñāna-vinaya* – reverence to knowledge 174, 181, 184
*jñānī* – the soul 65
*jñātā* – the knower 245
*jñeya* – objects-of-knowledge 182, 219, 245

*kāla* – the time 73, 117, 164, 193, 208, 227, 230, 238, 253
*kālācāra* – observance of propriety of time 82-83
*kamaṇḍalu* – water-pot 188
*kāraṇa* – the cause 158, 169, 162, 164, 243-247, 254
*kārita* – getting done 220
*karma-bandha* – karmic bondage 2
*kārmāṇa-vargaṇā* – groups of the karmas (of one hundred and forty-eight kinds and of

eight kinds) 256
*karmaphala-cetanā* –fruit-of-the-karma-consciousness 245
*karma-vargaṇā* – the minute matter-particles fit to turn into karmas 153
*kartā* – the doer 158-160, 162-164, 169, 170
*karuṇānuyoga* – one of the four constituents of the scripture 30
*kārya* – the effect 158, 160, 162, 164, 243-247, 254, 256
*kaṣāya* – passions 12, 21, 138-140, 143, 151-153, 161, 171-173, 188, 189, 192, 200, 216, 219, 221, 225, 246, 250
*kavalāhāra* – to accept morsels of food 109
*kevalajñāna* – perfect-knowledge, infinite-knowledge, omniscience 22, 109, 156, 181, 202
*kevalajñānī* – the Omniscient Lord 22
*kevalī* – the Omniscient 115, 143, 163, 184, 189
*krodha* – anger 171, 172, 246
*krodha-kaṣāya* – anger-passion 171, 172
*kṛta* – doing 220
*kṛtrima* – created 244
*kṣamā* – forbearance 171, 172
*kṣamaṇaka* – a man of conduct (an ascetic) 246
*kṣapaṇa* – a man of conduct (an ascetic) 246
*kṣayopaśama* – destruction-cum-subsidence 113, 182-184, 209, 218
*kṣetra* – the place 73, 117, 164, 227
*kṣetrajña* – the soul 65
*kubhogabhūmi* – regions of perverse enjoyment 193
*kuśīla* – unchastity 71, 103, 120, 225, 246

*lābhāntarāya* – obstruction-of-gain 113
*lakṣaṇa* – mark 230
*laukika* – worldly 10
*loka* – universe 215
*lokākāśa* – the universe-space 230, 255
*lokāloka* – universe and non-universe 230
*Lokāyata* – a school of thought 217

*madhyaloka* – the middle-world 208, 215, 230
*mahāsattā* – grand-power-to-exist, supreme-existence 139, 245
*mahātmā* – great-soul 106
*mahāvrata* – major-vows, great-vows 120, 145
*mamakāra* – sense-of-mine 199
*manaḥparyaya-jñāna* – telepathy 99
*māna-kaṣāya* – pride-passion 138, 139, 173, 188
*manuṣyaloka* – the human-region 208
*mārdava* – modesty 173, 188
*māyā* – deceit 141, 246
*mithyādṛṣṭi* – the man of perverted faith or wrong-belief 208
*mithyātva* – wrong-belief 2, 161, 175
*moha* – delusion 140, 141, 203
*mokṣa* – liberation 15, 23, 65, 161, 162, 174
*muni* – ascetic 131
*mūrta* – physical 182
*mūrtika* – with-form 193

*naigama naya* – the figurative standpoint 158
*naisargika* – natural 244
*nāma-karma* – the name-karmas 200
*nāsti* – negation, non-existent 36, 74, 196
*naya* – standpoints 91, 122, 158, 166, 172, 244, 245
*nimitta* – instrumental, the external-substance 165, 172, 207
*nimitta-kāraṇa* – the instrumental-cause 133, 159, 160, 220, 230, 245, 254
*nimitta-kartā* – the instrumental-doer 162, 164, 170
*nimitta-naimittika* – instrumental cause and causation 254
*nirgrantha* (see also, *Digambara*) – sky-clad or naked (ascetic) 17, 44, 56, 118, 131, 182, 184, 188
*nirvāṇa* (see also, *mokṣa*) – liberation 22, 23, 182, 202, 208
*niścaya* – transcendental 165
*niṣedha* – negation, negative 15, 26, 74
*nokarma* – quasi-karmic matter, quasi-karmas 2, 64, 140, 161, 246, 251, 254
*nokaṣāya* – quasi-passions 212
*nṛloka* – the human-region 208
*nyāya* – science-of-logic 167, 244

*padārtha* – object 230
*pāpa* – demerit 29, 31, 251
*para* – other 74
*para-catuṣṭaya* – other four-fold nature 245
*paramabhāva-grāhaka-dravyārthika-naya* – supreme-nature of the substance 182
*pāramārthika* – spiritual 10

*paramātmā* – supreme-soul 12, 14, 22, 61, 78, 106, 155, 158, 162-164, 170, 171, 182-184, 189, 194, 202, 206, 208, 214, 215, 225, 226, 230, 234, 238, 245, 246, 248, 251, 253, 254, 256
*paridevana* – lamentation 41, 45
*parigraha* – attachment-to-possessions 71, 103, 120, 225, 246
*parokṣa* – indirect 22, 158
*paryāya* – mode 23, 65, 104, 139, 164, 170, 178, 183, 202, 211, 229, 234, 244
*pradeśa* – space-points (of karmas) 246
*prākṛta* – natural 244
*prakṛti* – species (of karmas) 246
*pramāda* – negligence 161
*pramāṇa* – valid-knowledge 10, 22, 122, 166, 181, 182, 218, 244, 245
*pramātā* – the knower 182
*prameya* – objects 182
*prāṇī* – the soul 65
*prathamānuyoga* – one of the four constituents of the scripture 30
*prāyogika* – created 244
*prayojana* – purpose 230
*pṛcchanā* – questioning 244
*pudgala* – physical matter 65, 67, 164, 182, 192, 193, 208, 230, 238, 245, 253, 255
*puṇya* – merit 14, 23, 29, 31, 55, 205, 251
*pūravacara* – precedence 96
*puruṣārtha* – own-deed 202, 256

*rāga* – attachment 2, 113, 161, 167, 171, 176, 182, 187, 189, 207, 215, 219, 246, 247, 253
*rahobhyākhyāna* – to divulge to others the secret act of a couple 225
*rasa* – taste 182, 193
*ratnatraya* – three-jewels 56, 67, 162, 176, 182, 208, 222

*śabda* – correct and unblemished reading 82
*sadbhāva* – presence 244
*samādhi* – deep meditation, supreme-meditation 23, 60, 87, 162
*sāmānya* – general 139, 140
*samatā* – equanimity 171
*samavaśaraṇa* – grand-congregation of the Lord 156, 224
*saṃjñā* (1) – basic instincts 44, 140
*saṃjñā* (2) – name 230
*saṃkalpa* – sense-of-mine 60, 181, 233
*saṃsāra* – cycle of births and deaths 2
*saṃśaya* – doubt 181
*samyagjñāna* – right-knowledge 181, 182
*samyaktva* – right-faith 174, 189, 225
*sarvajña* – the Omniscient 176, 189
*sat* – existence 202, 230, 245
*sātā* – pleasant-feeling 212, 251
*sātā vedanīya* – pleasant-feeling 246
*ṣaṭkāraka* – six-fold factors-of-action 165
*sattā* – existence 193
*sattva* – the soul 65
*satya* – truthfulness 8, 24, 67, 111, 114, 120, 168, 183, 227
*savajña* (see, *kevalī*)
*Siddha* – the Liberated Lord, the (body-less) Supreme-soul, God 138, 149, 163, 182, 194, 215
*skandha* – molecules 163, 253
*śoka* – sorrow 212
*sparśa* – touch 182, 193
*śramaṇa* – a man of conduct (an ascetic) 246
*śrāmaṇya* – a man of conduct (an ascetic) 246
*śrutakevalī* – knowers-of-the-entire-scripture 115
*steya* – stealing – 71, 103, 120, 225, 246
*sthāvara* – one-sensed living-beings 122, 123, 238, 245
*sthiti* – duration (of karmas) 246
*sthitikaraṇa* – steadiness of right faith and conduct 41
*śubha* – auspicious 172
*subhaga* – good-temperament 98
*śuddha* – pure 172
*śuddhopayoga* – pure-cognition 152
*sukha* – bliss, happiness 174, 193
*sūtra* – aphorism 225
*sva* – self 74
*sva-catuṣṭaya* – existence in own four-fold nature 245
*svādhyāya* – study 244
*svayambhū* – self-enlightened 99, 103, 114, 167, 189
*syādvāda* – conditional-predication 23, 36, 56, 70, 77, 165-167, 196, 244

*tapa* – austerity 173

*tathotpatti* – infallible-genesis 11
*tattva* – reality 10, 230
*Tīrthaṃkara* – Lord Jina, Ford-maker, Supreme Lord 31, 77, 107, 114, 128, 131, 155, 156, 170, 183, 193, 208, 224. 250, 253
*trasa jīva* – (mobile) living-beings with two or more senses 114, 122, 123, 245

*upacāra-vinaya* – reverence to the custom of homage 174, 187-189
*upādāna* – the substance itself, the internal-substance, substantive, the inherent capability 162, 164, 166, 174, 245, 246
*upādāna-kāraṇa* – substantive-cause 133, 159, 160-162, 212, 220, 244, 245, 256
*upādāna-kartā* – the substantive-doer 162, 164
*upādeya* – worthy of acceptance 181
*upadhānācāra* – observance of some vow (rule for self) till the completion of the scripture 82-83
*upagūhana* – concealment of the faults of others 41
*upayoga* – cognition 172
*upekṣā* – to have equanimity 181
*ūrdhvaloka* – the upper-world 230
*utpāda* – origination 170, 202, 229, 230
*uttaracara* – subsequence 96

*vācanā* – teaching 244
*vaidya* – the object-of-knowledge 208
*vaidyaka* – the knower 206
*vargaṇā* – minute matter-particles 246, 253, 255
*varṇa* – colour 182, 193
*vastu* – object 4, 164, 170, 230
*vastutva* – nature of the objects, objectness 10, 12, 21, 35, 37, 111-113, 116, 119, 133, 135, 145, 148, 158, 170, 183, 208, 209, 223, 229-231, 245, 254, 256
*vāta-rasāyana* – a man of conduct (an ascetic) 246
*vibhrama* – perversity 181
*vidhi* – affirmation, positive 15, 26, 74
*vikalpa* – self-consciousness, inquisitiveness 60, 181, 206, 233
*vimoha* – indefiniteness 181
*vinaya* – reverence 173-176, 181, 184, 187-189
*vinayācāra* – studying with due humility and modesty 82-83
*viparyaya* – perversity 181
*vīrya* – energy 174, 193
*viṣaya* – sensual-pleasures 200
*viśeṣa* – specific 139, 140
*vītarāgī* – conqueror-of-attachment 12
*vyañjana-paryāya* – gross-mode 170
*vyavahāra* – empirical 165, 172
*vyaya* – destruction 170, 202, 229, 230

*yathākhyāta-cāritra* – perfect-conduct 182
*yoga* (1) – activity 2, 34, 60, 98, 99, 161, 246
*yoga* (2) – meditation 77, 144, 183
*yogī* – supreme-ascetic 60, 61, 138, 206
*yogyatā* – capability 23

***

# **Sacred Jaina Texts** Edited and Translated by Vijay K. Jain

*Shri Amritachandra Suri's*
***Puruṣārthasiddhyupāya***

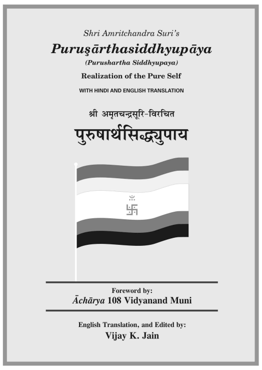


**Rs. 350/-**

*Ācārya Pūjyapāda's*
***Iṣṭopadeśa***

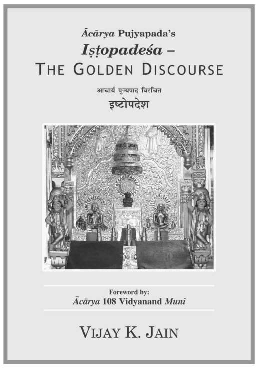


**Rs. 450/-**

*Ācārya Samantabhadra's*
***Svayambhūstotra***

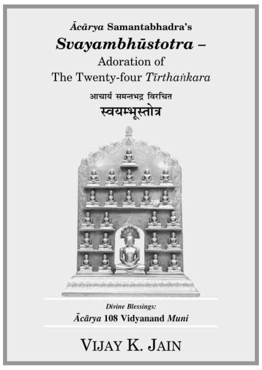


**Rs. 500/-**

*Ācārya Samantabhadra's*
***Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra***

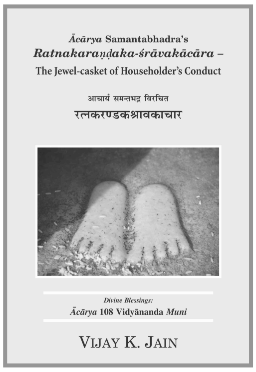


**Rs. 500/-**

*Ācārya Pūjyapāda's*
***Samādhitantram***

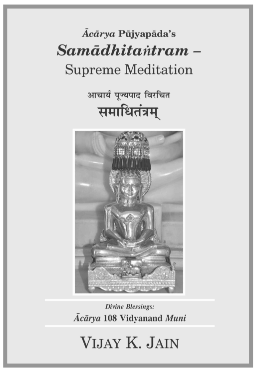


**Rs. 600/-**

*Ācārya Kundakunda's*
***Pravacanasāra***

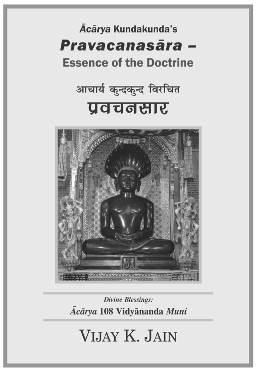


**Rs. 600/-**

*Ācārya Umāsvāmī's*
***Tattvārthasūtra – With Sarvārthasiddhi***

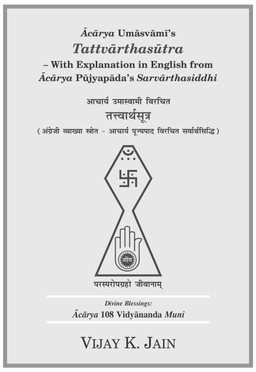


**Rs. 750/-**

*Ācārya Kundakunda's*
***Niyamasāra***

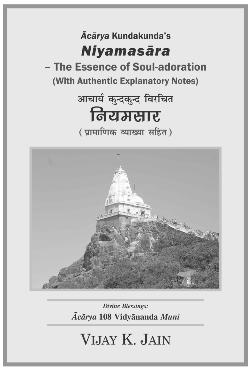


**Rs. 600/-**

*Ācārya Guṇabhadra's*
***Ātmānuśāsana***

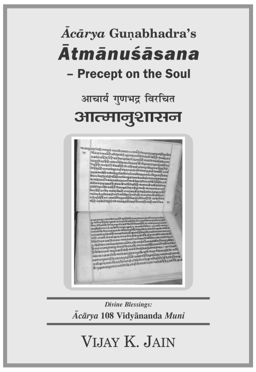


**Rs. 600/-**

*Ācārya Kundakunda's*
***Pañcāstikāya-saṃgraha***

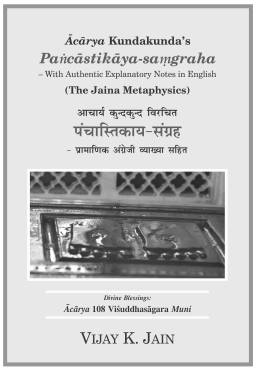


**Rs. 750/-**

आचार्य समन्तभद्र विरचित
**युक्त्यनुशासन**

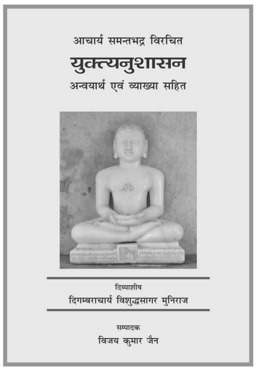


**Rs. 500/-**

आचार्य समन्तभद्र विरचित
**स्तुतिविद्या**

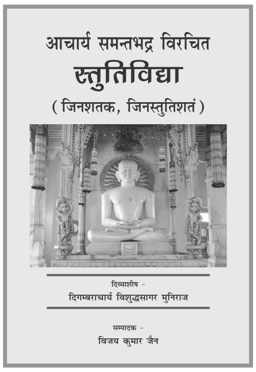


**Rs. 500/-**

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर
विरचित **सत्यार्थ-बोध**

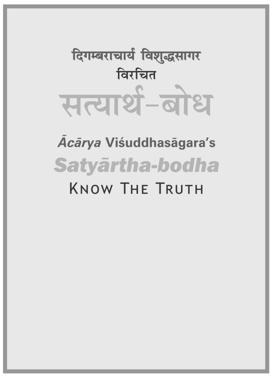


**Rs. 600/-**

*Ācārya Māṇikyanandi's*
***Parīkṣāmukha Sūtra***

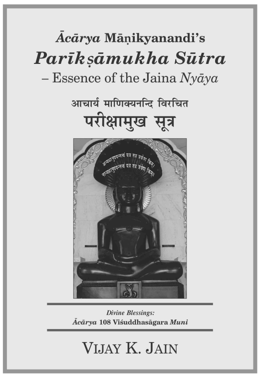


**Rs. 800/-**

*Ācārya Kundakunda's*
***Bārasa Aṇuvekkhā***

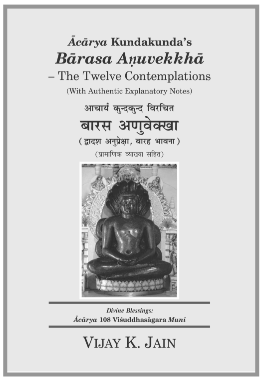


**Rs. 800/-**

*Ācārya Pūjyapāda's*
***Bhakti Saṃgraha***

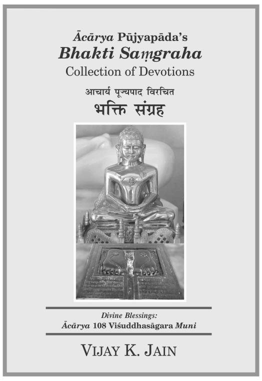


**Rs. 600/-**

*Ācārya Kundakunda's*
***Samayasāra***
(Second Edition)

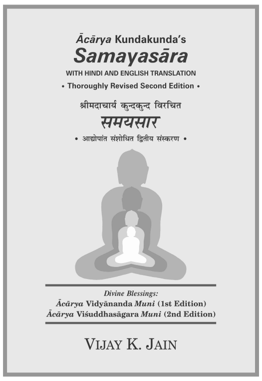


**Rs. 800/-**

*Ācārya (Muni) Nemichandra's*
***Dravyasaṃgraha***
(Second Edition)

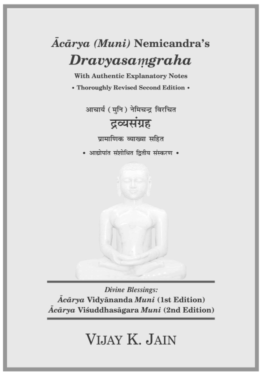


**Rs. 800/-**

*Ācārya Mānatuṅga's*
***Bhaktāmara Stotra***

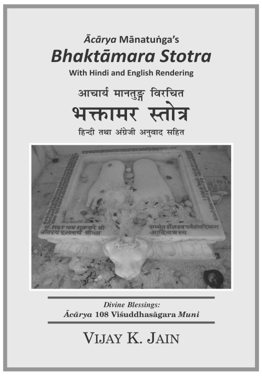


**Rs. 250/-**

*Ācārya Kundakunda's*
***Rayaṇasāra***

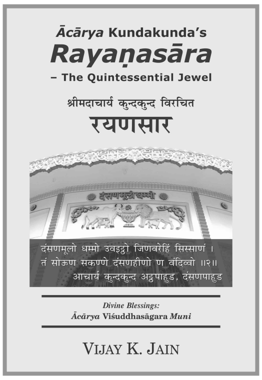


**Rs. 750/-**

*Ācārya Kumudacandra's*
***Kalyāṇamandira Stotra***

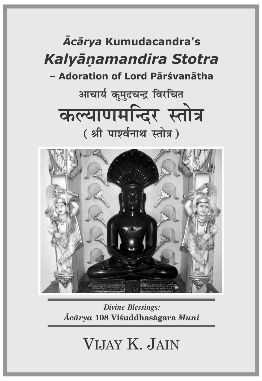


**Rs. 250/-**

*Ācārya Devasena's*
***Ālāpa Paddhati***

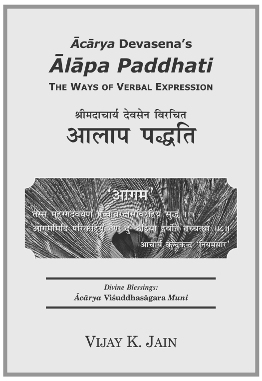


**Rs. 750/-**

*Ācārya Vādirāja's*
***Ekībhāva Stotra***

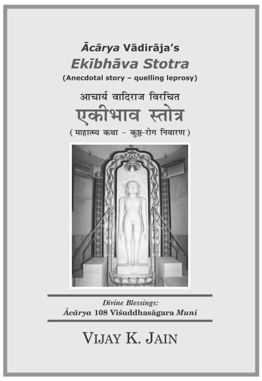


**Rs. 250/-**

*Ācārya Samantabhadra's*
***Āptamīmāṃsā***
(Second Edition)

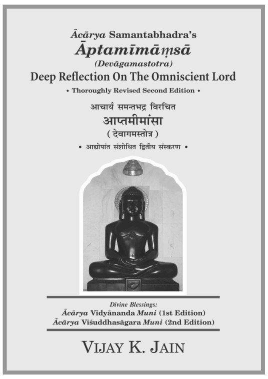


**Rs. 800/-**

ORDERING INSTRUCTIONS

**WhatsApp:**

**9412057845 (Mrs. Sonal Jain Chhabra); 8923114988 (Ms. Malika Jain)**

**परिशिष्ट-२** **APPENDIX-2**

## GUIDE TO TRANSLITERATION

| *Devanāgarī* | *IAST** | *Devanāgarī* | *IAST* | *Devanāgarī* | *IAST* |
|---|---|---|---|---|---|
| अ | *a* | घ | *gha* | प | *pa* |
| आ | *ā* | ङ | *ṅa* | फ | *pha* |
| इ | *i* | च | *ca* | ब | *ba* |
| ई | *ī* | छ | *cha* | भ | *bha* |
| उ | *u* | ज | *ja* | म | *ma* |
| ऊ | *ū* | झ | *jha* | य | *ya* |
| ए | *e* | ञ | *ña* | र | *ra* |
| ऐ | *ai* | ट | *ṭa* | ल | *la* |
| ओ | *o* | ठ | *ṭha* | व | *va* |
| औ | *au* | ड | *ḍa* | श | *śa* |
| ऋ | *ṛ* | ढ | *ḍha* | ष | *ṣa* |
| ऌ | *ḷ* | ण | *ṇa* | स | *sa* |
| अं | *ṃ* | त | *ta* | ह | *ha* |
| अः | *ḥ* | थ | *tha* | क्ष | *kṣa* |
| क | *ka* | द | *da* | त्र | *tra* |
| ख | *kha* | ध | *dha* | ज्ञ | *jña* |
| ग | *ga* | न | *na* | श्र | *śra* |

**IAST: International Alphabet of Sanskrit Transliteration*

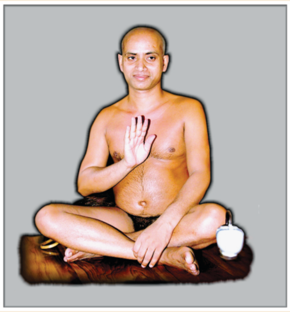

विश्व में एकत्व-भाव हृदय में जन्मे। भिन्नत्व-भाव के साथ प्रत्येक ज्ञेय भेदाभेदात्मक है। जगति पर स्व-स्व योग्यता के अनुसार ही जीव की प्रवृत्ति है। उनके विचार भिन्न-भिन्न हैं। सर्वथा विचार विभिन्नता हितकारी नहीं है, इसलिए **'विचार'** ग्रन्थ का प्रणयन हुआ।

स्व-पर हितार्थ कुछ विचारों में एकत्व होना अनिवार्य है; जैसे- करुणा-भाव पर एकत्व सभी जीवों का होना चाहिए। **'विचार'** कृति का सृजन प्राणिमात्र के हितार्थ किया गया है।

जगति पर अहिंसा-परमब्रह्म का सूत्र उद्घोषित रहे, अन्याय-अनीति से जगत् की रक्षा हो, इसलिए हिन्दी भाषा में **'विचार'** ग्रन्थ का सृजन हुआ है। विश्व को सत्यार्थ का बोध हो, आंग्ल-भाषी जीवों का हित हो, इसी पुनीत-भावना से मनीषी विद्वान्, तत्त्व-व्यसनी, देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्थावान, सच्चे श्रावक, विश्व-धरातल पर जिन-सूत्रों के प्रेषक, भूतार्थ तत्त्व अन्वेषक, वस्तु के वस्तुत्व के सत्यार्थ-बोधक श्री विजय कुमार जी जैन (देहरादून) ने **'विचार'** कृति का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके माँ वागीश्वरी की उपासना कर सरस्वती के कोश की वृद्धि की है।

**- श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनि**

*Ācārya* Viśuddhasāgara believes firmly that the human birth must be utilized as a springboard for spiritual development rather than for physical or material development. This can be attained only when one holds the belief that the body and the soul are two utterly distinct entities and that the soul needs to be attended to as the first priority in all human endeavors. If this belief percolates down mankind we shall witness a world that is rid of strife, deprivation and antagonism. No one will then play with the ways of nature on this planet earth.

Right thoughts are a prerequisite for world-development. Your thoughts must focus on development and well being of the world, besides of the self. The world today is beset by several wrong beliefs and tendencies that have become 'natural' to most of us but are causing great harm to self and others. **'The Thoughts'** confronts many such issues head-on with inviolable logic and scriptural attestation. This fact alone makes the book essential reading for all thoughtful persons globally.

**– Vijay K. Jain**

**Rs. 1000/-**

ISBN 978-93-342-5505-8

9 789334 255058

विकल्प
**Vikalp Printers**